आर्यविधानम्

(विश्वेश्वरस्मृतेरुत्तरार्धरूपम्)

भाषाटीकोपेतम्

प्रथमो भागः

पण्डित विश्वेश्वरनाथ रेउ:

आर्यविधानम्

(विश्वेश्वरस्मृतेरुत्तरार्धरूपम्)

भाषाटीकोपेतम्

प्रथमो भागः

आर्यविधानम्

(विश्वेश्वरस्मृतेरुत्तरार्धरूपम्)

भाषाटीकोपेतम्

प्रथमो भागः

महामहोपाध्याय-

पण्डित विश्वेश्वरनाथ रेउ-

विरचितम्

पश्चिम-बङ्ग-शासक (Governor)-

पण्डित कैलासनाथ काटजू-

लिखितया भूमिकयोपेतम् ।

प्रकाशकः

श्री गोवर्धनलाल काबरा

प्रथमावृत्तिः
मूल्यम् रु० १०)

मुद्रकः
मारवाड़ प्रिन्टर्स लिमिटेड
जोधपुर

पश्चिम-वङ्ग-प्रान्त-शासक (Governor)

पण्डित कैलासनाथ काटजू-

(ऐम० ए०, ऐल० ऐल० डी०, डी० लिट्०)

महाभाग-लिखिता भूमिका[1]।

अस्ति विश्वेश्वरनाथ रेउ पण्डितः संस्कृतभाषाया विश्रुतो विद्वान्। तेनैष हिन्दू-विधान-विषयको ग्रन्थः संस्कृतभाषायां विरचय्य बहूपकृताः स्वदेशवासिन इति मन्ये। आसीदतीवावश्यकताऽस्य निबन्धस्य। आशासे च यदेतद्विषयानुरागिणां सुमहते समुदायायेष रोचिष्यते। श्रूयन्ते चास्मदीयराष्ट्रभाषाविषयमवलम्ब्य समाचारपत्रेषु सार्वजनिकव्याख्यानमञ्चेषु च सततं विवादाः। परन्तु संस्कृतमेव निखिलानां मुख्यमुख्यानांभारतीयभाषाणां जनन्यस्तीति तु सर्वसंमतमेव। पुराकाले संस्कृतमेव च भारतस्य राष्ट्र-भाषाऽऽसीत्। अद्यत्वेतद् मृतमाधुनिकविचारप्रकटनाक्षमं च समुद्घोष्य राष्ट्र-भाषापदानर्हतादूषणेन दूष्यते। यद्यपि नाहं संस्कृतभाषाविज्ञस्तथाप्युभावपीमौ तर्कौ मां स्वपक्षमाक्रष्टुं नैव प्रभवतः। अश्रौषमहं बहून् विदुषो धाराप्रवाहायितं निर्बाधमस्खलितं च संस्कृतं भाषमाणान्। भाषेयं चोत्तरोत्तरं सरलीक्रियमाणाऽस्ति। मनुष्याणामाशयं विषदयितुमलंकर्मीणां नान्यां भाषां निर्धारये, या दुरूहान्वैज्ञानिकांस्तात्त्विकांश्च विषयानुपयुक्तैः स्पष्टैश्च शब्दैः प्रकटयितुं सुतरां प्रभविष्णुः स्यात्। अस्माकं संस्कृतसाहित्यं केवलं धार्मिकं क्रियाकलापं कर्मकाण्डञ्च विशेषेण संबध्नातीति नितान्तं भ्रम एव। एतादृशोऽपि नाम ग्रन्थाः संस्कृते विद्यन्ते ये गणितं, वास्तुविद्यामोषधिशास्त्रं, वैधानिकं च विषयं विवेचयन्ति। विधानग्रन्थेषूपयुक्तभाषया प्रकटीकृतानां पूर्णरूपिणां यथार्थविचाराणामावश्यकताऽस्ति। अस्मदीयेषु प्राचीनशास्त्रेषु तेषामर्वाचीनासु व्याख्यासु चोपलभ्यमानमस्माकं वैधानिकं साहित्यमेतादृश्या यथार्थताया आदर्श एव।

(१) अनूदिता।

अस्माकीना अङ्ग्रेजशासकास्तु स्वकीयं भाविनं लाभमेव लक्ष्यीकृत्य हिन्दूनां पारिवारिकेषु प्रबन्धविषयकेषु संबन्धविषयकेषु च विधानेषु हस्तक्षेपं कर्तुं नैव सममन्यन्त । अत एवास्मच्छास्त्राणामेतद्विषयिणो भागा द्रुतमेवेङ्ग्लिशभाषायामनूदितास्त एव च विगतपादोनशताब्दीद्वयतो न्यायालयेषु सूक्ष्मविवेचनाऽऽधारीभूताः सन्ति । एषोऽपि नाम कादाचित्को विचारः केषांचिच्चेतसि स्फुरति, यदस्मदीयाः पुरातना विधानाचार्या आत्मानं तावन्मात्रविषयेष्वेव सीमितवन्तः । किन्तु नैतत्समीचीनम् । अविकलं किल सर्वथा हिन्दूविधानम् । अधुना सर्वथा स्वायत्ततां बिभ्रति भारतेऽहमाशासे, यदस्माकीना विद्वांसो यथाशास्त्रं पूर्णरूपि हिन्दू-विधानं विश्वस्य संमुखमुपस्थापयितुं प्रयतिष्यन्ते । अद्य यावत्तु यथायुगमावश्यकतामनुसृत्य हिन्दू-विधाननिबन्धा अलिख्यन्त इङ्ग्लिशभाषायामेव । परमाशासे, यदस्मदीयराष्ट्र-भाषाऽपेक्षया अस्या इङ्ग्लिशभाषायाः प्रवर्तमानं प्राधान्यमचिरादेव नङ्क्ष्यति, संस्कृतलिखिताः प्रामाणिका ग्रन्थाश्च विशेषेणोपयुक्ता निर्धारयिष्यन्ते ।

रेउ-महोदयस्य मार्गनिदर्शकमेतत्कार्यं विशेषेण प्रोत्साहनार्हम् । एतत्कृतं विधानस्य विशदं विवरणं विद्वत्तापूर्णं प्रामाणिकं च । अमुना चैतज्ज्ञापितं, यदेतेषामस्मद्विधानानां सरलसंस्कृते संपादनं न दुष्करम् । एतत्सनाथीकृतो हिन्दी-भाषानुवादः पुनर्ग्रन्थस्योपयोगितां वर्धयिष्यति ।

पश्चिमी बंगाल के शासक (Governor)

श्रीमान् पण्डित कैलाशनाथ काटजू

(एम० ए०, एल०एल० बी०, डी० लिट्०)

द्वारा लिखी भूमिका।

पण्डित विश्वेश्वरनाथ रेउ संस्कृत के एक विख्यात विद्वान् हैं। मेरी समझ में उन्होंने हिन्दू-विधान से संबन्ध रखनेवाली इस पुस्तक को संस्कृत भाषा में लिखकर अपने देशवासियों का बड़ा उपकार किया है। इसकी बड़ी आवश्यकता थी और मैं आशा करता हूं कि इस विषय से संबन्ध रखनेवाले पाठकों का एक बड़ा समुदाय इस पुस्तक को पसंद करेगा। हमारी राष्ट्र-भाषा के विषय में पत्रों में और सार्वजनिक व्याख्यान मञ्च पर लगातार वाद-विवाद सुनाई देता रहता है। परन्तु यह तो सर्व-संमत है कि संस्कृत ही भारत की सारी मुख्य-मुख्य भाषाओं की जननी है। प्राचीन समय में संस्कृत ही निश्चयरूप से भारत की राष्ट्र-भाषा थी। आजकल इस भाषा को, मृत-भाषा और आधुनिक विचारों को प्रकट करने में असमर्थ बतलाकर राष्ट्र-भाषा होने के अयोग्य कहा जाता है। यद्यपि मैं स्वयं संस्कृत का पण्डित नहीं हूँ, तथापि ये दोनों तर्क मुझे अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर सके हैं। मैंने बहुत से लोगों को धाराप्रवाह की तरह संस्कृत बोलते सुना है और वह भी विना किसी रुकावट या कठिनता के। यह भाषा उत्तरोत्तर सरल बनाई जा रही है। मनुष्यों के विचारों को प्रकट करने के लिए मैं ऐसी किसी दूसरी भाषा को नहीं जानता जो कठिनता से समझे जानेवाले वैज्ञानिक और तत्त्वज्ञान संबन्धी विचारों को ठीक तौर से उपयुक्त और स्पष्ट शब्दों में प्रकट करने में समर्थ हो। यह सोचना भूल है कि हमारा संस्कृत साहित्य केवल धार्मिक-कृत्यों और धार्मिक-क्रियाओं से ही विशेष संबन्ध रखता है। संस्कृत में ऐसे भी ग्रन्थ हैं जो अङ्कगणित, वास्तु (गृहनिर्माण) विद्या, ओषधि शास्त्र और विधान (कानून) से संबन्ध रखते हैं। विधान (कानून) की पुस्तकों में स्पष्टतया उपयुक्त भाषा में प्रकट किये पूर्णरूप से यथार्थ विचारों की आवश्यकता होती है। हमारे प्राचीन शास्त्रों और उन पर की अर्वाचीन व्याख्याओं में हमारा विधान से संबन्ध रखनेवाला साहित्य इस प्रकार की यथार्थता का नमूना है।

हमारे अंगरेज शासक केवल अपने ही भावी लाभ के लिए हिन्दुओं के पारिवारिक-प्रबन्ध और पारिवारिक-संबन्ध के कानून में हस्तक्षेप करना उचित नहीं समझते थे । इसीसे हमारे शास्त्रों के इन विषयों से संबन्ध रखनेवाले भागों का शीघ्र ही अंगरेज़ी में अनुवाद किया गया और वही पिछले १७५ वर्षों से न्यायालयों में सूक्ष्म विवेचनाओं का आधार रहा है। कभी-कभी यह भी खयाल किया जाता है कि हमारे विधान शास्त्र के आचार्यों ने केवल इन्हीं विषयों में अपने को सीमित करलिया था। परन्तु बात ऐसी नहीं है। हिन्दू-विधान सब तरह से परिपूर्ण है। जब कि भारतवर्ष अब आज़ाद हो गया है, मैं आशा करता हूँ कि हमारे विद्वान् शास्त्रों के अनुसार पूर्णरूपवाले हिन्दू-विधान को संसार के सामने उपस्थित करने का प्रयास करेंगे। आज तक समय की आवश्यकता के अनुसार हिन्दू-विधान की पुस्तकें अंगरेज़ी भाषा में ही लिखी जाती थीं। परन्तु मुझे आशा है कि हमारी राष्ट्र-भाषा से इस (अंगरेज़ी) भाषा की यह प्रधानता शीघ्र ही नष्ट हो जायगी और संस्कृत में लिखी गई प्रामाणिक पुस्तकें विशेष उपयोगी सिद्ध होंगी।

पण्डित रेउ का यह पथ-प्रदर्शक कार्य विशेष प्रोत्साहन के योग्य है। उनका किया विधान का विशद विवरण विद्वत्तापूर्ण और प्रामाणिक है तथा उन्होंने दिखला दिया है कि हमारा विधान सरल संस्कृत में तैयार करना कठिन नहीं है। इसके साथ का हिन्दी अनुवाद इसे और भी उपयोगी बना देगा।



श्रीमान पण्डित मुकुन्दमुरारि [illegible]



ययोर्हि पूज्यपादानां प्रसादाद् रचिता स्मृतिः ।
तयोः पित्रोः पदाब्जेषु मयेयं श्रद्धयाऽर्प्यते ॥

जिनके कृपा-प्रताप से स्मृति विरची, स-सनेह ।
उन माता-पितु-चरण पे करूं समर्पण एह ॥

प्राक्कथनम्

याऽस्माभिर्युगानुरूपं धर्मं व्याख्यातुं विश्वेश्वरस्मृतिः प्रणीता तस्या एवैष उत्तरार्धः । पूर्वार्धापेक्षयाऽऽसन्नचतुर्गुणतां गतोऽप्यस्य विस्तर उपादेयत्वदृष्ट्या नाऽनुचितः प्रतिभाति । यतोऽस्मिन्निःशेषस्यैवाऽऽर्यविधानस्य सांप्रतिकानां रूपाणां सविस्तरं विवेचनं विहितं वर्तते । यथास्थानं चात्र मान्यानां स्मृतिकाराणांतत्तत्प्रसङ्गाभिमतानि मतानि जटिलानां समस्यानामुदाहरणानि च दातुं प्रायत्यन्त ।

क्वचित् क्वचित् पुरोक्तं विषयं पुनरावर्त्य सुतरामचेष्ट्यत दुरूहं प्रसङ्गं सरलयितुं विशदयितुं च ।

यथा ह्यस्याः स्मृतेः पूर्वार्धस्योद्देश्यं परम्परागतस्यार्यधर्मस्य युगानुरूपव्याख्यासाहाय्येनाधुनिकानां समालोचकानां वाग्विषहरणाय जने शक्तिसंपादनं तथैवास्या उत्तरार्धस्य लक्ष्यमार्यविधानानां युगानुरूपव्याख्यासाहाय्येन सांप्रतिकानां वाक्कीलानां वाक्कीलनार्थं पुरुषे प्रागल्भ्योत्पादनमस्ति ।

नैतत्साक्षराणामविदितं यन्मनुयाज्ञवल्क्यपराशरादिमहर्षिनामभिः प्रचलिताभिः स्मृतिभिर्मिताक्षरादिभिस्तत्तद्व्याख्याभिश्च प्रतिपादितेष्वार्यविधानेषु देशकालावस्थाप्रभावेण पाश्चात्यानां संपर्केण च सुमहान् विपर्यासः संजातः । अत एव केवलमुक्तानां स्मृतीनां व्याख्यानां चाध्येता महान् पण्डितोऽप्यस्मिन् युग आर्य-विधानसंबन्धिनो विवादास्पदीभूतान् विषयान् न खलु साधिकारं निर्धारयितुं प्रभवति । एतस्या एव त्रुटेर्निरसनायार्यविधानमेतादृशे रूप उपस्थापयितुमस्माभिर्व्यवसितम् । वयं चात्र कियत्साफल्यमधिगता इति तु विदुषामेव परीक्षायत्तम् । परं यद्यनेन ग्रन्थेन संस्कृतवाङ्मये एतादृशस्य युगानुरूपार्यविधाननिबन्धाभावस्यांशेनापि पूर्तिः संभवेत्तर्ह्यस्माभिः सफलो मंस्यते स्वकीयः प्रयासः ।

एतन्निबन्धरचनायां येषां प्राचीनानामर्वाचीनानां च ग्रन्थानां साहाय्यं गृहीतं तत्प्रणेतॄन्प्रति विशिष्टकृतज्ञताप्रदर्शनमप्यस्माकं प्रधानं कर्तव्यमेवेति तदाचरामः ।

अस्य ग्रन्थस्य प्रकाशको रायसाहबोपाधिभूषितः श्रेष्ठिवर्यः श्री गोवर्धनलाल काबरा महाशयः, संशोधको गुरुवर्य-पण्डित-श्री भगवतीलाल महाशयाऽनुजः पण्डितवर्यः श्री नित्यानन्द शास्त्री महाशयश्चोभावप्येतावस्माकं हार्दिकं धन्यवादमर्हतः ।

अस्यार्यविधानपुस्तकस्याकारस्थौल्यनिराकरणायैवैष ग्रन्थोभागद्वये विभक्तः । तस्य चायं प्रथमो भागः । द्वितीयश्चापि शीघ्रमेव विदुषां करकमलमलङ्करिष्यते ।

यद्यस्मिन्नभिनवे प्रयत्ने दृष्टिदोषादज्ञानाद्वा यत्र-कुत्रापि यत्किञ्चिन्नामाशुद्धमयुक्तं वा प्रतिभायात् तर्हि तदर्थं कृपया सूचनीयोऽयं जनो येनागामिन्यामावृत्तौ तद्दोषपरिमार्जनं क्रियेत ।

जोधपुरम्
आषाढ़ शुक्ल १५, २००५ वि०सं०

विश्वेश्वरनाथ रेउः

भूमिका

हमने आर्य-धर्म की युगानुरूप व्याख्या करने के लिए जो विश्वेश्वरस्मृति लिखी है, उसीका यह उत्तरार्ध है। यद्यपि यह पूर्वार्ध से करीब चारगुना बड़ा हो गया है, तथापि इसकी उपादेयता को देखते हुए इसका यह विस्तार अनुचित नहीं है, क्योंकि इसमें सारे ही आर्य-विधान (Hindu law) के वर्तमान रूपों का विस्तार से विवेचन किया गया है। इसी के साथ इसमें यथास्थान मान्य स्मृतिकारों के मतों के उल्लेख और जटिल समस्याओं के उदाहरण भी देने का प्रयास किया गया है। कहीं-कहीं पूर्वोक्त विषय को फिर से दोहराकर प्रसङ्ग को सरल और स्पष्ट करने की चेष्टा भी की गई है।

जिस प्रकार विश्वेश्वरस्मृति के पूर्वार्ध का उद्देश्य आर्य-धर्म की युगानुरूप व्याख्या की सहायता से पुरुष को आधुनिक समालोचकों का सामना करने में समर्थ करना है, उसी प्रकार उक्त स्मृति के इस उत्तरार्ध का लक्ष्य आर्य-विधान की युगानुरूप व्याख्या की मदद से पुरुष को आजकल के वकीलों से विवाद करने में शक्त बनाना है।

यह बात किसी भी साक्षर पुरुष से छिपी नहीं है कि हमारी मनु, याज्ञवल्क्य, पराशर आदि महर्षियों के नाम से प्रचलित स्मृतियों द्वारा और मिताक्षरा आदि उनकी व्याख्याओं द्वारा निश्चित किये गये आर्य-विधानों में काल और देश भेद के प्रभाव से तथा पाश्चात्यों के संसर्ग से बहुत कुछ परिवर्तन हो गया है। इसलिए केवल उक्त स्मृतियों और उनकी व्याख्याओं का अध्ययन करनेवाला कितना ही बड़ा विद्वान् क्यों न हो, वर्तमान युग में आर्य-विधान से संबन्ध रखनेवाले विवादास्पद विषयों पर अधिकार के साथ कोई मत निश्चित नहीं कर सकता। इसी कमी को दूर करने के लिए आर्य-विधान को इस रूप में प्रस्तुत करने का यह प्रयास किया गया है। इसमें हम कहां तक सफल हुए हैं, इसका निर्णय करना तो विद्वानों का ही काम है, परन्तु यदि इससे संस्कृत वाङ्मय में ऐसे युगानुरूप ग्रन्थ के अभाव की कुछ भी पूर्ति हुई तो हम अपने प्रयास को सफल समझेंगे।

इसकी रचना में जिन मान्य प्राचीन और अर्वाचीन ग्रन्थों से सहायता ली गई है, उनके रचयिताओं के प्रति विशेष रूप से कृतज्ञता

प्रकट करना हम अपना विशिष्ट कर्तव्य समझ कर उनका आभार मानते हैं।

इस ग्रन्थ के प्रकाशक राय साहब सेठ (शाह) श्री गोवर्धनलाल काबरा महाशय और संशोधन-कर्ता गुरुवर्य पण्डित श्री भगवतीलालजी महाराज के छोटे भ्राता पण्डित श्री नित्यानन्द शास्त्री महाशय ये दोनों भी हमारे धन्यवाद के पात्र हैं।

इस आर्यविधान पुस्तक के आकार की मुटाई को दूर करने के लिए ही इस पुस्तक को दो भागों में बांट दिया है। उसका यह पहला भाग है। दूसरा भी शीघ्र ही विद्वानों के हाथों को भूषित करेगा।

यदि इस नवीन प्रयत्न में दृष्टि-दोष या अज्ञान के कारण जहां-कहीं जो-कुछ भी अशुद्ध या अयुक्त मालूम दे तो कृपया इस (लेखक) को सूचित करने की कृपा करें; जिससे आगे होनेवाली आवृत्ति में उस दोष को दूर कर दिया जाय।

जोधपुर
२० जुलाई १९४८ ई०स०

विश्वेश्वरनाथ रेउ

विश्वेश्वरस्मृतेरुत्तरार्धरूपस्य आर्य-विधानस्य (प्रथमभागस्य)

विषय-सूची

विषय-सूची ।

ॐ

आर्यविधानम् ।

(विश्वेश्वरस्मृतेरुत्तरार्धरूपम् ।)

विश्वेश्वरस्मृतेरेवोत्तरार्धस्य स्वरूपतः ।
भारतीयार्यजातीयो व्यवहारो विविच्यते ॥ १ ॥

विश्वेश्वरस्मृति के ही उत्तरार्ध के रूप से भारतीय आर्य जाति (हिन्दुओं) के कानून की विवेचना की जाती है ।

त्रयोदशो (व्यवहारा)ऽधिकारः ।

१ उपोद्घातः ।

परिचय ।

चातुर्वर्ण्ये समुत्पन्नास्तन्मताऽनुगताश्च ये ।
प्रत्यावृत्ताश्च ये तस्मिंस्तदर्थं विधिरुच्यते ॥ २ ॥

जो चार वर्णों में उत्पन्न हुए और उनके मत (धर्म) को मानने वाले हैं और जो (अन्य धर्म ग्रहण करने के बाद) फिर उस धर्म में लौट आये हैं उनके लिए नियम (कायदे) कहे जाते हैं ।

२ व्यवहारोद्भवस्थानानि ।

कानून की उत्पत्ति के स्थान ।

यथोक्तं मनुस्मृतौ ।

मनुस्मृति में भी जैसा कहा है ।

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥

(अ० २, श्लो० १२)

वेद, स्मृति, श्रेष्ठ पुरुषों का आचार और अपनी आत्मा को सन्तोष देने वाली बात-यह चार तरह के साक्षात् धर्म के लक्षण हैं ।

याज्ञवल्क्यस्मृतावपि ।

याज्ञवल्क्यस्मृति में भी कहा है ।

श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
सम्यक् सङ्कल्पजः कामो धर्ममूलमिदं स्मृतम् ॥

(आचाराध्याय, श्लो० ७)

वेद, स्मृति, सत्पुरुषों का आचार, अपनी आत्मा को प्यारी लगने वाली बात और शुद्ध संकल्प से उत्पन्न हुई इच्छा-यह धर्म का मूल माना गया है ।

(इनमें शास्त्र की आज्ञा में दो मत होने पर अपने प्रिय मत को ग्रहण करना ही 'स्वस्य च प्रियमात्मनः' का और शास्त्राज्ञाओं में से किसी विशेष आज्ञा का पालन करते रहने का विचार करना ही 'सम्यक् संकल्पजः कामः' का तात्पर्य है।)

तत्रैव च।

वहीं यह भी लिखा है।

यस्मिन्देशे य आचारो व्यवहारः कुलस्थितिः।
तथैव परिपाल्योऽसौ यदा वशमुपागतः॥

(आचाराध्याय, श्लोक ३४३)

जिस देश में जो रीति, रिवाज या कुल की स्थिति हो जब वह (देश) अपने अधिकार में आ जाय, तब (राजा को) इसी प्रकार से उसका पालन करना चाहिए। (प्रचलित रिवाजों में उलट-फेर नहीं करना चाहिए।)

पाराशरे माधवीये तु।

पाराशरमाधवीय में तो।

पाराशरे माधवीये देवलस्योक्तिरुद्धृता।
यत्काप्यावश्यकत्वेन स्मृतिशास्त्रविरोधिनी॥
प्रथा प्रचलिता या स्यात् सा तत्रैवोपयुज्यते।
नाऽन्यत्र तु ग्रहीतव्या सा प्रथा विबुधैः पुनः॥

(युग्मेन तद्भावो वर्णितः)

पाराशरमाधवीय में देवल का वचन उद्धृत किया है कि कहीं आवश्यकता के कारण स्मृतिशास्त्र का विरोध करनेवाली जो प्रथा पड़ गई हो, वह वहीं काम में ली जाती है। परन्तु विद्वानों को उस प्रथा को दूसरे स्थान पर ग्रहण नहीं करना चाहिए।

पुनश्च तत्रैव।

फिर वहीं पर लिखा है।

प्रान्ते पुरेऽथवा ग्रामे क्वापि वा विज्ञमण्डले।
रूढामप्यागमभ्रष्टां रीतिं नैव विरोधयेत्॥

किसी प्रान्त, नगर या गांव में अथवा समझदार पुरुषों में प्रचलित हुई शास्त्र-विरुद्ध रीति का भी विरोध न करे।

अधुना तु।

आज कल तो।

श्रुतिस्मृतिसदाचारा विधानानां प्रवर्तकाः।
देशभेदैः पुनस्तत्र जायते भिन्नता क्वचित्॥ ३॥

वेद, स्मृति और श्रेष्ठ पुरुषों के आचार (रिवाज) विधानों (कानूनों) के

चलाने वाले होते हैं । फिर उनमें देश के भेद से कहीं-कहीं भिन्नता हो जाती है ।

वाराणस्यां महाराष्ट्रे विदेहे द्रविडे तथा ।
मान्या मिताक्षरा नित्यं प्रान्तिकाऽऽचारमिश्रिता ॥ ४ ॥

बनारस, महाराष्ट्र, मिथिला और मद्रास में (उक्त) प्रान्त के रिवाज से युक्त मिताक्षरा सदा मान्य है ।

(याज्ञवल्क्य स्मृति पर विज्ञानेश्वर द्वारा लिखी गई टीका का नाम मिताक्षरा है । यह विक्रम की बारहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध के अन्तिम भाग के निकट लिखी गई थी । याज्ञवल्क्यस्मृति का रचना-काल चौथी शताब्दी के करीब माना जाता है । विज्ञानेश्वर दक्षिण के चालुक्य नरेश का प्रधान मंत्री था ।)

वाराणस्यां तु मान्यौ स्तो द्वावेतौ हि तया समम् ।
वीरमित्रोदयस्त्वाद्योऽपरो निर्णयसिन्धुकः ॥ ५ ॥

बनारस में उस (मिताक्षरा) के साथ ये दो (भी) माने जाते हैं—पहला 'वीरमित्रोदय' और दूसरा 'निर्णयसिन्धु' । (वीरमित्रोदय सोलहवीं शताब्दी में लिखा गया था ।)

महाराष्ट्रेऽपि पूर्वोक्तावुभौ मान्यौ तया सह ।
व्यवहारमयूखश्च मुख्यो यो गुर्जरे ध्रुवम् ॥ ६ ॥

महाराष्ट्र (बम्बई प्रान्त) में भी उस (मिताक्षरा) के साथ पहले कहे दोनों (वीरमित्रोदय और निर्णयसिन्धु) माने जाते हैं, और व्यवहारमयूख (भी) मान्य समझा जाता है, जो निश्चय ही गुजरात में मुख्य है ।

(यह व्यवहारमयूख नीलकण्ठ भट्ट ने सत्रहवीं शताब्दी में लिखा था ।)

विदेहे तु तया सार्धं मान्यौ स्तो 'वि'-समन्वितौ ।
वादचिन्तामणिः पूर्वो वादरत्नाकरोऽपरः ॥ ७ ॥

मिथिला में उस (मिताक्षरा) के साथ पहला 'वि' से युक्त वादचिन्तामणि (विवादचिन्तामणि) और दूसरा वादरत्नाकर (विवादरत्नाकर) मान्य है ।

द्रविडेऽथ तया सार्धं मान्या ग्रन्था इमे बुधैः ।
सरस्वतीविलासोऽथ वीरमित्रोदयस्तथा ॥ ८ ॥
पाराशरो माधवीयस्तथा च स्मृतिचन्द्रिका ।
एषा न्यायविधौ ज्ञेया प्रान्तीया शास्त्रमान्यता ॥९॥

दक्षिणी-भारत में विद्वानों द्वारा उस (मिताक्षरा) के साथ ये ग्रन्थ मान्य समझे जाते हैं-सरस्वतीविलास, वीरमित्रोदय, पाराशरमाधवीय और स्मृतिचन्द्रिका । न्याय के विषय में यह प्रान्तों में की शास्त्रों की मान्यता जाननी चाहिए ।

वङ्गे पुनर्दायभागः सर्वैराद्रियते बुधैः ।
अतो विधीनां मुख्ये द्वे व्यवस्थे भारते मते ॥ १० ॥

फिर बंगाल में (जीमूतवाहन-रचित) 'दायभाग' सब विद्वानों द्वारा आदर पाता (माना जाता) है। इसलिये भारतवर्ष में विधियों (नियमों) के दो मुख्य तरीके माने गये हैं।

(जीमूतवाहन का समय तेरहवीं और पंद्रहवीं शताब्दी के बीच अनुमान किया जाता है।)

दायप्राप्त्यै तथा पृक्तकुटुम्बार्थं विनिश्चिताः ।
मिताक्षरीया नियमा दायभागेऽन्यथा कृताः ॥ ११ ॥

दाय-धन की प्राप्ति के लिये और साझेवाले कुटुम्ब के लिये निश्चित किये मिताक्षरा के नियम दायभाग में बदल दिये गये हैं।

दत्तकये तस्य मीमांसा चन्द्रिका च मता बुधैः ।
वाराणस्यां विदेहे च मुख्या पूर्वैव मन्यते ॥ १२ ॥
वंङ्गेष्वथाऽपरा नाम्ना ख्याता दत्तकचन्द्रिका ।
सारमेतद् हि विज्ञेयं दत्तकस्य विनिर्णये ॥ १३ ॥

गोद लेने के विषय में विद्वानों ने उस (दत्तक) की मीमांसा और चन्द्रिका (अर्थात्-दत्तकमीमांसा और दत्तकचन्द्रिका) को माना है। बनारस और मिथिला में पहली मुख्य मानी जाती है और बंगाल में दूसरी दत्तकचन्द्रिका नाम वाली प्रसिद्ध है। गोद के निश्चय करने में यही सार जानना चाहिए।

मिताक्षरानुगाश्चैते चतुर्धा ये विभाजिताः ।
दत्तादानेऽथ दायाप्तौ तेऽपि भिन्नमताः पुनः ॥ १४ ॥

और फिर जो ये मिताक्षरा को मानने वाले चार विभागों (बनारस आदि स्थानों) में बाँटे गये हैं, वे भी गोद लेने में और हकदारी से मिलनेवाले धन के लेने में अलग अलग मतवाले हैं।

अथवा

मिताक्षरा मता मुख्या महाराष्ट्रे तथोत्तरे ।
कनारा नाम्नि देशेऽथ प्रान्ते रत्नगिरेः पुनः ॥ १५ ॥

महाराष्ट्र में, उत्तर कनारा नामक देश में और रत्नगिरि प्रान्त में मिताक्षरा मुख्य मानी गई है।

गुर्जरे बम्बईद्वीपे उत्तरे कोङ्कणेऽपि च ।
व्यवहारमयूखस्तु मतो मुख्यो बुधैर्ध्रुवम् ॥ १६ ॥

गुजरात में, बम्बई द्वीप (island) में और उत्तर कोंकण में भी विद्वानों ने व्यवहारमयूख को निश्चय ही मुख्य माना है।

पूनापुरे खानदेशे नगरे चाह्मदे पुनः ।
मिताक्षरामयूखौ तु समौ मान्यौ मतौ बुधैः ॥ १७ ॥

फिर पूना में, खानदेश में और अहमदनगर में विद्वानों ने मिताक्षरा और व्यवहारमयूख को समान रूप से मान्य माना है।

आचारस्त्रिविधो ज्ञेयः स्थानजातिकुलागतः।
चिरप्रचलितस्याऽस्य स्मृतिभ्यो मुख्यता मता ॥ १८ ॥

आचार (रिवाज) तीन तरह का जानना चाहिये—देश से आया, जाति से आया और कुल (खानदान) से आया। बहुत समय से चले आनेवाले इस (रिवाज) की स्मृतियों से भी मुख्यता (श्रेष्ठता) मानी गई है।

देशाचारस्य मुख्यत्वाद्यस्मिन्देशे स्थितो जनः।
तत्रत्या नियमा एव दायाद्ये तत्कृते मताः ॥ १९ ॥

देश के रिवाज के मुख्य होने से जिस देश में पुरुष रहता हो वहां के नियम ही उसके लिये दायका धन पाने में माने गये हैं।

देशान्तरं गते तस्मिन्नपि नो तत्र भिन्नता।
तावद्यावन्न तद्देशाचारास्तेनानुमोदिताः ॥ २० ॥

उस (पुरुष) के दूसरे देश में चले जाने पर भी उसमें तब तक भिन्नता नहीं होती, जब तक उसने उस (नवीन देश) के रिवाजों का अनुमोदन न कर लिया हो (उन्हें स्वीकार न कर लिया हो)।

तद्देशीयेषु नियमेष्वप्यासन्ये तु सम्मताः।
तस्मिंस्तत्र स्थिते मान्यास्त एवास्य कृते पुनः ॥ २१ ॥
ये तु देशान्तरं याते तस्मिन्संयोजिताः परम्।
आचारा नियमेष्वन्ये ते प्रयोज्या न तत्कृते ॥ २२ ॥

फिर उस देश के नियमों में भी जो (नियम) उसके वहां रहने के समय मान्य थे, वे ही उसके लिये मानने चाहिए। परन्तु जो रिवाज उसके दूसरे देश में जाने पर नियमों (कानून) में जोड़े गये हों, वे उसके लिये काम में नहीं लेने चाहिए।

आचारे त्वत्र जातीये स्थानीये वाप्यपेक्ष्यते।
प्राचीन्यं निश्चितत्वं च सातत्यं न्याय्यता तथा ॥ २३ ॥

यहां पर जाति के या स्थान के रिवाज में भी प्राचीनता, निश्चितता (certainty), निरन्तरता (continuity) और न्याय्यता (reasonableness) की आवश्यकता होती है।

विशिष्टेन विधानेनावर्जितः सुप्रमाणितः।
सदाचाराविरुद्धश्च व्यवहारो बुधैर्मतः ॥ २४ ॥

विशेष (खास) कानून से नहीं निषिद्ध किया हुआ, अच्छी तरह से सिद्ध

किया हुआ और सदाचार (morality) से अविरुद्ध रिवाज विद्वानों ने मान्य माना है।

यत्र साधारणन्यायनियमैरस्य भिन्नता ।
वैशद्येन तु तत्रासौ व्याख्येयः स्पष्टताकृते ॥ २५ ॥

जहां पर कानून के साधारण नियमों से इस (रिवाज) की भिन्नता हो, वहां पर स्पष्टता के लिए इसकी विशद रूपसे व्याख्या कर लेनी चाहिए।

आचारोऽल्पप्रमाणोऽपि नव्यत्वादिह मन्यते ।
परं तत्पुष्टयेऽन्यत्र लभ्यान्यपि सुनिश्चितम् ॥ २६ ॥
आदेयानि प्रमाणानि यतः सम्यक्प्रमाणितः ।
आचार एव विज्ञेयः स्वतः सिद्धो बुधैरिह ॥ २७ ॥

नया होने से यहां पर थोड़े प्रमाणवाला रिवाज भी मान लिया जाता है। परन्तु उसकी पुष्टि (मज़बूती) के लिए दूसरी जगह (other parties) से मिलनेवाले प्रमाण भी निश्चय ही ग्रहण करने चाहिए; क्योंकि अच्छी तरह से सिद्ध किया हुआ आचार ही, यहां पर, विद्वानों को अपने आप प्रमाणित हुआ जानना चाहिए।

वंशाचारस्तु मान्यः स्यात्स्थानीयाचारवद् ध्रुवम् ।
परम्परागतश्चाथ निश्चितश्च स्थिरः पुनः ॥ २८ ॥

स्थान (देश) के रिवाज के समान ही वंश का रिवाज भी, निश्चय ही, परंपरा से चला आनेवाला (continuous) निश्चित (certain) और स्थिर (invariable) मान्य होता है।

आकस्मिकोऽथ वंशेच्छाकृतस्त्यागः सुसाधितः ।
वंशाचारस्य तल्लोपकृतेऽलं विबुधैर्मतः ॥ २९ ॥

विद्वानों ने पूरी तौर से सिद्ध किया गया अकस्मात् (accidental) या कुटुम्ब की इच्छा से किया वंश के रिवाज का त्याग उसके लोप (छोड़ने) के लिए पर्याप्त माना है।

स्थानीयव्यवहारस्य स्थितिर्भिन्ना पुनर्मता ।
यतः स तु भवेन्मान्यः सर्वैस्तत्र स्थितैर्जनैः ॥ ३० ॥

स्थान के रिवाज की स्थिति भिन्न मानी गई है; क्योंकि वह तो वहां पर रहनेवाले सब लोगों द्वारा मान्य होता है।

हिन्दुन्यायानुगे वंशे जातः कोपि प्रदर्शयेत् ।
तद्विरुद्धं निजाचारं साधयेत्तं स एव हि ॥ ३१ ॥

हिन्दुओं के कानून को मानने वाले वंश में पैदा हुआ कोई भी (पुरुष) उसके विरुद्ध अपना रिवाज बतलावे, तो वही उसको प्रमाणित करे।

अनार्येणात्र वर्गेण कुटुम्बेनाथवा पुनः।
कतिचिद्रीतयो नूनं स्वीकृता आर्यसंमताः ॥ ३२ ॥
तयोः कोऽपि विशिष्टाया आर्यरीतेग्रहो यदि।
स्ववर्गे दर्शयेत्तर्हि स एवैनं प्रमाणयेत् ॥ ३३ ॥

फिर हिन्दुओं से भिन्न जाति ने या कुटुम्बने हिन्दुओं की मानी हुई कुछ रीतियां निश्चय ही, स्वीकार करली हों और उन (जाति या कुटुम्बवालों) में से यदि कोई (पुरुष) हिन्दुओं के (किसी) खास रिवाज का अपने वर्ग में ग्रहण करना बतलावे, तो वही उसको प्रमाणित करे।

आचाराः स्वीकृता यत्र त्वन्यैर्हिन्दुषु संमताः।
तत्राचारं विशिष्टं यो वदेत्तं साधयेदसौ ॥ ३४ ॥

जहां पर हिन्दुओं में माने हुए रिवाज दूसरों ने स्वीकार कर लिए हों, वहां पर जो कोई (किसी) खास रिवाज का (होना) कहे वही उसे सिद्ध करे।

सदाचारविरुद्धो यो लोकाचारविवर्जितः।
विधानेन निषिद्धश्च ह्याचारस्त्याज्य एव सः ॥ ३५ ॥

जो सदाचार (morality) से विरुद्ध, लोकाचार (public policy) से वर्जित और कानून (enactment of legislation) से निषिद्ध हो, वह रिवाज छोड़ देने लायक ही होता है।

३ दायप्राप्तौ सामान्या नियमाः।

दाय-धन की प्राप्ति में साधारण नियम।

मनूक्तमुद्धृत्य प्रकृतमनुसरिष्यते।
मनु की उक्ति उद्धृत करके प्रस्तुत विषय का अनुसरण किया जायगा।

अनन्तरः सपिण्डाद्यस्तस्य तस्य धनं भवेत्।
अत ऊर्ध्वं सकुल्यः स्यादाचार्यः शिष्य एव वा ॥
(अ० ६, श्लो० १८७)

सपिण्डों में जो-जो निकटतम होता है उस-उस का धन होता है। इसके बाद सकुल्य, आचार्य या शिष्य (क्रम से) अधिकारी होते हैं।

मिताक्षरायां सामीप्यं दाये मुख्यं मतं बुधैः।
पारत्रिकस्य लाभस्य दायभागेऽस्ति मुख्यता ॥ ३६ ॥

विद्वानों ने मिताक्षरा में दाय-प्राप्ति में समीपता (निकटतम रक्त-संबन्ध) को मुख्य माना है और दाय-भाग में पारलौकिक लाभ (पिण्ड आदि देने के अधिकार) की मुख्यता है।

आर्येषु प्राक्तनी नूनं पृक्तकौटुम्बिकी प्रथा ।
पृक्ताः संपृक्तिभाजश्च पूजने भोजने धने ॥ ३७ ॥

हिन्दुओं में निश्चय ही साझेवाले कुटुम्ब का रिवाज पुराना है, और साझेवाले पूजन में, भोजन में और संपत्ति में साझा रखते हैं ।

नूनं मैताक्षरेष्वत्र संपृक्तेषु कुटुम्बिषु ।
संपृक्तेऽर्थे भवेत्स्वार्थः संपृक्तो न विभाजितः ॥ ३८ ॥

निश्चय ही यहां पर मिताक्षरा को मानने वाले साझे के कुटुम्बों में साझे के धन में साझेवाला स्वार्थ (interest) होता है, बटा हुआ नहीं होता ।

दायभागानुगेष्वत्र संश्लिष्टकुलशालिषु ।
संश्लिष्टेऽर्थे भवेदंशो विभाजितसमः पुनः ॥ ३९ ॥

फिर दायभाग को माननेवाले साझे के कुटुम्बवालों में साझे के धन में हिस्सा जुदा के समान (quasi--severalty) होता है ।

मिताक्षरामते याति संसृष्टेषु कुटुम्बिषु ।
कस्याऽपि मृत्यौ तद्भागः संसृष्टान्शेषजीविनः ॥ ४० ॥

मिताक्षरा के मत में साझे के कुटुम्बियों में किसी के मरने पर उसका हिस्सा (बाकी के) जीवित साझेदारों को मिल जाता है ।

मैताक्षरेषु किन्त्वद्य संसृष्टेषु कुटुम्बिषु ।
कस्यापि मृत्यौ तद्भागो याति तद्विधवां प्रति ॥ ४१ ॥

किन्तु आजकल मिताक्षरा के अनुसार चलने वाले साझे के कुटुम्बियों में [ई० सं० १९३७ के १८ वें ऐक्ट (कानून से)] किसी के मरने पर उसका हिस्सा उसकी विधवा स्त्री को मिल जाता है ।

दायभागे तु संसृष्टाऽसंसृष्टपूभयेष्वपि ।
कस्याऽपि मृत्यौ तद्दायो याति तस्योत्तरान् निजान् ॥४२॥

'दायभाग' में तो साझेवाले और बे साझेवाले दोनों में से ही किसी के मरने पर उसका धन उसके अपने आगे वाले को मिलता है ।

आत्मनो विधवा भार्या पुत्री माता पितामही ।
प्रपितामह्यपि पुनः पुंदायार्हाः प्रकीर्तिताः ॥ ४३ ॥

अपनी विधवा स्त्री, लड़की, मा, दादी और परदादी ये पुरुषों का दाय (धन) पानेवाली कही गई हैं ।

वाराणस्यां तथा वङ्गे मिथिलायां सुनिश्चितम् ।
षडष्टाङ्कैकवर्षात्तद्दायात्तिनियमेन हि ॥ ४४ ॥
आर्येषु विहिता पौत्री दौहित्री च भगिन्यपि ।

वायाऽनर्हा सपिण्डेषु दायार्हा त्वधुना बुधैः ॥ ४५ ॥

बनारस में, बंगाल में और मिथिला में निश्चय ही (विक्रम संवत् १६८६) (ई० सं० १६२६) के वर्ष में स्वीकार किये दायप्राप्ति के कानून (Hindu law of inheritance) से हिन्दुओं में पोती, नवासी बहन सपिण्डों में दाय पाने के योग्य न होने पर भी इस समय धन पाने लायक बनादी गई हैं।

नूनमत्र महाराष्ट्रे द्रविडे चाऽपराः स्त्रियः ।
बह्व्यो भवन्ति दायार्हा देशाचारादिभिः पुनः ॥ ४६ ॥

फिर, निश्चय ही यहां पर देश के रिवाजों आदि से महाराष्ट्र (अर्थात बंबई प्रान्त) और मद्रास में और (भी) (दूसरी) बहुत सी स्त्रियां (पुरुषों के) धन की हकदार होती हैं।

चतुर्नवाङ्कचन्द्राब्दस्वीकृतव्यवहारतः ।
स्नुषाऽधवाथ च स्वीयमृतपुत्रस्नुषाऽधवा ॥ ४७ ॥
क्रमाद्व्यक्तिकेऽर्थेऽत्र श्वशुरस्याथ तत्पितुः ।
स्यातां सर्वत्र दायार्हे इति हिन्दुषु निश्चितम् ॥ ४८ ॥

(विक्रम) संवत् १६६४ (ई० सं० १६३७) में स्वीकार किये कानून (Act xviii of 1937 A. D.) से विधवा पुत्र-वधू और अपने मृत पुत्र की विधवा पुत्र-वधू क्रम से ससुर के और उस (ससुर) के पिता के अपने (seperate) धन में, सब जगहों पर, दाय पाने योग्य होती है—ऐसा हिन्दुओं में निश्चित किया गया है।

स्त्रीपुंसयोरुत्तरः स्याद् नरः पूर्णाऽधिकारवान् ।
सर्वत्रर्ते महाराष्ट्रं मिताधिकृतिकाः स्त्रियः ॥ ४९ ॥

स्त्री और पुरुष का उत्तराधिकारी पुरुष पूरे अधिकार वाला होता है। स्त्रियां महाराष्ट्र (बंबई प्रान्त) के सिवा सब जगह नियमित (जीवन पर्यन्त) अधिकार वाली होती हैं।

स्वमृत्युकाले संपत्तेः पूर्णस्वामी तु यो नरः ।
स तदन्त्याऽधिकारी स्यात्प्रभवश्चार्थभागिनाम् ॥ ५० ॥
स्त्रीणां मिताऽधिकारित्वात्तद्द्वयं नोपपद्यते ।
स्त्रीधनेऽथ महाराष्ट्रे कचित्तत्संभवो मतः ॥ ५१ ॥

जो पुरुष अपनी मृत्यु के समय संपत्ति (धन) का पूर्ण अधिकारी हो, वह उस (धन) का अन्तिम अधिकारी होता है और (अपने उस) धन को लेने वालों का (उस धन के लिए) मूल पुरुष (उद्गम-स्थान) माना जाता है। स्त्रियों के परिमित (जीवन पर्यन्त ही) अधिकारीणी होने से ये दोनों बातें (अन्तिम अधि-कारिणी होना और धन का मूल-स्थान होना) नहीं होतीं। (उनके लिए अपने)

स्त्री–धन में और महाराष्ट्र (बंबई–प्रान्त) में कहा–कहीं, उन (दोनों बातों) का हो सकना माना है ।

मृत्युकालेऽप्यगर्भस्थसन्ततेः पुरुषस्य तु ।
सद्यस्तद्दायभागी स्यात्समीपस्थस्तदुत्तरः ॥ ५२ ॥

मृत्यु के समय भी जिस पुरुष की सन्तान (भार्या के) गर्भ में न हो, उसका नजदीक का हकदार उसी (मृत्यु) समय उसके धन का हकदार हो जाता है ।

आसन्ने स्वोत्तरे दायो यातो नैवाऽपनीयते ।
आसन्नतरगर्भस्थाऽपत्यजन्मऋते ध्रुवम् ॥ ५३ ॥

(अपने) नजदीकी रिश्तेदार को मिला दाय (धन) (मृत्यु के समय) गर्भ में रहे उससे भी नजदीक के बालक (पुत्र या कन्या) के जन्म के बिना निश्चय ही लौटाया नहीं जाता (वापस नहीं लिया जाता) । (अर्थात् पुरुष के मरते ही उसके धन पर जिस नजदीकी रिश्तेदार का हक हो जाता है, वह धनी की मृत्यु के समय गर्भ में स्थित उससे भी नजदीकवाली सन्तान के उत्पन्न होने से ही नष्ट होता है ।)

क्वचित्पुनर्मृतार्थं हि दत्तकग्रहणादपि ।
उच्छिद्यतेऽधिकारित्वमुत्तरस्याऽधिकारिणः ॥ ५४ ॥

फिर कहीं–कहीं मरे हुए (पुरुष) के लिए लड़का गोद ले लेने से भी अगले अधिकारी का अधिकार नष्ट हो जाता है ।

मृते पितरि तत्पुत्रा मृततातश्च पौत्रकाः ।
प्रपौत्राश्च पुनस्तस्य मृततातपितामहाः ॥ ५५ ॥
सहदायहराः स्वस्य पूर्वजस्य निजे धने ।
पितृतत्पितृभागेभ्य एव ते दायभागिनः ॥ ५६ ॥

बाप के मरने पर उसके पुत्र, मरे हुए बापवाले पोते और मरे हुए बाप और दादावाले उसके परपोते अपने पूर्वज (उस मृत व्यक्ति) के व्यक्तिगत धन में साथ–साथ भाग लेते हैं । ये लोग (अपने–अपने) बाप और दादा के भागों में से ही हिस्सा पाते हैं ।

पुत्रपौत्रप्रपौत्रेषु प्रातिनिध्यं हि पैतृकम् ।
स्थितं परं प्रपौत्रस्य पुत्रो दाये विवर्जितः ॥ ५७ ॥

बेटे, पोते और परपोते में बाप–दादा का प्रतिनिधित्व (representativeness) रहता है । परन्तु परपोते का पुत्र हकदारों में वर्जित है ।

दायाप्तिर्दैविकी, नैषा निश्चिताऽतः कृतः पणः ।
तदप्राप्त्यैव केनापि नो मान्योऽन्यैर्धनांशिभिः ॥ ५८ ॥

दाय (हिस्से के धन) की प्राप्ति भाग्य के अधीन है, यह निश्चित नहीं है । इसलिए उसके मिले बिना ही किसी का (उस विषय में) किया हुआ वादा दूसरे

धन का भाग पाने वाले अधिकारियों द्वारा मान्य नहीं होता। (अर्थात्–किसी का दाय के धन की प्राप्ति के पहले किया उसके विषय का वादा (वादा करनेवाले के बजाय) दूसरे के उस धन का हकदार हो जाने पर उस पर असर नहीं डालता।)

मिताक्षरानुसारेण पुत्राः पौत्राः प्रपौत्रकाः।
मृतस्य स्वार्जितेऽर्थे स्युः संसृष्टत्वेन भागिनः ॥ ५९ ॥

मिताक्षरा के अनुसार लड़के, पोते और परपोते मरे हुए (पिता) के निज के कमाये धन में साझेवाले अधिकारी होते हैं। (अर्थात्–पूर्वज के मरने पर, ये सब साथ साथ उसके अपने कमाये धन के अधिकारी होते हैं।)

मातामहार्थे दौहित्राः संसृष्टा एकमातृजाः।
भर्तृधने सपत्न्यश्च पितृदायेऽथ कन्यकाः ॥ ६० ॥
भागं हरन्ति संयुक्तभावेनैव परस्परम्।
महाराष्ट्रे तु कन्यानां व्यस्तत्वेनाऽधिकारिता ॥ ६१ ॥

एक मा से पैदा हुए, साथ रहनेवाले नवासे नाना के धन में, सपत्नियां (सौतें) पति के धन में और लड़कियां बाप के धन में आपस में संयुक्त भाव (साझे के रूप) से ही हिस्सा लेती हैं। महाराष्ट्र (बंबई) प्रान्त में तो लड़कियों का अधिकार जुदा–जुदा होता है। (अर्थात्–अपने–अपने हिस्से की व्यक्तिगत–रूप से पूरी मालिक होती हैं।)

मिताक्षरानुगाः सर्वे सहदायहरास्तु ये।
अपरे ते हरन्त्यत्र व्यक्तिगस्वाम्यतो धनम् ॥ ६२ ॥

मिताक्षरा को माननेवाले जो दूसरे सारे एक साथ दाय–धन लेनेवाले हैं, वे यहां (?) व्यक्तिगत स्वाम्य से (tenants in common) की तरह) धन लेते हैं।

दायभागे स्वविधवां त्यक्त्वा कन्या निजास्तथा।
अन्ये संसृष्टभाजोऽपि व्यक्तिगस्वाम्यभागिनः ॥ ६३ ॥

(जीमूतवाहन–रचित) 'दायभाग' में अपनी विधवा स्त्री और अपनी कन्याओं को छोड़कर दूसरे साझे में अधिकार प्राप्त करनेवाले लोग भी व्यक्तिगत मालिकपन का अधिकार हासिल करते हैं। (अर्थात्–उनके बाद उनके हिस्से के धनका अधिकार बचे हुए साझेवालों को न मिल कर, उनके निज के उत्तराधिकारियों को मिलता है।)

कस्मिन्नपि मृते पृक्तया दायभागिषु निश्चितम्।
पुत्रपौत्रप्रपौत्राणामभावे पृक्तिगं धनम् ॥ ६४ ॥
तस्य यात्यपरान्पृक्तान्संसृष्टेष्ववशिष्टितः।
अपृक्तया च हृतं दायं तस्यान्ते तस्य तूत्तरान् ॥ ६५ ॥

साझे से दाय का धन लेनेवालों में से किसी के मरने पर, निश्चय ही, साझे में रहा धन बेटों, पोतों और परपोतों के अभाव में, साझेदारों में पीछे बचे रहने से,

उसके दूसरे सामेदारों को मिलता है और बिना साझे के लिया दाय-धन ... (लेनेवाले) के मरने पर उसी (मृतक) के उत्तराधिकारियों को मिलता है ।

पुत्रपौत्रप्रपौत्रास्तु पित्र्ये पित्रंशभागिनः ।
दौहित्र्यश्चाऽथ दौहित्राः स्वपर्येऽम्बाद्वारतोंऽशिनः ॥ ६६ ॥

लड़के, पोते और परपोते पिता से संबन्ध रखनेवाले धन में पिता के हिस्से (भाग) लेते हैं । (अर्थात्-अपने-अपने पिता को मिलने वाले धन को ही आपस में बांट लेते हैं ।) नवासियां और नवासे की धन में अपनी माता के द्वारा भाग लेते हैं । (अर्थात्-एक कन्या के जितनी औलाद होती है, वह उसके एक भाग को ही आपस में बांट लेती है ।)

पितृद्वारांशिनः पौत्रा अपि स्युः स्त्रीधने पुनः ।
अन्ये सर्वेऽपि विज्ञेया दायादा निजसंख्यया ॥ ६७ ॥

फिर स्त्री के धन में (उसके) पोते भी पिता के द्वारा (अर्थात्-पिता के हिस्से में से) ही धन पानेवाले होते हैं । बाकी के सारों को ही अपनी गिनती के अनुसार धन का भाग लेनेवाला जानना चाहिए ।

४ दायभागे मिताक्षरोक्तोऽनुक्रमः ।

दायभाग में मिताक्षरा का कहा क्रम ।

मिताक्षरानिगदिता विद्वद्भिश्च परिष्कृता ।
प्रथमा दायभागस्य व्यवस्थेह प्रदर्श्यते ॥ ६८ ॥

यहां पर मिताक्षरा में कही और विद्वानों द्वारा ठीक की हुई दायभाग की पहली व्यवस्था बतलाई जाती है ।

संसृष्टार्थे तु कस्याऽपि मरणे तद्धनांशकम् ।
संसृष्टं याति शेषेषु संसृष्टेषु कुटुम्बिषु ॥ ६९ ॥

साझे के धनवालों में किसी के भी मरने पर उसके साझे के धन का भाग बाकी के साझेवाले कुटुम्बियों में चला जाता है । (अर्थात्-बाकी के साझेवालों को मिल जाता है ।)

परं नव्यविधानेन संसृष्टेषु कुटुम्बिषु ।
कस्याऽपि मृत्यौ तत्स्वाम्यं याति तद्विधवां प्रति ॥ ७० ॥

परन्तु नवीन कानून से साझे के धनवालों में से किसी के मरने पर उसका अधिकार उसकी विधवा (पत्नी) को मिलता है । (अर्थात्-उसका स्थान वह प्रहण करलेती है ।)

स्वीया वा स्वार्जिता या तु संपत्तिः सा तदुत्तरान् ।
याति तत्र न संसृष्टाऽसंसृष्टेष्वन्तरं मतम् ॥ ७१ ॥

जो धन अपना निजी हो या अपना कमाया हुआ हो वह उस (मरने वा-

धनी) के उत्तराधिकारियों को (ही) मिलता है । वहां पर साझेवालों और बे-साझेवालों में कोई भेद नहीं माना है ।

संसृष्टायास्तु संपत्तेः प्रमीतेऽन्त्येऽधिकारिणि ।
साऽपि तस्यैव दायादान् याति शास्त्रोक्तरीतितः ॥ ७२ ॥

साझे के धन के अन्तिम अधिकारी के मरने पर वह (साझे का धन) भी शास्त्र में कही रीति के अनुसार उसीके हकदारों को मिलता है ।

पृथग्भूय पुनर्लोके संसृष्टानां कुटुम्बिनाम् ।
मरणे दायभागस्य विधानं वक्ष्यतेऽग्रतः ॥ ७३ ॥

(एकवार) जुदा होकर फिर साझा करनेवाले कुटुम्बियों के मरने पर किये जानेवाले हिस्से की रीति आगे कही जायगी ।

पञ्चाङ्काङ्कैकवार्षिकस्त्र्यर्थग्रहणसूचिना ।
विधानेन कृता एताः सहदायजुषः स्त्रियः ॥ ७४ ॥
प्रेतस्य स्त्री तथा पुत्रपौत्राणां विधवाः पुनः ।
पुत्रैः पौत्रैः प्रपौत्रैर्वा सहदायजुषोऽधुना ॥ ७५ ॥

(विक्रम) संवत् १९९५ (ई० सं० १९३८) के स्त्री के धन-ग्रहण को सूचित करनेवाले कानून (act xviii of 1937 amended by act xi of 1938 A.D.) से ये स्त्रियां आज कल एक साथ भाग पानेवाली करदी गई हैं:-

मरनेवाले की स्त्री तथा (उसके) पुत्रों और पौत्रों की विधवाएं (उसके) लड़कों, पोतों और परपोतों के साथ (ही) हिस्सा लेती हैं । (यह ई० सं० १९३८ के ११ वें विधान के अनुसार होता है ।)

दाये क्षेत्रादयो यत्र तत्रोक्तस्य नयस्य हि ।
प्रयोगो दुष्करो ज्ञेयस्तद्विधानविरोधतः ॥ ७६ ॥

जहां दाय-धन में खेत आदि (agricultural lands) हों, वहां इस कहे हुए कानून का प्रयोग, उसके (संबन्ध के) कानून के विरोध के कारण, कठिनता से होता है-ऐसा जानना चाहिए ।

मिताक्षरायां संबन्धसामीप्येनैव निश्चितम् ।
दायाद्यं, दायभागे च पारलौकिकलाभतः ॥ ७७ ॥
स्वपित्रोः पूर्वजानां हि, परं मैताक्षरेष्वपि ।
सगोत्रेषु सपिण्डेषु प्राक्स्वाम्यस्य विनिर्णये ॥ ७८ ॥
पारलौकिकलाभस्याधिक्यं तु निकषो मतः ।
पिण्डार्थव्याख्ययैवेषा संजाता मतभिन्नता ॥ ७९ ॥

'मिताक्षरा' में संबन्ध की समीपता से ही हकदारी निश्चित की है और 'दायभाग' में अपने माता-पिता के पूर्वजों को होनेवाले परलोक संबन्धी लाभ से

(हकदारी का) निर्णय किया है । परन्तु मिताक्षरा को माननेवालों में भी सगोत्र सपिण्डों में पहले अधिकार के (अर्थात्–पहले किसका अधिकार है–इसके) निर्णय में परलोक में होनेवाले लाभ की अधिकता को ही कसौटी माना है ।

भिन्नगोत्रसपिण्डेषु रक्तसान्निध्यतो भवेत् ।
दायाद्यं, किन्तु तत्रापि नेष्टा तेन विनिर्णयः ॥ ८० ॥
तर्ह्यामुष्मिकलाभस्याधिक्येनैव स संमतः ।
एतास्तु रीतयः प्रोक्ता दायार्हस्य विनिश्चये ॥ ८१ ॥

भिन्न (दूसरे) गोत्रवाले सपिण्डों में रक्त की समीपता (propinquity of blood) से हकदारी होती है । परन्तु वहां पर भी उससे निर्णय न हो, तो परलोक में होनेवाले लाभ की अधिकता से ही उसे (निर्णय को) माना है । दाय के धन को लेनेवाले का निश्चय करने में ये रीतियां कही हैं ।

सपिण्डा द्विविधाः स्वीयगोत्रिणश्चान्यगोत्रजाः ।
स्वगोत्रजसपिण्डाः स्वषड्वंश्याः स्त्री च कन्यका ॥ ८२ ॥
षट् पूर्वजाः सपत्नीकाः षट्षड्वंश्यैर्निजैर्युताः ।
दौहित्राश्चेति पञ्चाशत् सप्त चात्र मता ध्रुवम् ॥ ८३ ॥

सपिण्ड दो प्रकार के होते हैं–अपने गोत्रवाले सपिण्ड और दूसरे गोत्रवाले (सपिण्ड) । अपने गोत्रवाले सपिण्ड ये हैं:–अपने ६ वंशज (अर्थात्–बेटे, पोते, परपोते आदि ६ पीढ़ी तक के वंशज), (अपनी) स्त्री, कन्या, अपनी स्त्रियों और अपने ६–६ वंशजों सहित (अपने) ६ पूर्वज (बाप, दादा, परदादा आदि ६ पीढ़ी तक के पूर्वज), उन छहों पूर्वजों की स्त्रियां और उन छहों के ६–६ पीढ़ी तक के वंशज) और नवासे, इस प्रकार यहां पर (मिताक्षरा में) निश्चय ही ५७ गोत्रज–सपिण्ड माने हैं ।

एकपिण्डगतांशेन समुद्भूता जना मताः ।
सपिण्डा वीर्यसंबन्धादसृक्संबन्धतोऽथवा ॥ ८४ ॥

एक शरीर में रहे अंश से पैदा हुए पुरुष वीर्य के संबन्ध से या रुधिर के संबन्ध से सपिण्ड माने गये हैं ।

स्त्रीः कन्यास्तत्सुतांस्त्यक्त्वा षड्वंश्येभ्यः परे पुनः ।
सप्तवंश्याश्च परेषां हि पूर्वजानां तु पूर्वजाः ॥ ८५ ॥
सप्ताऽथ तेषां वंश्याश्च प्रत्येकस्य त्रयोदश ।
षट् पूर्वजानां षट्षड्भ्यो वंश्येभ्यश्च तथोत्तरे ॥ ८६ ॥
सप्त सप्त जनाः शास्त्रे ख्याता आत्मसमोदकाः ।
संख्यैषां सप्तचत्वारिंशदुत्तरशतं मता ॥ ८७ ॥

फिर स्त्रियों, कन्याओं और उनके लड़कों (नवासों) को छोड़कर (अपने) ६ वंशजों के आगे के ७ वंशज, (अपने) ६ पूर्वजों के ७ पूर्वज, उन (७ पूर्वजों) के प्रत्येक के १३–१३ वंशज, और (अपने) ६ पूर्वजों के (प्रत्येक के) ६-६ वंशजों के आगे के ७–७पुरुष (वंशज) शास्त्र में अपने समानोदक कहे गये हैं। इनकी संख्या १४७ मानी गई है।

निवापाञ्जलयः श्राद्धे दीयन्ते सद्‌द्विजैर्यतः।
समोदकान् समुद्दिश्य तस्मात्ते तु समोदकाः॥ ८८॥

क्योंकि श्रेष्ठ द्विजों द्वारा श्राद्ध में समोदकों के लिए जल की अञ्जलियां दी जाती हैं, इसलिए वे समानोदक कहाते हैं।

गोत्रजातसपिण्डानामेव भेदाविमावुभौ।
सपिण्डा अग्रिमास्तत्र परे चाथ समोदकाः॥ ८९॥

ये दोनों भेद गोत्रज–सपिण्डों के ही हैं। यहां पर अगाड़ी के सपिण्ड हैं और बाद के समानोदक।

गोत्रजातसपिण्डा वा तथैव च समोदकाः।
स्युः परम्परया पुंसां मिथः संबन्धमाश्रिताः॥ ९०॥

गोत्रज सपिण्ड और उसी प्रकार समानोदक आपस में पुरुषों की परम्परा से संबद्ध होते हैं। (अर्थात्–अपने और अपने सपिण्डों तथा समानोदकों के बीच पुरुषों द्वारा ही संबन्ध होता है, स्त्रियों द्वारा नहीं होता।)

भिन्नगोत्रसपिण्डास्तु स्त्रियाः संबन्धमाश्रिताः।
स्त्रीभिर्वा, बान्धवाश्चाथ ते तु मैताक्षरे मते॥ ९१॥

दूसरे गोत्रवाले सपिण्ड स्त्री के द्वारा या स्त्रियों के द्वारा संबन्ध रखनेवाले होते हैं और वे मिताक्षरा के मत में बन्धु कहे जाते हैं।

किन्तु दायेषु दौहित्रा भिन्नगोत्रभवा अपि।
सह गोत्रिसपिण्डैस्तु दायभाजो मता जनैः॥ ९२॥

परन्तु दूसरे गोत्र में उपन्न हुए भी नवासे लोगों द्वारा गोत्रज सपिण्डों के साथ हिस्सा लेनेवाले माने गये हैं।

पितृद्वारेण संबद्धा ये समानाद्धि पूर्वजात्।
सप्तवंश्यक्रमस्थाश्च सपिण्डास्तेऽपि संमताः॥ ९३॥

मातृद्वारेणसंबद्धा ये समानात्तु पूर्वजात्।
पञ्चवंश्यक्रमस्थाश्च सपिण्डास्तेऽपि निश्चितम्॥ ९४॥

जो समान (common) पूर्वज से पिताके द्वारा संबद्ध (related) हों और सात पीढ़ी में हों, वे भी सपिण्ड माने गये हैं। जो समान–पूर्वज से माता के द्वारा संबद्ध हों और पांच पीढ़ी में हों, वे भी निश्चय ही सपिण्ड होते हैं।

वंशक्रमेऽत्र स्वस्यापि ग्रहोविद्वद्भिरीरितः ।
गणनायां निजत्याग एकौन्यं जायते पुनः ॥ ६५ ॥

विद्वानों ने यहां पर (इस विषय में) पीढ़ी में अपना भी लेना कहा है। फिर गिनती में अपने को छोड़देने से एक की कमी हो जाती है। (सात के बदले छः और पांच के बदले चार पीढ़ी तक ही सपिण्डता रहती है।)

इत्थं मिताक्षरायां तु शब्दः सापिण्डयसूचकः ।
द्विधा प्रयुक्तो द्वौ भिन्नौ सूचयन्त्याशयाविह ॥ ६६ ॥

इस प्रकार मिताक्षरा में सपिण्डता का सूचक (सपिण्ड) शब्द दो प्रकार से प्रयोग में आया है और यहां पर दो भिन्न-भिन्न आशयों को प्रकट करता है।

सपिण्डानां समानोदकानां च सूचनापत्रम्

सपिण्डों और समानोदकों का नकशा

पिता १३.........वंशज १ से १३
पिता १२.........वंशज १ से १३
पिता ११.........वंशज १ से १३
पिता १०.........वंशज १ से १३
पिता ९.........वंशज १ से १३
पिता ८.........वंशज १ से १३
पिता ७.........वंशज १ से १३

स्त्री = पिता ६...पुत्र-१ पुत्र-२ पुत्र-३ पुत्र-४ पुत्र-५ पुत्र-६ **पुत्र ७ से १३**
स्त्री = पिता ५...पुत्र-१ पुत्र-२ पुत्र-३ पुत्र-४ पुत्र-५ पुत्र-६ **पुत्र ७ से १३**
स्त्री = पिता ४...पुत्र-१ पुत्र-२ पुत्र-३ पुत्र-४ पुत्र-५ पुत्र-६ **पुत्र ७ से १३**
स्त्री = पिता ३...पुत्र-१ पुत्र-२ पुत्र-३ पुत्र-४ पुत्र-५ पुत्र-६ **पुत्र ७ से १३**
स्त्री = पिता २...पुत्र-१ पुत्र-२ पुत्र-३ पुत्र-४ पुत्र-५ पुत्र-६ **पुत्र ७ से १३**
स्त्री = पिता १...पुत्र-१ पुत्र-२ पुत्र-३ पुत्र-४ पुत्र-५ पुत्र-६ **पुत्र ७ से १३**
| |
स्त्री = स्वयं
| |
कन्या पुत्र १
| |
नवासा पुत्र २
|
पुत्र ३
|
पुत्र ४
|
पुत्र ५
|
पुत्र ६
|
पुत्र ७ से १३ तक

(इस नक्शे में सपिण्ड छोटे अक्षरों में और समानोदक बड़े अक्षरों में दिखलाए गये हैं।)

दायप्राप्तिक्रमः ।

दायप्राप्ति का क्रम ।

दायभागिन एतेस्युः सपिण्डेष्वार्यसंमताः ।
पुत्रपौत्रप्रपौत्राः प्राक् तदभावे यथाक्रमम् ॥ ९७ ॥
पत्नी सशीला, पुत्र्यश्च दौहित्राश्च प्रसूः पिता ।
भ्रातरश्च तथा तेषां पुत्राः पौत्राः पितामही ॥ ९८ ॥
पितामहः पितृव्याश्च पैतृव्यास्तत्सुतास्ततः ।
प्रपितामह्यदोभर्ता पितृव्याश्च पितुस्तथा ॥ ९९ ॥
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च भ्रातुष्पुत्रजनन्दनाः ।
पितृव्यपौत्रपुत्राश्च मैताक्षरमतेन तु ॥ १०० ॥

मिताक्षरा के मत से सपिण्डों में आर्यों द्वारा माने हुए ये हकदार हो सकते हैं:- पहले (१) लड़के, (२) पोते, (३) परपोते । इनके अभाव में क्रम से (४) शुद्ध आचरणवाली विवाहिता (विधवा) पत्नी (५) लड़कियाँ, (६) नवासे, (७) माता, (८) पिता, (९) भाई, (१०) भतीजे, (११) भतीजों के लड़के, (१२) दादी, (१३) दादा, (१४) चाचा, (१५) चचेरे भाई, (१६) चचेरेभाइयों के लड़के, (१७) परदादी, (१८) परदादा, (१९) बाप के चाचा, (२०) बाप के चचेरे भाई, (२१) बाप के चचेरे भाइयों के लड़के (२२) भतीजों के पोते और (२३) चचेरे भाइयों के पोते ।

एतेषामप्यभावेऽन्ये सपिण्डाः पूर्ववर्णिताः ।
ततः समोदकाश्चाऽपि क्रमात् स्युर्दायभागिनः ॥ १०१ ॥
ततस्तु बान्धवाः पूर्वमात्मनोऽथ ततः पितुः ।
ततो मातुः क्रमाऽऽसन्ना दायभाजोऽत उत्तरम् ॥ १०२ ॥
धर्मसंबन्धसंबद्धा गुरुशिष्यसतीर्थ्यकाः ।
असत्सु च तथैतेषु तद्देशाऽधिपतिर्नृपः ॥ १०३ ॥

इनके न होने पर पहले वर्णन किए हुए दूसरे सपिण्ड और उसके बाद समोदक भी क्रम से हकदार हो सकते हैं । उसके बाद पासवाले आत्मबन्धु, फिर पितृबन्धु और तब मातृबन्धु भाग पाते हैं । इसके बाद धार्मिक संबन्धवाले गुरु, शिष्य और गुरुभाई (हकदार होते हैं) और इनके (भी) न होने पर उस देश का (स्वामी) राजा (धन लेता है ।)

पौत्र्यस्तथा च दौहित्र्यो भगिन्यो भागिनेयकाः ।
पितृव्येभ्यः पुरैवाद्य क्रमाद्दायाधिकारिणः ॥ १०४ ॥

आजकल (ई० सं० १९२९ के संशोधित विधान २ के अनुसार) पोतियां, नवासियां, बहनें और भानजे (१४) चाचों से पहले ही क्रम से हक पाते हैं ।

पूर्णाऽधिकारिणो दाये पुरुषाः स्युः सुनिश्चितम्।
आजीवं स्यात्परिमिताऽधिकृतिर्योषितां पुनः॥ १०५॥

हिस्से के धन में पुरुष निश्चित–रूप से पूर्ण अधिकारी होते हैं, और स्त्रियों का जीवन पर्यन्त के लिए परिमित (limited) अधिकार (ही) होता है।

मृते पितरि तत्पुत्रा मृतताताश्च पौत्रकाः।
प्रपौत्राश्च पुनस्तस्य मृततातपितामहाः॥ [५५]
सहदायहराः स्वस्य पूर्वजस्य निजे धने।
पितृतत्पितृभागेभ्य एव ते दायभागिनः॥ [५६]

पिता के मरने पर उसके पुत्र, मरे हुए पितावाले (उसके) पोते और मरे हुए बाप और दादावाले उसके परपोते अपने पूर्वज (उस मृत व्यक्ति) के धन में साथ-साथ भाग लेते हैं। वे लोग (अपने–अपने) बाप और दादा के भागों में से ही हिस्सा पाते हैं।

मिताक्षरानुसारेण पुत्राः पौत्राः प्रपौत्रकाः।
मृतस्य स्वार्जितेऽर्थे स्युः संसृष्टत्वेन भागिनः॥ [५६]

मिताक्षरा के अनुसार लड़के, पोते और परपोते मरे हुए (पिता) के निजके कमाये धन में साझेवाले हकदार होते हैं। (अथात् पिता के मरते ही उसके अपने कमाए धन पर उन सबका संमिलित अधिकार हो जाता है। उसके बाद वे अपना-अपना भाग जुदा कर सकते हैं।)

प्रेतस्य स्त्री तथा पुत्रपौत्राणां विधवाः पुनः।
पुत्रैः पौत्रैः प्रपौत्रैश्च सहदायजुषोऽधुना॥ [७५]

आजकल मरनेवाले की स्त्री तथा (उसके) बेटों और पोतों की विधवाएं (उसके) बेटों, पोतों और परपोतों के साथ (ही) हिस्सा लेती हैं। (यह ई० सं० १६३८ के ११ वें विधान के अनुसार होता है।)

दायभागोत्तरं जातः सुतोऽन्ते स्वपितुर्हरेत्।
पैतृकाप्तं तु तद्भागं स्वार्जितं चापि तद्धनम्॥ १०६॥

हिस्सा बांट होने के बाद उत्पन्न हुआ पुत्र अपने पिता की मृत्यु पर, पैतृक धन में मिला उस (पिता) का भाग और उस (पिता) का कमाया धन भी लेता है।

कतिष्वपि स्वपुत्रेषु प्राप्यांशान् पैतृके धने।
विभक्तेष्वविभक्तेषु चाऽन्येषु स्यान् मृतिर्यदि॥ १०७॥
पितुस्तर्हि महाराष्ट्रे द्रविडे च तदर्जिते।
संसृष्टास्तद्भवाश्चैव दायभाजः प्रकीर्तिताः॥ १०८॥

अपने कितने ही पुत्रों के पैतृक संपत्ति में हिस्से पाकर अलग हो जाने और दूसरे पुत्रों के (पिता के) साथ में ही रहने की हालत में यदि पिता की मृत्यु हो जाय, तो

बंबई प्रान्त और मद्रास प्रान्त में उस (पिता) के कमाये धन में उसके साथ में रहनेवाले पुत्रों और उनके वंशजों का ही हक पाना कहा है।

परन्त्वयोध्यानाम्नेह ख्याते प्रान्ते सुनिश्चितम् ।
असंसृष्टाश्च संसृष्टा उभये दायभागिनः ॥ १०९ ॥

परन्तु अवध के नाम से प्रसिद्ध प्रान्त में निश्चितरूप से जुदा रहनेवाले और साथ रहनेवाले दोनों (पुत्र) हकदार होते हैं।

द्विजानामुपपत्नीजा निर्वाहार्हा मता बुधैः ।
दासीपुत्रास्तु शूद्राणां स्वभागार्धहरा मताः ॥ ११० ॥

बुद्धिमानों ने ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के रखेल स्त्री से उत्पन्न हुए पुत्रों को केवल गुजारा पाने के योग्य माना है और शूद्रों के दासी से उत्पन्न हुए पुत्रों को अपने भाग का आधा पानेवाला माना है। (अर्थात्–असली पुत्र होने पर जो हिस्सा उसे मिलता, उसके आधे का हकदार कहा है।)

किन्तु शूद्रभवास्तेऽपि ताते जीवति न क्षमाः ।
दायार्हाः केवलं ते स्युस्तद्दत्तधनतोषिणः ॥ १११ ॥

परन्तु शूद्र से उत्पन्न हुए वे (दासी पुत्र) भी पिता के जीते जी हिस्सा पाने के हकदार नहीं होते। वे केवल उस (पिता) के दिये धन से सन्तोष करनेवाले होंगे।

पत्न्युत्पन्नसुताऽभावे शूद्रार्थार्धं व्रजेत् क्रमात् ।
पत्नीं कन्यां च दौहित्रमर्धं दासीभवं सुतम् ॥ ११२ ॥

विवाहिता स्त्री से उत्पन्न हुए पुत्र के अभाव में शूद्र के धन का आधा क्रम से पत्नी, कन्या और नवासे को मिलता है। (पहले पत्नी को, उसके न होने पर लड़की को और लड़की के अभाव में नवासे को मिलता है,) और आधा (उसके) दासी से उत्पन्न हुए पुत्र को मिलता है।

स्त्रीकन्यातत्सुतानामप्यभावे सोऽखिलं भजेत् ।
दत्तकेऽथ स्थिते त्वेष स्वभागार्धहरो मतः ॥ ११३ ॥

भार्या, कन्या और नवासों के भी न होने पर वह (दासीपुत्र) सब (धन) लेता है; और गोदलिये हुए पुत्र के मौजूद होने पर वह अपने हिस्से का आधा भाग लेनेवाला माना गया है।

संसृष्टेऽर्थे तु दायार्हो दासीजः शूद्रसंभवः ।
तातपत्नीसमुत्पन्नभ्रातुः पुनरसंततेः ॥ ११४ ॥

साझे के धन में शूद्र से उत्पन्न हुआ दासीपुत्र पिता की विवाहिता स्त्री से उत्पन्न हुए, बिना बाल-बच्चेवाले भाई के (मरने पर उसके) हिस्से का हकदार होता है।

विभक्तेऽर्थे तु दासीजो न तद्दायमवाप्नुयात् ।
सपिण्डास्तत्पितुश्चाऽपि नो तद्दायाऽधिकारिणः ॥ ११५ ॥

बँटे हुए धन में तो दासीपुत्र उस (भाई) का धन नहीं पा सकता। (इसी प्रकार) उसके पिता के सपिण्ड (असली पुत्र या भाई भतीजे) भी उसके धन के हकदार नहीं होते।

दासीजस्तातभार्यायाः स्त्रीधने नैव भागभाक्।
दासीजा दुहिता चाऽपि न स्यात् पित्रंशभागिनी॥ ११६॥

दासी से उत्पन्न हुआ (शूद्र का) पुत्र पिता की असली स्त्री के स्त्री धन में भाग नहीं पाता। दासी से उत्पन्न हुई कन्या भी पिता के हिस्से की हकदार नहीं होती।

विप्रोढाशूद्रया जातः पितृ-तद्भ्रातृ-संपदि।
दशमांशं महाराष्ट्रे हरेन्न्यायविनिश्चितम्॥ ११७॥

बंबई प्रदेश में ब्राह्मण की ब्याही शूद्रा स्त्री से उत्पन्न हुआ पुत्र पिता और उसके भाई (चाचा) के धन में कानून से निश्चित किया दसवाँ हिस्सा लेता है।

असती विधवा न स्यात् पत्युरर्थाऽधिकारिणी।
पूर्वप्राप्ताऽधिकारस्तु नाऽसतीत्वेन हीयते॥ ११८॥

बुरे चाल--चलनवाली विधवा पति के धन की हकदार नहीं होती। (परन्तु) पहले का मिला अधिकार (बाद में हुई) चाल-चलन की खराबी से नष्ट नहीं होता।

पुनर्विवाहतस्त्वेषा हीयतेऽधिकृतिः परम्।
पूर्वोद्वाहस्य संतत्याः सा स्याद्दायाऽधिकारिणी॥ ११९॥

(स्त्री के) दूसरा विवाह करलेने से यह (पहले पति का धन पाने का) अधिकार नष्ट ही जाता है; परन्तु वह (स्त्री) पहले विवाह की संतान (पुत्र और पुत्री) के धन की हकदार हो सकती है।

पुनर्विवाहतः पूर्वं स्वधर्मत्यागतोऽपि सा।
नष्टदायाऽधिकारा स्यात् साऽधिकारा कचित्पुनः॥ १२०॥

दूसरा विवाह करने के पहले अपने धर्म को छोड़देने (मुसलमानों या ईसाइयों का धर्म ग्रहण करलेने) से भी वह (विधवा) (कलकत्ता, मद्रास, बंबई और पटना आदि में) (पति के धन के) हकसे वञ्चित हो जाती है। परन्तु कहीं पर (इलाहा-बाद में) हकदार (ही) रहती है।

आचारात्स्वीकृते त्वन्यविवाहे, तदनन्तरम्।
पूर्वभर्तुर्धनाऽऽदाने साऽक्षमाऽथ क्षमा कचित्॥ १२१॥

रिवाज से दूसरे विवाह के माने हुए होने पर उस (विवाह) के बाद वह पहले पति के धन के लेने में असमर्थ और कहीं समर्थ होती है। (इलाहाबाद हाइकोर्ट और अवध चीफ़कोर्ट उसको पूर्व पतिका धन लेने में समर्थ मानती हैं; परन्तु अन्य हाईकोर्टों ने उसे असमर्थ माना है।)

सपत्न्योऽर्थं स्वभर्तुस्तु संभूया अधिकुर्वते।
कस्यामपि मृतायां तज्जीवितास्वेति तद्धनम् ॥ १२२ ॥

सपत्नियां (एक पति की अनेक स्त्रियां) अपने पति के धन पर मिलकर (साझे में रहकर) अधिकार करती हैं। इसलिए (उनमें से) किसी के मरने पर वह धन जीवित सपत्नियों को मिलजाता है। (अर्थात्—मरी हुई सपत्नी का हक जीवित सपत्नियों में बँट जाता है।)

आजीवं स्वसुखार्थं ता रक्षन्त्यो भर्तृसंपदः।
परस्परं क्षमाः कर्तुं प्रबन्धानीप्सितान् पुनः ॥ १२३ ॥

वे (सपत्नियां) पति की संपत्ति की रक्षा करती हुई अपने जीवन पर्यन्त के सुख के लिए आपस में चाहे हुए प्रबन्धों को कर सकती हैं।

न्याय्येऽर्थे ताः समस्तेशाः संपत्तेराधिविक्रये।
अन्यायेन कृते तस्मिन् बाध्यते नोत्तरः परम् ॥ १२४ ॥

वे (विधवायें) मुकद्दमे आदि के कार्य के लिए सब मिल कर संपत्ति को गिरवी रख या बेच सकती हैं। लेकिन अन्याय से (बिना अत्यावश्यकता के) किये उस (गिरवी रखने या बेचने के) काम में अगला (पतिका) हकदार उत्तरदाता (जिम्मेवार) नहीं होता।

आजीवं स्यात् स्त्रियाः स्वाम्यं भर्तुरर्थे विनिश्चितम्।
तन्मृतौ प्रतियात्यर्थः पत्युरेवोत्तरान् पुनः ॥ १२५ ॥

पतिके धन में स्त्री का अधिकार निश्चय ही जीवन पर्यन्त रहता है। उस (स्त्री) के मरने पर (वह) धन फिर पति के उत्तराधिकारियों के पास ही लौट जाता है। (अर्थात्—पत्नी के बाद कन्या, नवासा आदि जो भी धन लेता है, वह पुरुष के साथ के अपने संबन्ध से ही लेता है, स्त्री के साथ के संबन्ध से नहीं।)

अतोऽधवा व्यये दाने चाऽक्षमा पतिसंपदः।
आजीवं तद्गतं स्वार्थं दातुं शक्ता परं हि सा ॥ १२६ ॥

इसलिए विधवा स्त्री पति की संपत्ति को खर्च करने, और देने (इच्छा पत्र या उपहार द्वारा देने) में असमर्थ होती है। परन्तु वह उस (संपत्ति) में रहे अपने स्वार्थ (interest) को अपने जीवन पर्यन्त के लिए दे सकती है।

कुमार्यश्चाऽथ वाग्दत्ताः प्राक् पुत्रीष्वर्थहारिकाः।
तत ऊढास्त्वसंपन्नाः संपन्नाश्च ततः परम् ॥ १२७ ॥

और इस (माता) के बाद लड़कियों में पहले क्वाँरी और मंगनी की हुई (लड़कियां) धन लेती हैं। इसके बाद ब्याही हुई लड़कियों में पहले गरीब और उसके बाद में अमीर लड़कियां धन पाती हैं।

ऊढासु सधवाश्चाऽथ विधवा उभया मताः ।
इमाः प्राक् कथिताः सर्वा मात्रन्ते दायहारिकाः ॥ १२८ ॥

ब्याही हुई (कन्याओं) में पतिवाली और विधवा दोनों मानी गई हैं और ये सब पहले कही (लड़कियां) माताओं के मरने पर हक पाती हैं ।

पुत्र्योऽपि समवर्गस्थाः संसृष्टा दायमाप्नुयुः ।
तासु कस्या अपि मृतौ याति दायः स्ववर्गिणीः ॥ १२९ ॥

एक वर्ग में रहीं लड़कियां (क्वारियां या ब्याही हुई आदि भिन्न-भिन्न वर्ग की पुत्रियां) भी साझे में धन पाती हैं । उनमें से किसी के मरने पर (उसका) अधिकार अपने वर्गवालियों (अपनी तरह की अन्य लड़कियों) को मिल जाता है ।

आजीवं ताः क्षमाः कर्तुं सहमत्या पणादिकम् ।
परं तदुत्तरानन्यान् बाधतेऽवसरे न तत् ॥ १३० ॥

वे (लड़कियां) सब की राय से अपने जीवन पर्यन्त के लिए (किसी भी प्रकार का) प्रबन्ध आदि कर सकती हैं । परन्तु समय पर वह (प्रबन्ध) उनके बाद के हकदारों पर बाधा नहीं डालता (लागू नहीं होता ।)

तासामपि तथाऽऽजीवं स्वाम्यं तातधने मतम् ।
मृतासु तासु सर्वासु यात्यर्थः पितुरुत्तरान् ॥ १३१ ॥

और उन (लड़कियों) का भी पिता के धन पर जीवन पर्यन्त (ही) अधिकार माना है । उन सब (लड़कियों) के मरने पर (वह) धन पिता के उत्तराधिकारियों को मिलता है ।

महाराष्ट्रे यतः कन्या मता पूर्णाऽधिकारिणी ।
तदन्तेऽतस्तत्र तस्या भागो याति तदुत्तरान् ॥ १३२ ॥

क्योंकि बंबई प्रान्त में लड़की पूरा हक पानेवाली मानी गई है, इसलिए वहां पर उसके मरने पर उसका (पिता के धन का) हिस्सा उसके (खुद के) उत्तराधिकारियों को मिलता है ।

असतीत्वं तु कन्यानां पित्रर्थाऽऽप्तौ न बाधकम् ।
कन्यां वेश्यां परं त्यक्त्वा दायो व्यूढां सतीं व्रजेत् ॥ १३३ ॥

कन्याओं का बुरा चाल-चलन उनके पिता का धन प्राप्त करने में बाधक नहीं होता । परन्तु हिस्से का धन क्वांरी वेश्या लड़की को छोड़कर ब्याही हुई अच्छे आचरणवाली (लड़की) को मिल जाता है ।

अधर्मजनिता कन्या पितृदायेऽद्विजेष्वपि ।
वर्जिता किन्तु मातुस्तु सा दायार्हा मता जनैः ॥ १३४ ॥

शूद्रों में भी ब्याही हुई पत्नी को छोड़कर दूसरी स्त्री से उत्पन्न हुई लड़की बापके धनके हिस्से के पाने में वर्जित (निषिद्ध) है (तो फिर ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों

में तो वह वर्जित होगी ही।) परन्तु लोग उसे मा के धनका हिस्सा लेनेवाली नहीं मानते ही हैं।

जातिप्रथादिभिर्यत्र दाये नाऽधिकृता सुता।
प्रथाया एव मुख्यत्वाद् न सा तत्राऽधिकारिणी ॥ १३५ ॥

जाति के रिवाज आदि से जहां पर लड़कियों को अधिकार नहीं दिया गया है, रिवाज के ही मुख्य होने से वहां पर वह (लड़की) अधिकारिणी नहीं होती।

नप्तारोऽम्बापितुर्द्रव्ये स्युस्तस्यैवोत्तराः स्वयम्।
दौहित्रैश्च हृतो दायो यात्यन्ते तु तदुत्तरान् ॥ १३६ ॥

नवासे नाना के धन के विषय में खुद उसी (नाना) के उत्तराधिकारी होते हैं। नवासों द्वारा लिया धन अन्त में उन्हीं (नवासों) के उत्तराधिकारियों को मिलता है।

एकस्यामपि जीवन्त्यां पुत्र्यां दायं तु नाप्नुयुः।
दौहित्रास्तत्पितुर्लोके स्मृतिशास्त्रोक्तरीतितः ॥ १३७ ॥

नवासे स्मृतिशास्त्र में कही रीति के अनुसार जगत् में, एक भी लड़की के जीते रहने पर उसके पिता (अर्थात्--अपने नाना) का धन नहीं पा सकते।

स्वसंख्ययैव दौहित्रा दायं मातामहाऽऽगतम्।
गृह्णन्ति, न स्वमातॄणां संख्ययाऽत्रकदाचन ॥ १३८ ॥

यहां पर नवासे नाना से मिले धन को अपनी गिनती के अनुसार ही लेते हैं, अपनी माताओं की गिनती के अनुसार कभी नहीं लेते। (अर्थात्--एक कन्या के एक पुत्र और दूसरी के दो हों तो, वे नाना के धन को बराबर तीन हिस्सों में बाट कर लेवेंगे, माताओं की संख्या के अनुसार दो हिस्सों में नहीं।)

मातामहधनं यत्र संसृष्टा एकमातृजाः।
दौहित्रा लान्ति तत्रैति शेषांस्तत् कस्यचिद् मृतौ ॥ १३९ ॥

जहां एक मा से पैदा हुए साथ रहने वाले नवासे नाना के धन को लेते हैं, वहां (उनमें से) किसी के मरने पर वह (धन) बाकी के साथवालों को मिल जाता है।

भिन्नमातृभवास्तेऽत्र संसृष्टा न मता बुधैः।
अतस्तत्र तदर्थस्तु प्रत्येकस्योत्तरान् व्रजेत् ॥ १४० ॥

विद्वानों द्वारा, यहां पर अलग-अलग माताओं से पैदा हुए वे (नवासे) साथ रहनेवाले (साझेवाले) नहीं माने गये हैं। इसलिए ऐसी जगह पर वह धन (नाना के धनका हर एक नवासे का हिस्सा) हर एक के उत्तराधिकारियों को ही मिलेगा।

प्रागासन् "पुत्रिकापुत्रा" औरसेन समा यतः।
पौत्रदौहित्रयोः साम्यमतो शास्त्रेषु मन्यते ॥ १४१ ॥

क्योंकि पहले 'पुत्रिका-पुत्र' (अपुत्र पिता द्वारा अपनी कन्या के विवाह समय उसके भावी पुत्र को अपना पुत्र बनाने का निश्चय कर लेने पर ऐसी कन्याओं से उत्पन्न

हुए पुत्र) अपने असली पुत्र (या पौत्र) के समान होते थे । इसीलिए पोते और नवासे का समान होना (मनुस्मृति आदि) शास्त्रों में माना जाता है।

मातामहाऽर्थे दौहित्राः क्वचिद्वर्ज्याः प्रथावशात्।
तत्पत्न्याः स्त्रीधने किन्तु ते सर्वत्राऽधिकारिणः ॥ १४२ ॥

कहीं-कहीं रिवाज के कारण नाना के धन (पाने) में नवासे वर्जित हैं। परन्तु उस (नाना) की स्त्री (नानी) के स्त्री-धन में वे सब स्थानों पर अधिकारी होते हैं।

मयूखे प्रथमं तातस्ततो माताऽधिकारिणी।
अन्यत्र सैव पूर्वं स्यात् पुत्रदायग्रहे क्षमा ॥ १४३ ॥

व्यवहारमयूख में पहले पिता और उसके बाद माता अधिकारिणी होती है। और जगह वही पुत्र के दाय-धन को लेने में पहले समर्थ होती है।

गृहीतपुत्रदायाया मातुस्तु मरणे पुनः।
मितस्वाम्यतया तस्याः पुत्रस्यैवोत्तरोऽर्थभाक् ॥ १४४ ॥

फिर पुत्र के दाय-धन को लेनेवाली माता के मरने पर, उसके मित (limited) अधिकार के होने से, पुत्र का ही उत्तराधिकारी धन पाता है।

नाऽसतीत्वं न चोद्वाहोऽपरोऽस्या अस्ति बाधकः।
पुत्रदायस्य संप्राप्तावेतद् मैताक्षरं मतम् ॥ १४५ ॥

बदचलनी या दूसरा विवाह इस (माता) के पुत्र का धन पाने में रुकावट नहीं डालता-यह मिताक्षरा का मत है।

विमाता नैव दायाऽर्हा स्वसपत्न्याः सुतस्य हि।
अर्हा: किन्तु महाराष्ट्रे गोत्रसापिण्डयतस्तु सा ॥ १४६ ॥

विमाता (दूसरी मा) अपनी सपत्नी के पुत्र के धन को पाने योग्य नहीं होती। परन्तु बंबई प्रदेश में वह गोत्रज-सपिण्डता के कारण (धन पाने के) योग्य होती है।

दत्तकाऽर्थेऽपि दायार्हा माता पूर्वं ततः पिता।
द्व्यामुष्यायणपुत्राऽर्थे दायार्हे मातरावुभौ ॥ १४७ ॥

गोदलिये पुत्र के धन में भी पहले माता हकपाने योग्य होती है और फिर पिता। द्व्यामुष्यायण (असली पिता और गोद लेनेवाले पिता दोनों के धनको लेनेवाले) पुत्र के धन में दोनों (असली और गोद लेनेवाली) मातायें (साथ-साथ) हक पाने योग्य होती हैं।

भ्रातृक्तौ तु सगर्भाः प्राग् वैमात्रेयास्ततः परम्।
दायार्हाः, किन्तु नार्हाः स्युर्भिन्नतातैकमातृकाः ॥ १४८ ॥

भाई कहने पर एक मा से उत्पन्न हुए ((of whole blood) भाई) पहले

और भिन्न माताओं से उत्पन्न हुए भाई पीछे हिस्सा पाने के योग्य होते हैं। परन्तु भिन्न पिताओं से एक माता में उत्पन्न हुए (भाई एक दूसरे का धन पाने के) योग्य नहीं होते।

व्यवहारमयूखोक्त्या नूनं प्रान्तेषु केषुचित्।
सार्धं पितामहेनैव दायार्हाः स्युर्विमातृजाः ॥ १४६ ॥

व्यवहारमयूख के कथन से निश्चय ही कुछ प्रान्तों में सौतेले भाई दादा के साथ ही हिस्सा पाने के योग्य होते हैं।

भ्रातृव्यपुत्रतः पूर्वं भ्रातृव्या दायभागिनः।
सोदर्यजास्तथैव प्राग् वैमात्रेयभवाः परम् ॥ ५५० ॥

भतीजों के लड़कों से पहले भतीजे धन का हिस्सा पाते हैं। वैसे ही (उपर्युक्त रीति के अनुसार) सगे भाई के लड़के पहले और सौतेले भाई के लड़के बाद में (धन का हिस्सा पाते हैं)।

स्वसंख्ययैव ते दाय-हरा नो पितृसंख्यया।
भ्रातृव्योक्तप्रकारो हि ज्ञेयस्तेषां सुतेष्वपि ॥ १५१ ॥

वे (भतीजे) अपनी गिनती से ही हिस्सा लेते हैं, पिता की गिनती से नहीं। (अर्थात्–जितने भतीजे होंगे उतने ही हिस्से करके लेवेंगे)। भतीजों के लिए कहा हुआ तरीका ही उनके लड़कों में भी समझना चाहिए (अर्थात्–उनमें भी पहले सगे भाई के पोते और बाद में सौतेले भाई के पोते हकदार होंगे। तथा ये भी अपनी संख्या के अनुसार ही धन के भाग कर के लेवेंगे)।

मिताक्षरानुसारेण भ्रातृव्यान्ते पितामही।
दायार्हासीत् परन्त्वद्य दायार्हा तत्सुतोत्तरम् ॥ १५२ ॥

मिताक्षरा के अनुसार भतीजे के बाद दादी दाय–धन पाने योग्य थी। परन्तु आजकल उस (भतीजे) के पुत्र के बाद दाय के योग्य होती है।

पौत्र्यस्तथा च दौहित्र्यो भगिन्यश्चाऽपि निश्चितम्।
महाराष्ट्रमतेऽन्यत्र मिताऽधिकृतिकाः क्रमात् ॥ १५३ ॥

पोतियां, नवासियां और बहनें भी क्रम से, निश्चितरूप से, बंबई प्रदेश को छोड़कर परिमित (आजीवन) अधिकार वाली होती हैं।

महाराष्ट्रे भगिन्यस्तु पितामह्युत्तरा मताः।
वैमात्रेयाः पुनस्तास्तु क्वचित्स्युर्दायहारिकाः ॥ १५४ ॥

बंबई प्रदेश में बहनें दादी के बाद हकदार मानी गई हैं। सौतेली बहनें कहीं–कहीं (नागपुर में) हक लेनेवाली होती हैं। (प्रयाग और अवध में नहीं होतीं।)

क्वचिदेव पुनस्तासां पुत्रा अप्यर्थभागिनः।
सोदर्यान्ते गृहीतस्तद्-दत्तको नैव दायभाक् ॥ १५५ ॥

उन (सौतेली बहनों) के पुत्र भी कहीं-कहीं (नागपुर प्रान्तमें) धन पाते हैं । बहन के मरने के बाद गोदलिया उसका लड़का हकदार नहीं होता ।

भागार्हाः पितृसोदर्याः पूर्वमन्ते विमातृजाः ।
तत्पुत्रपौत्रयोश्चापि भ्रातृव्योक्तो विधिर्मतः ॥ १५६ ॥

पिता के सगेभाई पहले और पिता के सौतेले भाई पीछे हिस्सा पाने लायक होते हैं और उन (पिता के भाइयों) के बेटों और पोतों में भी, भतीजों के विषय में कहा तरीका माना गया है । (अर्थात्-चचेरे भाइयों में पहले सगे चाचा के पुत्र और चचेरे भाइयों के पुत्रों में पहले सगे चाचा के पोते हिस्सा लेवेंगे । इसी प्रकार ये अपनी संख्या के अनुसार धन का भाग करेंगे, पिता की संख्या के अनुसार नहीं ।)

पितुः पितृव्यपौत्रस्तु पितामहप्रपौत्रजात् ।
प्रपौत्रजात्पितुश्चापि द्रविडे दायभाक् पुरा ॥ १५७ ॥

मद्रास में पिता के चाचा का पोता दादा के परपोते के पुत्र से और पिता के परपोते के पुत्र से पहले दाय-धन पाता है ।

पितृव्यस्याथ पौत्रोऽपि पितुः पौत्रसुतात्मजात् ।
पूर्वं तत्र मतो दायभागी न्यायाधिकारिभिः ॥ १५८ ॥

वहा पर (मद्रास में) न्यायाधीशों ने चाचा के पोते को भी पिता के पोते के पोते (परपोते के पुत्र) से पहले दाय-धन पानेवाला माना है ।

दायादेष्वपरेष्वत्र नेदिष्ठः पूर्वजोऽथवा ।
नेदिष्ठपूर्वजद्वारादायाऽर्हः प्राग् हि दायभाक् ॥ १५९ ॥

दूसरे दाय लेनेवालों में नजदीकी पूर्वज या नजदीकी पूर्वज के द्वारा हिस्से का हक पानेवाला पहले हक पाता है ।

समवर्ग्यसपिण्डेषु दाये प्राक् सममातृकाः ।
ज्ञेया भागहरा नित्यं वैमात्रेयास्ततः परम् ॥ १६० ॥

सदा एक ही श्रेणी के सपिण्डों में एक मातावाले (सगे) पहले और भिन्न मातावाले (सौतेले) बाद में हिस्सा लेनेवाले जानने चाहिए (अर्थात्-पहले सगे भाई फिर सौतेले भाई । इसके बाद पहले सगे भाइयों के पुत्र फिर सौतेले भाइयों के पुत्र । यही क्रम आगे भी यथास्थान जानना चाहिए । परन्तु अन्य माता से उत्पन्न हुआ चाचा एक माता से उत्पन्न हुए चाचा के पुत्र से पहले हकदार होगा ।)

सपिण्डानामभावे तु दायार्हाः स्युः समोदकाः ।
असत्सु तेष्वपि पुनर्बान्धवा दायहारिणः ॥ १६१ ॥

सपिण्डों के नहीं होने पर समानोदक दाय-धन पाने योग्य होते हैं । फिर उन (समानोदकों) के भी न होने पर बन्धु धन लेते हैं ।

दूरसंबन्धिवर्गेभ्योऽदूरसंबन्धिवर्गगाः ।
समोदकेष्वपि पुनः प्राक् स्युर्दायहरा ध्रुवम् ॥ १६२ ॥

फिर समानोदकों में भी निश्चय ही दूर के संबन्ध की श्रेणीवालों से नज़दीक के संबन्ध की श्रेणीवाले पहले हिस्सा लेनेवाले होते हैं ।

समवर्ग्येष्वथाऽऽसन्ना दूरस्थेभ्योऽग्रिमा मताः ।
सममातृभवाश्च स्युः प्राक् परेभ्योऽधिकारिणः ॥ १६३ ॥

और एक श्रेणीवालों में दूरवालों से नज़दीकवाले पहले (हक़दार) माने गये हैं, और दूसरों (सौतेलों) से एक मा से उत्पन्न हुए (सगे) पहले (हक़दार) माने गये हैं ।

एकया वाप्यनेकाभिः स्त्रीभिः संबद्धताऽऽश्रिताः ।
भिन्नगोत्राः सपिण्डास्तु बान्धवाः प्राक् प्रकीर्तिताः ॥१६४॥

एक या अनेक स्त्रियों के संबन्ध के द्वारा संबन्ध रखनेवाले दूसरे गोत्र के सपिण्डों को पहले बांधव कहा है ।

योद्वाहविधिना स्वीयाद् गोत्राद् गोत्रान्तरं गता ।
स्वगोत्रं वाऽन्यतः प्राप्ता नारी सैवात्र गृह्यते ॥ १६५ ॥

जो (स्त्री) विवाह की विधि से अपने गोत्र से दूसरे गोत्र में गई हो या दूसरे गोत्र से अपने गोत्र में आई हो, वही स्त्री यहां ली जाती है ।

स्वस्य तातस्य चाम्बायाः पितृष्वसृसुतास्तथा ।
मातृष्वसृसुताश्चाऽथ मातुलानां सुतास्तथा ॥ १६६ ॥

स्वस्य तातस्य मातुश्च बान्धवाः प्राग् मते क्रमात् ।
संक्षेपेण समाख्याता दायार्हाश्च मताः पुनः ॥ १६७ ॥

अपने, पिता के और माता के पुफी के लड़के, मौसी के लड़के और मामी के लड़के, प्राचीन लोगों के मत में, संक्षेप के साथ क्रम से आत्मबन्धु, पितृबन्धु और मातृबन्धु कहे गये हैं, और फिर धन के हकदार माने गये हैं ।

मिताक्षरोक्तनवबान्धवातिरिक्ता निम्नोक्ता अपि बान्धवा निर्णीताः ।

(मिताक्षरा में कहे नौ बान्धवों के सिवाय नीचे लिखे भी बान्धव निश्चित किये गये हैं ।

भागिनेयः	भानजा
असहोदराया भगिन्याः पुत्रः	सौतेली बहन का पुत्र
(अधुना सहोदराजातस्तु सर्वत्रैव, वैमात्रेयी जातश्च नागपुरे सगोत्र-सपिण्डेषु स्वस्वमातुरनन्तरं दाय-	(आजकल सगी बहन से पैदा हुआ तो सब जगह और सौतेली बहन से पैदा हुआ नागपुर में अपनी-अपनी माता के बाद

माद्त्ते । परं भगिन्याः सपत्नीज- स्तु सर्वत्रैव दायाद्बहिष्कृतः ।)	दाय-धन लेता है। परन्तु बहन की सौत का पुत्र तो सब जगह ही दाय धन(पाने) से वर्जित है ।)
भ्रातृजापुत्रः	भतीजी का पुत्र
दौहित्रपुत्रः	नवासे का पुत्र
भागिनेयपुत्रः	भानजे का पुत्र
दौहित्रीपुत्रः	नवासी का पुत्र
भगिनेयीपुत्रः	भानजी का पुत्र
पैतृष्वसेयः (पितृ-विमातृजा-पुत्रो वा)	फुफी का पुत्र (या बाप की सौतेली बहन का पुत्र)
पैतृष्वसेयपुत्रः	फुफेरे भाइका पुत्र
पैतृष्वसेयीपुत्रः	फुफेरी बहन का पुत्र
मातामहः	नाना
मातुलः	मामा
पितामहपौत्रीपुत्रः	दादा की पोती का पुत्र
प्रपितामहपौत्रीपुत्रः	परदादा की पोती का पुत्र
प्रपितामहपौत्रदौहित्रः	परपरदादा के पोते का नवासा
प्रपितामहदौहित्रः	परदादा का नवासा
पितामहभागिनेयपुत्रः	दादा के भानजे का पुत्र
पितुर्मातुलः	बाप का मामा
पितुर्मातामहदौहित्रः	बाप के नाना का नवासा
मातुर्मातुलपौत्रः	मा के मामा का पोता
मातुर्मातुलदौहित्रः	मा के मामा का नवासा
मातृष्वसेयपुत्रः	मौसेरे भाई का पुत्र
मातामहस्य. दत्तकपुत्रः	नाना का गोदलिया पुत्र
मातामहस्य भ्रातृव्यपुत्रः	नाना के भतीजे का पुत्र
पैतृष्वसेयदौहित्रः	फुफेरे भाईका नवासा
मातृपितामहदौहित्रपुत्रः	मा के दादा के नवासे का पुत्र
मातृपितामहपौत्रपुत्रः	मा के दादा के पोते का पुत्र

मातृद्वारेण संबद्धात् समानात् पूर्वजादिह।
सापिण्डयं मन्यते पञ्चपुरुषान्तं हि केवलम्॥ १६८॥

यहां पर माता के द्वारा संबन्ध रखनेवाले समान पूर्वज (शाखा के मूल पुरुष)

और नवासी के नवासे पहले कहे लक्षण के अभाव से खुद ही बन्धुओं में वर्जित हैं। और प्रयाग (इलाहाबाद) में भी वे हक पाने योग्य बन्धुओं में नहीं लिये गये हैं।

समानपूर्वजान्तं हि दायादाद्धार्थधारिणः।
तिस्रः स्त्रियो भवेयुश्चेत्तर्हि तौ खलु नो मतौ॥ १८३॥
दायादार्थधरौ तत्र मिथो दायहरौ यतः।
दौहित्र्या दुहितुः पुत्रस्ततस्तत्र विवर्जितः॥ १८४॥

क्योंकि दायधन के हकदार से या धन के मालिक से समान पूर्वज (common ancestor) तक यदि (बीच में) तीन स्त्रियां हों, तो निश्चय ही वे दाय-धन के हकदार और धन के मालिक दोनों वहां पर (उस मत में) आपस में दाय-धन लेनेवाले नहीं माने गये हैं। इसीलिए नवासी की लड़की का पुत्र वहां पर (दाय-धन पाने में) वर्जित है।

पितामहस्य दौहित्रदौहित्रो द्रविडे परम्।
मतो न्यायाधिपैर्नूनं दायार्हेषु हि बन्धुषु॥ १८५॥

परन्तु मद्रास में न्यायाधीशों ने दादा के नवासे के नवासे को दाय पाने योग्य बन्धुओं में माना है।

यद्यपि त्रितयं स्त्रीणां दायादाद्धार्थधारिणः।
समानपूर्वजान्तं स्यात्तथापि द्रविडे तु तौ॥ १८६॥
मिथो दायहरौ स्यातां चेदन्या न्यायनिश्चिता।
नो बाधा तत्र विद्वद्भिर्दृश्यते तन्निषेधिका॥ १८७॥

यद्यपि दाय-धन के हकदार से या (दाय) धन के मालिक से समानपूर्वज तक तीन स्त्रियां हों तो भी मद्रास में वे दोनों (धन का हकदार और मालिक), यदि विद्वानों को वहां पर कानून से निश्चित की हुई उस (हकदारी) का निषेध करनेवाली दूसरी बाधा न दिखलाई दे, तो आपस में दाय-धन के हकदार होते हैं।

बान्धवास्त्रिविधाः प्रोक्ता आत्मनः स्वपितुस्तथा।
स्वमातुश्चात्र शास्त्रेषु दायार्हाश्च यथाक्रमम्॥ १८८॥

यहां पर शास्त्रों में बन्धु तीन तरह के कहे हैं—अपने, अपने पिता के तथा अपनी माता के और वे क्रम से दाय-धन पाने योग्य होते हैं।

आत्मनो बान्धवाः पूर्वं बान्धवाश्च पितुस्ततः।
मातुश्च बान्धवा अन्ते दायार्हाः स्युर्यथाक्रमम्॥ १८९॥

क्रम के अनुसार पहले अपने बन्धु, उसके बाद पिता के बन्धु और अन्तमें माता के बन्धु धन के हकदार होते हैं।

आत्मबन्धुष्वपि पुनर्वंशजाः प्राग् मता बुधैः।
पूर्वजाश्च ततस्तज्जभिन्नशाखाभवास्तथा॥ १९०॥

फिर संसार में बुद्धिमानों ने अपने बन्धुओं में भी पहले वंशजों को और उसके बाद पूर्वजों और उनसे निकली अन्य शाखाओं में उत्पन्न बान्धवों को माना है।

पूर्वजेषु पितुर्वंश्याः प्राक् ततश्च पितुः पितुः।
समवर्ग्येष्वथाऽऽसन्ना दूरस्थेभ्योऽग्रिमाः पुनः ॥ १९१ ॥

पूर्वजों (पूर्वज बन्धुओं) में पहले पिता के वंशज और उसके बाद दादा के (वंशज हकदार होते हैं)। फिर एक ही श्रेणी के बन्धुओं में नजदीकवाले दूरवालों से पहले (हकदार होते हैं)।

वंशनेदिष्ठता यत्र नस्याद् निर्णयकारिणी।
तत्राऽध्यात्मिकलाभस्याधिक्याद् निर्णयमाचरेत् ॥१९२॥

जहां वंश की नजदीकी निर्णय (फैसला) न कर सके, वहां (पिण्ड आदि के द्वारा होने वाले) आत्मा के लाभ की अधिकता से फैसला करे। (अर्थात्-जिसके द्वारा (वंशवालों को) अधिक पिण्ड आदि मिलने का नियम हो, वह पहले हकदार होगा ऐसा वीरमित्रोदय में कहा है।)

पितृपक्षपितृभ्यो ये पिण्डादीन् ददतेऽत्र ते।
मातृपक्षीयपित्रर्थदातृभ्यः प्रथमे मताः ॥ १९३ ॥

जो पिता के पक्ष के पितरों को पिण्ड आदि देते हैं, वे यहां पर माता के पक्ष के पितरों को देनेवालों से पहले माने गये हैं।

यत्र पूर्वोक्तनियमैरपि नो निर्णयः क्षमः।
तत्राऽम्बास्वजनेभ्यः प्राक् पितृसंबन्धिनो मताः॥ १९४ ॥

जहां पहले कहे नियमों से भी निर्णय न हो सके, वहां माता के रिश्तेदारों से पहले पिता के रिश्तेदार माने गये हैं।

संबद्धा अल्पसंख्यानां स्त्रीणां द्वारेण ये जनाः।
बान्धवेभ्योऽपरेभ्यस्ते पूर्वं दायहराः पुनः ॥ १९५ ॥

फिर जो पुरुष (बीच में आनेवाली) कम स्त्रियों द्वारा संबन्ध रखनेवाले होते हैं, वे दूसरे (अधिक स्त्रियों द्वारा संबन्ध रखनेवाले) बान्धवों से पहले धन के हकदार माने गये हैं। (यह मद्रास और इलाहाबाद की हाईकोर्टों का मत है।)

पुनश्चैतेषु सोदर्यभवाः प्रागधिकारिणः।
एतेषां विस्तृता सूची गद्येनाऽग्रे निगद्यते ॥ १९६ ॥

फिर इनमें सगे भाइयों से उत्पन्न हुए पहले अधिकारी होते हैं। (अर्थात्-अपने सगे भाई, पिता के सगे भाई, माता के सगे भाई आदि की संतान उनकी सौतेले भाइयों आदि की संतान से पहले हक पाती है।) इन (बान्धवों) की खुलासा सूची आगे गद्य (इबारत) के द्वारा कही जाती है।

दायभागे आत्मबान्धवाः	दाय-भाग में अपने बन्धु
(आत्मनःसंततिवर्गः)	(अपनी औलाद की श्रेणि)
• दौहित्रः (बन्धुभूतोऽप्ययं गोत्रजसपिण्डैः सह दायमादत्ते)	० नवासा (यह बन्धु होकर भी गोत्रज सपिण्डों के साथ हिस्सा लेता है)
१ पौत्र्याः पुत्रः (साक्षात्संबन्धादसौ महाराष्ट्रे समदवीयस्याः पितृदौहित्र्याः पूर्वं दायमादत्ते)	१ पोती का लड़का (सीधे संबन्ध के कारण यह बंबई में बराबर की दूरी पर स्थित पिता की नवासी से पहले हिस्सा लेता है।)
२ दौहित्र-पुत्रः	२ नवासे का लड़का
३ दौहित्र्याः पुत्रः	३ नवासी का लड़का
(पितुः संततिवर्गः)	(पिता की औलाद की श्रेणि)
४ विमातृजाया भगिन्याः पुत्रः (यत्रैष गोत्रजसपिंडैः सह दायानर्हस्तत्रैव बन्धुषु गण्यते)	४ सौतेली बहन का लड़का (जहां पर यह गोत्रज-सपिण्डों के साथ हिस्सा नहीं लेता वहीं पर बान्धवों में गिना जाता है)
५ पितुः पौत्र्याः पुत्रः	५ पिता की पोती का लड़का
६ पितुर्दौहित्र-पुत्रः	६ पिता के नवासे का लड़का
७ पितुर्दौहित्र्याः पुत्रः	७ पिता की नवासी का लड़का
८ पितुः पौत्रदौहित्रः	८ पिता के पोते का नवासा
९ पितुः पौत्र्याः पौत्रः	९ पिता की पोती का पोता
× १० पितुर्दौहित्रपौत्रः	१० पिता के नवासे का पोता
११ पितुः पौत्र्या दौहित्रः	११ पिता की पोती का नवासा
× १२ पितुर्दौहित्र-दौहित्रः	१२ पिता के नवासे का नवासा
× १३ पितुर्दौहित्र्याः पौत्रः	१३ पिता की नवासी का पोता
× १४ पितुर्दौहित्र्या दौहित्रः (द्रविडेषु पुनः पितुरन्येऽपि वंशजा बन्धुषु समाख्याता न तु प्रयागे)	१४ पिता की नवासी का नवासा (मद्रास में पिता के दूसरे (आगे के) भी वंशज बान्धवों में गिने गये हैं, किन्तु इलाहाबाद में नहीं गिने गये हैं।)
१५ मातामहः	१५ नाना
(मातामह-पितामहयोः संततिवर्गः)	(नाना और दादा की औलाद की श्रेणि)
१६ मातामह-पुत्रः	१६ नाना का लड़का (मामा)

१७ पितामह-दौहित्रः	१७ दादा का नवासा
१८ मातामह-पौत्रः	१८ नाना का पोता
१९ मातामह-दौहित्रः	१९ नाना का नवासा
२० पितामह-पौत्र्याः पुत्रः	२० दादा की पोती का लड़का
२१ मातामह-पौत्र-पुत्रः	२१ नाना के पोते का लड़का
२२ मातामह-पौत्री-पुत्रः	२२ नाना की पोती का लड़का
२३ पितामह-दौहित्र-पुत्रः	२३ दादा के नवासे का लड़का
२४ पितामह-दौहित्र्याः पुत्रः	२४ दादा की नवासी का लड़का
२५ मातामह-दौहित्र-पुत्रः	२५ नाना के नवासे का लड़का
२६ मातामह-दौहित्र्याः पुत्रः	२६ नाना की नवासी का लड़का
२७ पितामह-पौत्र-दौहित्रः	२७ दादा के पोते का नवासा
२८ मातामह-पौत्र-दौहित्रः	२८ नाना के पोते का नवासा
२९ पितामह-पौत्र्याः पौत्रः	२९ दादा की पोती का पोता
३० पितामह-दौहित्र-पौत्रः	३० दादा के नवासे का पोता
३१ पितामह-पौत्र्या दौहित्रः	३१ दादा की पोती का नवासा
३२ पितामह-दौहित्र-दौहित्रः	३२ दादा के नवासे का नवासा
३३ पितामह-दौहित्र्याः पौत्रः	३३ दादा की नवासी का पोता
३४ पितामह-दौहित्र्या दौहित्रः	३४ दादा की नवासी का नवासा
३५ मातामह-पौत्र-पौत्रः	३५ नाना के पोते का पोता
३६ मातामह-पौत्र्याः पौत्रः	३६ नाना की पोती का पोता
३७ मातामह-दौहित्र-पौत्रः	३७ नाना के नवासे का पोता
३८ मातामह-पौत्र्या दौहित्रः	३८ नाना की पोती का नवासा
३९ मातामह-दौहित्र-दौहित्रः	३९ नाना के नवासे का नवासा
४० मातामह-दौहित्र्याः पौत्रः	४० नाना की नवासी का पोता
४१ मातामह-दौहित्र्या दौहित्रः	४१ नाना की नवासी का नवासा
(केषांचन मते निम्नलिखिता अप्यात्मबान्धवेषु परिगण्यन्ते)	(कुछ लोगों के मत में नीचे लिखे हुए भी अपने बन्धुओं में गिने जाते हैं।)
४२ पितामह-पौत्र-दौहित्र-पुत्रः	४२ दादा के पोते के नवासे का लड़का
४३ पितामह-पौत्र्याः पौत्र-पुत्रः	४३ दादा की पोती के पोते का लड़का
४४ पितामह-दौहित्र-पौत्र-पुत्रः	४४ दादा के नवासे के पोते का लड़का
४५ पितामह-पौत्र्या दौहित्र-पुत्रः	४५ दादा की पोती के नवासे का लड़का
४६ पितामह-दौहित्र-दौहित्र-पुत्रः	४६ दादा के नवासे के नवासे का लड़का

× ४७ पितामह-दौहिश्याः पौत्र-पुत्रः	४७ दादा की नवासी के पोते का लड़का
× ४८ पितामह-दौहिश्या दौहित्र-पुत्रः	४८ दादा की नवासी के नवासे का लड़का
× ४९ मातामह-पौत्र-पौत्र-पुत्रः	४९ नाना के पोते के पोते का लड़का
५० मातामह-पौत्र-दौहित्र-पुत्रः	५० नाना के पोते के नवासे का लड़का
× ५१ मातामह-पौत्र्याः पौत्र-पुत्रः	५१ नाना की पोती के पोते का लड़का
× ५२ मातामह-दौहित्र-पौत्र--पुत्रः	५२ नाना के नवासे के पोते का लड़का
× ५३ मातामह-पौत्र्या दौहित्र-पुत्रः	५३ नाना की पोती के नवासे का लड़का
५४ मातामह-दौहित्र-दौहित्र-पुत्रः	५४ नाना के नवासे के नवासे का लड़का
× ५५ मातामह-दौहिश्याः पौत्र-पुत्रः	५५ नाना की नवासी के पोते का लड़का
× ५६ मातामह-दौहिश्या दौहित्र-पुत्रः	५६ नाना की नवासी के नवासे का लड़का
× ५७ ४२ संख्यातः ४८ संख्याऽन्तानां सप्तानां बान्धवानामपत्यानि	५७ संख्या ४२ से ४८ तक के ७ बान्धवों की औलाद ।
× ५८ ४९ संख्यातः ५६ संख्यान्तानामष्टानां बान्धवानामपत्यानि	५८ संख्या ४९ से ५६ तक के ८ बान्धवों की औलाद ।
(एतेषु × तारका चिह्नाङ्किता द्रविडेष्वेवदायादेषु गृह्यन्ते न तु प्रयागे)	(इनमें × तारोंके चिन्ह से अङ्कित मद्रास में ही बान्धवों में गिने जाते हैं; किन्तु इलाहाबाद में नहीं गिने जाते)

(पुनश्च देशप्रथाभेदादेषु पौर्वापर्यमपि दृश्यते ।)

फिर देश--देश के रिवाज की भिन्नता से इनमें (हक के विषय में) आगा-पीछा भी देखने में आता है ।)

दायभागे पितृ-बान्धवाः	दायभाग में पिता के बन्धु ।
१ पितुर्मातामहः	१ पिता का नाना
२ पितुर्मातामह-पुत्रः	२ पिता के नाना का पुत्र (पिता का मामा)
३ पितुः पितामह-दौहित्रः	३ पिता के दादा का नवासा
४ पितुर्मातामह-पौत्रः	४ पिता के नाना का पोता
५ पितुर्मातामह-दौहित्रः	५ पिता के नाना का नवासा
६ पितुः पितामह-पौत्र्याः पुत्रः	६ पिता के दादा की पोती का लड़का
७ पितुः पितामह-दौहित्र-पुत्रः	७ पिता के दादा के नवासे का लड़का
८ पितुर्मातामह--पौत्र--पुत्रः	८ पिता के नाना के पोते का लड़का
९ पितुः पितामह-दौहिश्याः पुत्रः	९ पिता के दादा की नवासी का लड़का
१० पितुर्मातामह-पौत्र्याः पुत्रः	१० पिता के नाना की पोती का लड़का
११ पितुर्मातामह-दौहित्र-पुत्रः	११ पिता के नाना के नवासे का लड़का
१२ पितुर्मातामह-दौहिश्याः पुत्रः	१२ पिता के नाना की नवासी का लड़का

पितुः पितामह-पौत्र-दौहित्रः	१३ पिता के दादा के पोते का नवासा
पितुः पितामह-पौत्र्याः पौत्रः	१४ पिता के दादा की पोती का पोता
पितुः पितामह-दौहित्र-पौत्रः	१५ पिता के दादा के नवासे का पोता
पितुर्मातामह-पौत्र-पौत्रः	१६ पिता के नाना के पोते का पोता
पितुः पितामह-पौत्र्या दौहित्रः	१७ पिता के दादा की पोती का नवासा
पितुः पितामह-दौहित्र-दौहित्रः	१८ पिता के दादा के नवासे का नवासा
पितुः पितामह-दौहित्र्याः पौत्रः	१९ पिता के दादा की नवासी का पोता
पितुर्मातामह-पौत्र-दौहित्रः	२० पिता के नाना के पोते का नवासा
पितुर्मातामह-पौत्र्याः पौत्रः	२१ पिता के नाना की पोती का पोता
पितुर्मातामह-दौहित्र-पौत्रः	२२ पिता के नाना के नवासे का पोता
पितुः पितामह-दौहित्र्या दौहित्रः	२३ पिता के दादा की नवासी का नवासा
पितुर्मातामह-पौत्र्या दौहित्रः	२४ पिता के नाना की पोती का नवासा
पितुर्मातामह-दौहित्र-दौहित्रः	२५ पिता के नाना के नवासे का नवासा
पितुर्मातामह-दौहित्र्याः पौत्रः	२६ पिता के नाना की नवासी का पोता
पितुर्मातामह-दौहित्र्या दौहित्रः	२७ पिता के नाना की नवासी का नवासा
(केषांचन मते निम्नलिखिता अपि पितृबान्धवेषु परिगण्यन्ते)	(कुछ लोगों के मत में नीचे लिखे भी पिता के बन्धुओं में गिने जाते हैं)
पितुः पितामह-पौत्र-दौहित्र-पुत्रः	२८ पिताके दादा के पोते के नवासे का लड़का
पितुः पितामह-पौत्र्याः पौत्र-पुत्रः	२९ पिता के दादा की पोती के पोते का लड़का
पितुः पितामह-दौहित्र-पौत्र-पुत्रः	३० पिता के दादा के नवासे के पोते का लड़का
पितुर्मातामह-पौत्र-पौत्र-पुत्रः	३१ पिता के नाना के पोते के पोते का लड़का
पितुः पितामह-पौत्र्या दौहित्र-पुत्रः	३२ पिता के दादा की पोती के नवासे का लड़का
पितुः पितामह-दौहित्र-दौहित्र-पुत्रः	३३ पिता के दादा के नवासे के नवासे का लड़का
पितुः पितामह-दौहित्र्याः पौत्र-पुत्रः	३४ पिता के दादा की नवासी के पोते का लड़का
पितुर्मातामह-पौत्र-दौहित्र-पुत्रः	३५ पिता के नाना के पोते के नवासे का लड़का
पितुर्मातामह-पौत्र्याः पौत्र-पुत्रः	३६ पिता के नाना की पोती के पोते का लड़का
पितुर्मातामह-दौहित्र-पौत्र-पुत्रः	३७ पिता के नाना के नवासे के पोते का लड़का
पितुः पितामह-दौहित्र्या दौहित्र-पुत्रः	३८ पिता के दादा की नवासी के नवासे का लड़का
पितुर्मातामह-पौत्र्या दौहित्र-पुत्रः	३९ पिता के नाना की पोती के नवासे का लड़का
पितुर्मातामह-दौहित्र-दौहित्र-पुत्रः	४० पिता के नाना के नवासे के नवासे का लड़का
पितुर्मातामह-दौहित्र्याः पौत्र-पुत्रः	४१ पिता के नाना की नवासी के पोते का लड़का
पितुर्मातामह-दौहित्र्या दौहित्र-पुत्रः	४२ पिता के नाना की नवासी के नवासे का लड़का

४३ पितुः पितामह-पौत्र-दौहित्र-पौत्रः	४३ पिता के दादा के पोते के नवासे का पो
४४ पितुः पितामह-पौत्र्याः पौत्र-पौत्रः	४४ पिता के दादा की पोती के पोते का पो
४५ पितुः पितामह-दौहित्र-पौत्र-पौत्रः	४५ पिता के दादा के नवासे के पोते का पो
४६ पितुर्मातामह-पौत्र-पौत्र-पौत्रः	४६ पिता के नाना के पोते के पोते का पो
४७ पितुः पितामह-पौत्र्या दौहित्र-पौत्रः	४७ पिता के दादा की पोती के नवासे का पो
४८ पितुः पितामह-दौहित्र-दौहित्र-पौत्रः	४८ पिता के दादा के नवासे के नवासेका पो
४९ पितुः पितामह-दौहित्र्याः पौत्र-पौत्रः	४९ पिता के दादा की नवासी के पोतेका पो
५० पितुर्मातामह-पौत्र-दौहित्र-पौत्रः	५० पिता के नाना के पोते के नवासे का पो
५१ पितुर्मातामह-पौत्र्याः पौत्र-पौत्रः	५१ पिता के नाना की पोती के पोते का पो
५२ पितुर्मातामह-दौहित्र-पौत्र-पोत्रः	५२ पिताके नाना के नवासे के पोते का पो
५३ पितुः पितामह-दौहित्र्या दौहित्र-पौत्रः	५३ पिता के दादा की नवासीके नवासेका पो
५४ पितुर्मातामह-पौत्र्या दौहित्र-पौत्रः	५४ पिता के नाना की पोती के नवासे का पो
५५ पितुर्मातामह-दौहित्र-दौहित्र-पौत्रः	५५ पिता के नाना के नवासे के नवासे का पो
५६ पितुर्मातामह-दौहित्र्याः पौत्र-पौत्रः	५६ पिताके नाना की नवासी के पोते का पो
५७ पितुर्मातामह-दौहित्र्या दौहित्र-पौत्रः	५७ पिता के नानाकी नवासीके नवासे का पो

दायभागे मातृबान्धवाः	दायभाग में माता के बन्धु
१ मातुः पितामहः	१ मा का दादा
२ मातुर्मातामहः	२ मा का नाना
३ मातुः पितामह-पुत्रः	३ मा के दादा का पुत्र
४ मातुर्मातामह-पुत्रः	४ मा के नाना का पुत्र
५ मातुः पितामह-पौत्रः	५ मा के दादा का पोता
६ मातुः पितामह-दौहित्रः	६ मा के दादा का नवासा
७ मातुर्मातामह-पौत्रः	७ मा के नाना का पोता
८ मातुर्मातामह-दौहित्रः	८ मा के नाना का नवासा
९ मातुः पितामह-पौत्र-पुत्रः	९ मा के दादा के पोते का लड़का
१० मातुः पितामह-पौत्र्याः पुत्रः	१० मा के दादा की पोती का लड़का
११ मातुः पितामह-दौहित्र-पुत्रः	११ मा के दादा के नवासे का लड़का
१२ मातुर्मातामह-पौत्र-पुत्रः	१२ मा के नाना के पोते का लड़का
१३ मातुः पितामह-दौहित्र्याः पुत्रः	१३ मा के दादा की नवासी का लड़का
१४ मातुर्मातामह-पौत्र्याः पुत्रः	१४ मा के नाना की पोती का लड़का
१५ मातुर्मातामह-दौहित्र-पुत्रः	१५ मा के नाना के नवासे का लड़का
१६ मातुर्मातामह दौहित्र्याः पुत्रः	१६ मा के नाना की नवासी का लड़का
१७ मातुः पितामह-पौत्र-पौत्रः	१७ मा के दादा के पोते का पोता

मातुः पितामह-पौत्र-दौहित्रः	८ मा के दादा के पोते का नवासा
मातुः पितामह-पौत्र्याः पौत्रः	९ मा के दादा की पोती का पोता
मातुःपितामह-दौहित्र-पौत्रः	० मा के दादाके नवासे का पोता
मातुर्मातामह-पौत्र-पौत्रः	१ मा के नाना के पोते का पोता
मातुः पितामह-पौत्र्या दौहित्रः	२ मा के दादा की पोती का नवासा
मातुः पितामह-दौहित्र-दौहित्रः	३ मा के दादा के नवासे का नवासा
मातुः पितामह-दौहित्र्याः पौत्रः	४ मा के दादा की नवासी का पोता
मातुर्मातामह-पौत्र-दौहित्रः	५ मा के नाना के पोते का नवासा
मातुर्मातामह -पौत्र्याः पौत्रः	२६ मा के नाना की पोती का पोता
मातुर्मातामह-दौहित्र-पौत्रः	२७ मा के नाना के नवासे का पोता
मातुःपितामह-दौहित्र्या दौहित्रः	२८ मा के दादा की नवासी का नवासा
मातुर्मातामह-पौत्र्या दौहित्रः	२९ मा के नाना की पोती का नवासा
मातुर्मातामह-दौहित्र-दौहित्रः	३० मा के नाना के नवासे का नवासा
मातुर्मातामह-दौहित्र्याः पौत्रः	३१ मा के नाना की नवासी का पोता
मातुर्मातामह-दौहित्र्याः दौहित्रः	३२ मा के नाना की नवासी का नवासा
(केषांचन मते निम्नलिखिता अपि मातृबान्धवेषु परिगण्यन्ते)	(कुछ लोगों के मत में नीचे लिखे भी मा के बन्धुओं में गिने जाते हैं)
मातुः पितामह-पौत्र-पौत्र-पुत्रः	३३ मा के दादा के पोते के पोते का पुत्र
मातुः पितामह-पौत्र-दौहित्र-पुत्रः	३४ मा के दादा के पोते के नवासे का पुत्र
मातुःपितामह-पौत्र्याःपौत्र-पुत्रः	३५ माके दादा की पोती के पोतेका पुत्र
मातुःपितामह-दौहित्र-पौत्र-पुत्रः	३६ मा के दादा के नवासे के पोतेका पुत्र
मातुर्मातामह पौत्र-पौत्र-पुत्रः	३७ मा के नाना के पोते के पोते का पुत्र
मातुःपितामह-पौत्र्या दौहित्र-पुत्रः	३८ माके दादाकी पोतीके नवासे का लड़का
मातुःपितामह-दौहित्र-दौहित्र-पुत्रः	३९ माके दादाके नवासेके नवासेका लड़का
मातुःपितामह-दौहित्र्याःपौत्र-पुत्रः	४० मा के दादा की नवासी के पोते का लड़का
मातुर्मातामह-पौत्र-दौहित्र-पुत्रः	४१ मा के नाना के पोते के नवासे का लड़का
मातुर्मातामह-पौत्र्याः पौत्र-पुत्रः	४२ मा के नाना की पोती के पोते का लड़का
मातुर्मातामह-दौहित्र-पौत्र-पुत्रः	४३ मा के नाना के नवासे के पोते का लड़का
मातुःपितामह-दौहित्र्या दौहित्र-पुत्रः	४४ मा के दादा की नवासीके नवासे का लड़का
मातुर्मातामह-पौत्र्या दौहित्र-पुत्रः	४५ मा के नाना की पोती के नवासे का लड़का
मातुर्मातामह-दौहित्र-दौहित्र-पुत्रः	४६ मा के नाना के नवासे के नवासे का लड़का
मातुर्मातामह-दौहित्र्याः पौत्र-पुत्रः	४७ मा के नाना की नवासी के पोते का लड़का
मातुर्मातामह-दौहित्र्या दौहित्र-पुत्रः	४८ मा के नाना की नवासी के नवासेका लड़का

४९ मातुःपितामह-पौत्र-पौत्र-पौत्रः	४९ मा के दादा के पोते के पोते का पोता
५० मातुःपितामह-पौत्र-दौहित्र-पौत्रः	५० मा के दादा के पोते के नवासे का पोता
५१ मातुःपितामह-पौत्र्याःपौत्र-पौत्रः	५१ मा के दादा की पोती के पोते का पोता
५२ मातुःपितामह-दौहित्र-पौत्र-पौत्रः	५२ मा के दादा के नवासे के पोते का पोता
५३ मातुर्मातामह-पौत्र-पौत्र-पौत्रः	५३ मा के नाना के पोते के पोते का पोता
५४ मातुःपितामह-पौत्र्या दौहित्र-पौत्रः	५४ मा के दादा की पोती के नवासे का पोता
५५ मातुःपितामह-दौहित्र-दौहित्र-पौत्रः	५५ मा के दादा के नवासे के नवासे का पोता
५६ मातुःपितामह-दौहित्र्या पौत्र-पौत्रः	५६ मा के दादा की नवासी के पोते का पोता
५७ मातुर्मातामह-पौत्र-दौहित्र-पौत्रः	५७ मा के नाना के पोते के नवासे का पोता
५८ मातुर्मातामह-पौत्र्याःपौत्र-पौत्रः	५८ मा के नाना की पोती के पोते का पोता
५९ मातुर्मातामह-दौहित्र-पौत्र-पौत्रः	५९ मा के नाना के नवासे के पोते का पोता
६० मातुःपितामह-दौहित्र्या दौहित्र-पौत्रः	६० मा के दादा की नवासी के नवासेका पोता
६१ मातुर्मातामह-पौत्र्या दौहित्र-पौत्रः	६१ मा के नाना की पोती के नवासेका पोता
६२ मातुर्मातामह-दौहित्र-दौहित्र-पौत्रः	६२ मा के नाना के नवासे के नवासे का पोता
६३ मातुर्मातामह-दौहित्र्याःपौत्र-पौत्रः	६३ मा के नाना की नवासी के पोते का पोता
६४ मातुर्मातामह-दौहित्र्या दौहित्र-पौत्रः	६४ माके नाना की नवासी के नवासे का पोता

एतेष्वपि पुनर्देश-भेदेन प्रथयाऽथवा ।
पौर्वापर्यं निरासो वा समावेशोऽथ जायते ॥१९७॥

फिर इन (बन्धुओं) में भी देशभेद से या रिवाज से आगा-पीछा, कमी अथवा बेशी हो जाती है ।

आत्मनःस्वपितुस्तातपितुर्मातामहस्य च ।
पितुःपितामहस्याऽथ पितुर्मातामहस्य वा ॥ १९८ ॥
मातुःपितामहस्याऽपि मातुर्मातामहस्य च ।
वंश्या एव समाख्याता बन्धुषूक्तेष्विह क्रमात् ॥१९९॥
पितॄणां वंशजा ये स्युरेतेभ्यो दूरवर्तिनाम् ।
तेस्युः पितृपितुस्तातमातुर्मातृपितुस्तथा ॥२००॥
मातृमातुश्च लोकेऽस्मिन् बान्धवाः सुविनिश्चितम् ।
एवमेव क्रमोऽग्रेऽपि ज्ञेय आवश्यके सति ॥ २०१ ॥

यहां पर बतलाये बांधवों में क्रम से अपने, अपने पिता के, दादा के, नाना के, पिता के दादा के, पिता के नाना के, मा के दादा के और मा के नाना के वंशज ही कहे गये हैं । जो इससे दूर के पितरों के वंशज होंगे, वे इस जगत् में निश्चय ही दादा के, दादी के, नाना के और नानी के बान्धव होंगे । आगे भी जरूरी होने पर इसी प्रकार क्रम जानना चाहिए ।

दायाप्तौ विशिष्टा नियमाः।

दाय-धन की प्राप्ति में विशेष नियम।

मिताक्षरायां पुरुषा एव बन्धुषु संमताः।
द्रविडेऽथ महाराष्ट्रे स्त्रियोऽन्येषु निवेशिताः ॥ २०२ ॥

मिताक्षरा में पुरुष ही बन्धुओं में माने गये हैं और मद्रास तथा बम्बई में स्त्रियां भी इनमें रक्खी गई हैं।

कन्यां च भगिनीं त्यक्त्वा महाराष्ट्रेऽथवा पुनः।
द्रविडे तनयां त्यक्त्वा सर्वा अन्याः स्त्रियस्तु ताः ॥ २०३ ॥
संख्याता बन्धुवर्गे याः पुंस्त्वप्राप्त्यैव केवलम्।
बन्धुभावेन दायार्हा भवेयुः सुविनिश्चितम् ॥ २०४ ॥

बम्बई में कन्या और बहन को छोड़ कर अथवा फिर मद्रास में लड़की को छोड़कर बाकी की वे सब स्त्रियां, जो केवल पुरुष बनजाने से ही निश्चित तौर पर बन्धु के रूप से हिस्से को हकदार हो सकती हैं, बान्धवों में गिनी गई हैं। (अर्थात् जो स्त्रियां बन्धुओं के लिये नियत की गई पीढ़ियों में हों और केवल स्त्रियां होने के कारण ही अन्यत्र हक न पा सकती हों, वे बम्बई और मद्रास में हक पाने वाले बान्धवों में गिनी जाती हैं।)

यथा पौत्र्योऽथ दौहित्र्योभ्रातृणां च सुतास्तथा।
भागिनेय्योऽथ पितृव्यपुत्र्य आत्मपितुः पितुः ॥ २०५ ॥
भागिनेयसुताश्चापि महाराष्ट्रे तु संमताः।
न्यायाधिकारिभिर्नूनं दाययोग्येषु बन्धुषु ॥ २०६ ॥

जैसे--न्यायाधीशों ने बंबई प्रदेश में पोतियों को, नवासियों को, भतीजियों को, भानजियों को, चाचा की लड़कियों को और अपने दादा के भानजे की लड़कियों को दाय पाने योग्य बन्धुओं में माना है।

द्रविडे तु भगिन्यश्च पौत्र्योऽथ स्वसुतासुताः।
भ्रातृजाश्चापि दायार्हबान्धवेषु मता बुधैः ॥ २०७ ॥

फिर विद्वानों ने मद्रास में बहनों को पोतियों को, अपनी नवासियों को और भतीजियों को भी दाय पाने योग्य बन्धुओं में माना है।

पिता महोत्तरं पौत्र्यो दौहित्र्यस्तदनन्तरम्।
भगिन्यश्च ततो दायहरा नव्यविधानतः ॥ २०८ ॥

नये कानून के अनुसार दादा के बाद पोतियां, उसके बाद नवासियां और फिर बहनें धन लेती हैं। (यह विधान ई० सं० १९२९ का हकदारी का (संशोधन) ऐक्ट २ कहाता है।)

महाराष्ट्रे सगर्भा तु पितामह्युत्तरा स्मृता ।
वैमात्रेय्युत्तरं तस्या उत वैमात्रतः पुनः ॥ २०९ ॥

बंबई में सगी बहन दादी के बाद (हकदार) मानी गई हैं । सौतेली (बहन) उस (सगी बहन) के बाद या फिर सौतेले भाई के बाद (हकदार होती है) । (मिताक्षरा के अनुसार सौतेली बहन सगी बहन के बाद और व्यवहारमयूख के अनुसार सौतेले भाई के बाद हक पाती है ।)

द्रविडे पुरुषाः पूर्वं बान्धवेषु ततः स्त्रियः ।
महाराष्ट्रमता रीतिः स्थानेऽग्रे सूचयिष्यते ॥ २१० ॥

मद्रास में बान्धवों में पहले पुरुष और उन (सब) के बाद स्त्रियां (हकदार होती हैं) । बंबई में मानी हुई रीति आगे बतलाई जायगी ।

जारजस्याऽनपत्यस्य माता दायमवाप्नुयात् ।
भिन्नताताश्च वेश्याजा दायार्हाः स्युः परस्परम् ॥ २११ ॥

जार (पति से भिन्न पुरुष) द्वारा उत्पन्न हुए पुत्र की निःसंतान अवस्था में (उसका) धन माता पा सकती है और भिन्न-भिन्न पिताओं से उत्पन्न हुए वेश्या के पुत्र आपस में (एक दूसरे के) धन के भागी हो सकते हैं ।

एकस्याप्यौरसस्तेषु दायार्हः स्यात् सुनिश्चितम् ।
तेषां तदौरसानां चाऽनपत्यानां मृतौ पुनः ॥ २१२ ॥

उन (भाइयों) में एक का भी असली पुत्र निश्चय ही मरे हुए बिना औलाद-वाले उन (सब) का और (फिर) उनके असली पुत्रों का धन पाने योग्य होता है ।

वेश्याजस्याऽनपत्यस्य भगिन्योऽप्युत्तरा मताः ।
नर्तकीनामथो पुत्र्यः प्राक् पुत्रेभ्यः स्युरुत्तराः ॥ २१३ ॥

बिना आल-औलादवाले वेश्या के पुत्र की हकदार (उसकी) बहनें भी मानी गई हैं और नर्तकियों की हकदार लड़कों से पहले लड़कियां होती हैं ।

दायार्होऽधर्मजः पुत्रः पितुस्तातोऽपि तस्य तु ।
संतत्या भार्यया मात्रा हीनस्याऽधर्मजन्मनः ॥ २१४ ॥

अधर्म से उत्पन्न हुआ (illegitimate) पुत्र अपने (जन्मदाता) पिता के धन का और उस (पुत्र) का पिता, औलाद, स्त्री और मा से हीन अपने उस अधर्म-जात पुत्र के धन का हकदार होता है ।

द्विजातिषु मृतेष्वत्राथो शूद्रेषु मृतेषु वा ।
बान्धवानामभावे तु दायो याति गुरुं प्रति ॥ २१५ ॥
तदभावे च तच्छिष्यान्सतीर्थ्यांस्तदभावतः ।
एतेषां निर्णये धर्मशिक्षैव निकषः पुनः ॥ २१६ ॥

ब्राह्मणों, क्षत्रियों या वैश्यों के मरने पर या शूद्रों के मरने पर (उनके) बन्धुओं के अभाव में (उनका) दाय-धन (उनके) गुरु को मिलता है और उस (गुरु) के अभाव में उनके शिष्यों को और उनके न होने से उनके गुरुभाइयों को मिलता है। फिर इनके निर्णय करने में धर्म की शिक्षा ही कसौटी होती है। (अर्थात्-धर्म संबन्धी शिष्य और धर्म संबन्धी गुरुभाई ही क्रम से धन लेते हैं।)

संन्यासिनस्तु शूद्रस्याऽबान्धवस्य हरेद्धनम्।
राजाधिकृतिरोधार्थं तच्छिष्यो द्रविडे ध्रुवम् ॥ २१७ ॥

मद्रास में निश्चय ही बिना बन्धुवाले शूद्र साधु (ascetic) का धन, राजा के अधिकार को रोकने के लिए, उस (साधु) का शिष्य ले सकता है।

द्विजातीनां वनस्थानां सतीर्थ्याः स्वाश्रमस्थिताः।
संन्यासिनां पुनर्योग्याः शिष्या दायाऽधिकारिणः ॥ २१८ ॥
आचार्याः प्राप्नुयुर्द्रव्यं मृतानां ब्रह्मचारिणाम्।
असत्स्वेतेषु सर्वेषु स्वजना धनमाप्नुयुः ॥ २१९ ॥

वानप्रस्थ आश्रमवाले ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों के अपने (ही) आश्रम में रहनेवाले गुरुभाई और संन्यासियों के सुयोग्य शिष्य सामान के हकदार होते हैं। मरे हुए ब्रह्मचारियों का धन उनके आचार्य पाते हैं। इन सब के न होने पर (उन उपर्युक्त सब के) रिश्तेदार धन पाते हैं।

यावत् प्रचलिताचाराच्च स्यादस्य समर्थनम्।
तावच्छूद्रेषु नैवैष विधिः समुपयुज्यते ॥ २२० ॥

जब तक प्रचलित रिवाज से इस (श्लोक २१७—२१८ में कही रीति) का समर्थन न हो, तब तक शूद्रों में यह विधि काममें नहीं लाई जाती है।

सर्वाऽभावे तु तत्रत्यो राजा तत्संपदं हरेत्।
न्याय्यं नियन्त्रणं यच्च तस्यास्तत्पालयेद् नृपः ॥ २२१ ॥

(उपर्युक्त) सबके ही न होने पर राजा उनका धन लेवे (और) उसमें जो न्याय से मान्य नियम आदि हों उसका राजा पालन करे। (अर्थात्-उस धन के साथ की न्याय्य शर्तों को पूरा करे।)

स एवातोऽधवाभ्यो हि वृत्तिं दद्यात्तदर्थतः।
न्याय्यावश्यकताहेतोस्ताभिराधीकृतस्य वा ॥ २२२ ॥
ऋणं संशोधयेत्किन्तु नत्वनावश्यकत्वतः।
तथैवानधिकारत्वात्कृतस्यर्णस्य राड्भरो ॥ २२३ ॥

इसलिए वही उस धन से (पोषित होनेवाली) विधवाओं को वृत्ति दे अथवा न्याय्य (legal) आवश्यकता के लिए उन (विधवाओं) के द्वारा गिरवी रखे हुए

का कर्जा चुकावे। किन्तु विना आवश्यकता के और बिना अधिकार के किये कज का राजा जिम्मेवार नहीं होता ।

पृथग्भूय पुनः—संसृष्टानां दायविभागनियमाः ।
अलग होकर फिरसे साझेदार हुओं के दाय-धन के बटवारे के नियम ।

पृथग् भूय पुनर्लोके संसृष्टानां कुटुम्बिनाम् ।
मरणे दायभागस्य विधानं कथ्यतेऽग्रतः ॥ २२४ ॥

जगत् में (एकवार) जुदा होकर फिर साझा करनेवाले कुटुम्बियों के मरने पर किये जानेवाले हिस्से की रीति आगे कही जाती है ।

पुनः संसृष्टवंश्येषु मृते कस्मिन्नपि ध्रुवम् ।
द्रविडे याति तद्भागः शेषान् पृक्तान् कुटुम्बिनः ॥ २२५ ॥
साधारणश्लिष्टवंशरीत्यैव हि न संशयः ।
वङ्गे श्लिष्टावशिष्टे हि न्यायस्तत्रापि निश्चितः ॥ २२६ ॥
महाराष्ट्रे पुनः पृक्तः पुत्रः प्राग्दायभाग् मतः ।
विश्लिष्टात्तु सुतान्नूनं मुख्यन्यायालयाधिपैः ॥ २२७ ॥

फिर से साझेदार हुए (re-united) वंशवालों में किसी के मरने पर, निश्चय ही, मद्रास में उसका हिस्सा साधारण साझेवाले कुटुम्ब के तरीके से ही बाकी के साझे के कुटुम्बियों को मिलता है । इसमें संशय नहीं है । बंगाल में साझेदारों में पीछे बचे हुओं का न्याय (तरीका) वहां पर (फिरसे साझेदार हुओं में) भी निश्चित किया गया है । बंबई में हाइकोर्ट के जजों ने जुदा हुए पुत्र से फिर से शरीक हुए पुत्र को निश्चय ही पहले दाय-धन पानेवाला माना है ।

पुनः संसृष्टवंश्येषु वीरमित्रोदयाऽनुगाः ।
प्राक् पुत्रपौत्रतत्पुत्रास्ततः संसृष्टसोदराः ॥ २२८ ॥
वैमात्रेयैश्च संसृष्टैरसंसृष्टाः सहोदराः ।
ततो माता च संसृष्टा संसृष्टश्च पिता ततः ॥ २२९ ॥
संसृष्टाः समभाजोऽन्येऽसंसृष्टाश्च विमातृजाः ।
असंसृष्टा प्रसूरेवमसंसृष्टः पिता पुनः ॥ २३० ॥
विधवा स्त्री तथा कन्या दौहित्रा अथ यामयः ।
एष्वसत्सु सपिण्डाश्चाऽसन्ना अथ समोदकाः ॥ २३१ ॥
बान्धवाश्च क्रमाद्दायं भजन्तेऽत्र तदुक्तितः ।
एष्वेव देशरीत्या स्यात् पौर्वापर्ये त्र भिन्नता ॥ २३२ ॥

(अलग होकर) फिर से साझेदार हुए कुटुम्बवालों में वीरमित्रोदय को माननेवाले, उसके कहे अनुसार, पहले बेटे, पोते और परपोते, उसके बाद साझेवाले सगे भाई, साझेवाले सौतेले भाइयों के साथ जुदा रहनेवाले सगे भाई, (फिर) साझेवाली

माता, (फिर) साझेवाला पिता, साझेवाले दूसरे समान हकदार, जुदा रहनेवाले सौतेले भाई, जुदा रहनेवाली माता, (फिर) जुदा रहनेवाला पिता, (फिर) विधवा स्त्री, लड़की, नवासे और बहनें (धन पाती हैं ।) इनके न होने पर नजदीक के सपिण्ड, समानोदक और बन्धु क्रम से (पहले के अभाव में पिछले) हक पाते हैं । इन्हीं में देश के रिवाज से उलट-फेर और भेद हो सकता है ।

स्मृतिज्योत्स्ना-मते पूर्वं पुत्रपौत्रप्रपौत्रकाः ।
संसृष्टाः सोदराश्चाऽथाऽसंसृष्टाः सोदरास्ततः ॥ २३३ ॥
वैमात्रेयास्तु संसृष्टाः संसृष्टो जनको निजः ।
पितृव्यो वा ततो भिन्ना वैमात्रेयाः पिताऽपि च ॥ २३४ ॥
माताऽथ विधवा भार्या सशीला, भगिनी तथा ।
क्रमाद् दायहराश्चान्ते सपिण्डाश्च समोदकाः ॥ २३५ ॥

स्मृतिचन्द्रिका के मतानुसार पहले बेटे, पोते और परपोते, फिर साझेवाले सगे भाई, उसके बाद जुदा हुए सगेभाई, फिर साझेवाले सौतेले भाई, तब साझेवाला अपना पिता या चाचा, उसके बाद जुदा हुए सौतेले भाई, फिर (जुदा हुआ) पिता, माता, विधवा सती पत्नी और बहन क्रम से हिस्सा लेती है और उनके बाद सपिण्ड और समानोदक (भाग लेते हैं) । (यहां पर पहले के अभाव में पिछला अधिकारी होता है ।)

मयूखे तु पुनर्युक्ताः प्रागयुक्तास्ततः परम् ।
किन्तु भ्रातृष्वसंसृष्टैर्वैमात्रेयैः समं पुनः ॥ २३६ ॥
असंसृष्टास्तु सोदर्या मता दायविभागिनः ।
ततो माता पिता भार्या भगिनी दुहिता क्रमात् ॥ २३७ ॥
सपिण्डाश्च ततो दायभागिनः स्युः सुनिश्चितम् ।
पितृव्यादिष्वपि ज्ञेयो भ्रात्रुक्तनियमः पुनः ॥ २३८ ॥

व्यवहारमयूख के मत में पहले दुबारा साझा करनेवाले और फिर दूसरे (दुबारा साझा न करनेवाले) (अधिकारी होते हैं) । परन्तु भाइयों में साझेवाले सौतेले भाइयों के साथ बे साझेवाले सगेभाई हिस्से के हकदार माने गये हैं । उनके बाद माता, पिता, पत्नी, बहन और लड़की क्रम से और फिर सपिण्ड निश्चित रूप से (हिस्से के) हकदार होते हैं । भाइयों के लिए कहा गया नियम चाचों आदि के लिए भी जानना चाहिए । (अर्थात्—इनमें भी साझेवाले सौतेले चाचों आदि के साथ ही जुदा रहनेवाले सगे चाचा आदि भी भाग लेते हैं ।)

५ स्त्रीदायादाः ।

स्त्री-हकदार ।

बङ्गेषु विधवा भार्या पुत्री माता पितामही ।
प्रपितामह्यपि पुनः पुंसां दायहराः स्त्रियः ॥ २३९ ॥

बङ्गाल में विधवा पत्नी, लड़की, माता, दादी और परदादी पुरुषों की दाय लेनेवाली (उत्तराधिकार पानेवाली) स्त्रियां हैं ।

मिताक्षरायां विधवा स्त्री कन्याऽम्बा पितामही ।
प्रपितामह्यथ पुनः पुंदायार्हाः स्त्रियो मताः ॥ २४० ॥
ज्ञानहीनतया नार्योऽनर्हा दायादताकृते ।
इति बौधायनोक्त्यैवाऽपरास्तत्र विवर्जिताः ॥ २४१ ॥
अतो लवपुरे नूनं भागिनेयसुतापि हि ।
दायादत्वकृते योग्या न मता न्यायपण्डितैः ॥ २४२ ॥
पौत्र्यस्तथा च दौहित्र्यो भगिन्यश्च यथाक्रमम् ।
मिताक्षराऽनुगेष्वद्य दायार्हा नव्यरीतितः ॥ २४३ ॥

मिताक्षरा में (भी) विधवा पत्नी, लड़की, मा, दादी और परदादी पुरुषों का दाय (धन) पाने योग्य स्त्रियां मानी गई हैं । ज्ञान हीन होने से स्त्रियां दाय-धन की हकदारी के लिए योग्य नहीं होतीं-इस बौधायन की उक्ति से और स्त्रियां वहां पर वर्जित करदी गई हैं । इसीलिए लाहौर में न्याय के पण्डितों ने, निश्चय ही, भानजे की लड़की को भी दाय-धन की हकदारी के लिए योग्य नहीं माना है । और मिताक्षरा के अनुसार चलनेवालों में नवीन रीति (ई० सं० १९२९ के संशोधित कानून के अनुसार) आज कल पोतियां, नवासियां और बहनें क्रम से हकदार होती हैं ।

मानवं शास्त्रमाश्रित्य द्रविडे भगिनी निजा ।
सोदर्याऽथाऽप्यसोदर्या पौत्री दौहित्रिका तथा ॥ २४४ ॥
भ्रातृकन्या स्वसुः पुत्री पितृव्यस्य सुता पुनः ।
सर्वा एताः स्त्रियश्चापि संख्याता दायभागिषु ॥ २४५ ॥

मानव धर्मशास्त्र का आधार लेकर मद्रास में अपनी सगी बहन, सौतेली बहन, पोती, नवासी, भतीजी, भानजी और चाचा की पुत्री ये सब स्त्रियां भी (श्लोक २४० में कही स्त्रियों के अतिरिक्त) हक पानेवालों में गिनी गई हैं ।

"अनन्तरः सपिण्डाद्यस्तस्य तस्य धनं भवेत् ।"
इत्युक्तं मनुना तत्र सपिण्डेषु स्त्रियोऽपि च ॥ २४६ ॥
गृहीत्वैव पुरोक्तोऽसौ द्रविडैःस्वीकृतः क्रमः ।
महाराष्ट्रेऽपि संमान्यो मनुरस्मिन्मतो यतः ॥ २४७ ॥

प्रागुक्ताभ्योऽतिरिक्ता हि ततस्तत्र स्त्रियोऽधवाः।
गोत्रजानां सपिण्डानां मता दायहराः खलु ॥ २४८ ॥

"जो सपिण्डों में नजदीक हो उस-उसको दाय-धन प्राप्त होना है" ऐसा मनु ने कहा है। वहां पर सपिण्डों में स्त्रियों को भी लेकर ही मद्रासवालों ने पहले कहा (दाय पाने का) यह क्रम स्वीकार किया है। क्योंकि बंबई में भी इस (विषय) में मनु को ही मान्य माना है, इसलिए वहां पर पहले कही (स्त्रियों) के अलावा गोत्रज सपिण्डों की विधवा स्त्रियों को (भी) निश्चय ही दाय-धन लेनेवाली माना है।

बन्धूनां विधवाः किन्तु न कुत्रापि मता बुधैः।
दायार्हास्तासु च ज्ञेया भागिनेयाऽधवादयः ॥ २४९ ॥

परन्तु विद्वानों ने बान्धवों की विधवाओं को कहीं भी दाय-धन पाने योग्य नहीं माना है और उनमें भानजे की विधवा आदि को जानना चाहिए।

भगिन्यस्तु महाराष्ट्रे पितामह्युत्तरा मताः।
दौहित्रीणामथाऽन्ते च द्रविडे ताः स्मृता बुधैः ॥ २५० ॥

बंबई-प्रदेश में बहनें दादी के बाद (हकदार) मानी गई हैं और फिर विद्वानों ने मद्रास में उन्हें नवासियों के बाद माना है।

पूर्णस्वा महाराष्ट्रे दायार्हा तास्तु संमताः।
प्रत्येकस्या मृतौ याति तस्माद् दायस्तदुत्तरान् ॥ २५१ ॥

बंबई में वे (बहनें) पूर्णाधिकार वाली मानी गई हैं। इसलिए हर एक (बहन) के मरने पर (उसका) धन उसके उत्तराधिकारियों को मिलना है।

मायूखेष्वेव सोदर्या वैमात्रेयाच्च तत्सुतात्।
पूर्वं दायहरा किन्तु नैवं मैताक्षरे मते ॥ २५२ ॥

व्यवहारमयूख माननेवालों में ही सगी बहन सौतेले भाई और उसके पुत्र से पहले दाय-धन लेती है; किन्तु मिताक्षरा के मत में ऐसा नहीं है।

मैताक्षरे मतेऽथाऽर्थं सोदर्यान्ते विमातृजा।
हरेद्, मते च मायूखे वैमात्रेयोत्तरं हि सा ॥ २५३ ॥

फिर मिताक्षरा के मत में सौतेली बहन सगी बहन के बाद धन लेती है और व्यवहार मयूख के मत में वह (सौतेली बहन) सौतेले भाई के बाद हिस्सा पाती है।

मायूखेषु महाराष्ट्रेऽन्ते गोत्रजसपिण्डतः।
बन्धुभ्यः प्राक् च दायार्हा मता पितृष्वसा ध्रुवम् ॥ २५४ ॥

बंबई प्रान्त में व्यवहारमयूख को माननेवालों में गोत्रज सपिण्डों के बाद और बन्धुओं से पहले निश्चय ही, फुफी को दाय-धन की हकदार माना है।

सगोत्रजसपिण्डानां मृतानां विधवाः स्त्रियः।
अगोत्रजसपिण्डेभ्यः पूर्वं दायहरा मताः ॥ २५५ ॥

मरे हुए समान गोत्रवाले सपिण्डों (अर्थात्-सपिण्डों और समानोदकों) की विधवा स्त्रियां (बंबई-प्रदेश में) भिन्न गोत्रवाले सपिण्डों से पहले धन की हकदार मानी गई हैं।

अगोत्रजसपिण्डानां विधवास्तु विवर्जिताः।
महाराष्ट्रे तथाऽन्यत्र दायप्राप्तौ मनीषिभिः ॥ २५६ ॥

किन्तु विद्वानों ने भिन्न गोत्रवाले सपिण्डों (बान्धवों) की विधवाओं को बंबई में और दूसरे स्थानों में धन की हकदारी में वर्जित कर दिया है। (उन्हें हकदार नहीं माना है।)

सगोत्रजसपिण्डानां विधवा नाप्नुयुर्धनम्।
प्राग् भ्रातृजाद् स्वसुर्वाऽथ महाराष्ट्रे यथास्थिति ॥ २५७ ॥

बंबई-प्रान्त में समान गोत्रवाले सपिण्डों की विधवायें स्थिति के अनुसार भतीजे अथवा (सगी या सौतेली) बहन के पहले धन नहीं प्राप्त कर सकतीं।

पतिवर्ग्येषु नो दाय-हरः षट्पुरुषाऽवधि।
पुमांश्चेत्तर्हि तत्पत्नी तन्मृत्यौ तत्समा मता ॥ २५८ ॥

यदि पति की शाखावालों में छः पीढ़ी तक (कोई) हकदार पुरुष न हो, तो उस (पति) के मरने पर उसकी स्त्री उसी (अपने पति) के समान (हकदार) मानी जाती है।

आसन्नगोत्रवर्ग्यैव विधवा दायमाप्नुयात्।
सपिण्डाद् गोत्रजाद् दूरवर्ग्याद् प्राक् पुरुषादिह ॥ २५९ ॥

गोत्रजों (सपिण्डों) की नजदीक की शाखावाली विधवा ही दूर की शाखावाले गोत्रज सपिण्ड पुरुष से पहले धन पाती है।

सगोत्रजसपिण्डानां विधवा पुरुषाऽगते।
विधवाऽर्थे मितं स्वाम्यं स्त्र्यागते पूर्णमाप्नुयात् ॥ २६० ॥

(बंबई प्रान्त में) समान गोत्रवाले सपिण्डों की विधवायें पुरुष के द्वारा प्राप्त हुए विधवा की हैसियत से मिले धन में परिमित अधिकार और स्त्री-के द्वारा मिले धन में पूर्ण अधिकार पाती हैं। (अर्थात्-किसी गोत्रज सपिण्ड के मरने पर उसका धन विधवा स्त्री को मिला हो तो उस पर उसका परिमित अधिकार ही होता है, क्योंकि वह स्त्री-धन नहीं होता।)

भर्तुर्गोत्रसपिण्डेषु जीवत्सु समवर्गिषु।
आसन्ना समवर्गीया विधवानाप्नुयाद् धनम् ॥ २६१ ॥

(बंबई-प्रान्त में) पति की शाखावाले गोत्रज सपिण्डों के जीते होने पर उसी शाखा की (पीढ़ी में) पासवाली विधवा धन नहीं पा सकती। (अर्थात्-दादा के

चाचा के पोते की विधवा, परपरदादा की तीसरी पीढ़ी के पुरुष की स्त्री होने पर भी, दादा के दूसरे चाचा के परपरपोते के, जो परपरदादा की पाँचवीं पीढ़ी में होता है, जीवित रहने पर भाग नहीं पा सकती ।)

पुनर्भूरत्र पूर्वस्य पत्युर्नो दायहारिणी ।
समोदकानां विधवा अपि स्युर्दायहारिकाः ॥ २६२ ॥

यहां पर दूसरा विवाह कर लेनेवाली स्त्री पहले पति के धन को नहीं ले सकती । समानोदकों की विधवायें भी हिस्सा लेनेवाली होती हैं ।

स्ववंश्यानां कनीस्ताश्च पितृजानां स्वसुर्विना ।
बन्धुसीमास्थिता ज्ञेया दायहारिषु बन्धुषु ॥ २६२ ॥

बांधवों की सीमा में रही अपने वंशजों की कन्याओं को और बहन के सिवाय अपने पूर्वजों की उन्हीं (कन्यायों) को दाय–धन लेनेवाले बन्धुओं में जानना चाहिये। (यहां पर अपने वंशजों की कन्या कहने से अपनी कन्या छोड़दी गई है ।)

६ महाराष्ट्रीया दायनियमाः ।

बंबाईवालों के दाय–विभग के नियम ।

महाराष्ट्रगता दायरीतिश्च तदनुक्रमः ।
गद्येनाऽग्रे तदुभयं तद्वैशिष्ट्यान्निगद्यते ॥ २६४ ॥

बंबई–प्रदेश में की दाय–भाग (हिस्से बांटे) की रीति और उस का क्रम, ये दोनों, उनकी विशेषता के कारण, आगे गद्य के द्वारा कहे जाते हैं:—

१–३ पुत्रा, मृतपितृकाः पौत्रा, मृततातपितामहाः प्रपौत्राश्च (तैरे व सह मृतस्य विधवा पत्नी, तस्यान्य–मृतपुत्राणां तथा मृतपितृक पौत्राणां विधवाः पत्न्यश्च ।)	१–३ बेटे, मरे हुए पिता वाले पोते, और मरे हुए बाप–दादावाले परपोते (उन्हीं के साथ मरनेवाले की विधवा स्त्री और उसके दूसरे मरे हुए बेटों और मरे हुए बाप वाले पोतों की विधवा स्त्रियां)
४ विधवा पत्नी (पुत्रपौत्रादीनामभावे)	४ अपनी (मृतक की) विधवा स्त्री (पुत्र और पौत्र आदि के अभाव में)
५ दुहिता	५ लड़की

महाराष्ट्रे तु प्रत्येका कन्या पूर्णाधिकारिणी ।
पितृद्रव्ये ततस्तस्या भागो याति तदुत्तरान् ॥ २६५ ॥

बंबई–प्रदेश में प्रत्येक कन्या (अपने) पिता के धन में पूर्ण अधिकार वाली होती है; इसलिए (उसके बाद) उसका हिस्सा उसके उत्तराऽधिकारियों को जाता है (मिलता है) ।

६ दौहित्रः	६ नवासा
७ माता	७ मा

८ पिता	८ पिता
९ भ्राता	९ भाई
(क) सहोदरः	(क) सगा
(ख) वैमात्रेयः	(ख) सौतेला
१० भ्रातुष्पुत्रः	१० भतीजा (भाई का लड़का)
(क) सहोदरपुत्रः	(क) सगे भाई का पुत्र
(ख) वैमात्रेयपुत्रः	(ख) सौतेले भाई का पुत्र
११ पितामही	११ दादी
१२ सोदरा भगिनी	१२ सगी बहन
१३ वैमात्रेयी भगिनी	१३ सौतेली बहन
१४ प्रपौत्रपुत्रः	१४ परपोते का लड़का
१५ प्रपौत्र-पौत्रः	१५ परपोते का पोता
१६ प्रपौत्र-प्रपौत्रः	१६ परपोते का परपोता
१७ पुत्र-विधवा	१७ पुत्र की विधवा स्त्री
१८ पौत्र-विधवा	१८ पोते की विधवा स्त्री
१९ प्रपौत्र-विधवा	१९ परपोते की विधवा स्त्री
२० प्रपौत्र-पुत्र-विधवा	२० परपोते के पुत्र की विधवा स्त्री
२१ प्रपौत्र-पौत्र-विधवा	२१ परपोते के पोते की विधवा स्त्री
२२ प्रपौत्र-प्रपौत्र-विधवा	२२ परपोते के परपोते की विधवा स्त्री
२३ भ्रातृ-पौत्रः	२३ भाई का पोता
२४ भ्रातृ-प्रपौत्रः	२४ भाई का परपोता
२५ भ्रातृ-प्रपौत्र-पुत्रः	२५ भाई के परपोते का लड़का
२६ भ्रातृ-प्रपौत्र-पौत्रः	२६ भाई के परपोते का पोता
२७ विमाता	२७ सौतेली मा
२८ भ्रातुर्विधवा	२८ भाई की विधवा स्त्री
२९ भ्रातृपुत्र-विधवा	२९ भाई के पुत्र की विधवा स्त्री
३० भ्रातृ-पौत्र-विधवा	३० भाई के पोते की विधवा स्त्री
३१ भ्रातृ-प्रपौत्र-विधवा	३१ भाई के परपोते की विधवा स्त्री
३२ भ्रातृ-प्रपौत्र-पुत्र-विधवा	३२ भाई के परपोते के लड़के की विधवा स्त्री
३३ भ्रातृ-प्रपौत्र-पौत्र-विधवा	३३ भाई के परपोते के पोते की विधवा स्त्री
३४ पितामहः	३४ दादा

(क) पौत्री	३४ (क) पोती
(ख) दौहित्री	३४ (ख) नवासी
३४ (ग) भागिनेयः	३४ (ग) भानजा
पितृव्यः	३५ चाचा
(क) पितुः सहोदरः	(क) पिता का सगा भाई
(ख) पितुर्वैमात्रेयः	(ख) पिता का सौतेला भाई
पितृव्य-पुत्रः	३६ चाचा का लड़का
पितृव्य-पौत्रः	३७ चाचा का पोता
पितृव्य-प्रपौत्रः	३८ चाचा का परपोता
पितृव्य-प्रपौत्र-पुत्रः	३९ चाचा के परपोते का लड़का
पितृव्य-प्रपौत्र-पौत्रः	४० चाचा के परपोते का पोता
४१ पितृ-विमाता	४१ पिता की सौतेली मा
४२ पितृव्य-विधवा	४२ चाचा की विधवा स्त्री
४३ पितृव्य-पुत्र-विधवा	४३ चाचा के लड़के की विधवा स्त्री
४४ पितृव्य-पौत्र-विधवा	४४ चाचा के पोते की विधवा स्त्री
४५ पितृव्य-प्रपौत्र-विधवा	४५ चाचा के परपोते की विधवा स्त्री
४६ पितृव्य-प्रपौत्र-पुत्र-विधवा	४६ चाचा के परपोते के लड़के की विधवा स्त्री
४७ पितृव्य-प्रपौत्र-पौत्र-विधवा	४७ चाचा के परपोते के पोते की विधवा स्त्री
४८ प्रपितामही	४८ परदादी
४९ प्रपितामहः	४९ परदादा
५० पितृ-पितृव्यः	५० पिता का चाचा
५१ पितृ-पितृव्य-पुत्रः	५१ पिता के चाचा का लड़का
५२ पितृ-पितृव्य-पौत्रः	५२ पिता के चाचा का पोता
५३ पितृ-पितृव्य-प्रपौत्रः	५३ पिता के चाचा का परपोता
५४ पितृ-पितृव्य-प्रपौत्र-पुत्रः	५४ पिता के चाचा के परपोते का लड़का
५५ पितृ-पितृव्य-प्रपौत्र-पौत्रः	५५ पिता के चाचा के परपोते का पोता
५६ पितामह-विमाता	५६ दादा की सौतेली मा
५७ पितृ-पितृव्य-विधवा	५७ पिता के चाचा की विधवा स्त्री
५८ पितृ-पितृव्य-पुत्र-विधवा	५८ पिता के चाचा के लड़के की विधवा स्त्री
५९ पितृ-पितृव्य-पौत्र-विधवा	५९ पिता के चाचा के पोते की विधवा स्त्री

नव्यविधाननिर्मितेषामक

(ई० स० १९२९ के) नवीन कानून (The Hindu Law of Inheritanc nendment) Act of 1929 । से इन्हें यहां स्थान

६० पितृ-पितृव्य-प्रपौत्र-विधवा	६० पिता के चाचा के परपोते की विधवा स्त्री
६१ पितृ-पितृव्य-प्रपौत्र-पुत्र-विधवा	६१ पिता के चाचाके परपोतेके लड़केकी विधवास्त्री
६२ पितृ-पितृव्य-प्रपौत्र-पौत्र-विधवा	६२ पिताके चाचाके परपोतेके पोते की विधवास्त्री
६३ पितृ–प्रपितामही	६३ पिता की परदादी
६४ पितृ-प्रपितामहः	६४ पिता का परदादा
६५ पितामह-पितृव्यः	६५ दादा का चाचा
६६ पितामह–पितृव्य-पुत्रः	६६ दादा के चाचा का लड़का
६७ पितामह–पितृव्य-पौत्रः	६७ दादा के चाचा का पोता
६८ पितामह-पितृव्य-प्रपौत्रः	६८ दादा के चाचा का परपोता
६९ पितामह-पितृव्य-प्रपौत्र–पुत्रः	६९ दादा के चाचा के परपोते का लड़का
७० पितामह–पितृव्य–प्रपौत्र-पौत्रः	७० दादा के चाचा के परपोते का पोता
७१ प्रपितामह-विमाता	७१ परदादा की सौतेली मा
७२ पितामह–पितृव्य-विधवा	७२ दादा के चाचा की विधवा स्त्री
७३ पितामह-पितृव्य–पुत्र–विधवा	७३ दादा के चाचा के लड़के की विधवा स्त्री
७४ पितामह-पितृव्य–पौत्र-विधवा	७४ दादा के चाचा के पोते की विधवा स्त्री
७५ पितामह-पितृव्य-प्रपौत्र-विधवा	७५ दादा के चाचा के परपोते की विधवा स्त्री
७६ पितामह-पितृव्य-प्रपौत्र-पुत्र-विधवा	७६ दादाके चाचाके परपोतेके लड़केकी विधवास्त्री
७७ पितामह-पितृव्य-प्रपौत्र-पौत्र-विधवा	७७ दादाके चाचाके परपोतेके पोतेकी विधवास्त्री

सपत्नीकसपिण्डानामभावे तु समोदकाः ।
क्रमादासन्नवर्ग्या वा वर्गासन्नाश्च भागिनः ॥ २६६ ॥

(अपनी–अपनी) पत्नियों सहित सपिण्डों के अभाव में क्रम से नजदीकी शाखा के और शाखा में नजदीक के समानोदक हिस्सेदार होते हैं ।

असत्स्वेतेषु भागार्हा बान्धवाः स्युर्यथाक्रमम् ।
मयूखेऽप्ययेष एवास्ति क्रमोऽमीषां सुनिश्चितम् ॥ २६७ ॥

इन सब (समानोदकों) के न होने पर बन्धु यथाक्रम हकदार होते हैं। व्यवहारमयूख में भी इन (बान्धवों) का निश्चित-रूप से (हक पाने का) यही (पूर्वोक्त) क्रम है ।

पितुर्विमातृजा पितृबन्धुत्वाद्दायमाहरेत् ।
पूर्वं मातुलतस्तस्य मातृबन्धुत्वकारणात् ॥ २६८ ॥

पिता की सौतेली बहन, पितृबन्धु होने से मामा से, उसके मातृबन्धु होने के कारण, पहले दाय-धन लेती है ।

स्वस्य पैतृष्वसेयस्तु पुरुषत्वान्मतोऽर्थभाक् ।
समवर्गस्थिताया हि पितृव्यदुहितुः पुरा ॥ २६९ ॥

अपने पिता का भानजा पुरुष होने से, एक ही वर्ग (degree) में रही, चाचा की लड़की से पहले धन लेने वाला माना गया है। *

(ततश्च)	(बांधवों के बाद)
गुरुः	(धर्म) गुरु
शिष्याः	(धर्म) शिष्य
सतीर्थ्याः	गुरुभाई
राजा	राजा

मिताक्षराऽनुगानां या दायभागे विशेषता।
महाराष्ट्रे प्रदेशेभ्योऽन्येभ्यः सैवात्र सूचिता ॥ २७० ॥

बंबई-प्रान्त में मिताक्षरा के अनुसार चलनेवालों की हिस्से के विभाग में अन्य प्रदेशों से जो विशेषता है, वही यहां सूचित की गई है।

अन्यत् सर्वं तु विज्ञेयं प्रागुक्तनियमानुगम्।
महाराष्ट्रे मयूखीया या विधा साऽत्र दर्श्यते ॥ २७१ ॥

बाकी का सब पहले कहे नियमों के अनुसार जानना चाहिए। बंबई प्रान्त में जो व्यवहारमयूख की रीति है, वह यहां बतलाई जाती है।

पुत्रपौत्रप्रपौत्रा वा पूर्वयोर्विधवास्तथा।
धनिनो विधवा चापि दायार्हा उक्तरीतितः ॥ २७२ ॥

(१-३) (पहले) लड़के, पोते और परपोते, तथा पहले के दोनों (लड़कों और पोतों) की विधवायें और धनी की विधवा, पहले कही रीति के अनुसार धन पाने योग्य होती हैं।

त्रय्याः सस्त्रीकपुत्रादेरभावे विधवा निजा।
दायार्हाऽतश्च दुहिता दौहित्रो जनकस्तथा ॥ २७३ ॥
माता सहोदरस्तस्य सुतश्चाऽथ पितामही।
सहोदराऽथ भगिनी पितामहविमातृजौ ॥ २७४ ॥
विमातृजो निजो भ्राता सोदर्यान्तेऽथवा पुनः।
विमातृजाऽथ भगिनी विमातृजसुतस्ततः ॥ २७५ ॥
शेषो मिताक्षरोक्तो यः महाराष्ट्रे च संमतः।
स एवात्राऽपि विज्ञेयः क्रमः पूर्वप्रदर्शितः ॥ २७६ ॥

स्त्रियों सहित पुत्र आदिक तीनों (अर्थात्-लड़कों, पोतों और परपोतों) के न होने पर (४) अपनी विधवा पत्नी हक पाने योग्य होती है, और उसके बाद (५) लड़की, (६) नवासा, (७) पिता, (८) माता, (९) सगाभाई, (१०) सगे भाई का लड़का, फिर (११) दादी, (१२) सगी बहन, फिर (१३) दादा और सौतेला भाई (साथ साथ,) अथवा फिर सगी बहन के बाद अपना सौतेला भाई,

इसके बाद सौतेली बहन, तब सौतेले भाईका लड़का (हक पाता है)। बाकी का मिताक्षरा में कहा और बंबई प्रदेश में माना हुआ जो क्रम है, वही पहले बतलाया क्रम यहां (व्यवहारमयूख के अनुयायियों के यहां) भी जानना चाहिए।

भ्रातरस्त्वत्र भ्रातृव्यैर्मृततातैस्सहैव हि।
दायमाददते नूनं नान्यत्रैष नयो मतः ॥ २७७ ॥
अशक्ता अत एवात्र पैतृव्यस्य सुतैः सह।
पैतृव्यस्यैव पौत्रास्तु मृतताता धनग्रहे ॥ २७८ ॥

यहां पर भाई निश्चय ही, मरे हुए पिता वाले भतीजों के साथ ही दाय-धन लेते हैं। यह नियम दूसरी जगह नहीं माना गया है। इसलिए यहां पर चचेरे भाई के पुत्रों के साथ मरे हुए पितावाले चचेरे भाई के पोते धन नहीं ले सकते।

पितृष्वसुः स्थानं तु २५४ श्लोके कथितम्।

(दाय धन पानेवालों में) फुफी का स्थान श्लोक २५४ में कह दिया है।)

७ वङ्गीयाः पुरुषाणां दायनियमाः।

बंगाल के, पुरुषों के, दाय-प्राप्ति के नियम।

विशिष्टा ये हि नियमा दायभागे विनिश्चिताः।
वर्ण्यन्ते तेऽत्र चान्यत्र प्रमाणं तु मिताक्षरा ॥ २७९ ॥

(जीमूतवाहन के) दायभाग में जो विशेष नियम निश्चित किये गये हैं, वे यहां पर वर्णन किये जाते हैं और दूसरे मामलों में मिताक्षरा ही प्रमाण है।

मिताक्षरामते दायं संसृष्टत्वेन तृक्षगाः।
हरन्ति तस्मात्तष्वेकस्यान्ते शेषान् प्रयाति सः ॥ २८० ॥
दायभागऽवशिष्टानां न तत्राऽधिकृतिर्मता।
प्रत्येकस्य मृतौ तस्माद् गच्छत्येष तदुत्तरान् ॥ २८१ ॥

मिताक्षरा के मत में उत्तराधिकारी साझे के रूप से धन लेते हैं, इसलिए उनमें से एक के मरने पर वह (धन) शेष रहनेवालों (बाकी बचे हुओं) को मिल जाता है। (बंगाल में प्रचलित) दायभाग में बाकी बचनेवालों का वहां (साझे के धन में) अधिकार नहीं माना गया है। इसलिए प्रत्येक (साझेदार) व्यक्ति के मरने पर वह (धन) (उसका हिस्सा) उसके उत्तराधिकारियों (नजदीक के रिश्तेदारों) को मिलता है।

पारत्रिकोपकारस्याऽऽधिक्यं वङ्गेषु कारणम्।
दायाप्तौ क्वापि तत्रैव सामीप्यमपि गृह्यते ॥ २८२ ॥

बङ्गाल में धन का हक मिलने में परलोक में प्राप्त होनेवाले लाभ की अधिकता ही कारण मानी गई है। परन्तु वहां पर कहीं-कहीं (दायभाग को नहीं माननेवालों में) निकटता भी (कारण) ग्रहण की जाती है।

पार्वणे पिण्डदाः पूर्वं पिण्डलेपप्रदास्ततः ।
निवापाञ्जलिदाश्चान्ते दायार्हा दायभागतः ॥ २८३ ॥

दायभाग से पार्वण श्राद्ध में पिण्ड देनेवाले पहले पिण्डलेप देनेवाले उसके बाद और तिलमिश्रित जल देनेवाले (उनसे भी) अन्त में दाय (धन) पाने योग्य होते हैं ।

पिण्डार्हो जनकस्तस्य पिता चाऽथ पितामहः ।
मातामहस्तस्य पिता तथैव च पितामहः ॥ २८४ ॥

पिता, उसका पिता और दादा (अर्थात्–दादा और परदादा) तथा उसी प्रकार नाना, उसका पिता और दादा (अर्थात्–परनाना और परपरनाना) पिण्ड पाने लायक होते हैं ।

पिण्डलेपजुषः पूर्वपितॄणां पूर्वजास्त्रयः ।
तत्पूर्वजाश्च सप्तान्ये निवापाञ्जलिभागिनः ॥ २८५ ॥

पहले के पितरों के तीन पूर्वज (अर्थात्–परदादा का पिता, दादा और परदादा) पिण्डलेप पानेवाले होते हैं और उनसे पहले के दूसरे सात पूर्वज तिलोदक ग्रहण करनेवाले कहे गये हैं ।

पिण्डादाः पिण्डदाश्चापि सपिण्डाः परिकीर्तिताः ।
सकुल्याः पिण्डलेपादाः पिण्डलेपप्रदास्तथा ॥ २८६ ॥

पिण्डलेनेवाले और पिण्डदेनेवाले सपिण्ड कहे गये हैं । पिण्डलेप लेनेवाले और पिण्डलेप देनेवाले सकुल्य कहाते हैं ।

निवापदानाऽऽदानार्हा ज्ञेया लोके समोदकाः ।
दायभागे व्यवस्थेयं वङ्गदेशविनिश्चिता ॥ २८७ ॥

संसार में तिलोदक देने और लेनेवालों को समानोदक जानना चाहिए । यह बङ्गाल प्रदेश में निश्चित किये दायभाग में की व्यवस्था (नियम) है ।

समानपूर्वजेभ्योऽपि पिण्डतल्लेपनीरदाः ।
मिथः क्रमाद् सपिण्डाश्च सकुल्याश्च समोदकाः ॥ २८८ ॥

समान पूर्वजों को भी पिण्ड, पिण्डलेप और जल देनेवाले आपस में क्रम से सपिण्ड, सकुल्य और समानोदक होते हैं ।

पिण्डास्तु त्रिविधा ज्ञेया वक्ष्यमाणविधानतः ।
एके त्वत्र प्रदत्ता ये स्वयं मृतकुटुम्बिने ॥ २८९ ॥
अपरे त्रिपितृभ्यो ये तस्य नूनं समर्पिताः ।
येषां प्रदाने सोऽप्यत्राधिकारं वहते ध्रुवम् ॥ २९० ॥
तृतीया ये स जननी–त्रिपितृभ्यः समर्पणे ।
भारी, परं स नो येषु स्वयं भागवहो भवेत् ॥ २९१ ॥

आगे कही जानेवाली रीति से पिण्ड तीन तरह के जानने चाहिए। एक वे जो वहां पर स्वयं मरे हुए कुटुम्बी के लिए दिये गये हों। दूसरे वे जो निश्चय ही उसके तीन पितरों (पिता, पितामह और प्रपितामह) को दिए गये हों और जिनके देने में वह भी यहां पर अधिकार रखता हो। तीसरे ये जो वह (मृत पुरुष अपनी जीवितावस्था में) अपनी माता के तीन पितरों के देनेका जिम्मेदार हो; परन्तु जिन में वह स्वयं भागवाला न हो (in which he does not participate)।

समानपूर्वजैश्चात्र पुंपरम्पराश्रितैः।
दत्तान्येतानि वर्याणि दत्तेभ्यस्तु स्त्रियाश्रितैः॥ २६२॥

यहां पर समान पूर्वजवालों और पुरुष परंपरा से संबन्ध रखनेवालों (agnates) द्वारा दिए ये (पिण्ड) स्त्री द्वारा सम्बन्ध रखनेवालों (cognates) द्वारा दिये हुओं से श्रेष्ठ होते हैं।

पूर्वं सपिण्डा दायादाः सकुल्यास्तु ततः परम्।
समोदकास्तदन्ते च दायभागानुगैर्मताः॥ २६३॥

दाभाग को माननेवालों ने पहले सपिण्डों को उसके बाद सकुल्यों को और फिर समानोदकों को दाय का हकदार माना है।

पिता पितामहस्तस्य तातो मातामहस्तथा।
प्रमातामहकश्चाथ तत्पिता षट् तु पूर्वजाः॥ २६४॥
पुत्रपौत्रप्रपौत्राश्च निजदौहित्रकस्तथा।
दौहित्रस्तु स्वपुत्रस्य पौत्रस्यापि पुनश्च सः॥ २६५॥
षड्वंश्या दायभागीयमते प्रोक्ताः सपिण्डकाः।
मुख्या, येऽन्ये पुनस्ते तु प्रदर्श्यन्तेऽग्रतस्त्विह॥ २६६॥

पिता, दादा, परदादा, नाना, परनाना परपरनाना ये छह पूर्वज; लड़का, पोता, परपोता, अपना नवासा अपने लड़के का नवासा और पोते का भी वह (नवासा) ये छह वंशज दायभाग के मत में मुख्य सपिण्ड कहे गये हैं और जो फिर दूसरे हैं वे यहां पर आगे बतलाये जायँगे।

ये त्रीन्पितॄन्पुनस्तस्य त्रीन् पितॄनथवा जनेः।
बद्धास्तर्पयितुं पिण्डैः सपिण्डास्तेऽपि संमताः॥ २६७॥

जो उसके तीन पितरों (बाप, दादा और परदादा) को अथवा उसकी माता के तीन पितरों (नाना, परनाना और परपरनाना) को पिण्डों से तृप्त करने को बँधे हैं, वे भी सपिण्ड माने गये हैं।

अग्रे गद्येनैते सपिण्डाश्चतुर्धा विभज्य प्रदर्श्यन्ते।

आगे गद्य के द्वारा इन (श्लोक २६७ में कहे) सपिण्डों को चार प्रकार में विभाजित करके दिखलाया जाता है।

प्रथमश्रेण्याम् ।
पहली श्रेणी में ।

१ भ्राता	१ भाई
२ भ्रातुष्पुत्रः	२ भाई का पुत्र
३ भ्रातृपौत्रः	३ भाई का पोता
४ पितृव्यः	४ चाचा
५ पितृव्यपुत्रः	५ चाचा का पुत्र
६ पितृव्यपौत्रः	६ चाचा का पोता
७ पितृपितृव्यः	७ पिता का चाचा
८ पितृपितृव्यपुत्रः	८ पिता के चाचा का पुत्र
९ पितृपितृव्यपौत्रः	९ पिता के चाचा का पोता

द्वितीयश्रेण्याम् ।
दूसरी श्रेणी में ।

१ भगिनीपुत्रः	१ बहन का पुत्र
२ पितृभगिनीपुत्रः	२ पिता की बहन का पुत्र
३ पितामहभगिनीपुत्रः	३ दादा की बहन का पुत्र
४ भ्रातृदौहित्रः	४ भाई का नवासा
५ भ्रातृपुत्रदौहित्रः	५ भाई के पुत्र का नवासा
६ पितृव्यदौहित्रः	६ चाचा का नवासा
७ पितृपितृव्यदौहित्रः	७ पिता के चाचा का नवासा
८ पितृव्यपुत्रदौहित्रः	८ चाचा के पुत्र का नवासा
९ पितृपितृव्यपुत्रदौहित्रः	९ पिता के चाचा के पुत्र का नवासा
(मिताक्षरायामेते पितृबान्धवेषु गृहीताः ।)	(मिताक्षरा में ये पिता के बान्धवों में लिये गये हैं ।)

तृतीयश्रेण्याम् ।
तीसरी श्रेणी में ।

१ मातामहपुत्रः	१ नाना का पुत्र (मामा)
२ मातामहपौत्रः	२ नाना का पोता (ममेरा भाई)
३ मातामहप्रपौत्रः	३ नाना का परपोता (ममेरे भाई का पुत्र)
४ प्रमातामहपुत्रः	४ परनाना का पुत्र
५ प्रमातामहपौत्रः	५ परनाना का पोता
६ प्रमातामहप्रपौत्रः	६ परनाना का परपोता

७ वृद्धप्रमातामहपुत्रः	७ परपरनाना का पुत्र
८ वृद्धप्रमातामहपौत्रः	८ परपरनाना का पोता
९ वृद्धप्रमातामहप्रपौत्रः	९ परपरनाना का परपोता
(मिताक्षरायामेते मातृबान्धवेषु संख्याताः)	(मिताक्षरा में ये मातृबान्धवों में गिने गये हैं) ।

चतुर्थश्रेण्याम्।
चौथी श्रेणी में।

१ मातामहदौहित्रः	१ नाना का नवासा
२ प्रमातामहदौहित्रः	२ परनाना का नवासा
३ वृद्धप्रमातामहदौहित्रः	३ परपरनाना का नवासा
४ मातामहपुत्रदौहित्रः	४ नाना के पुत्र (मामा) का नवासा
५ मातामहपौत्रदौहित्रः	५ नाना के पोते (ममेरे भाई) का नवासा
६ प्रमातामहपुत्रदौहित्रः	६ परनाना के पुत्र का नवासा
७ प्रमातामहपौत्रदौहित्रः	७ परनाना के पोते का नवासा
८ वृद्धप्रमातामहपुत्रदौहित्रः	८ परपरनाना के पुत्र का नवासा
९ वृद्धप्रमातामहपौत्रदौहित्रः	९ परपरनाना के पोते का नवासा
(मिताक्षरायामेतेऽपि मातृबान्धवाः) ।	(मिताक्षरा में ये भी माता के बन्धु हैं) ।

एवं दायभागेऽष्टाचत्वारिंशत्पुंसपिण्डाः पंच स्त्रीसपिण्डाश्च समाख्याताः ।

इस प्रकार दायभाग में अड़तालीस पुरुष सपिण्ड और पांच स्त्री सपिण्ड कहे हैं।

वंगेषु विधवा पत्नी कन्या माता पितामही ।
प्रपितामहापीत्येताः स्त्रीसपिण्डाः प्रकीर्तिताः ॥ २९८ ॥

बंगाल में विधवा भार्या, लड़की, मा, दादी और परदादी ये स्त्रीसपिण्ड कहे गये हैं।

सकुल्यास्तु समाख्याता मैताक्षरमते पुनः ।
गोत्रजेषु सपिण्डेषु न प्रथक्त्वेन निश्चितम् ॥ २९९ ॥

फिर मिताक्षरा के मत में सकुल्यों को गोत्रज सपिण्डों में ही कहा है, निश्चय ही अलग से नहीं।

दायभागे सपिण्डेषु स्त्रीभिः संबन्धमाश्रिताः ।
जना अपि समाख्याताः सकुल्येषु तु नो तथा ॥ ३०० ॥

दायभाग में सपिण्डों में स्त्रियों द्वारा सम्बन्ध रखनेवाले (Cognates) पुरुष भी कहे हैं; परन्तु सकुल्यों में ऐसा नहीं हैं।

त्रयस्त्रिंशत् सकुल्याः (तेंतीस सकुल्य)

६ —१—२—३—४—५—६

५ —१—२—३—४—५—६

४ —१—२—३—४—५—६

-४—५—६

—०—०—०—४-

स्वयं

प्रपितामहतः प्राचां त्रयाणां दुहितुः सुतान ।
पौत्रान प्रपौत्रान चान्ये तु स्वकुल्येष्वेव मेनिरे ॥ ३०१ ॥

परन्तु दूसरे लोग (सर्वाधिकारी) परदादा के तीन पूर्वजों की कन्याओं के बेटों पोतों और परपोतों को सकुल्यों में ही मानते हैं ।

सर्वे समोदकाश्चापि पुंसंवन्धसमाश्रिताः ।
एव तत्र समाख्याताः स्त्रीसंवद्धास्तु नो ध्रुवम् ॥ ३०२ ॥
मिताक्षरोक्ता एवैते नूनं वङ्गेऽपि संमताः ।
शतं च सप्तचत्वारिंशत्संख्याकाश्च ते पुनः ॥ ३०३ ॥

वहां पर (दायभाग में) सब समानोदक भी पुरुषों द्वारा संबन्ध रखनेवाले (agnates) ही कहे हैं, निश्चय ही स्त्रियों द्वारा संबन्ध रखनेवाले (cognates) नहीं । ये (समानोदक) मिताक्षरा में कहे हुए ही, निश्चय बंगाल में भी माने गये हैं । और वे फिर गिनती में १४७ हैं ।

दायाऽधिकारिणः प्राक् स्युः पिण्डादेभ्यस्तु पिण्डदाः।
अतः पित्रादितः पूर्वं पुत्राऽद्या अधिकारिणः॥ ३०४॥

पिण्ड देनेवाले पिण्ड लेनेवालों से पहले दाय (धन) के हकदार होते हैं। इसीसे पुत्र आदि पिता आदि से पहले अधिकारी होते हैं।

पितृणां पिण्डदेभ्यः प्राक् पिण्डदाः पितृवर्गयोः।
अतो विमातृजेभ्यः प्राक् सगर्भा अधिकारिणः॥ ३०५॥

माता और पिता दोनों के पक्षवालों को पिण्ड देनेवाले (केवल) पिता दादा और परदादा को पिण्ड देनेवालों से पहले हक पाते हैं। इसीसे सगे भाई सौतेले भाइयों से पहले अधिकारी होते हैं।

प्राक् च पिण्डदतो मातृवर्गस्य पितृपिण्डदाः।
अतः प्राग् मातुलादिभ्यः पितृव्याद्या विभागिनः॥ ३०६॥

पिता, दादा और परदादा को पिण्ड देनेवाले माता के पक्षवालों को पिण्ड देनेवालों से पहले (हकदार होते हैं) इसीसे चाचा आदि मामा आदि से पहले हिस्सेदार होते हैं।

प्रागल्पपिण्डदेभ्यश्चाऽधिकपिण्डप्रदास्तथा।
दूरस्थपितृपिण्डाप्तेः स्वाऽभ्यर्णपितृपिण्डदाः॥ ३०७॥
भ्रातुष्पौत्रा अतः पूर्वं पितृव्येभ्योऽधिकारिणः।
सकुल्यकसमानोदेष्वप्येते नियमा मताः॥ ३०८॥

अधिक (पूर्वजों को) पिण्ड देनेवाले थोड़े (पूर्वजों को) पिण्ड देनेवालों से पहले और अपने निकट के पूर्वजों को पिण्ड देनेवाले (अपने) से दूर के पूर्वजों को पिण्ड देनेवालों से पहले (हकदार होते हैं)। इसीसे भतीजों के पुत्र चाचाओं से पहले अधिकारी होते हैं। सकुल्य और समानोदकों में भी यही नियम माने गये हैं।

भवन्त्येते त्रयो लोके क्रमाद्दायाऽधिकारिणः।
पौर्वापर्यं तथैतेषु प्रागुक्तनियमानुगम्॥ ३०९॥

संसार में ये तीनों (सपिण्ड सकुल्य और समानोदक) क्रम से हिस्से के हकदार होते हैं। इसमें पहले-पीछे का क्रम पहले कहे नियम के अनुसार होता है।

सपिण्डा द्विविधास्तत्र क्रमाद्दायहराश्च ते।
पितृसंबन्धिनः पूर्वं मातृसंबन्धिनस्ततः॥ ३१०॥

वहां पर (बंगाल में) सपिण्ड दो प्रकार के होते हैं और वे क्रम से धन का हक पाते हैं। पिता के द्वारा संबन्ध रखनेवाले पहले और माता के द्वारा संबन्ध रखनेवाले उनके बाद (हकपाते हैं)।

(आगे लिखे जानेवाले दाय पानेवालों में नं० ४, ५, ८, १४ और २० (परके स्त्री-सपिण्डों) को छोड़कर नं० १ से ३२ तक पितृ-संबन्धी सपिण्ड और ३३ से ५३ तक मातृ-सम्बन्धी सपिण्ड हैं।)

वङ्गीयः सपिण्डानां दायप्राप्तिक्रमः ।

बंगाल का सपिण्डों का दाय-प्राप्ति का क्रम ।

दायप्राप्तेस्तु वङ्गीया व्यवस्थाऽग्रे प्रदर्श्यते ।
पुत्रपौत्रप्रपौत्राः प्राक् तदभावे ततः क्रमात् ॥ ३११ ॥
निजपत्नी सदाचारा कन्यास्तदनु तत्सुताः ।
पिताऽम्बा भ्रातरश्चाथ तेषां पुत्राश्च पौत्रकाः ॥ ३१२ ॥
भागिनेयाः पितुस्तातः पितुर्माता पितृव्यकाः ।
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च पितृष्वसृसुतास्तथा ॥ ३१३ ॥
पितुः पितामहस्तत्स्त्री पितृव्याश्च पितुः पुनः ।
तेषां पुत्रास्तथा पौत्राः स्वस्त्रीयाश्च पितुः पितुः ॥ ३१४ ॥
सुतानामथ दौहित्राः पौत्राणामात्मजासुताः ।
भ्रातृणां चाऽथ दौहित्रा दौहित्रा भ्रातृजन्मनाम् ॥ ३१५ ॥
पितृव्याणां च दौहित्राः पैतृव्याणां च ते पुनः ।
पितुः पितृव्यदौहित्राः पितुः पैतृव्यजासुताः ॥ ३१६ ॥
मातामहो मातुलाश्च मातुलेयाश्च तत्सुताः ।
ततो मातृष्वसेयाश्च प्रमातामहकस्तथा ॥ ३१७ ॥
मातामहभ्रातरश्च तेषां पुत्राश्च पौत्रकाः ।
प्रमातामहदौहित्रा मातामह-पितामहः ॥ ३१८ ॥
भ्रातरोऽम्बा पितपितुस्तत्पुत्राश्च तदात्मजाः ।
प्रमातामहजामेया मातुलानां सुतासुताः ॥ ३१९ ॥
ततः परं च दौहित्रा मातुलस्यात्मजन्मनाम् ।
मातामहभ्रातृकन्यातनयाश्च ततः परम् ॥ ३२० ॥
मातामहभ्रातृजानां दौहित्राश्च तदुत्तरम् ।
भ्रातृणामथ दौहित्राः प्रमातामहकस्य च ॥ ३२१ ॥
भ्रातृजानां च दौहित्रा मातामहपितुस्ततः ।
इत्थं दायक्रमस्याऽथ प्रथा ज्ञेया सुनिश्चिता ॥ ३२२ ॥

दाय (धन) पाने की बङ्गाल की व्यवस्था (नियम) आगे दिखलाई जाती है। पहले (१) बेटे, (२) पोते और (३) परपोते। उनके न होने पर क्रम से (४) अच्छे आचरणवाली अपनी विवाहिता स्त्री, (५) लड़कियां (६) नवासे, (७) पिता, (८) माता (९) भाई, (१०) भाइयों के लड़के, (११) भाइयों के पोते, (१२) भानजे, (१३) दादा, (१४) दादी, (१५) चाचे, (१६) चाचों के लड़के (१७) चाचों के पोते, (१८) बाप की बहन के लड़के, (१९) परदादा, (२०) परदादी, (२१) पिता के चाचा, (२२) पिता के चाचों के पुत्र,

(२३)पिता के चाचों के पौत्र, (२४) दादा की बहनों के लड़के, (२५) लड़कों के नवासे, (२६) पोतों के नवासे, (२७) भाइयों के नवासे, (२८) भतीजों के नावासे, (२६) चाचों के नावासे, (३०) चचेरे भाइयों के नवासे, (३१) पिता के चाचों के नवासे, (३२) पिता के चचेरे भाइयों के नवासे (३३) नाना, (३४) मामा, (३५) ममेरे भाई, (३६) ममेरे भाइयों के लड़के, (३७) मौसियों के पुत्र (मौसेरे भाई) , (३८) परनाना (३६) नाना के भाई, (४०) नाना के भाइयों के पुत्र, (४१) नाना के भाइयों के पौत्र, (४२) परनाना के नवासे (नाना की बहनों के पुत्र), (४३) परपरनाना, (४४) परनाना के भाई, (४५) परनाना के भतीजे (भाइयों के लड़के) (४६) परनाना के भतीजों के लड़के (४७) परनाना की बहनों के लड़के (परपरनाना के नवासे), (४८) मामा के नवासे, (४६) ममेरे भाइयों के नावासे, (५०) नाना के भाइयों के नवासे (५१) नाना के भतीजों के नवासे, (५२) परनाना के भाइयों के नवासे, (५३) परनाना के भतीजों के नवासे। इस प्रकार इस दाय के क्रम (हकदारी) को निश्चित रीति जाननी चाहिए।

केचित्तु पुत्रदौहित्रान् पौत्रदौहित्रकान् पुनः।
निजदौहित्रतः पश्चात् क्रमाद्दायेऽधिकुर्वते ॥ ३२३ ॥

कुछ लोग (डाक्टर सर्वाधिकारी के अनुयायी) अपने लड़कों के नवासों और अपने पोतों के नवासों को अपने नवासों के बाद क्रम से हिस्से का अधिकारी नियत करते हैं।

अपिच भ्रातृदौहित्रान् दौहित्रान् भ्रातृजन्मनाम्।
स्वभागिनेयतः पश्चाद् मन्यन्ते दायभागिनः ॥ ३२४ ॥

और अपने भाई के नवासों और अपने भतीजों के नवासों को अपने भानजों के बाद (क्रम से) हकदार मानते हैं।

पितृव्याणां च दौहित्रान् पैतृव्याणां च तान् पुनः।
पैतृष्वसेयतः पश्चाद् भाषन्ते दायभागिनः ॥ ३२५ ॥

और फिर अपने चाचों के नवासों और अपने चचेरे भाइयों के नवासों को अपने पिता के भानजों के बाद (क्रम से) हकदार कहते हैं।

पितुः पितृव्यदौहित्रान् पितृपैतृव्यजासुतान्।
पितामहस्वसृसुतोत्तरं दायहरान् विदुः ॥ ३२६ ॥

अपने पिता के चाचों के नवासों और अपने पिता के चचेरे भाइयों के नवासों को अपने दादा के भानजों के बाद (क्रम से) हकदार समझते हैं।

तथा मातुलदौहित्रान् मातुलात्मजजासुतान्।
मातृष्वसेयतः पश्चात् कथयन्त्यधिकारिणः ॥ ३२७ ॥

और मामों (नाना के पुत्रों) के नवासों और ममेरे भाइयों (नाना के पौत्रों) के नवासों को अपने मौसेरे भाइयों के बाद (क्रमसे) अधिकारी कहते हैं ।

दौहित्रान् पुत्रपौत्राणां प्रमातामहकस्य च ।
दौहित्रेभ्यस्तु तस्यैव पश्चाद्दायाय मन्वते ॥ ३२८ ॥

और परनाना के पुत्रों के नवासों और परनाना के पौत्रों के नवासों को उस (परनाना) के नवासों के बाद (क्रम से) दाय (हक) के लिए योग्य मानते हैं । (यहां पर परनाना के पुत्रों और पौत्रों से नाना के भाइयों और भतीजों का तात्पर्य है ।)

प्रमातामहतातस्य पुत्रपौत्रात्मजासुतान् ।
तस्य दौहित्रतः पश्चाद् ब्रुवते दायभागिनः ॥ ३२९ ॥

(और) परपरनाना के पुत्रों के नवासों और परपरनाना के पौत्रों के नवासों को उसी (परपरनाना) के नवासों के बाद (क्रम से) हकपानेवाला कहते हैं । (यहां पर परपरनाना के पुत्र और पौत्रों से परनाना के भाइयों और भतीजों का तात्पर्य है ।)

अभावे तु सपिण्डानां सकुल्या दायभागिनः ।
एतेषामप्यभावे स्युर्दायभाजः समोदकाः ॥ ३३० ॥

सपिण्डों के न होने पर सकुल्य धन पाते हैं । और इनके भी न होने पर समानोदक हिस्सा पानेवाले होते हैं ।

ततो धर्मगुरुः शिष्याः सतीर्थ्या गोत्रजाः क्रमात् ।
हरन्ति दायमन्ते च राजा धनहरो मतः ॥ ३३१ ॥

उसके बाद धर्म-गुरु, शिष्य, गुरुभाई, और सगोत्री क्रम से धन लेते हैं । और सब के बाद राजा को धन लेनेवाला माना है ।

मिताक्षरामते स्त्रीणां दायाप्तौ केवलं स्त्रियाः ।
पत्युर्दाये सतीत्वस्य नियमः परिलक्ष्यते ॥ ३३२ ॥

मिताक्षरा के मत में स्त्रियों की दाय-प्राप्ति में केवल पति का धन प्राप्त करने में स्त्री के सच्चरित्रा होने का नियम देखा जाता है ।

दायभागेऽखिलस्त्रीणां शीलमावश्यकं मतम् ।
स्त्रीधनाप्तौ न शीलस्य नियमस्तूभयोरपि ॥ ३३३ ॥

(जीमूतवाहन के) "दायभाग" में सब स्त्रियों का अच्छा चाल-चलन आवश्यक माना है । परन्तु स्त्री-धन की प्राप्ति में सच्चरित्रता का नियम (मिताक्षरा और दायभाग) दोनों में ही नहीं है ।

सशीलया स्त्रिया यः स्याद्दायो ह्यधिकृतः सकृत् ।
'नाऽपह्रियेत तस्याः सोऽशीलेऽप्यूर्ध्वमुपस्थिते ॥ ३३४ ॥

अच्छे चाल-चलनवाली स्त्री ने जिस दाय-धन पर एकवार अधिकार कर लिया हो, वह (दाय) बाद में अशांत (बुरे चलन) के उपस्थित होने पर भी, उससे छीना नहीं जा सकता।

दायार्हाः स्युः कुमार्यः प्राक् तत ऊढाः सपुत्रकाः।
तथा संभाव्यपुत्राश्च दायभागविधानतः॥ ३३५॥
किन्तु वन्ध्यादुहितरः कन्यानां मातरस्तथा।
सुतहीनाश्च विधवाः पितृदाये विवर्जिताः॥ ३३६॥

दायभाग के नियमानुसार पहले क्वाँरी लड़कियां, उसके बाद ब्याही हुई पुत्रवाली और लड़का होने की संभावनावाली लड़कियां पितृ-धन पाने योग्य होती हैं। परन्तु बांझ लड़कियां और (केवल) कन्याओंवाली लड़कियां तथा बिना पुत्रवाली विधवा कन्यायें पिता का धन पाने में वर्जित हैं।

दौहित्रपुत्रो नो पिण्डादिदो यस्मान्मतस्ततः।
दायभागे स दायादः पितुर्मातामहस्य नो॥ ३३७॥

क्योंकि नवासे का पुत्र पिण्ड आदि देनेवाला नहीं माना गया है। इसलिए दायभाग (के मत) में वह पिता के नाना के दाय-धन का हकदार नहीं होता।

सगर्भा भ्रातरः पूर्वं वैमात्रेया अनन्तरम्।
एष एव क्रमस्तेषां पुत्रपौत्रेष्वपि स्मृतः॥ ३३८॥

पहले सगेभाई (हकपाते हैं) और बाद में सौतेले भाई। यही क्रम उनके पुत्रों और पौत्रों में भी माना है।

पुनः संयुक्तानां दायक्रमः।

फिर से साथ हुओं का दाय का क्रम।

भ्रातरो जनकः पुत्राः पितृव्याश्च पितृव्यजाः।
पुनः संसृष्टियोग्याः स्युर्दायभागविधानतः॥ ३३९॥
पौर्वापर्यं च तत्रैषां दायाप्तौ नो मतं परम्।
संसृष्टास्तत्सुताश्चादौ स्व-स्ववर्गेऽशिनोऽन्यतः॥ ३४०॥

(जीतमूतवाहन के) दायभाग के नियमानुसार भाई, पिता, पुत्र, चाचा औ चचेरे भाई एक बार जुदा होकर फिर से साझा करने के योग्य होते हैं; और वह पर (दायभाग) में इनके धन का हकपाने में (उसके क्रम में) आगा-पीछा नः माना है। परन्तु साथ रहनेवाले और उनके पुत्र अपने-अपने वर्गवाले दूसरों (जुद रहनेवालों) से पहले भाग पाते हैं।

८ दायादत्वे मिताक्षरादायभागयोर्मुख्या भेदाः ।

दाय-धन की हकदारी में मिताक्षरा और दायभाग के मुख्य भेद ।

मिताक्षरामताद् यात्र दायभागे विभिन्नता ।
दायग्रहविधाने सा संक्षेपेण प्रदर्श्यते ॥ ३४१ ॥

यहां पर दाय-धन के लेने के तरीकों में मिताक्षरा के मत से दाय-भाग में जो भिन्नता है, वह संक्षेप में बतलाई जाती है ।

त्रिधा विभक्ता दायादा वङ्गे वै दायभागतः ।
सपिण्डाश्च सकुल्याश्च समानोदकभागिनः ॥ ३४२ ॥

दायभाग के द्वारा बंगाल में दाय-धन के हकदार तीन प्रकार से बटे हुए हैं- (१) सपिण्ड, (२) सकुल्य और (३) समानोदक ।

मिताक्षरोक्ताः पुरुषचतुष्कान्ताः सपिण्डकाः ।
तत्र प्रोक्ताश्च कतिचिद् बान्धवा अपि निश्चितम् ॥ ३४३ ॥
सपिण्डाः कथिता वङ्गे दायभागमतानुगैः ।
परं न सर्वे तत्रत्या बान्धवाः स्युः सपिण्डकाः ॥ ३४४ ॥

मिताक्षरा में कहे चार पीढ़ी तक के सपिण्डों को और वहां पर (मिताक्षरा में) कहे, निश्चय ही, कुछ बान्धवों को भी दायभाग को माननेवालों ने बँगाल में सपिण्ड कहा है । परन्तु वहां (मिताक्षरा) के सारे ही बन्धु सपिण्ड नहीं होते ।

पञ्चमात्पुरुषाद्ये तु सप्तमान्तं सपिण्डकाः ।
मिताक्षरायां ते वङ्गे सकुल्याः परिकीर्तिताः ॥ ३४५ ॥

मिताक्षरा में पाँचवें पुरुष (पीढ़ी) से सातवें पुरुष तक जो सपिण्ड हैं, वे बंगाल में सकुल्य कहे गये हैं ।

अष्टमात्पुरुषाद्ये तु चतुर्दशजनावधि ।
गोत्रजा उभयत्रैव ते समानोदका मताः ॥ ३४६ ॥

आठवें पुरुष से चौदहवें पुरुष तक जो गोत्रज होते हैं, वे दोनों स्थानों (मिताक्षरा और दायभाग) में समानोदक माने गये हैं ।

मिताक्षरानुगेष्वत्र सपिण्डे गोत्रजेऽथवा ।
समोदके स्थिते नूनं बन्धुर्दायग्रहेऽक्षमः ॥ ३४७ ॥
दायभागे तु कतिचित्क्रिया संबन्धमाश्रिताः ।
सपिण्डेषु समाख्यातास्तस्मात्ते त्वधिकारिणः ॥ ३४८ ॥
सकुलेभ्यः पुरा नूनं प्राक्समोदकतोऽप्यथ ।
बान्धवा दयभागेऽल्पसंख्याका एव किर्तिताः ॥ ३४९ ॥

यहां पर मिताक्षरा के माननेवलों में गोत्रज सपिण्ड के अथवा समानोदक के मौजूद होने पर निश्चय ही बन्धु (cognate) दायधन लेने में असमर्थ होता है ।

दायभाग में तो स्त्रियों के द्वारा संबन्ध रखनेवाले कई (cognate) पुरुष सपिण्डों में कहे गये हैं। इसलिए वे सकुल्यों और समानोदकों के पूर्व ही अधिकारी हो जाते हैं। दायभाग में बन्धु अल्प संख्यक ही कहे गये हैं।

अतस्तु दयाभागीयाः सर्व एव हि बान्धवाः।
मितात्तरामते बन्धुभूता ज्ञेया बुधैध्रुवम् ॥ ३५० ॥
मितात्तरोक्ताः कतिचिद् बान्धवास्तु न संमताः।
बान्धवा दायभागेऽत्र परत्राऽलाभदानतः ॥ ३५१ ॥

इसलिए विद्वानों को दायभाग के मत के सारे ही बान्धवों को मितात्तरा के मत में निश्चय ही बन्धु हुए (ही) मानने चाहिए। परन्तु मितात्तरा में कहे कुछ बान्धव, परलोक में लाभ देनेवाले न होने से, यहां पर दायभाग में बन्धु नहीं माने गये हैं।

समानपिण्डसंबन्धात्सपिण्डास्तु जना मताः।
मितात्तरायां पिण्डश्च शरीरस्यात्र सूचकः ॥ ३५२ ॥

मितात्तरा में समान पिण्ड (शरीर) के संबन्ध से मनुष्य सपिण्ड माने जाते हैं। यहां पर पिण्ड (शब्द) शरीर का सूचक है।

पार्वणे पूर्वजेभ्यस्तु दत्तात्पिण्डाद्धि ये जनाः।
संबद्धा दायभागे ते सपिण्डाः परिकीर्तिताः ॥ ३५३ ॥

जो पुरुष पार्वण श्राद्ध में दिये पिण्ड से संबन्ध रखते हैं वे दायभाग में सपिण्ड कहे गये हैं।

६ दायविभागाभ्यां बहिष्कृतेर्मीमांसा।

हकदारी और विभाग के अयोग्य होने का विवेचन।

संपृक्तस्वामिनोऽप्यत्र मरणे विधवा यदि।
प्राप्नोत्यर्थं न साऽशीलादुत्तराद्भ्रच्यते ततः ॥ ३५४ ॥

यहां पर साझेवाले पति के मरने पर भी यदि (उसकी) विधवा (कुटुम्ब के निग्मादिकों से) धन पा लेती है, तो वह पीछे होनेवाले असतीत्व से उस (धन) के वञ्चित नहीं की जा सकती।

कौटुम्बिकः परं तत्र तत्कृते नियमो यदि।
तदोत्तरादशीलादप्येषाप्ताद्भ्रच्यते धनात् ॥ ३५५ ॥

परन्तु वहां पर उसके लिए कुटुम्ब का नियम हो, तो यह (धन प्राप्ति के) बाद के असती पन से भी प्राप्त किये धन से वञ्चित की जा सकती है।

परधर्मग्रहो जातिच्युतिश्चाद्य न बाधिका।
नूतनेन विधानेन दाय-लाभेऽवकीर्णिनः ॥ ३५६ ॥

आजकल नवीन कायदे से पराया धर्म ग्रहण करना और जाति से बहिष्कृत होना

पतित की दाय--प्राप्ति में बाधक नहीं होता। (यह ई० सं० १८५० के (The Cast Disabilities Ramoval Act) नामक नवीन विधान पास होने के बाद से हुआ है)

तत्सन्तानास्तु नांशार्हाः पितृसंबन्धिनां धने ।
तत्सपिण्डादयश्चापि तत्तोकार्थे न दायिनः ॥ ३५७ ॥

उसकी सन्तान पिता के संबन्धियों के धन में भाग पाने योग्य नहीं होती और उसके सपिण्ड आदि भी उसकी सन्तान के धन में दाय पानेवाले (हकदार) नहीं होते ।

हिन्दूरीत्याऽऽत्तमः पुत्रो धर्मान्तरगतस्य वा ।
जातिच्युतस्य तूत्पन्नो हिन्दुत्वाच्च्यवनोत्तरम् ॥ ३५८ ॥
दायग्रहे, परं सोऽत्र मतः शक्तो हि तत्कृते ।
मुख्यन्यायालयाधीशैः प्रयागे सुविनिश्चितम् ॥ ३५९ ॥

हिन्दू तरीके से दूसरे धर्म में गये हुए का या जाति से बहिष्कृत हुए का हिन्दू पन से गिरने पर हुआ पुत्र दाय--धन लेने में असमर्थ होता है । परन्तु निश्चय ही इलाहाबाद हाइकोर्ट के जजों ने उसे यहां पर उस (दाय धन लेने) के लिए समर्थ माना है ।

सकृद्यत्र गृहीतोऽन्यो धर्मश्च नियमः पुनः ।
तत्र तत्सन्ततेर्दायग्रहे तावेव निश्चितौ ॥ ३६० ॥

फिर जहां एकवार दूसरा धर्म और नियम (कानून) ग्रहण करलिया हो, वहां उस (ग्रहण करनेवाले) की सन्तान के दाय लेने में वे ही दोनों (धर्म और नियम) निश्चित किये गये हैं ।

पञ्चाष्टाङ्कैकवर्षस्यायोग्यत्वहरनीतितः ।
मैताक्षरेषु दायार्हौ जन्मोन्मत्तजडौ नहि ॥ ३६१ ॥

वि० सं० १९८५ (ई० सं० १९२८) की अयोग्यता निवारक नीति (The Hindu Inheritance (Removal of Disabilities) Act) से मिताक्षरा को मानने वालों में जन्म के पागल और जड़ (idiot) दाय--धन पाने योग्य नहीं होते ।

दायच्युतिमीमांसा ।

दाय से वञ्चित होने का विवेचन ।

मनुवचनमुद्धृत्य प्रस्तुतं वक्ष्यते—
मनु के वचन का अवतरण देकर प्रसंग की बात कही जायगी ।

अनंशौ क्लीबपतितौ जात्यन्धबधिरौ तथा ।
उन्मत्तजडमूकाश्च ये च केचिन्निरिन्द्रियाः ॥
(अध्याय ९, श्लोक २०१)

नपुंसक, पतित, जन्म से अन्धे, बहिरे, पागल, संज्ञाशून्य और गूंगे तथा विकल इन्द्रियवाले (लंगड़े--लूले) हों, वे (पैतृक धन में) हिस्सा नहीं पाते।

मिताक्षरामते स्त्रीणां दायाप्तौ केवलं स्त्रियाः।
पत्युर्दाये सतीत्वस्य नियमः परिलक्ष्यते ॥ [३३२]

मिताक्षरा के मत में स्त्रियों की दाय--प्राप्ति में केवल पति का धन प्राप्त करने स्त्री के सच्चरित्रा होने का नियम देखा जाता है।

दायभागेऽखिलस्त्रीणां शीलमावश्यकं मतम्।
स्त्रीधनाप्तौ न शीलस्य नियमस्तूभयोरपि ॥ [३३३]

(जीमूतवाहन के) "दायभाग" में सब स्त्रियों का अच्छा चाल--चलन आवश्यक माना है। परन्तु स्त्री--धन की प्राप्ति में सच्चरित्रा का नियम (मिताक्षरा और दायभाग) दोनों में ही नहीं है।

सशीलया स्त्रिया पत्युर्दायो योऽधिकृतः सकृत्।
नाऽपहियेत तस्याः सोऽशीलेऽप्यूर्ध्वमुपस्थिते ॥ [३३४

अच्छे चाल-चलनवाली स्त्री ने पति के जिस दाय-धन पर एकवार अधिकार करलिया हो, वह (दाय) बाद में अशील (बुरे चलन) के उपस्थित होने पर भी उससे छीना नहीं जा सकता। (यह ई० स० १९२८ के अयोग्यता निवारक कानून के अनुसार है।)

अन्धा मूकाश्च बधिरा हीनाङ्गाश्च नपुंसकाः।
जन्मनैव जडा मत्ता रुग्णाः कुष्ठक्षयादिभिः ॥ ३६२ ॥
वर्ज्या दाये हि वङ्गेषु पोष्याः सुस्त्रीप्रजायुताः।
निर्दोषाश्च तदौरसा दायभागहराः पुनः ॥ ३६३ ॥

बंगाल में अन्धे, गूंगे, बहिरे, अंगहीन, नपुंसक, जन्म से ही जड़, (जन्म से ही) पागल और कोढ़ क्षय आदि रोगोंवाले पुरुष दाय (धन के हिस्से) में त्याज्य हैं और सती स्त्रियों और सन्तानों सहित भरण--पोषण के योग्य हैं। फिर उनकी दोष--रहित असली संतान धन का हिस्सा लेती है।

यत्राऽसन्नतरो दायभागी दोषैर्न दायभाक्।
तत्राऽर्थिनो दूरतरोऽपरो वंश्यो हरेद्धनम् ॥ ३६४ ॥

जहां नजदीक का रिश्तेदार (कहे हुए) दोषों के कारण हकदार न हो, वहां धनवाले का (दोषी हकदार से) दूर (आगे) का दूसरा रिश्तेदार धन लेता है।

दत्तका नैव दायार्हा गृहीता दायतश्च्युतैः।
दायाद् च्युतानां पत्न्यस्तु महाराष्ट्रे तमाप्नुयुः ॥ ३६५ ॥

दाय (धन के हक) से वञ्चित (महरूम) पुरुष का गोदलिया लड़का धन के

हक पाने योग्य नहीं होता। दाय (हक) से वञ्चित हुए पुरुषों की स्त्रियां तो बंबई प्रदेश में उस (हक) को प्राप्त कर सकती हैं।

हतस्यार्थं न विन्देयुर्हन्ता चाऽथ तदुत्तरे।
महाराष्ट्रे तु हन्तॄणां स्त्रियो दायमवाप्नुयुः॥ ३६६॥

मारे गये का धन मारनेवाला और उसके उत्तराधिकारी नहीं ले सकते। बंबई में तो मारनेवालों की स्त्रियां (मारे गये का) धन ले सकती हैं।

यैर्दोषैः पुरुषा लोके वञ्च्यन्ते दायभागतः।
तैरेव दोषैर्नार्योऽपि वञ्चिताः स्युः स्वभागतः॥ ३६७॥

संसार में जिन दोषों से पुरुष दाय (धन के) हिस्से से वञ्चित (महरूम) किये जाते हैं, उन्हीं दोषों से स्त्रियां भी अपने हिस्से से वञ्चित हो जाती हैं।

पूर्वाऽधिकार्ययोग्यत्वे दायः पूर्णाऽधिकारिणम्।
तदुत्तरं प्रयातस्तद्-मृत्यौ याति तदुत्तरान्॥ ३६८॥
पूर्वस्तु नष्टदोषोऽपि न तं प्रत्येति वञ्चितः।
मिताऽधिकारिणं प्राप्तस्त्वन्ते प्रत्येत्यदूषितम्॥ ३६६॥

यदि पहले (नजदीकी) अधिकारी के अयोग्य होने पर दाय (हिस्से का धन) उसके बाद के पूर्ण अधिकार पानेवाले (पुरुष) को मिलगया हो, तो उस (पूर्णाधिकार पानेवाले पुरुष) के मरने पर (वह) उसके उत्तराधिकारियों को मिलता है। (एकबार) अधिकार से वञ्चित हुआ पहला (हकदार) दोषों से छूट जाने पर भी उस (धन) को फिर नहीं पा सकता। (परन्तु) मित (आजीवन) अधिकार पानेवाली (किसी स्त्री) को मिला हुआ (धन) तो उस (स्त्री) के बाद दोषों से मुक्त हुए (उस पूर्वाधिकारी) को मिल जाता है।

दायभागोत्तरं जातोऽभ्यर्णाऽयोग्याऽधिकारिणः।
पुत्रोऽपि न भजेद्दायमन्यस्याऽधिकृतौ गतम्॥ ३७०॥

दाय (धन) का बटवारा हो जाने के बाद उत्पन्न हुआ नजदीकी अयोग्य अधिकारी का पुत्र भी, दूसरे के अधिकार में गये धन को नहीं पाता।

दायप्राप्त्युत्तरं जातरोगोऽप्यत्र न वञ्च्यते।
प्राप्ताद्दायात्, यतो नाप्तदाय एवात्र वञ्च्यते॥ ३७१॥

दाय-धन मिलने के बाद उत्पन्न हुए रोगोंवाला पुरुष मिले हुए धन से वञ्चित (महरूम) नहीं किया जा सकता; क्योंकि यहां पर केवल (पहले से) धन नहीं प्राप्त किया हुआ पुरुष ही (अयोग्य होने पर धन पाने से) वञ्चित (महरूम) किया जा सकता है।

संसृष्टिभागच्युतिमीमांसा ।

साझे के हिस्से से वञ्चित होने का विवेचन ।

यैर्दोषैर्भ्रश्यते दायात् तैर्दोषैरेव हीयते ।
जनः संसृष्टवित्तस्य विभागादपि निश्चितम् ॥ ३७२ ॥

पुरुष जिन दोषों से दाय (धन का हक) पाने से वञ्चित (महरूम) किया जाता है, उन्हीं दोषों से, निश्चय ही, साझे के धन के हिस्से से भी वञ्चित किया जाता है।

जन्मोत्तरं प्ररुग्णा नो संसृष्टेऽर्थे तु भागिनः ।
किन्तु सर्वहरा अन्यसंसृष्टेषु मृतेषु ते ॥ ३७३ ॥

जन्म के बाद रोगी (अयोग्य) हुए (लोग) साझे के धन में तो हिस्सेदार नहीं होते । परन्तु वे दूसरे (सब) साझेदारों के मरजाने पर सब धन ले सकते हैं।

वङ्गे तु वर्जिताः पूर्वं दायादाने हि ये जनाः ।
पृक्तावशिष्टितश्चापि ते पृक्तार्थग्रहेऽक्षमाः ॥ ३७४ ॥

बंगाल में दाय--धन लेने में जो लोग पहले वर्जित किये गये हैं, वे साझेदारों में पीछे रहजाने से भी साझे के धन के लेने में असमर्थ होते हैं ।

जन्मकाले ह्यमत्तोऽपि मत्तः कालेऽशनस्य यः ।
पृक्तो वङ्गे त्वनर्होऽसौ प्रयागे त्वधिकारवान् ॥ ३७५ ॥

जो जन्म के समय पागल न होकर भी बटवारे के समय पागल हो, वह स बंगाल में (दायपाने में) अयोग्य होता है । परन्तु इलाहाबाद में अधिकारी होता है।

पूर्वोक्तनव्यविधिनाऽजन्मजातो जडो जनः ।
दायार्हश्चाथ भागार्हो मतो न्यायविशारदैः ॥ ३७६ ॥

पहले कहे नये तरीके (The Hindu Inheritance Removal of Disabilitie Act of 1928 A. D.) से कानून के पण्डितों ने जन्म से ही नहीं उत्पन्न हुए (अर्थ जन्म के बाद हुए) जड (idiot) को दाय-धन पाने योग्य और (साझे के धनमें हिस्सा पाने योग्य माना है ।

संसृष्टाऽर्थविभागाऽन्तेऽप्यदोषो ह्यंशमात्मनः ।
संसृष्टाऽर्थे हरेद् नूनं भागान्तोत्पन्नपुत्रवत् ॥ ३७७ ॥

साझे के धन का हिस्सा हो जाने पर भी दोषों (पागलपन आदि) से र हुआ (पुरुष) हिस्सा कर देने के बाद उत्पन्न हुए पुत्र के समान ही, साझे के में अपना हिस्सा पाता है ।

पूर्वजाऽन्ते समुत्पन्नोऽयोग्यपृक्तस्य पुत्रकः ।
महाराष्ट्रे न दायार्हो द्रविडे तु स दायभाक् ॥ ३७८ ॥

पूर्वज (दादा) के मरने के बाद उत्पन्न हुआ अयोग्य साझेदार का पुत्र

प्रदेश में (दादा के) धन का हकदार नहीं होता, किन्तु मद्रास में वह (दादा का) धन लेता है ।

प्रकीर्णका नियमाः ।

दूसरे साधारण नियम ।

दायानर्ह्जनस्तस्य संतानाश्च स्त्रियोऽप्यथ ।
तद्भागांशधनेनैव भरणीया निरन्तरम् ॥

(साझे के) धन का हिस्सा पाने के अयोग्य पुरुष तथा उसके [redacted] और स्त्रियों का, उसके हिस्से के अंश के धन से ही बराबर पोषण करना चाहिए ।

संसृष्टेऽर्थेऽथवा दाये संन्यस्ता नाऽधिकारिणः ।
शूद्राणां तु कृते नैव विधिः संन्यस्तवर्जनात् ॥ ३८० ॥

साझे के धन में या अन्य हकदारों के धन में संन्यास लिये हुए पुरुष अधिकारी नहीं होते । शूद्रों के लिए, संन्यास मना होने से, यह नियम (लागू) नहीं है ।

१० स्त्रीधनानि ।

स्त्री के धन ।

स्मृतिषु तद्व्याख्यासु व्यवहारनिर्णयेषु च निर्णीतानि स्त्रीधनानि ।

स्मृतियों, उनकी टीकाओं और मालके मुकद्दमों में तय किये स्त्री--धन ।

मनुस्मृतौ तुः—
अध्यग्न्यध्यावाहनिकं दत्तं च प्रीतिकर्मणि ।
भ्रातृमातृपितृप्राप्तं षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम् ॥
(अध्याय ९, श्लोक १९४)

मनुस्मृति में तोः—

विवाह की अग्नि के सामने दिया, स्त्री के प्रथमवार पति--गृह को जाते समय दिया, प्रेम के काम में दिया, भाई, माता और पिता से मिला छह तरह का स्त्रीधन कहा है ।

आधिवेदनिकं चान्वाधेयकं शुल्कमेव च ।
दत्तं सुतैर्बन्धुभिश्च स्त्रीधनं विष्णुवाक्यतः ॥ ३८१ ॥
इत्थं चतुर्विधं चान्यद्धनं स्यात् स्त्रीधनं पुनः ।
अध्यावाहनिकं नात्र विष्णुना परिकीर्तितम् ॥ ३८२ ॥

विष्णु के वचन से पतिद्वारा अपने दूसरे विवाह के समय दिया, विवाह के बाद पति के या माता पिता के रिश्तेदारों ने दिया, विवाह के बदले स्त्री को दिया और पुत्रों और रिश्तेदारों ने दिया स्त्री--धन होता है । इस प्रकार चार तरह का दूसरा

धन (भी) स्त्री--धन होता है। विष्णु ने यहां पर (स्त्री--धन में) पति के घर जाते समय पत्नी को दिये धन का उल्लेख नहीं किया है।

कात्यायनो मनूक्तं तु षड्विधं स्त्रीधनं तथा।
अन्वाधेयमथो शुल्कं विष्णूक्तं स्त्रीधनेऽग्रहीत् ॥ ३८३ ॥

कात्यायन ने मनु का कहा छह प्रकार का स्त्री--धन तथा विष्णु का कहा विवाह के बाद पति और माता--पिता के रिश्तेदारों द्वारा दिया और विवाह की एवज में दिया (धन) स्त्री--धन में ग्रहण किया है।

कात्यायनमतेऽध्यग्नि[1] विवाहसमये तु यत्।
अग्नेः समक्षं दत्तं तद्द्रव्यं ज्ञेयं सुनिश्चितम् ॥ ३८४ ॥
अध्यावाहनिकं तत्स्याद्यत् स्त्रियायर्पितं पुनः।
पितुर्गृहात्पतिगृहं यान्त्यै पत्या सहैव हि ॥ ३८५ ॥
श्वश्रा वा श्वशुरेणाथ प्रीत्या दत्तं तथैव च।
पादवन्दनिकं वृद्धैर्दत्तं स्त्रीधनमेव हि ॥ ३८६ ॥
अन्वाधेयं विवाहान्ते पतिसंबन्धिभिस्तथा।
पितृसंबन्धिभिर्दत्तं स्त्रियै ज्ञेयं हि तन्मते ॥ ३८७ ॥

कात्यायन के मत में अध्यग्नि निश्चय ही उस धन को जानना चाहिए, जो विवाह के समय अग्नि के सामने (स्त्री) को दिया गया हो। अध्यावाहनिक वह होता है, जो पति के साथ ही पिता के घर से पति के घर को जाती हुई स्त्री को दिया गया हो। सास या ससुर द्वारा प्रेम से दिया हुआ तथा पाद--वन्दना करने के समय गुरुजनों द्वारा दिया हुआ (भी) स्त्री--धन ही होता है। तथा उस (कात्यायन) के मत में विवाह के बाद स्त्री को पति के संबन्धियों द्वारा दिया या माता--पिता के संबन्धियों द्वारा दिया अन्वाधेय जानना चाहिए।

(१) कात्यायन वचनानि—

विवाहकाले यत्स्त्रीभ्यो दीयते ह्यग्निसन्निधौ।
तदध्यग्निकृतं सद्भिः स्त्रीधनं परिकीर्तितम् ॥
यत्पुनर्लभते नारी नीयमाना पितुर्गृहात्।
अध्यावाहनिकं नाम स्त्रीधनं तदुदाहृतम् ॥
प्रीत्यादत्तं तु यत्किञ्चित्श्वश्वा वा श्वशुरेण वा।
पादवन्दनिकं चैव प्रीतिदत्तं तदुच्यते ॥
ऊढया कन्यया वापि पत्युः पितृगृहेऽपि वा।
भ्रातुः सकाशात्पित्रोर्वा लब्धं सौदायिकं स्मृतम् ॥

आगन्तुकैः प्रदत्तार्थस्त्वध्याहानिकेऽथवा।
अध्यग्न्येव विज्ञेयः स्त्र्यर्थः सर्वमतश्च सः॥ ३८८॥

आगन्तुकों (strangers) ने पत्नी के पतिगृह को जाते समय दिया धन अथवा विवाह की अग्नि के सामने दिया धन स्त्री-धन जानना चाहिए। वह सब (दाय-भागवालों आदि) के द्वारा माना गया है।

परमागन्तुकैर्दत्तं विवाहान्ते धनं जनैः।
सधवायै स्त्रिया वित्तं नेति कात्यायनोऽब्रवीत्॥ ३८९॥

परन्तु आगन्तुक लोगों (strangers) द्वारा, विवाह के बाद, सधवा (पतिवाली) स्त्री को दिये (धन) को कात्यायन ने स्त्री-धन नहीं कहा है।

आगन्तुकैः प्रदत्तं वाऽर्जितं शिल्पादिभिः स्त्रिया।
निजे जीवति पत्यौ तु पत्याधीनं हि तन्मते॥ ३९०॥

अपने पति की जीवित अवस्था में आगन्तुकों (strangers) द्वारा दिया गया या स्त्री ने कला-कौशल (mechanical arts) द्वारा पैदा किया (धन) उस (कात्यायन) के मत में पति के अधीन ही होता है।

परं तदेव कौमारे मृते भर्तरि वा जनैः।
दत्तं शिल्पार्जितं वापि स्त्रीधनं तन्मते मतम्॥ ३९१॥

परन्तु वही क्वाँरेपन में या पति के मरने पर लोगों (आगन्तुकों-strangers) द्वारा दिया अथवा शिल्प से कमाया उस (कात्यायन) के मत में स्त्री-धन माना गया है।

देवलः स्त्रीधनं भोज्यं वस्त्रं चैवोक्तवांस्तथा।
पतिदत्तास्त्वलङ्काराः सर्वेः स्त्र्यर्थं प्रकीर्तिताः॥ ३९२॥

देवल ने स्त्री-धन में भोजन और वस्त्र कहा है। और पति के दिये गहने सबने ही स्त्री-धन में कहे हैं।

याज्ञवल्क्यस्मृतौ तु—

पितृमातृपतिभ्रातृदत्तमध्यग्न्युपागतम्।
आधिवेदनिकाद्यं च स्त्रीधनं परिकीर्तितम्॥
(व्यवहाराध्याय, दायविभाग, प्रकरण ८, श्लोक १४३)

याज्ञवल्क्यस्मृति में तोः—

पिता, माता, पति और भाई का दिया, विवाह की अग्नि के सामने मिला और पति के दूसरा विवाह करने के समय मिला आदि स्त्री-धन कहा गया है।

आद्यशब्देन यद्दत्तं बन्धुभिः शौल्किकं तथा।
विवाहान्ते प्रदत्तं च स्त्रीधनं तत्तु संमतम्॥ ३९३॥

यहां पर (उपर्युक्त याज्ञवल्क्य के श्लोक में) आद्यशब्द से जो भाई-बन्धुओं ने

(स्त्री को) दिया, पत्नी के माता-पिता को दिया और विवाह के बाद (स्त्री को दिया हो उसे स्त्री-धन माना है ।

मनुश्च नारदो विष्णुर्व्यासः कात्यायनस्तथा ।
आपस्तम्बो देवलश्च याज्ञवल्क्यस्तथा पुनः ॥ ३६४ ॥
अशीतौ स्मृतिकारेषु स्त्री-धनेऽष्टैव केवलम् ।
टीकाकारैः स्वटीकासूल्लिखिता मुख्यभावतः ॥ ३६५ ॥

(स्मृतियों के) टीकाकारों ने अपनी टीकाओं में स्त्री-धन के विषय में अस्सी स्मृतिकारों में से केवल आठ मनु, नारद, विष्णु, व्यास, कात्यायन, आपस्तम्ब, देवल और याज्ञवल्क्य का ही मुख्य रूप से उल्लेख किया है ।

अत्र स्त्रीधनशब्दस्तु विज्ञेयो नैव यौगिकः ।
पारिभाषिक एवासौ मयूखे परिकीर्तितः ॥ ३६६ ॥

यहां पर स्त्री-धन शब्द को यौगिक (non-technical) नहीं जानना चाहिए इसको "व्यवहारमयूख" में पारिभाषिक (technical) ही कहा है ।

पित्रा मात्राऽथ पत्या वा भ्रात्रा वा यत्समर्पितम् ।
मातुलादिभिरध्यग्नि दत्तं यच्च तथा पुनः ॥ ३६७ ॥
आधिवेदनिकं रिक्थं क्रयाप्तं वांशनागतम् ।
परिग्रहेण संप्राप्तं प्राप्तं वाधिगमेन च ॥ ३६८ ॥
बन्धुदत्तं तथा शुल्कमन्वाधेयं तथैव यत् ।
तत्सर्वं स्त्रीधनं ज्ञेयं मैताक्षरमते बुधैः ॥ ३६९ ॥

पिता, माता, पति या भाई ने जो दिया, मामा आदि ने विवाह की अग्नि के सामने जो दिया या फिर पति ने अपने दूसरे विवाह के समय दिया, दाय में प्राप्त किया, बेचने से प्राप्त किया, हिस्से में मिला, कब्जे (adverse possession) से प्राप्त किया, मिलने (finding) से पाया, रिश्तेदारों ने दिया, विवाह की एवज में मिला, विवाह के बाद जो माता-पिता और पति के कुटुम्बियों ने दिया, उस सब को विद्वानों को मिताक्षरा के मत में स्त्री-धन जानना चाहिए ।

श्रीविज्ञानेश्वरमते शब्दः स्त्रीधनवाचकः ।
मतो यौगिक एवैष न पुनः पारिभाषिकः ॥ ४०० ॥
अतः कुटुम्बिभिर्दत्तं दत्तमन्यैर्जनैः पुनः ।
दाये वाथांशने प्राप्तमर्जितं वान्यथागतम् ॥ ४०१ ॥
यद्यल्लोके स्त्रिया वित्तं तत्तन्मैताक्षरे मते ।
स्त्रीधनं विबुधैर्ज्ञेयं निर्बाधं नात्र संशयः ॥ ४०२ ॥

श्री विज्ञानेश्वर के मत में यह स्त्री-धन वाचक शब्द यौगिक (nontechnical) ही माना गया है पारिभाषिक (technical) नहीं । इसलिए रिश्तेदारों द्वारा

ाथवा अन्य पुरुषों (strangers) द्वारा दिया, हकदारी में या धन के बटवारे में ाया, उपार्जन किया या अन्य प्रकार से आया यहां पर जो-जो स्त्री का धन है ासे-उसे विद्वानों को मिताक्षरा के मत में, विना बाधा के, स्त्री-धन जानना चाहिए। ासमें संशय नहीं है।

श्रीविज्ञानेश्वरकृतो विस्तरः स्त्रीधनस्य तु ।
अङ्कषड्नवचन्द्रेब्दे निषिद्धो न्यायसंसदा ॥ ४०३ ॥

श्री विज्ञानेश्वर का किया स्त्री-धन का विस्तार वि० सं० १९६९ (ई० सं०-१९१२) में न्याय करनेवाली सभा (Privy Council) ने निषिद्ध कर दिया है।

मुंबय्यां गुर्जरे चाथो उत्तरे कोङ्कणे तथा ।
स्त्र्यर्थो मिताक्षराप्रोक्तो मयूखीयैर्जनैर्मतः ॥ ४०४ ॥

बंबई, गुजरात और उत्तर कोंकण में मिताक्षरा में कहा हुआ स्त्री-धन (ही) व्यवहारमयूख को माननेवाले लोगों ने मान लिया है।

परमेव द्विधा भक्तो मयूखे पारिभाषिकः ।
यौगिकश्चेति कृत्वैव दायप्राप्त्यै सुनिश्चितम् ॥ ४०५ ॥

परन्तु व्यवहारमयूख में यह (स्त्री-धन) दाय प्राप्ति के लिए (for succession) निश्चय ही, पारिभाषिक (technical) और यौगिक (non-technical) ऐसा करके दो तरह से बाँट दिया है।

प्रथमस्तु स्मृतिप्रोक्तः सच कौटुम्बिकैर्जनैः ।
दत्तो यदा कदाप्यन्यैः प्रदत्तोऽध्यग्नि वा पुनः ॥ ४०६ ॥
अध्यावाहनिकत्वेन दत्तस्तैरेव निश्चितम् ।
द्वितीयस्त्वन्यविधना संप्राप्तः स्त्रीभिरत्र तु ॥ ४०७ ॥

पहला (पारिभाषिक स्त्री-धन) स्मृतियों में कहा हुआ माना है, और वह कुटुम्ब के लोगों ने जब कभी भी दिया और दूसरों (strangers) ने विवाहाग्नि के सामने दिया या उन्होंने ही, निश्चय रूप से, विवाहित स्त्री के पिता के घर से पति के घर जाने के समय दिये जानेवाले उपहार के रूप में दिया होता है। दूसरा (यौगिक स्त्री-धन) यहां पर स्त्रियों द्वारा अन्य प्रकार से प्राप्त किया हुआ होता है।

एतौ विभागौ निर्णीतौ मायूखेष्वेव केवलम् ।
नान्यत्र तु मतौ तौहि महाराष्ट्रेऽपि निश्चितम् ॥ ४०८ ॥

ये दो विभाग केवल व्यवहारमयूख को माननेवालों में ही निश्चित किये गये हैं, दूसरे स्थान पर बंबई प्रान्त में भी, निश्चय ही, नहीं माने गये हैं।

वीरमित्रोदयो मान्यो वाराणस्यां मतो बुधैः ।
मिताक्षरोक्त एवैष स्त्र्यर्थस्तत्र समादृतः ॥ ४०९ ॥

विद्वानों ने बनारस में वीरमित्रोदय को मान्य माना है। (और) वहां पर मिताक्षरा में कहा यही स्त्री–धन माना गया है।

पाराशरो माधवीयस्तथा च स्मृतिचन्द्रिका।
द्रविडे तु मता मान्या व्याख्यातः प्रथमे पुनः॥ ४१०॥
याज्ञवल्क्यप्रयुक्तोऽथो आद्यशब्दः स्त्रियाः खलु।
अध्यावाहनिकाद्यर्थकीतसंपत्तिसूचकः॥ ४११॥
द्वितीयस्यां स्मृतिप्रोक्तः स्त्र्यर्थ एव मतः पुनः।
विस्तरः स्त्री–धनस्याऽथ तत्र नैव प्रदर्शितः॥ ४१२॥

मद्रास में पाराशरमाधवीय और स्मृतिचन्द्रिका मान्य मानी है और पहले (पाराशरमाधवीय) में याज्ञवल्क्य द्वारा प्रयुक्त आद्य शब्द को स्त्री द्वारा पति के घर जाते हुए मिले धन आदि से खरीदी हुई संपत्ति का सूचक कहा है। फिर दूसरी (स्मृतिचन्द्रिका) में स्मृतियों में कहा स्त्री–धन ही माना है और वहां पर स्त्री–धन का विस्तार नहीं दिखलाया है।

सरस्वतीविलासोऽथ व्यवहारविनिर्णयः।
अपि तत्र मतो नूनं विबुधैस्तु क्वचित्पुनः॥ ४१३॥

फिर सरस्वतीविलास और व्यवहारनिर्णय को भी विद्वानों ने वहां पर (मद्रास में) कहीं–कहीं माना है।

परमेताश्चतस्रोऽपि व्याख्या भिन्नमता यतः।
निर्णये स्त्रीधनस्यातो मन्यते न्यायशास्त्रिभिः॥ ४१४॥
मिताक्षरैव तद्वित्तनिर्णये किन्तु यत्र ताः।
सर्वा एकमतास्तत्र मन्यते तद्विनिर्णयः॥ ४१५॥

परन्तु क्योंकि चारों ही टीकायें स्त्री–धन के निर्णय में भिन्न-भिन्न मतवाली हैं; इसलिए न्याय के विद्वानों द्वारा उस (स्त्री) धन के निश्चय करने में मिताक्षरा ही मानी जाती है। परन्तु जहां पर वे सब (व्याख्यायें) एक मत होती हैं, वहां पर उनका निर्णय माना जाता है।

अतो भृत्यै प्रदत्तं यत्पूर्णस्वाम्यं धनं स्त्रियै।
तत्तत्क्रीतं धनं चापि स्त्र्यर्थश्चैति तदुत्तरान्॥ ४१६॥

इसलिए भरण–पोषण के लिए जो पूर्ण अधिकार से युक्त धन स्त्री को दिया जाता है, वह और उससे खरीदा हुआ धन स्त्री–धन होता है तथा उस (स्त्री) के उत्तराधिकारियों को मिलता है।

सधवायै प्रदत्तं यद्धनमन्यैरपि ध्रुवम्।
अविरोधात्पुनस्तासां व्याख्यानां स्त्रीधनं हि तत्॥ ४१७॥

सधवा (ब्याही हुई सौभाग्यवती) स्त्री को जो दूसरों (strangers) का भी

दिया हुआ धन होता है, वह निश्चय ही, उन (उपर्युक्त चारों) टीकाओं का विरोध न होने से स्त्री--धन माना गया है।

नार्यर्जितमपि द्रव्यं तत्रत्यैः स्त्रीधनं मतम् ।
तन्मृत्यौ याति नन्वेतत्तस्या एवोत्तरांस्तथा ॥ ४१८ ॥

वहां (मद्रास) वालों ने स्त्री का कमाया धन भी स्त्री--धन माना है और उस (स्त्री) के मरने पर वह निश्चय रूप से उसके ही उत्तराधिकारियों को मिलता है।

परिग्रहेण संप्राप्तं प्राप्तं वाधिगमेन हि ।
स्त्रिया एव भवेद्वित्तं तथैव द्रविडे पुनः ॥ ४१९ ॥

फिर मद्रास में उसी प्रकार कब्जे (seizure-adverse possession) से पाया हुआ या मिलने (finding) से पाया हुआ (भी) स्त्री का ही धन होता है।

दायप्राप्तं तु नो तत्र स्त्रीधनं विबुधैर्मतम् ।
धनांशने तु नाद्यास्यै भागस्तत्र प्रदीयते ॥ ४२० ॥

वहां पर विद्वानों ने हकदारी में मिले को स्त्रीधन नहीं माना है और धन के बटवारे में तो आजकल वहां पर (मद्रास में) इस (स्त्री) को हिस्सा नहीं दिया जाता। (अतः उसके स्त्री--धन होने का तो सवाल ही पैदा नहीं होता।)

किन्त्वङ्कर्तुनवैकाब्दनिर्णयाद् न्यायसंसदः ।
मिताक्षरोक्ता स्त्र्यर्थस्य निषिद्धा विस्तृतिर्हि सा ॥ ४२१ ॥

परन्तु वि० सं० १९६९ (ई० सं० १९१२) के न्यायकारिणी सभा (Privy Council) के निर्णय से मिताक्षरा में कहा स्त्री--धन का वह विस्तार निषिद्ध कर दिया गया है।

मिताक्षरोक्त एवाथ स्त्र्यर्थदायक्रमो बुधैः ।
द्रविडे संमतो यत्र तार्ष्टीका नैकमार्गगाः ॥ ४२२ ॥

विद्वानों ने मद्रास में, जहां वे (उपर्युक्त चार) टीकायें एक ही रास्ता नहीं बतलातीं, वहां मिताक्षरा में कहा स्त्री--धन के दाय (succession) का क्रम माना है।

चिन्तामणिर्विवादानां मिथिलायां मता तथा ।
तस्यामेकादशविधं स्त्रीधनं परिकीर्तितम् ॥ ४२३ ॥
षड्विधं तद् मनुप्रोक्तं कात्यायनविवेचितम् ।
आधिवेदनिकं चान्वाधेयं शुल्कं तथैव च ॥ ४२४ ॥
अलङ्कारास्तथा भोज्यवस्त्र द्रव्यलवर्णिते ।
अन्याभ्यां भृतये दत्तं धनं ज्ञेयं बुधैः पुनः ॥ ४२५ ॥

मिथिला में विवादचिन्तामणि माना गया है और उसमें ग्यारह तरह का स्त्री-धन कहा है। वह (स्त्री--धन) मनु का कहा और कात्यायन का विवेचित (defined)

किया हुआ छह प्रकार का, पति ने अपने दूसरे विवाह के समय दिया, विवाह के बाद पति और माता--पिता के रिश्तेदारों ने दिया, विवाह की एवज में दिया, गहने और देवल के कहे भोजन--वस्त्र (इस प्रकार ग्यारह प्रकार का माना है) । फिर अन्तिम दो (भोजन-वस्त्र) से विद्वानों को गुजारे के लिए दिया धन जानना चाहिए ।

अन्यैरध्यग्नि यद्दत्तमध्यावाहनिकं च यत् ।
स्त्रीधनं तदपि ख्यातं वादचिन्तामणौ ध्रुवम् ॥ ४२६ ॥

दूसरे पुरुषों (strangers) ने जो विवाहाग्नि के सामने दिया हो और जो पिता के घर से पति के घर जाते हुए दिया हो उसे भी निश्चय ही विवादचिन्तामणि में स्त्री-धन कहा है ।

अतस्तस्यां स्मृतिप्रोक्त एव स्त्र्यर्थः समादृतः ।
मिताक्षरोक्तो दायादौ प्राप्तोऽर्थस्तत्र नादृतः ॥ ४२७ ॥

इसलिए उस (विवादचिन्तामणि) में स्मृतियों में कहा स्त्री--धन ही माना है मिताक्षरा में कहा दाय (inheritance) आदि में मिला धन वहां पर (विवादचि--न्तामणि में) नहीं माना है ।

मैताक्षरैस्तु सर्वत्र सर्वः स्त्र्यर्थः स्त्रिया मतः ।
तस्या दायादगो नूनं नात्र शङ्कास्ति काचन ॥ ४२८ ॥
परं सा त्वक्षमा सर्वविधस्त्र्यर्थव्यये ध्रुवम् ।
यथेच्छं, केवलं साऽलं बान्धवोपहृतिव्यये ॥ ४२९ ॥

मिताक्षरा को माननेवालों ने सब जगह स्त्री का सारा स्त्री--धन निश्चय ही उसके हकदारों को मिलनेवाला माना है । इसमें कोई शङ्का नहीं है । परन्तु वह निश्चय ही सब तरह के स्त्री--धन को अपनी इच्छा से खर्च करने में असमर्थ होती है । वह केवल रिश्तेदारों के उपहार को (ही) खर्च कर सकती है ।

स्त्रियाः स्त्र्यर्थव्यये कात्यायनोऽथो नारदः पुनः ।
मतो निर्णेतृभावेन न्यायशास्त्रविशारदैः ॥ ४३० ॥

न्याय के पण्डितों ने स्त्री के स्त्री--धन के खर्च करने के विषय में कात्यायन और नारद को निर्णेता के रूप में माना है ।

अस्मिन्विषये कात्यायनोक्तिः —

[ऊढया कन्यया वापि पत्युः पितृगृहेऽथवा ।
भर्तुः सकाशात्पित्रोर्वा लब्धं सौदायिकं स्मृतम् ॥
(सुदायसंबन्धिभ्यो लब्धं सौदायिकम्)
सौदायिकं धनं प्राप्य स्त्रीणां स्वातन्त्र्यमिष्यते ।
यस्मात्तदानृशंस्यार्थं तैर्दत्तं तत्प्रजीवनम् ॥

मौदायिके सदा स्त्रीणां स्वातन्त्र्यं परिकीर्तितम्।
विक्रये चैव दाने च यथेष्टं स्थावरेष्वपि ॥
न भर्ता नैव च सुतो न पिता भ्रातरो न च।
आदाने वा विसर्गे वा स्त्रीधने प्रभविष्णवः ॥

इस विषय में कात्यायन का कथन—

ब्याही हुई या कन्या द्वारा, पति के या पिता के घर में, पति के पास से या माता--पिता के पास से पाया हुआ सौदायिक माना गया है । (प्रिय संबन्धियों से मिला सौदायिक होता है) सौदायिक धन पाकर स्त्रियों की (उसमें) स्वतन्त्रता की इच्छा की जाती है; क्योंकि वह कृपा के लिए उनका दिया उसके भरण--पोषण का धन होता है । सौदायिक धन में सदा ही स्त्रियों की स्वतन्त्रता कही गयी है । वे उसे स्थावर संपत्ति होने पर भी बेचने में और देने में इच्छानुसार समर्थ होती हैं। न पति, न पुत्र, न पिता और न भाई (ही) स्त्रीधन के लेने या खर्च करने में समर्थ होते हैं।

प्राप्तं शिल्पैस्तु यद्वित्तं प्रीत्या चैव यदन्यतः।
भर्तुः स्वाम्यं भवेत्तत्र शेषं तु स्त्रीधनं स्मृतम् ॥

स्त्री ने जो धन कला--कौशल से प्राप्त किया हो, या जो दूसरों (strangers) से प्रीति के कारण पाया हो, उस पर पतिका अधिकार होता है; बाकी का (सब) स्त्री--धन माना गया है ।

नारदश्च—

भर्त्रा प्रीतेन यद्दत्तं स्त्रियै तस्मिन्मृतेऽपि तत्।
सा यथाकाममश्नीयाद् दद्याद्वा स्थावरादृते ॥

प्रसन्न हुए पति ने स्त्री को जो (धन) दिया हो, उसे उस (पति) के मरने पर, भी वह अपनी इच्छानुसार भोग सकती है और स्थावर संपत्ति को छोड़कर दे भी सकती है ।

(भर्तृदत्तविशेषणात् भर्तृदत्तस्थावरादृते, अन्यत्स्थावरं देय-मेव भवति । अन्यथा यथेष्टं स्थावरेष्वपीति विरुध्यते)

(कात्यायन ने स्थावर के देने में भी उसे समर्थ माना है और नारद ने पति के दिये स्थावर के देने का निषेध किया है । इसलिए पति के दिये स्थावर के अलावा स्थावर--धन को भी वह दे सकती है)

जीमूतवाहनकृतो दायभागो मतः पुनः।
वङ्गे, चाथ मतः स्त्र्यर्थो याज्ञवल्क्यप्रकीर्तितः ॥ ४३१ ॥

फिर बंगाल में जीमूतवाहन का लिखा दायभाग माना गया है और स्त्री--धन याज्ञवल्क्य का कहा माना है ।

याज्ञवल्क्यप्रयुक्तं चाद्यशब्दं त्वेव शब्दतः ।
परिवृत्य पुनः स्त्र्यर्थविस्तृतिस्तत्र वर्जिता ॥ ४३२ ॥
मिताक्षरोक्ता, स्त्र्यर्थश्च स एव पुनरादृतः ।
पत्युराज्ञां विनैवात्र व्ययितुं यं क्षमा हि सा ॥ ४३३ ॥

और याज्ञवल्क्य के प्रयोग किये हुए (आधिवेदनिकाद्यं च के) आद्य शब्द को 'एव' शब्द से बदल कर (आधिवेदनिकमेव करके) मिताक्षरा में कहा स्त्री--धन का विस्तार वहां पर (दायभाग) में वर्जित कर दिया है । तथा स्त्री--धन वही माना है जिसे वह (स्त्री) यहां पर पति की आज्ञा के बिना ही खर्च करने में समर्थ होती है ।

निष्कर्षो दायभागस्य तत्रोद्धृतमतादिभिः ।
स्त्रीवित्तविषये त्वग्रे वर्ण्यते स्पष्टरीतितः ॥ ४३४ ॥

स्त्री--धन के विषय में दायभाग का सार वहां पर उद्धृत किये मतों आदि से आगे स्पष्ट रीति से कहा जाता है ।

बन्धुभिस्तु प्रदत्तं यद् यच्च स्थावरवर्जितम् ।
पत्या प्रदत्तमन्यैश्च दत्तमध्यग्नि यत् पुनः ॥ ४३५ ॥
अध्यावाहनिके दत्तं स्त्रीधनं तत्र तन्मतम् ।
वर्जितं दायसंप्राप्तं प्राप्तं वाथ धनांशने ॥ ४३६ ॥
अन्यैः प्रदत्तं पूर्वोक्तावसराभ्यामृते तथा ।
शिल्पादिभिश्च संप्राप्तं धनं नार्या स्वयं पुनः ॥ ४३७ ॥

जो बन्धुओं ने दिया हो और जो स्थावर के सिवाय पति ने दिया हो, तथा जो अन्यजनों (strangers) ने विवाहाग्नि के सामने दिया हो, या स्त्री के पिता के घर से पति के घर जाते समय दिया हो, उसे वहां पर (दायभाग) में स्त्री--धन माना है । और फिर दाय में मिला, धन के बटवारे में मिला, अन्यजनों (strangers) द्वारा पहले कहे दोनों अवसरों (विवाहाग्नि के सामने के और स्त्री के प्रथमवार पति के घर जाने के समयों) को छोड़ कर दिया और स्वयं स्त्री ने कारीगरी के कामों आदि से पाया (धन) वर्जित किया है ।

स्त्र्यर्थस्तु स्मृतिकारोक्तो दायभागे मतः परम् ।
मिताक्षरायामथ च वीरमित्रोदये तथा ॥ ४३८ ॥
मयूखे विहितस्तस्मिन्समावेशोऽखिलस्य हि ।
वित्तस्य यस्याधिष्ठाने शक्ता कथमपीह सा ॥ ४३९ ॥

दायभाग में स्मृतिकारों का कहा स्त्री--धन माना गया है । परन्तु मिताक्षरा में वीरमित्रोदय में और व्यवहारमयूख में उस सारे धन का उसमें समावेश कर दिया गया है, जिसके रखने (possession) में वह (स्त्री) यहां पर किसी भी प्रकार समर्थ हो सकती है ।

दाये यत्पुरुषात्प्राप्तं स्त्रीतो वा स्त्रीधनं च यत् ।
स्त्रिया, मिताक्षरायां तत्स्त्रीधनं परिकीर्तितम् ॥ ४४० ॥
परमत्र निषिद्धं तन्निर्णयान्न्यायसंसदः ।
द्रविडे मिथिलायां च वाराणस्यां च वङ्गके ॥ ४४१ ॥

स्त्री ने दाय (inheritance) में जो पुरुष से पाया हो या जो स्त्री से स्त्री-धन पाया हो उसे मिताक्षरा में स्त्री-धन कहा है । परन्तु आजकल वह न्यायकारिणी सभा The Privy Council के निर्णय से मद्रास, मिथिला, बनारस और बंगाल में निषिद्ध कर दिया गया है ।

परं तदेवाभिमतं महाराष्ट्रे स्त्रिया धनम् ।
वर्जयित्वा तु संप्राप्तं मृतगोत्रागतस्त्रिया ॥ ४४२ ॥

परन्तु वही (उपर्युक्त दाय में पुरुष से पाया या स्त्री से पाया धन) बंबई में, मृत पुरुष के गोत्र में (विवाह के द्वारा) आई हुई स्त्री द्वारा पाये हुए (धन) को छोड़कर, स्त्री-धन माना गया है ।

तथैवांशनसंप्राप्तं स्त्रिया नो स्त्रीधनं मतम् ।
तत्सामान्येन तन्मृत्यौ याति तद्भर्तुरुत्तरान् ॥ ४४३ ॥

उसी प्रकार स्त्री द्वारा हिस्से में पाये (धन) को स्त्री-धन नहीं माना है । वह साधारण तौर से (अन्य हिस्सेदारों के साथ किसी प्रकार का समझौता न होने से) (उस स्त्री) के मरने पर उस स्त्री के पति के उत्तराधिकारियों को मिलता है ।

स्त्रीधनस्य पुरोक्तस्य निष्कर्षोऽप्यत्र कथ्यते ।
सार्वत्रिकश्च देशीयः संक्षेपाज्ज्ञानहेतवे ॥ ४४४ ॥

पहले कहे स्त्री-धन का सब जगह माना जानेवाला और एक स्थान में माना जानेवाला खुलासा, जानने के लिए, यहां पर आगे संक्षेप में कहा जाता है ।

यद्वा कदाप्युपहृतं बन्धुभिर्यद्धनं स्त्रियै ।
अन्यैरप्यग्नि दत्तं वा ह्याध्य,वाहनिकं पुनः ॥ ४४५ ॥
कथितं स्मृतिकारैस्तत् स्त्रीधनं पारिभाषिकम् ।
न्यायाधीशैरपि मतं तत्सर्वत्र स्त्रिया धनम् ॥ ४४६ ॥

बन्धुओं ने जब कभी भी (किसी भी समय) जो धन स्त्री को दिया हो, और जो दूसरों (strangers) ने विवाहाग्नि के सामने या स्त्री के पहलीवार पति के घर जाने के समय दिया हो, उसे स्मृतिकारों ने पारिभाषिक (technical) स्त्री-धन कहा है और न्यायाधीशों ने भी उसे सब जगह स्त्री-धन माना है ।

यत्कौमारे च वैधव्येऽन्यतः प्राप्तमपि स्त्रिया ।
शिल्पार्जितं च स्त्रीवित्तं सर्वत्रैव तु तन्मतम् ॥ ४४७ ॥

फिर स्त्री ने जो क्वाँरपन में और विधवा होने पर दूसरे (strangers) से प्राप्त किया हो और जो कला-कौशल से कमाया हो, उसे सब जगह ही स्त्री-धन माना है।

मिताक्षरायां यत्किञ्चित्स्त्रीप्राप्तं स्त्रीधनं मतम्।
परं मिताक्षराप्रोक्ता विस्तृतिर्न्यायसंसदा ॥ ४४८ ॥
निषिद्धाऽतश्च संत्यक्तो वाराणस्यामपि ध्रुवम्।
विद्वद्भिस्तत्र संप्रोक्तः स्त्र्यर्थः पञ्चविधोऽधिकः ॥ ४४९ ॥

मिताक्षरा में जो कुछ भी स्त्री ने पाया हो उसे स्त्रीधन माना है। परन्तु मिताक्षरा में कहा (स्त्री--धन का) विस्तार न्यायकारिणी सभा (The Privy Council) ने निषिद्ध कर दिया है; इसलिए बनारस में भी, निश्चय ही विद्वानों ने वहां पर (मिताक्षरा में) कहा पाँच प्रकार का अधिक स्त्री-धन त्याज्य कर दिया है।

मिताक्षरोक्तः स्त्र्यर्थो यः संमतो न्यायसंसदा।
महाराष्ट्रेऽपि मान्यः स तत्रैषा तु विशेषता ॥ ४५० ॥
यद्यत्किमपि नार्याप्तं धनं दाये भवेद्धि तत्।
स्त्रीधनं वर्जयित्वाप्तं मृतगोत्रागतस्त्रिया ॥ ४५१ ॥

जो मिताक्षरा में कहा स्त्री-धन न्यायकारिणी सभा (The Privy Council) ने मानलिया है, वह बंबई प्रान्त में भी मान्य है। परन्तु उसमें यह विशेषता है कि स्त्री ने जो कुछ भी धन दाय (हकदारी) में पाया हो वह, मरनेवाले के गोत्र में (विवाह द्वारा) आई हुई स्त्री द्वारा प्राप्त किये (धन) को छोड़कर, स्त्री-धन होता है।

मिताक्षरोक्तो यो न्यायसंसदा स्वीकृतः पुनः।
स्त्र्यर्थः स एव द्रविडे स्त्रिया वित्तं विनिश्चितम् ॥ ४५२ ॥

फिर जो मिताक्षरा में कहा और न्यायकारिणी सभा (The Privy Council) ने स्वीकार किया स्त्री-धन है, वही मद्रास में स्त्री-धन निश्चित किया गया है।

मिथिलायां स्मृतिप्रोक्तं स्त्रीधनं पारिभाषिकम्।
एवोपात्तं हि तत्रत्यैर्यौगिकं तु विवर्जितम् ॥ ४५३ ॥

मिथिला में वहांवालों ने स्मृतियों में कहा पारिभाषिक (technical) स्त्री-धन ही ग्रहण किया है और यौगिक (non--technical) (स्त्री--धन) त्याज्य कर दिया है।

स्त्र्यर्थः स दायभागे स्याद्यं स्त्री शक्ता निजेच्छया।
व्ययितुं भर्त्रनुमतिनिरपेक्षं सुनिश्चितम् ॥ ४५४ ॥

दायभाग में वह स्त्री--धन होता है जिसको स्त्री अपनी इच्छा से पति की अनुमति के बिना ही, निश्चय रूप से, खर्च कर सकती है।

स्मृतिटीकाविधातॄणां समये नैव या प्रथा।
आसीत्तया तु संप्राप्तः स्त्रियाऽर्थः स्त्रीधनं पुनः ॥ ४५५ ॥

अतः पित्रा कृता पुत्री निजार्थे स्वार्थधारिणी।
या, तत्प्राप्तस्तोऽर्थः स्यात्स्त्र्यर्थः सर्वत्र संमतः ॥ ४५६ ॥
न्यायार्घांशैस्तु वङ्गीयैः कृत एव विनिश्चयः।
दायभागविधानान्ते मत्वा प्रचलितां प्रथाम् ॥ ४५७ ॥

फिर स्मृतियों की टीका करनेवालों के समय में जो रिवाज नहीं था, उसके द्वारा स्त्री का प्राप्त किया धन स्त्री-धन होता है। इसलिए पिता ने जिस पुत्री को अपने धन में स्वार्थ (interest) रखनेवाली बना दिया हो, उसका उस (स्वार्थ) के द्वारा प्राप्त किया धन, सब जगह माना हुआ, स्त्री-धन होता है। (अर्थात्--पिता द्वारा माहवारी मुकर्ररा के रूप में पुत्री को दिया धन स्त्री-धन होता है।) बंगाल के न्यायाधीशों ने दायभाग के बनाने के बाद से प्रचलित रिवाज को मानकर यह निश्चय किया है।

स्त्रीधनस्य महाराष्ट्रे विस्तारो विबुधैर्मतः।
प्रान्तेभ्यस्त्वपरेभ्यो हि पूर्वोक्तविधिना ध्रुवम् ॥ ४५८ ॥

विद्वानों ने बंबई प्रान्त में पहले कही रीति से स्त्री-धन का दूसरे प्रान्तों से विस्तार माना है। (अर्थात्--वहां पर स्त्री-धन का रूप अधिक विस्तृत है।)

स्त्रीधनस्य वैशिष्ट्यम्।

स्त्री-धन की विशेषता।

दायाद्येनोपहृत्या च विभागेनोद्यमेन वा।
शिल्पेनाप्यर्थसंप्राप्तौ हिन्दुस्त्री स्यात्क्षमा. परम् ॥ ४५९ ॥
नार्यर्थो न स सर्वस्तन्निर्णये तु तदुद्भवः।
स्त्रियाः स्थितिश्च तद्देशोऽवलम्बो विबुधैर्मतः ॥ ४६० ॥

हिन्दू स्त्री हकदारी से उपहार से बटवारे से, उद्यम (महनत) से, और शिल्प विद्या से धन प्राप्त करने में समर्थ होती है। परन्तु वह (उसका प्राप्त किया) सब स्त्री-धन नहीं होता। उस (स्त्री--धन) के निर्णय में विद्वानों ने उस (धन) के मिलने के स्थान (source), स्त्री की स्थिति (धन पाने के समय वह स्त्री कन्या थी, सधवा थी या विधवा) और उस (स्त्री) के देश (प्रान्त) को अवलम्ब माना है।

स्त्रीधनं तु स्त्रिया मृत्यौ तद्दायादान्प्रयात्यथ।
अन्यत्तदधिकारस्थं न तान् याति धनं पुनः ॥ ४६१ ॥

स्त्री--धन तो स्त्री के मरने पर उसके हकदारों को मिलता है और दूसरा उसके कब्जे में रहा धन (woman's property) उनको नहीं मिलता।

स्त्रीधनस्य व्यये शक्ता सा यथेच्छं हि मन्यते।
कस्याप्यथ विशिष्टस्य स्त्रीधनस्य व्यये तु सा ॥ ४६२ ॥

पत्यौ जीवति नो शक्ता यद्यप्यत्र तथा पि सा।
वैधव्ये तु समर्था स्यात्सर्वस्त्र्यर्थव्यये परम्॥ ४६३॥
अपरार्थे मितस्वाम्याद्वैधव्येऽपि न सा क्षमा।
व्ययितुं तं यथेच्छं स यात्यन्ते न तदुत्तरान्॥ ४६४॥

वह (स्त्री) स्त्री-धन के इच्छानुसार खर्च करने में समर्थ मानी जाती। यद्यपि वह पति के जीते जी किसी खास स्त्री-धन के खर्च करने में समर्थ नहीं होती तथापि विधवाऽवस्था में तो सारे स्त्री-धनके खर्च करने में समर्थ होती है। परन्तु दूसरे धन पर परिमित (limited) अधिकार होने से वह विधवा पन में भी उसे इच्छानुसार खर्च नहीं कर सकती और वह (स्त्री के) बाद में उसके उत्तराधिकारियों को भी नहीं मिलता।

स्त्री-धनपरिसंख्यानम्।

स्त्री-धनकी गिनती।

बन्धुभिर्यत्तथान्यैश्चोपहृतं यत्तथांशने।
प्राप्तं भृत्यै प्रदत्तं वा दायाद्येन समागतम्॥ ४६५॥
शिल्पार्जितं समाधानप्राप्तं चाथ परिग्रहात्।
लब्धं च स्त्र्यर्थतः क्रीतं तदायेनाथवा ध्रुवम्॥ ४६६॥
प्राप्तं तथान्यतः सर्वं स्त्रीधनं यौगिकं हि तत्।
मृतिपत्रप्रदत्तं वोपहृतं तु समं पुनः॥ ४६७॥

जो रिश्तेदारों ने या जो दूसरों (strangers) ने उपहार में दिया, बटवारे में पाया, गुजारे के लिए दिया, हकदारी से मिला, कला--कौशल से कमाया, समझौते से मिला, कब्जे (adverse possession) में मिला, स्त्री-धन से खरीदा या निश्चय ही उसकी आमदनी से खरीदा, तथा दूसरे जरिये से पाया हो, वह सब यौगिक (non--technical) स्त्री--धन होता है। फिर मृति-पत्र (bequests) के द्वारा दिया (bequeathed) और उपहार के द्वारा दिया समान माना गया है।

स्त्र्यर्थो हि पूर्णोऽपूर्णो वा कीदृशः कुत्र वा पुनः।
संमतो विबुधैरस्य निर्णयोग्रे प्रदर्श्यते॥ ४६८॥

फिर विद्वानों ने किस प्रकार का स्त्री--धन कहां पूर्ण और कहां अपूर्ण माना है इसका निर्णय आगे दिखलाया जाता है। (अर्थात्--कहां-कहां कौनसा स्त्री का अधिकृत धन पूर्ण स्त्री-धन या अपूर्ण स्त्री-धन माना गया है यह आगे कहा जाता है।)

पितृभ्यामथ पत्या वा तेषां बन्धुगणैस्तथा।
कौमारेऽथ विवाहान्ते वैधव्ये वा समर्पितम्॥ ४६९॥

मृतिपत्रप्रदत्तं वा वैरागार्थे तु यद्धनम्।
स्त्रीधनं तत्तु सर्वत्र दायभागमृते यतः॥ ४३०॥
तत्र पत्न्या प्रदत्ता वा प्रदत्ता मृतिपत्रतः।
नैन स्थावरसंपत्तिः स्त्रीधनं नैव मन्यते॥ ४३१॥

माता-पिता द्वारा, पतिद्वारा या उनके रिश्तेदारों द्वारा आपत्ति से, विवाह के [illegible] या विधवापन में दिया गया या उनके द्वारा इच्छापत्र [illegible] से दिया गया, [illegible] को छोड़कर सब जगह स्त्री-धन [illegible] है क्योंकि वहां [illegible] दायभाग से पति [illegible] दी गई या उसके द्वारा मृति पत्र से दी गई [illegible] स्थावर संपत्ति [illegible] नहीं माना जाता है।

बान्धवोपहृतं वित्तं स्त्रीधनं पारिभाषिकम्।
तत्तु दानावसरतो भिन्नाख्यं स्यात्पुनर्यथा॥ ४३२॥
अध्यग्न्यध्यावाहनिकं पादवन्दनिकं तथा।
अन्वाधेयमथो शुल्कमाधिवेदनिकं पुनः॥ ४३३॥
पितृदत्तमथो भ्रातृप्रदत्तमिति निश्चितम्।
मृत्युपत्रोपहाराभ्यां पूर्णस्वाम्याय यद्धनम्॥ ४३४॥
विधवायै दुहित्रे वा मात्रादिभ्योऽथवा पुनः।
दत्तं तदपि विज्ञातं स्त्रीधनं न्यायशास्त्रिभिः॥ ४३५॥

बन्धुओं का उपहार-रूप से दिया धन पारिभाषिक [illegible] स्त्री-धन [illegible] है और वह देने के अवसर के कारण निश्चय ही भिन्न-भिन्न नाम का हो जाता [illegible] जैसे विवाह की अग्नि के सामने दिया 'अध्यग्नि', विवाह के बाद स्त्री के पहली-[illegible] पति के घर जाते समय दिया 'अध्यावाहनिक', विवाहिता स्त्री के पहलीबार सास-[illegible] आदि गुरुजनों के पैर पकड़ने के समय दिया 'पादवन्दनिक', विवाह के बाद [illegible] माता, पिता के या पति के रिश्तेदारों ने दिया 'अन्वाधेय', विवाह की [illegible] [illegible] 'शुल्क', पति द्वारा अपने दूसरे विवाह के समय दिया 'आधिवेदनिक', माता-[illegible] द्वारा दिया 'पितृदत्त' और भाई द्वारा दिया 'भ्रातृदत्त'। मृत्युपत्र द्वारा और [illegible] द्वारा जो धन विधवा को, कन्या को, या माता आदि को पूर्ण अधिकार के [illegible] दिया गया हो, उसको भी न्याय के पण्डितों ने स्त्री-धन जाना है।

अन्यैर्यत्तु प्रदत्तं स्यात्कौमारेऽध्यग्नि वा पुनः।
अध्यावाहनिके चाथ वैधव्ये स्त्री-धनं हि तत्॥ ४३६॥

दूसरों (strangers) ने जो क्वारेपन में, विवाह की अग्नि के सामने, स्त्री के [illegible] पति के घर जाने के समय या विधवा होने पर दिया हो, वह स्त्रीधन [illegible] है।

अन्यैः समर्पितोयोऽर्थः सधवायैस्त्रियै स तु ।
वाराणस्यां महाराष्ट्रे द्रविडे च स्त्रिया धनम् ॥ ४७७ ॥
मिथिलायामथोवङ्गे किन्तु न स्त्रीधनं हि सः ।
मृतिपत्रोपहाराभ्यां दत्तं दानेन संमतम् ॥ ४७८ ॥

दूसरों ने सधवा स्त्री को जो धन दिया हो, वह बनारस में बम्बई में और मद्रास में स्त्री-धन होता है । परन्तु मिथिला और बंगाल में वह स्त्री-धन नहीं होता । दान (शब्द) से मृति-पत्र और उपहार के द्वारा दिया माना गया है ।

मृते पत्यौ तु वङ्गेऽपि स्त्री-धनं स भवेत्तथा ।
पत्युस्त्वनुमतेस्तत्रापेक्षा यद्यपि तद्व्यये ॥ ४७९ ॥
तथापि स्वार्जितस्यैषा पत्यौ जीवत्यपि ध्रुवम् ।
स्वामिनी यन्मृतौ तस्याः सोऽर्थो याति न तत्पतिम् ॥४८०॥

पति के मरने पर तो बंगाल में भी वह (उपर्युक्त) स्त्री-धन हो जाता है, और वहां पर यद्यपि उसके खर्च करने में पति की अनुमति की आवश्यकता होती है, तथापि वह (स्त्री) अपने कमाये (प्राप्त किये) धन की पति के जीतेजी भी, निश्चय ही, मालिक होती है; क्योंकि उस (स्त्री) के मरने पर वह धन उसके पति को नहीं मिलता (उस स्त्री के स्त्री-धन के उत्तराधिकारियों को ही मिलता है) ।

विधवायै स्वयं दत्तं यत्र वा मृतिपत्रतः ।
यावज्जीवं तु भोगाय वस्त्वेतत्समयं हि यत् ॥ ४८१ ॥
यास्यत्येतत्तदन्ते हि ध्रुवमेव तदुत्तरान् ।
तत्र मूलं परित्यज्य तदायस्तु स्त्रिया धनम् ॥ ४८२ ॥

जहां पर स्वयं या मृति-पत्र के द्वारा विधवा को जीवनपर्यन्त भोग के लिए उस शर्तवाला धन दिया हो कि, वह उस (स्त्री) के अन्त में (मरने पर) निश्चय ही, उस (स्त्री) के उत्तराधिकारियों को मिलेगा, वहां पर मूल (मूल-धन) को छोड़कर उसकी आमदनी स्त्री-धन होती है ।

पृक्तार्थस्य विभागे तु पुत्रैर्वा पौत्रकैर्धनम् ।
मात्रे वाथ पितामह्यै यद्दत्तं तद्भृतेः कृते ॥ ४८३ ॥
दायभागे मतं, तस्मात्स्त्रीधनं नहि तत्र तत् ।
याति तच्च तदन्ते तु तान्पुत्रान् वाथ तत्सुतान् ॥ ४८४ ॥

बेटों और पोतों ने साझे के धन के बटवारे में जो धन माता या दादी को दिया हो, उसे दायभाग में भरण-पोषण के लिए (दिया) माना है; इसलिए वहां वह स्त्री-धन नहीं होता और वह उस (स्त्री) के बाद उन (देनेवाले) पुत्रों या पौत्रों को मिलता है ।

मिताक्षरेष्वपि पुनर्निर्णयान्न्यायसंसदः।
दत्तं मात्रेऽशने वित्तं नाधुना स्त्री-धनं मतम् ॥ ४८५ ॥
परं तत्तु मतं भर्तृ प्राप्तदायधनोपमम्।
अतस्तस्या मृतौ याति तत्तु तद्भर्तृरिक्तगान ॥ ४८६ ॥

न्यायकारिणी सभा (The Privy Council) के निर्णय से मिताक्षरा को माननेवालों में भी माता को बटवारे में दिया धन आजकल स्त्री--धन नहीं माना गया है, परन्तु उसे पति से पाये दाय--धन के समान माना है। इसलिए उस (स्त्री) के मरने पर वह (धन) उसके पति के उत्तराधिकारियों को मिलता है।

वादचिन्तामणौ नैव स्त्र्यर्थेष्वेकादशस्विदम्।
संख्यातं न ततस्त्वेतन्मिथिलायां स्त्रियाधनम् ॥ ४८७ ॥

विवादचिन्तामणि में यह ग्यारह (प्रकार के) स्त्री--धनों में नहीं गिना गया है, इसलिए यह मिथिला में स्त्री-धन नहीं है।

द्रविडे च परित्यक्तमंशनेऽशसमर्पणम्।
स्त्रीभ्यस्तस्मान्न तत्प्रश्नः प्रादुर्भवति तत्र तु ॥ ४८८ ॥
परं यत्र प्रदत्तः स्याद्भागस्त्वर्थांशने सुतैः।
सह पूर्णाधिकारेण मात्रे स्त्र्यर्थः स तत्र हि ॥ ४८९ ॥

और मद्रास में बटवारे में स्त्रियों को भाग देना छोड़ दिया गया है: इसलिए वहां पर तो वह सवाल पैदा (ही) नहीं होता। परन्तु जहां पर पुत्रों ने धन के बटवारे में मा को पूर्ण अधिकार के साथ भाग दिया हो, वहां पर वह स्त्री-धन ही होता है।

वृत्तिर्नियतकालाऽर्प्या स्त्रियै या भृतये कृता।
तस्या अनर्पितोऽशो वा संपत्तिः पोषहेतवे ॥ ४९० ॥
या दत्ता तावुभौ स्यातां सर्वत्रैव स्त्रिया धनम्।
इतीह निश्चितं न्यायशास्त्रिभिस्तु न संशयः ॥ ४९१ ॥

जो नियत समय पर दी जानेवाली वृत्ति (तनखा) स्त्री के भरण--पोषण के लिए (नियत) की हो, उसका नहीं दिया हुआ हिस्सा (arrears) या जो संपत्ति (उस स्त्री के) भरण-पोषण के लिए दी हो—वे दोनों सब जगह स्त्री--धन होते हैं—ऐसा यहां पर न्याय के विद्वानों ने तय किया है। इसमें संशय नहीं है।

पूर्णस्वाम्येन संपत्तिः स्थावराऽपि च यार्पिता।
पोषाय स्त्रीधनं सा तु सर्वत्रैव न संशयः ॥ ४९२ ॥

और भरण-पोषण के लिए जो स्थावर संपत्ति भी पूर्ण अधिकार के साथ दी गई हो, वह सब जगह ही स्त्री-धन होती है। इसमें संशय नहीं है।

पत्यौ जीवति या दत्ता या च तन्मरणे पुनः।
मिथः समयतोया च न्यायशासनतश्च या ॥ ४९३ ॥

स्त्रियै पोषाय नो भेदस्तत्र ज्ञेयो बुधैस्तथा ।
भूत्यै पूर्णतया दाने न विधाननिषेधनम् ॥ ४६४ ॥

स्त्री के भरण-पोषण के लिये (पूर्णाधिकार के साथ) जो (संपत्ति) पति के जीते जी दी गई हो और जो उस (पति) के मरने पर दी गई हो अथवा आपस के समझौते (agreement) से दी गई हो और जो न्याय की आज्ञा (अदालत की डिग्री) से दी गई हो, विद्वानों को उसमें भेद न समझना चाहिये । तथा भरण-पोषण के लिये पूर्णरूप से (absolutly) देने में कानून (The Transfer of Property Act, Sec. 6) का भी निषेध नहीं है ।

शासनात्पतिदत्ताया भृतेरंशोऽसमर्पितः ।
स्त्रीधनं,तत् कनीं चैति पत्यौ जीवति तन्मृतौ ॥ ४६५ ॥
शक्ता कन्या च जनकादप्यादातुं हि तद्धनम् ।
कन्याभाऽवे तु तद्याति स्त्रिया पवोत्तरान्पुनः ॥ ४६६ ॥

पति की डिग्री के कारण दी हुई तनखा का नहीं दिया हुआ (unpaid) भाग स्त्री-धन होता है और पति के जीते जी उस (स्त्री) के मर जाने पर उस (स्त्री) की कन्या को मिलता है । तथा कन्या पिता से भी उस धन के ले लेने में समर्थ होती है । फिर कन्या के न होने पर वह (धन) स्त्री के ही उत्तराधिकारियों को मिलता है ।

वृत्तिराभूषणान्येवं शुल्को लब्धं च यत्स्त्रिया ।
तत्सर्वं स्त्रीधनं ज्ञेयं देवलोक्त्या त्वसंशयम् ॥ ४६७ ॥

तनखा, जेवर, शुल्क और जो स्त्री ने प्राप्त किया हो, वह सब देवल के वचन से निःसन्देह स्त्री-धन जानना चाहिये ।

देवलः—

वृत्तिराभरणं शुल्कं लाभश्च स्त्रीधनं भवेत् ।
भोक्त्री तत्स्वयमेवेदं पतिर्नार्हत्यनापदि ॥

देवल ने कहा है:—

तनखा, जेवर, शुल्क और लाभ स्त्री--धन होता है । इसलिए वह स्वयं ही इसकी भोगनेवाली होती है । (उसका) पति आपत्ति के न होने पर उसको नहीं ले सकता ।

मिथिलात्तः स्त्रिया अर्थः पूर्वमेव प्रदर्शितः ।
अवलोक्यो यथास्थानं पण्डितैः स्वयमेव सः ॥ ४६८ ॥

मिथिला में ग्रहण किया स्त्री--धन तो पहले ही बतला दिया गया है । विद्वानों को स्वयं ही उसे यथा स्थान (श्लोक ४२३ से ४२७ तक तथा ४७८, ५०१ और ५०२ में देखना चाहिए ।)

वृत्तिस्तु स्त्रीधनं किन्तु न विभागसमर्पितम् ।
पुत्रभागसमत्वात्तद् भूतेः स्यादधिकं यतः ॥ ४९९ ॥

तनखा स्त्री-धन होती है । परन्तु हिस्से में दिया (धन स्त्री-धन) नहीं होता; क्योंकि वह पुत्र के हिस्से के बराबर होने से वृत्ति (तनखा की रकम) से अधिक होता है । (आवश्यकता से अधिक धन पर स्त्री का अधिकार निषिद्ध माना गया है ।

पितृभर्तृसुतादिभ्यः स्त्री-दायग्रहणे क्षमा ।
स्त्र्यर्थं मातृसुतादिभ्यः प्राप्तुं चापि क्षमा हि सा ॥५००॥

स्त्री पिता, पति और पुत्रादिकों से दाय (हकदारी का धन) प्राप्त कर सकती है और वह माता और कन्या आदि से (उनका) स्त्री-धन भी ले सकती है ।

द्रविडे मिथिलायां च वाराणस्यां च वङ्गके ।
दाये पुंस्तोऽथवा स्त्रीतः स्त्रियाप्तोऽर्थो न तद्धनम् ॥५०१॥
मिताधिकारमेवैषा तस्मिन्नाप्नोति निश्चितम् ।
तन्मृत्यौ प्रतियात्येतद्यस्मात्प्राप्तं तदुत्तरान् ॥ ५०२ ॥

मद्रास में, मिथिला में, बनारस में और बंगाल में स्त्री द्वारा पुरुष से या स्त्री से दाय में प्राप्त किया धन उस (स्त्री) का धन (स्त्री-धन) नहीं होता । वह निश्चय ही उस (धन) पर मित (limited) अधिकार पाती है और उस (स्त्री) के मरने पर वह (धन) जिससे पाया था उसीके उत्तराधिकारियों के पास लौट जाता है ।

तयाऽतो दायसंप्राप्तः पुंस्तोऽर्थो दायभागिषु ।
पुंसः सपिण्डान् सकुल्यान् याति वाथ समोदकान् ॥५०३॥

इसलिए उस (स्त्री) के द्वारा पुरुष से दाय में पाया धन, दायभाग को माननेवालों में (उसी) पुरुष के सपिण्डों, सकुल्यों और समानोदकों को मिलता है ।

मैताक्षरेषु यात्येव तत्सपिण्डान् समोदकान् ।
बन्धून्वा स्मृतिकाराणां वचसा नात्र संशयः ॥ ५०४ ॥

मिताक्षरा को माननेवालों में यह (पुरुष से दाय में पाया धन) स्मृतिकारों के वचन से उस (पुरुष) के सपिण्डों, समानोदकों या बान्धवों को मिलता है । इसमें संशय नहीं है ।

स्त्रीतः प्राप्तः पुनः स्त्र्यर्थः स्त्रिया प्रत्येति निश्चितम् ।
स्त्र्यर्थाधिकारिणः पूर्वस्वामिन्या एव हि स्त्रियाः ॥ ५०५ ॥

और स्त्री द्वारा स्त्री से पाया स्त्री-धन निश्चय ही, पहले वाली मालिक स्त्री (जिससे वह धन मिला हो उसी) के स्त्री-धन के हकदारों को मिलता है ।

महाराष्ट्रे स्त्रिया प्राप्तः स्त्रीतोऽर्थः स्त्रीधनं भवेत् ।
शक्ता सा तद्व्यये दाने याति सोऽथ तदुत्तरान् ॥ ५०६ ॥

बंबई प्रान्त में स्त्री द्वारा स्त्री से पाया धन स्त्री-धन होता है । वह (स्त्री)

उसके खर्च करने में और देने में समर्थ होती है और वह उस (पानेवाली स्त्री) के (ही) उत्तराधिकारियों को मिलता है।

पुंस्तो दायहरा नार्यो द्विविधास्तत्र निश्चिता।
एकास्ता या विवाहेन गोत्रे तस्य समागताः॥ ५०७॥
स्त्री माता पितुरम्बाद्या अपरास्तत्कुलोद्भवाः।
कन्या स्वसाथ सोदर्यकन्या स्वसृसुतादयः॥ ५०८॥
पूर्वाभिर्दायसंप्राप्तः पुंसोऽर्थस्तत्र नो मतः।
स्त्र्यर्थः स च तदन्ते हि पूर्वस्वाम्युत्तरान्व्रजेत्॥ ५०९॥
अपराभिस्तु संप्राप्तो दायः पुंस्तः स्त्रिया धनम्।
तन्मृत्यौ च प्रयात्येष तासां स्त्र्यर्थाधिकारिणः॥ ५१०॥

वहां पर (बंबई प्रान्त में) पुरुष से दाय-धन लेनेवाली स्त्रियां दो तरह की निश्चित की गई हैं। एक वे जो विवाह द्वारा उसके गोत्र में आई हुई-अपनी स्त्री, माता दादी आदि और दूसरी उसके कुल में पैदा हुई-कन्या, बहन, भतीजी, भानजी आदि। पहलेवालियों द्वारा पुरुष से दाय में पाया हुआ धन वहां पर स्त्री-धन नहीं माना गया है, और वह उस (धन पानेवाली स्त्री) के बाद पहले के मालिक के उत्तराधिकारियों को मिलता है। परन्तु दूसरी स्त्रियों द्वारा पुरुष से पाया दाय (धन) स्त्री-धन होता है और उन (स्त्रियों) के मरने पर उन (स्त्रियों) के स्त्री-धन के हकदारों को मिलता है।

अतो वाराणसीवङ्गमिथिलाद्रविडेषु तु।
स्त्रिया प्राप्तस्तु दायार्थो न स्त्र्यर्थः कचिदप्यथ॥ ५११॥
महाराष्ट्रे स एव स्यात्सर्वत्रैव स्त्रिया धनम्।
नून गोत्रागताभिस्तु स्त्रीभिः प्राप्तमृते पुनः॥ ५१२॥

इसलिए बनारस बंगाल, मिथिला और मद्रास में स्त्री द्वारा प्राप्त किया दाय-धन कहीं भी (किसी भी मामले में) स्त्री-धन नहीं होता। बंबई प्रान्त में वही (विवाह के द्वारा) गोत्रमें आई स्त्रियों के प्राप्त किये (धन) को छोड़कर सब स्थानों पर (मामलों में) निश्चय ही स्त्री-धन होता है।

गोत्रागता विवाहेन स्त्रियो ज्ञेयाः समासतः।
स्वभार्याथ सपिण्डानां समोदानां तथा स्त्रियः॥ ५१३॥
स्वगोत्रजाः स्त्रियस्तासां कन्याश्चापि समासतः।
स्त्रियोऽपरास्तु विज्ञेया महाराष्ट्रे हि निश्चितम्॥ ५१४॥

विवाह के द्वारा गोत्र में आई स्त्रियां संक्षेप से अपनी स्त्री तथा सपिण्डों और समानोदकों की स्त्रियां जाननी चाहिए। अपने गोत्र में उत्पन्न हुई स्त्रियां और उनकी कन्यायें बंबई प्रान्त में निश्चय ही, संक्षेप से दूसरी स्त्रियां जाननी चाहिए।

कौमारे सतिपत्यौ वा वैधव्ये वा समा हि सा।
प्राप्तुं धनं निजोद्योगात्कलाकौशलतोऽथवा ॥ ५१५ ॥

वह (स्त्री) क्वाँरपन, में पति की जीवित अवस्था (सधवापन) में और विधवापन में अपने उद्योग अथवा कला--कौशल से धन प्राप्त कर सकती है।

यतः कात्यायनोक्तिस्तु भर्तृस्वाम्यस्य सूचिका।
प्रयोज्या सति पत्यौ हि धने तस्मिंस्ततो ध्रुवम् ॥ ५१६ ॥
कौमारे त्वाथ वैधव्ये कलाकौशलतोऽर्जितम्।
उद्यमेनाथ वा नार्या सर्वत्रैव स्त्रियाधनम् ॥ ५१७ ॥

क्योंकि पति के अधिकार का सूचक कात्यायन का वचन उस (कला-कौशल आदि से कमाये) धन में पति की जीवितावस्था में ही प्रयोग करने लायक है, इसलिए निश्चय ही क्वाँरपन में और विधवापन में स्त्री द्वारा कला-कौशल से या उद्यम से कमाया सब जगह (प्रान्तों में) स्त्री-धन होता है।

सति पत्यौ तु यत्प्राप्तं कलाकौशलतोऽथवा।
उद्यमेन धनं नार्या स्त्र्यर्थः स द्रविडे तथा ॥ ५१८ ॥
वाराणस्यां महाराष्ट्रे चापि किन्तु स नो तथा।
मिथिलायामथो वङ्गे दायभागानुगे ध्रुवम् ॥ ५१९ ॥

स्त्री ने पति के जीते जी जो धन कला-कौशल से या उद्यम से प्राप्त किया हो, वह मद्रास, बनारस और बम्बई में स्त्री-धन होता है। परन्तु वह मिथिला और दायभाग को मानने वाले बंगाल में निश्चय ही वैसा (स्त्री-धन) नहीं होता।

परंवङ्गे यतः सैव तदर्थस्वामिनी मता।
पत्यौ जीवत्यपि ततस्तदन्ते स स्त्रिया धनम् ॥ ५२० ॥

परन्तु क्योंकि बंगाल में वह (स्त्री) ही पति के जीते जी भी उस धन की अधिकारिणी मानी गई है, इसलिये उस (पति) के मरने पर वह (धन) स्त्री-धन हो जाता है।

मिथिलायां मृते पत्यौ स्त्री-धनं स भवेन्न वा।
नैतत्तु निश्चितं नूनं न्यायशास्त्रविशारदैः ॥ ५२१ ॥

मिथिला में पति के मरने पर वह (कला-कौशल आदि से कमाया धन) स्त्री-धन होता है या नहीं-यह न्यायशास्त्र के पण्डितों ने निश्चय ही निश्चित नहीं किया है।

मिथः समयतो वाथ कौटुम्बिकप्रबन्धतः।
प्राप्ता या तु स्त्रिया संपत् सा लेखनियमानुगा ॥ ५२२ ॥
परिस्थित्यनुगा चास्ति तस्माद् भ्रात्रोस्तु पृक्तयोः।
यत्रैकस्मिन्प्रमीतेऽन्य आदातुं हि तदंशकम् ॥ ५२३ ॥

पृक्तावशिष्टितः सज्ञः स्यात्तथैव मृताधवा ।
दायाद्यं न तमादातुमुद्यतास्यात्ततश्च तौ ॥ ५२४ ॥
नियोजयेतां मध्यस्थं तद्विवादस्य निर्णये ।
तेन दत्ता च संपत्तिः काचित्तदधवाकृते ॥ ५२५ ॥
तस्याः परिमितस्वाम्योल्लेखाभावेऽथ तत्र सा ।
स्त्रिया एव हि संपत्तिः संमता न्यायसंसदा ॥ ५२६ ॥

स्त्री ने आपस के समझौते से या कुटुम्ब के प्रबन्ध (arrangement) में जो संपत्ति पाई हो, वह लेख के नियमों (terms) के अनुसार या परिस्थिति (circumstances) के अनुसार चलने वाली होती है। इसलिये जहां पर दो साझेवाले भाइयों में एक के मरने पर दूसरा साझेदारों में पीछे बचने से उसके हिस्से को लेने को तैयार हो और उसी प्रकार मरे हुए (भाई) की विधवा हकदारी से (as his heir) उस (हिस्से) को लेने को उद्यत हो जावे और उसके बाद वे दोनों (शेष रहा भाई और मरे हुए भाई की विधवा स्त्री) उस झगड़े को तय करने के लिये मध्यस्थ को नियुक्त करदें और वह (मध्यस्थ) कुछ (certain) संपत्ति विधवा को देदे वहां पर उस (स्त्री) के परिमित (limited) अधिकार के उल्लेख के अभाव में न्यायकारिणी सभा (The Privy Council) ने उस (संपत्ति) को स्त्री की ही सम्पत्ति माना है।

निजस्त्र्यर्थाधिकारस्य त्यागात्प्राप्तो हि योषिता ।
मिथः समयतो योऽर्थः स सर्वत्र स्त्रिया धनम् ॥ ५२७ ॥

स्त्री ने अपने स्त्री-धन के अधिकार के त्याग के कारण आपस के समझौते से जो धन पाया हो, वह सब जगह स्त्री-धन होता है।

दत्तेन समयं कृत्वा प्राप्तं विधवयाऽम्बया ।
द्रविणं यत् तदप्यत्र तस्याः पूर्णाधिकारगम् ॥ ५२८ ॥

गोद के पुत्र के साथ समझौता करके विधवा माता ने जो धन प्राप्त किया हो, वह भी यहां पर उस (स्त्री) के पूर्णाधिकार के अन्दर रहने वाला होता है (अर्थात् उसका स्त्री-धन होता है)।

आचारेण निषिद्धापि यत्र दायग्रहे कनी ।
समयेनैति प्रत्यादाद् यत्तत्र स्त्रिया धनम् ॥ ५२९ ॥

जहां पर लड़की रिवाज द्वारा दाय-धन के लेने में वर्जित होने पर भी समझौते द्वारा प्रत्याद (reversioner) से जो (धन) प्राप्त करती है, वह वहां पर स्त्री-धन होता है।

प्रतिकूलाधिकारेण प्राप्ता संपत् स्त्रिया तु या ।
सति भर्तरि वैधव्ये वा सा सर्वत्र तद्धनम् ॥ ५३० ॥

अतो यत्र स्त्रियालेख उपहर्तुं निजं धनम्।
पुत्र्यै कृतः परं नैव मुद्रितो राजमुद्रया ॥ ५३१ ॥
पुत्र्या त्वधिकृतः सोऽर्थो द्वादशाब्दोत्तरं पुनः।
मृता तज्जननी तत्र प्रतिकूलाधिकारतः ॥ ५३२ ॥
सोऽर्थस्तत्स्त्रीधनं, याति तदन्ते च तदुत्तरान्।
न तु तस्या जनन्या हि परान् स्त्र्यर्थाधिकारिणः ॥ ५३३ ॥

स्त्री ने प्रतिकूल अधिकार (adverse possession) के द्वारा सधवावस्था (coverture) अथवा विधवावस्था में जो सम्पत्ति प्राप्त की हो, वह सब जगह उसका धन (स्त्री-धन) होती है। इसलिये जहां पर स्त्री ने अपना धन कन्या को उपहार में देने के लिये लेख किया हो, परन्तु उसकी रजिस्ट्री नहीं हुई हो और कन्या ने उस धन पर अधिकार कर लिया हो तथा बारह वर्ष बाद उस (कन्या) की माता मर गई हो, वहां पर प्रतिकूल अधिकार (adverse possession) से वह धन उस (कन्या) का स्त्री-धन होता है और उसके मरने पर उसके उत्तराधिकारियों को मिलता है उसकी माता के दूसरे स्त्री-धन के हकदारों को नहीं मिलता।

परं यत्र मृता माता द्वादशाब्दसमाप्तितः।
प्रागेव तु परित्यज्य पुत्रीं दायाधिकारिणीम् ॥ ५३४ ॥
कन्या चापि निजं स्वाम्यं रक्षन्ती तद्धने स्थिता।
तत्राम्बान्ते तु तत्स्वाम्यं दायाद्यं नैव संमतम् ॥ ५३५ ॥
अतः परिमितं तत्स्यात्तन्मृत्यौ चाथ तद् व्रजेत्।
तस्या जनन्यास्त्वपरान नूनं स्त्र्यर्थाधिकारिणः ॥ ५३६ ॥

परन्तु जहां पर माता बारह बरस पूरे होने से पहले ही, पुत्री को दाय-धन की अधिकारिणी (heir) छोड़कर मरजाय और पुत्री उस (अधिकार में आये माता के) धन पर अपना अधिकार बनाये रहे, वहां पर माता के मरने के बाद उस (कन्या) का अधिकार हकदारी से ही (Possession of an heir) माना है। इसलिए वह (स्वाम्य) परिमित (limited) होता है और उस (पुत्री) के मरने पर वह (धन) उसकी माता के, निश्चय ही, दूसरे स्त्री-धन के अधिकारियों को मिलता है।

स्त्र्यर्थक्रीता तु संपत्तिः स्त्र्यर्थायोपचयस्तथा।
सर्वत्रैव भवेन्नार्याः स्त्रीधनं नात्र संशयः ॥ ५३७ ॥

स्त्री--धन से खरीदी संपत्ति अथवा स्त्री--धन की इकट्ठी की हुई आमदनी सब जगह ही स्त्री का स्त्री-धन होती है इसमें संशय नहीं है।

स्त्र्यर्थक्रीताऽचला संपदपि स्यात्स्त्रीधनं स्त्रियाः।
प्राक् क्रयस्याधिकारेण क्रीतापीह तथा मता ॥ ५३८ ॥

क्रीतायाः संपदः पार्श्ववर्तिन्याः पतिसंपदः।
स्वामित्वेनैव सा शक्ता प्राक्क्रयाधिकृतेः कृते ॥ ५३९ ॥

स्त्री--धन के द्वारा खरीदी अचल संपत्ति स्त्री का स्त्री-धन होती है और पहले खरीदने (हकशफा) के अधिकार के द्वारा खरीदी हुई भी यहां पर वैसे ही (स्त्री-धन) मानी गई है। वह स्त्री खरीदी हुई संपत्ति के पास रही पति की संपत्ति की स्वामिनी होने से ही पहले खरीदने के अधिकार (right of pre-emption) के लिए समर्थ होती है।

असंप्राप्तवयस्काभ्यां कन्याभ्यां स्त्रीधनं जनेः।
यत्र प्राप्तं प्रबन्धश्च तस्य तद्रक्षिहस्तगः ॥ ५४० ॥
क्रीता तेन च संपत्तिर्नव्यास्तस्यायतः परम्।
तयोरेका मृता कन्या तत्स्वाम्यग्रहणात्पुरा ॥ ५४१ ॥
क्रीतार्थे तत्र तद्भागो यः स स्त्र्यर्थो यतस्ततः।
तस्या एवोत्तरान् याति नापरां तु कनीं पुनः ॥ ५४२ ॥

जहां पर दो नाबालिग कन्याओं (बहनों) ने माता का स्त्री--धन पाया हो और उसका प्रबन्ध (उनके) रक्षक के हाथ में हो, तथा उस (रक्षक) ने उस (धन) की आमदनी से नई संपत्ति खरीदी हो, परन्तु उन दोनों में की एक कन्या उस (नवीन संपत्ति) का अधिकार लेने के पहले ही मर गई हो, वहां पर खरीदे हुए (उस) धन में जो उसका भाग होगा वह क्योंकि स्त्री--धन होता है, इसलिए उसी (मृतकन्या) के उत्तराधिकारियों को मिलेगा, दूसरी कन्या (बहन) को नहीं मिलेगा।

स्त्रीधनप्रतिदानेन प्राप्ता संपत्तु या स्त्रिया।
बन्धकीकृत्य वान्यार्थं वृद्धये स्त्र्यर्थः समर्पितः ॥ ५४३ ॥
पट्टायत्तधनस्वाम्यं स्त्र्यर्थेनात्तमथो पुनः।
एतत्सर्वं भवेत्स्त्र्यर्थः सर्वत्रैव न संशयः ॥ ५४४ ॥

स्त्री ने स्त्री--धन के देने से (बदले में) जो संपत्ति प्राप्त की हो या दूसरे की संपत्ति को बन्धक (mortgage) रखकर व्याज के लिए (उस पर) स्त्री--धन दिया हो अथवा पट्टे (lease) के अधीन रही संपत्ति के अधिकार को स्त्री-धन से प्राप्त किया हो, यह सब सब जगह ही स्त्रीधन होता है-इसमें संशय नहीं है।

अन्यसूत्रेण संप्राप्ता संपत्तिः स्त्रीधनं नवा।
निर्णयोऽस्य विधेयोऽत्र प्रागुक्तैर्नियमैर्ध्रुवम् ॥ ५४५ ॥

दूसरे जरिये से पाई संपत्ति स्त्री-धन है या नहीं इसका निर्णय यहां पर निश्चय ही पहले कहे नियमों (देखो श्लोक ४४४—४५८ तक) से तय करना चाहिए।

असंपृक्ते मृते पत्यावनपत्येऽधवा क्षमा।
जात्याचारेण तद्वित्तमादातुं स्व्यर्थरूपतः॥ ५४६॥

साझे से बाहर रहनेवाले और बिना सन्तानवाले पति के मरने पर (उसकी) विधवा जाति के रिवाज से उसके धन को स्त्री-धन के रूप में ले सकती है।

प्रागुक्तनियमानां तु निष्कर्षोऽयं सुनिश्चितः।
यत्कौमारे परित्यज्य दायप्राप्तां हि संपदम्॥ ५४७॥
प्राप्तमन्यद्धनं सर्वं स्त्र्यर्थो भवति निश्चितम्।
उपहारेण संप्राप्तं मृतिपत्रेण यत् पुनः॥ ५४८॥
बान्धवेभ्यश्च वान्येभ्यो जनेभ्योऽथार्जितं स्वयम्।
कलाकौशलतो वान्योद्योगतः सममेव तत्॥ ५४९॥

पहले कहे नियमों का यह निश्चित सार है कि क्वांरपन में दाय में मिले धन को छोड़ कर और सारा प्राप्त किया धन निश्चय ही स्त्री-धन होता है। जो बान्धवों द्वारा या अन्यजनों द्वारा उपहार (gift) में मिला हो या फिर मृतिपत्र (bequest) से मिला हो अथवा कला-कौशल से या अन्य उद्योग (exertion) से स्वयं कमाया हो वह भी (पहले कहे के) बराबर (स्त्री-धन) ही होता है।

महाराष्ट्रे परं कन्या यतो दायाधिपस्य हि।
गोत्रजत्वात्तु दायार्हा रिक्थं प्राप्तमतस्तया॥ ५५०॥
दायेऽपि स्त्रीधनं तत्र संमतं न्यायशास्त्रिभिः।
एष एव विशेषोऽस्ति महाराष्ट्रेऽन्यतः खलु॥ ५५१॥

परन्तु क्योंकि बंबई प्रान्त में कन्या दाय-धन के स्वामी के गोत्र में उत्पन्न होने से दाय पाने योग्य होती है, इसलिए न्याय के विद्वानों ने उसके द्वारा दाय में भी प्राप्त किया धन वहां पर स्त्री-धन माना है। अन्यस्थानों से बंबई प्रान्त में निश्चय ही यही विशेषता है।

स्त्री-धनं यत्तु वैधव्ये स्त्रियै दत्तं स्वबन्धुभिः।
अन्यैर्वात्रोपहारेण मृतिपत्रेण वा पुनः॥ ५५२॥
कलाकौशलतो वान्योपायैर्वार्जितं तया।
प्रतिकूलाधिकारेण वृत्तौ समयतो मिथः॥ ५५३॥
प्राप्तं वा यत्तया यत्तु स्त्रीधनं सर्वसंमतम्।
परं दाये विभागे च तया प्राप्तं न तद्धनम्॥ ५५४॥

यहां पर अपने बान्धवों ने या दूसरों ने उपहार या मृतिपत्र के द्वारा स्त्री को उस की विधवावस्था में जो स्त्री-धन दिया हो या उसने कला-कौशल से या दूसरे उपायों से कमाया हो अथवा जो उसने प्रतिकूल अधिकार (adverse possession) से, (भरण-पोषण के लिए) वृत्ति में या आपस के समझौते से पाया हो, वह सबों से

माना हुआ स्त्री-धन होता है। परन्तु उस (स्त्री) के द्वारा दाय (हकदारी) में या बटवारे में प्राप्त किया उसका धन (स्त्री-धन) नहीं होता।

महाराष्ट्रे विवाहेन गोत्रे वित्ताधिकारिणः।
आयातया स्त्रियैवाप्तं दाये न स्यात्स्त्रिया धनम्॥ ५५५॥

बंबई प्रान्त में विवाह के द्वारा धन के अधिकारी के गोत्र में आई हुई स्त्री द्वारा ही दाय (उत्तराधिकार) में पाया हुआ स्त्री-धन नहीं होता।

स्त्रीधनस्याधिकारेऽत्रासतीत्वं नैव बाधकम्।
प्रन्ते कस्मिन्नपि मतं न्यायशास्त्रविशारदैः॥ ५५६॥

यहां पर (भारत में) न्याय के पण्डितों ने स्त्रीधन के अधिकार में किसी भी प्रान्त में (स्त्री का) असतीत्व (unchastity) बाधक नहीं माना है।

स्त्र्यधिकारे भवेद्यत्र त्वज्ञातप्रभवं धनम्।
तत्रतन्निश्चितं ज्ञेयं तस्या एव स्त्रिया धनम्॥ ५५७॥
आसीन् प्रमीतस्तद्भर्ता सधन इतिमात्रतः।
तस्यैव तद्धनं नैव निश्चेयं विबुधैः पुनः॥ ५५८॥

जहां पर स्त्री के अधिकार में बे पते वाला (जिसके प्राप्ति स्थान का पता न हो ऐसा) धन हो, वहां उसे निश्चय रूप से उस स्त्री का ही धन जानना चाहिये। तथा उस का स्वर्गवासी पति मालदार था-इतने से ही विद्वानों को उस धन को उस (पति) का निश्चित नहीं कर देना चाहिए।

पतिवित्ताधिकारिण्या क्रीतं यस्माद्धनाद्धनम्।
न तज्ज्ञेयं हि तद्भर्तुरर्थसञ्चयजं बुधैः॥ ५५९॥

पति के धन पर अधिकार रखने वाली (स्त्री) ने जिस धन से संपत्ति खरीदी हो, उस (धन) को विद्वानों को उसके पति के धन के संचय से उत्पन्न हुआ (पति के धन के संचय में का ही) नहीं मान लेना चाहिये।

स्व-स्त्रीधने स्त्रिया अधिकारः।

अपने स्त्री-धन में स्त्री का अधिकार।

अस्मिन् विषये कात्यायननारदयोर्मतं उद्धृत्य प्रस्तुतमनुसरिष्यते।

इस विषय में कात्यायन और नारद के मत उद्धृत कर के प्रस्तुत विषय पर आयेंगे।

कात्यायनमतम्—(कात्यायन का मत)।

ऊढया कन्यया वापि पत्युः पितृगृहेऽथवा।
भर्तुः सकाशात् पित्रोर्वा लब्धं सौदायिकं स्मृतम्॥
सौदायिकं धनं प्राप्य स्त्रीणां स्वातन्त्र्यमिष्यते।
यस्मात्तदानृशंस्यार्थं तैर्दत्तं तत्प्रजीवनम्॥

सौदायिके सदा स्त्रीणां स्वातन्त्र्यं परिकीर्तितम्।
विक्रये चैव दाने च यथेष्टं स्थावरेष्वपि॥

विवाहिता ने या कन्या ने पति के या पिता के घर में पति से या माता-पिता से जो पाया हो, वह सौदायिक-धन माना गया है। सौदायिक धन में स्त्रियों की स्वतन्त्रता मानी जाती है; क्योंकि वह धन उन्होंने कृपा करके उनकी आजीविका के रूप में दिया होता है। स्थावर सौदायिक धन के बेचने और देने में भी उन (स्त्रियों) की स्वतन्त्रता कही है।

तथाच-(और)।

न भर्ता नैव च सुतो न पिता भ्रातरो न च।
आदाने वा विसर्गे वा स्त्रीधनं प्रभविष्णवः॥

न पति, न पुत्र, न पिता और न भाई स्त्री-धन के लेने या खर्च करने में समर्थ होते हैं।

किन्तु-(परन्तु)

प्राप्तं शिल्पैस्तु यद्वित्तं प्रीत्या चैव यदन्यतः।
भर्तुः स्वाम्यं भवेत्तत्र शेषं तु स्त्री-धनं स्मृतम्॥

स्त्री ने जो धन शिल्प के द्वारा या प्रीति के कारण किसी अन्य पुरुष से प्राप्त किया हो, उस पर पति का अधिकार होता है; बाकी का स्त्री-धन माना गया है।

तथाच (और)

भर्तृदायं मृते पत्यौ विन्यसेत् स्त्री यथेष्टतः।
विद्यमाने तु संरक्षेत् क्षपयेत्तत्कुलेऽन्यथा॥

स्त्री पति के दिये हुए (अस्थावर धन) को उसके मरने पर इच्छानुसार रक्खे (काम में ले)। परन्तु उस (पति) की जीवितावस्था में उसकी रक्षा करे अथवा (उसे) उस (पति) के वंश में सौंपदे।

नारदस्तु-(नारद तो इस प्रकार कहता हैं)

भर्त्रा प्रीतेन यद्दत्तं स्त्रियै तस्मिन् मृतेऽपि तत्।
सा यथाकाममश्नीयात् दद्याद्वा स्थावरादृते॥

पति ने प्रसन्न होकर स्त्री को जो दिया हो उसे वह उस (पति) के मरने पर भी अपनी इच्छानुसार भोग सकती है अथवा स्थावर संपति को छोड़कर (अस्थावर संपत्ति को दूसरे को) दे भी सकती है।

(नारदस्मृति का रचना काल पाँचवीं या छठी शताब्दी माना जाता है।)

अतः कन्या मता शक्ता यथेच्छं स्त्रीधनव्यये।
स्थावरं पतिदत्तं तु परित्यज्याऽधवाऽपि च॥ ५६०॥

सधवात्वे व्यये शक्ता सौदायिकधनस्य सा।
पतिदत्तं परित्यज्य सारः स्मृत्योस्तयोरयम्॥ ५६१॥

इसलिये कन्या (अपने) स्त्री-धन के अपनी इच्छानुसार खर्च करने में समर्थ मानी गई है। और विधवा भी पति के दिये स्थावर धन को छोड़कर (अन्य स्त्री-धन को) खर्च कर सकती है। तथा सधवावस्था (Coverture) में वह पति के दिये को छोड़कर सौदायिक धन को खर्च कर सकती है। यह उन दोनों स्मृतियों (कात्यायन और नारदस्मृति) का सार है।

भेदस्त्वद्य नयाधीशैः पतिबन्धुप्रदत्तयोः।
न सौदायिकयोरत्र मन्यते न्यायतः परम्॥ ५६२॥
सौदायिकं द्विधा भक्तं पूर्णाऽपूर्णाऽधिकारतः।
पूर्वत्र सा व्यये शक्ता यथेच्छं नाऽपरत्र तु॥ ५६३॥

यहां पर आजकल तो न्यायधीशों ने पति के दिये और बान्धवों के दिये सौदायिक का भेद न्याय से नहीं माना है। परन्तु सौदायिक धन को पूर्ण (Absolute) अधिकार और अपूर्ण (Limited) अधिकार के रूप से दो प्रकारों में बांटा है। पहले को वह इच्छानुसार खर्च कर सकती है दूसरे को नहीं कर सकती।

भोगायाजीवमाप्तं साऽऽजीवं दातुं धनं क्षमा।
पित्राऽतो यत्र दत्तं हि समयेनामुना धनम्॥ ५६४॥
यदाजीवं तु मत्कन्या भोदयतेऽदस्ततश्च तत्।
गमिष्यति मदीयं हि भ्रातुष्पुत्रमसंशयम्॥ ५६५॥
तत्राजीवं हि सा धत्तेऽधिकारम् तद्धने, क्षमा।
आजीवं चैव तत्रस्थं स्वार्थं दातुं निजेच्छया॥ ५६६॥

जीवन पर्यन्त उपभोग के लिए पाये धन को वह (स्त्री) अपने जीवन पर्यन्त के लिये दे सकती है। इसलिये जहां पर पिता ने इस शर्त के साथ धन दिया हो कि अपने जीवन पर्यन्त तो उसको मेरी कन्या भोगेगी और उसके बाद वह निश्चय ही मेरे भतीजे को मिलेगा, वहां पर वह (कन्या) अपने जीवन पर्यन्त ही उस धन पर अधिकार रखती है और उसमें रहे अपने स्वार्थ को अपने जीवन पर्यन्त ही इच्छा-नुसार दे सकती है।

कौमारेऽतः स्त्रियः शक्ता निजस्वस्यार्थव्यये ध्रुवम्।
ऋतेऽवयस्थतां बाधा न तत्र त्वस्ति काचन॥ ५६७॥

इसलिये क्वाँरपन में स्त्रियां निश्चय ही अपना स्त्री-धन खर्च कर सकती हैं। वहां पर नाबालिगपन को छोड़कर और कोई बाधा नहीं है।

अवयःस्था तु नो कन्या निजस्वस्यार्थव्यये क्षमा।
तथेच्छापत्रतस्तस्य प्रदानेऽप्यत्र निश्चितम्॥ ५६८॥

परं सा तत्प्रदानेऽपि रक्षकद्वारतः क्षमा।
भवेदष्टादशाब्दोर्ध्वं सा वयःस्था स्वयं पुनः ॥ ५६९ ॥

नाबालिग क्वारी कन्या अपने स्त्री-धन को खर्चने में और यहां पर उस (स्त्री-धन) को इच्छा-पत्र से देने में भी निश्चय ही असमर्थ होती है। परन्तु वह उसके देने में भी रक्षक (guardian) के द्वारा समर्थ होती है और अट्ठारह वर्ष (की उम्र) के बाद वह स्वयं बालिग हो जाती है।

सौदायिकं च तद्भिन्नं स्त्रीधनं द्विविधं मतम्।
सौदायिकं तु यत्प्रेम्णा कौमारेऽध्यग्नि वा पुनः ॥ ५७० ॥
विवाहान्ते प्रदत्तं स्यात्पितृभ्यां वाथ बन्धुभिः।
तयोः, पत्याथ तस्यापि बन्धुभिश्च स्त्रियै धनम् ॥ ५७१ ॥

धन सौदायिक और उससे भिन्न दो तरह का माना है। जो (धन) माता पिता ने या उनके बान्धवों ने अथवा पति ने या उसके बान्धवों ने प्रेम से स्त्री को क्वाँरपन में, विवाह के समय या विवाह के बाद दिया हो, वह सौदायिक होता है।

संबन्धिभिः प्रदत्तं वा ज्ञेयं सौदायिकं धनम्।
मृतिपत्रेण तैर्दत्तमपि सौदायिकं पुनः ॥ ५७२ ॥

अथवा संबन्धियों (रिश्तेदारों) द्वारा दिये धन को सौदायिक धन जानना चाहिए। फिर उनके द्वारा मृतिपत्र से दिया भी सौदायिक होता है।

सौदायिकधनस्यात्र व्यये दाने समर्पणे।
इच्छापत्रेणोपहृतौ विक्रये वा यथोप्सितम् ॥ ५७३ ॥
सधवापि विना पत्युराज्ञामेव क्षमा मता।
अक्षमस्तत्पतिस्तस्याः सौदायिकनियन्त्रणे ॥ ५७४ ॥

यहां पर सधवा स्त्री भी सौदायिक धन के अपनी इच्छानुसार खर्च करने में, दान में, देने में, इच्छापत्र से उपहृत (हासिल) करने में, और बेचने में, बिना पति की आज्ञा के, अपनी इच्छानुसार, समर्थ मानी गई है। उसका पति सौदायिक धन के नियन्त्रण में असमर्थ होता है।

दुर्भिक्षसंकटे व्याधौ कारावासे परं क्षमः।
पतिः स्वयं स्वपत्न्यास्तु समादातुमसंशयम् ॥ ५७५ ॥
एष व्यक्तिगतः पत्युराधिकारोऽस्ति निश्चितम्।
तदुत्तमर्णा नो शक्तास्तमादातुं निजेच्छया ॥ ५७६ ॥

परन्तु दुर्भिक्ष (कहत) के संकट में, बीमारी में और कारावास में पति अपनी स्त्री के स्त्री-धन को निश्चय ही ले सकता है। वह निश्चय ही पति का व्यक्तिगत अधिकार है। उसके कर्ज देनेवाले अपनी इच्छा से उस (स्त्री-धन) को नहीं ले सकते।

ग्रहणं याज्ञवल्क्योक्तमत्र नैव मतं बुधैः ।
केवले ग्रहणे किन्तूपयोगे तस्य निश्चितम् ॥ ५७७ ॥
अतोऽवस्थासु तास्वेव पत्यात्तं स्त्रीधनं, परम् ।
नो भुक्तं व्ययितं नो वा स्वस्मिञ्जीवति यत्र तु ॥ ५७८ ॥
तत्र तस्मिन्मृते तस्योत्तमर्णास्तद्ग्रहेऽक्षमाः
प्राप्यापिशासनं राजाज्ञया तस्य ऋणं प्रति ॥ ५७९ ॥

विद्वानों ने इस विषय में याज्ञवल्क्य का कहा 'ग्रहण' (शब्द) केवल लेने में ही नहीं माना है, किन्तु उस (स्त्री-धन) के उपयोग में निश्चित किया है । इसलिए जहां पर पति ने उन (ऊपर कही) अवस्थाओं में ही स्त्री-धन लिया हो, परन्तु अपने जीते जी न उसका उपभोग किया हो न उसे खर्च किया हो, वहां पर उस (पति) के मरने पर उस (पति) को कर्ज देनेवाले उसके कर्जे के विषय में राजाज्ञा से डिग्री पाकर भी उस (स्त्री-धन) को नहीं ले सकते ।

अन्यैरुपहृतं यत्तु यच्छिल्पादिभिरर्जितम् ।
स्त्रिया, सौदायिकाद् भिन्नं स्त्रीधनं तन्मतं बुधैः ॥५८०॥

स्त्री को जो दूसरे (रिश्तेदारों से भिन्न पुरुषों) ने उपहार में दिया हो, या जो उसने शिल्प (कारीगरी) के कामों आदि से कमाया हो, विद्वानों ने उसे सौदायिक से भिन्न स्त्री-धन माना है ।

पत्यौ जीवति नो शक्ता तद्व्यये सा यथेप्सितम् ।
पत्युस्त्वनुमतेस्तत्राऽपेक्षा भवति निश्चिता ॥ ५८१ ॥

वह (स्त्री) पति के जीते जी उसको इच्छानुसार खर्च नहीं कर सकती । उसमें पति की अनुमति की निश्चय रूप से आवश्यकता होती है ।

शक्तस्तदुपभोगे स यथेच्छं सर्वदा, परम् ।
तद्व्यक्तिगत एवैषोऽधिकारोऽपि मतो बुधैः ॥ ५८२ ॥
तन्मृत्यौ तु समर्था स्त्री यथेच्छं तद्व्यये पुनः ।
इच्छापत्रोपहाराभ्यामपि दातुं क्षमा च तत् ॥ ५८३ ॥

वह (पति) उस (सौदायिक से भिन्न स्त्री-धन) के उपभोग में सदा इच्छानुसार समर्थ होता है । परन्तु विद्वानों ने इस अधिकार को भी उसका व्यक्तिगत ही माना है । और उस (पति) के मरने पर तो स्त्री उस (धन) के खर्च करने में अपनी इच्छानुसार समर्थ होती है, तथा इच्छा-पत्र और उपहार से भी उसे दे सकती है ।

नो यद्यपि क्षमा नारी सति पत्यौ यथेप्सितम् ।
स्थ्यर्थं सौदायिकाद्भिन्नं व्ययितुं तु कदाचन ॥ ५८४ ॥

तथापि तस्यां मीतायां सति पत्यावुताऽसति।
सोऽपि याति स्त्रिया एव तस्याः स्वयर्थाधिकारिणः॥ ५८५॥

यद्यपि यहां पर स्त्री सौदायिक से भिन्न स्त्री-धन के इच्छानुसार खर्च करने में ति के जीते जी कभी भी समर्थ नहीं होती, तथापि पति के जीते जी या मरने के ाद उस (स्त्री) के मर जाने पर, वह (स्त्री-धन) भी उस स्त्री के ही अधिकारियों ो मिलता है।

सति पत्यौ मृते वापि स्वयर्थः प्राप्तः स्त्रिया तु यः।
वैधव्ये तं यथेच्छं सा व्ययितुं हि क्षमा मता॥ ५८६॥

स्त्री ने पति के जीते जी या मरने पर जो स्त्री-धन प्राप्त किया हो, उसको वह ैधवापन में इच्छानुसार खर्च करने में समर्थ मानी गई है।

स्त्रीधनस्य दायनियमाः।

स्त्री-धन की हकदारी के नियम।

कुमार्याः स्त्रीधनं याति क्षेत्रजं तत्सहोदरम्।
मातरं पितरं तातमातृदायार्हिणौ क्रमात्॥ ५८७॥

कारी लड़की का स्त्री-धन क्रम से उसके क्षेत्रज (भिन्न पिता द्वारा एक माता उत्पन्न हुए) भाई को, माता को, पिता को, पिता के हकदारों को और माता के कदारों को मिलता है। (यह नियम सब जगह माना जाता है)।

वाग्दानान्तोपहारास्तु प्रतिदेया जनैर्मिथो।
वरकन्योरन्यतर-मृतौ स्व-स्वव्ययोनिताः॥ ५८८॥

मँगनी होने के बाद के (दिये) उपहार, वर और कन्या में से किसी एक के रने पर, लोगों को अपना-अपना खर्च बाद देकर आपस में लौटा देने चाहिए।

बौधायनेन पूर्वोक्ताः त्रयो दायहरा मताः।
मित्रोदये मता मातापितृदायहरा अपि॥ ५८९॥

बौधायन ने पहले कहे तीन (क्षेत्रज भाई, माता और पिता) हकदार माने वीरमित्रोदय में माता और पिता के हकदार भी (उन्हीं में) मान लिये गये हैं।

महाराष्ट्रीयविबुधैः सपिण्डाः प्राक् पितुस्ततः।
मातुः सपिण्डा दायार्हाः कृता निर्णीय तद्वचः॥ ५९०॥
पितुर्मातृस्वसाऽतः प्राग्दायार्हा जनिमातृतः।
एष एव नयो नूनं द्रविडेऽपि मतो बुधैः॥ ५९१॥

बंबई प्रान्त के विद्वानों ने उस (वीरमित्रोदय) के वचन का निर्णय करके ले पिता के सपिण्डों को और उसके बाद माता के सपिण्डों को हकदार बना

दिया है। इसलिए पिता की मां की बहन (पिता की मासी) नानी से पूर्व दाय के योग्य होती है। विद्वानों ने यही नियम मद्रास में भी माना है।

पितुः स्वसा महाराष्ट्रे षष्ठाद्वा पञ्चमात्पितुः ।
प्राक्पुंसपिण्डात्कन्याया मता दायहरा परम् ॥ ५६२ ॥
द्रविडे भगिनी यस्मात्संख्याता बन्धुषु ध्रुवम् ।
पितुः सपिऽण्डतस्तस्मात्पैतृव्योऽर्हः स्वसुः पुरा ॥ ५६३ ॥

बंबई प्रान्त में पिता की बहन पिता से छठी या पांचवीं पीढी के पुरुष-सपिण्ड से पहले कन्या की हकदार मानी गई है। परन्तु मद्रास में बहन निश्चय ही बन्धुओं में गिनी गई है, इसलिए चचेरा भाई पिता का सपिण्ड होने से बहन से पहले योग्य (हकदार) होता है।

मैताक्षरेषु वङ्गे प्राक् स्वसा तस्याः सुतस्तथा ।
पैतृव्यतस्तु दायार्हौ मतौ कन्याधने पुनः ॥ ५६४ ॥

फिर बंगाल में मिताक्षरा को मानने वालों में कन्या के धन में बहन और उसका लड़का चचेरे भाई से पहले हकदार होते हैं।

प्रान्तभेदेन शुल्कस्य व्याख्याऽग्रे हि प्रदर्श्यते ।
वैशद्येन मता या तु तत्रत्यैर्न्यायशास्त्रिमिः ॥ ५६५ ॥

प्रान्तों के भेद से शुल्क स्त्री-धन की व्याख्या, जोकि वहां के न्याय के पण्डितों ने मानी है, आगे खुलासा तौर से बतलाई जाती है।

वाराणसीमहराष्ट्रमिथिलाद्रविडेषु तु ।
स्त्रियाः शुल्कधनं याति क्षेत्रजान् हि सहोदरान् ॥ ५६६ ॥
मातरं चाथ पितरं तत्सपिण्डान्समोदकान् ।
बान्धवांश्च क्रमान्मैताक्षरेषु सुविनिश्चितम् ॥ ५६७ ॥

मिताक्षरा को मानने वालों में स्त्री का शुल्क-धन क्षेत्रज (भिन्न पिता द्वारा एक माता में उत्पन्न हुए) भाइयों को, माता को फिर पिता को, उस (पिता) के सपिण्डों को, समानोदकों को, और बान्धवों को, निश्चय ही, क्रम से मिलता है।

दायभागमते शुल्को सोदरं मातरं तथा ।
पितरं च पतिं याति क्रमतो नात्र संशयः ॥ ५६८ ॥

दायभाग के मत में (स्त्री का) शुल्क (धन) क्रम से सगे भाई को, माता को, पिता को और पति को मिलता है। इसमें संशय नहीं है।

गौतमस्तु मतो मुख्यः शुल्कदाये हि पण्डितैः ।
वच उद्ध्रियते तस्माद्विचारायात्र तस्य हि ॥ ५६९ ॥
"भगिनी शुल्कं सोदर्याणामूर्ध्वं मातुः पितुश्च पूर्वं चैके" ।

पण्डितों ने शुल्क की हकदारी में गौतम को मुख्य माना है, इसलिये यहां पर

विचार के लिये उसका वचन उद्धृत किया जाता है।

"बहन का शुल्क धन सेंग्रज भाइयों का उसके बाद माता का फिर पिता का होता है। परन्तु कुछ पहले पिता का और फिर माता का बतलाते हैं।"

मिताक्षरीयाः स्त्रीधनस्य दायनियमाः।

मिताक्षरा में के स्त्री-धन की हकदारी के नियम।

यद् गृहीत्वा प्रदीयेत कन्या शुल्कस्तु स स्मृतः।
मिताक्षरायां, तत्रैव स्त्र्यर्थश्च द्विविधः पुनः॥ ६००॥
एकः शुल्कोऽपरः शुल्काद्भिन्नश्च प्रथमस्तयोः।
याति पूर्वोक्तरीत्यैवाऽपरो निम्नक्रमात्पुनः॥ ६०१॥
कनीं कुमारीमूढां च तामेवात्राऽप्रतिष्ठिताम्।
प्रतिष्ठितां ज दौहित्रीं दौहित्रं स्वसुतं ततः॥ ६०२॥
पौत्रं तस्याऽप्यभावे हि विध्यूढायाः स्त्रियास्तु सः।
पतिं तस्य च दायादान्नेदिष्ठक्रमतो व्रजेत्॥ ६०३॥
तेषामभावे क्रमतोऽसृक्संबद्धांस्ततो नृपम्।
उक्तस्य पूर्व-पूर्वस्याऽभावे नूनं परं परम्॥ ६०४॥

जिस (धन) को लेकर कन्या दी जाय उसे मिताक्षरा में शुल्क माना है। और पर स्त्री--धन दो तरह का कहा है-एक शुल्क और दूसरा शुल्क से भिन्न। दोनों में से पहला पहले कही रीति से ही जाता है (देखो श्लोक ५९६ और ९७) और दूसरा नीचे लिखे क्रमसे जाता है:-क्वारी कन्या को, ब्याही गरीब या को, ब्याही संपन्न कन्या को, नवासी को, नवासे को, अपने पुत्र को, फिर पोते और उसके भी न होने पर शास्त्र की विधि से ब्याही हुई स्त्री का वह (शुल्क से न धन) पति को और उसके हकदारों को सब से निकटवाले के क्रम से जाता है। अर्थात्--पहले सबसे नजदीक वाले को उसके बाद उससे अगले को आदि।) और के न होने पर क्रम से रुधिर का संबन्ध रखने वालों (blood relations) को र फिर राजा को जाता है। कहे गये पहले के न होने पर निश्चय ही उसके पिछले छले को मिलता है।

निजसन्ततिहीनायाः पतिदायहरा इमे।
सपत्नीसंभवा भर्तुः पुत्राः पौत्राः प्रपौत्रकाः॥ ६०५॥
सपत्न्यश्च सुतास्तासां तत्पुत्राश्च क्रमात्ततः।
भर्तुर्माता पिता भर्तृभ्रातरस्तत्सुताः पुनः॥ ६०६॥
सपिण्डा अपरे चाथ समानोदकभागिनः।
बान्धवाश्च क्रमान्मिताक्षरेषु तु न संशयः॥ ६०७॥

तत्राऽनुक्ता अपि मता, मयूखानुगतेषु तु।
दौहित्रस्याप्यभावे तु पूर्वं तातस्ततः प्रसूः॥ ६०८॥
सहोदराश्च स्वर्यातैः सोदराणां सुतैः सह।
महाराष्ट्रे सगोत्राणां सपिण्डानां स्त्रियोऽपि च॥ ६०९॥

मिताक्षरा को मानने वालों में, वहां पर नहीं कहे होने पर भी, अपनी सन्तान (आल--औलाद) से हीन स्त्री के पति के हकदार क्रम से ये होते हैं:—पति के सौत से उत्पन्न हुए पुत्र, पोते और परपोते, सौतें, उन (सौतों) की लड़कियां, और उन (लड़कियों) के लड़के। उसके बाद पति की माता, पति का पिता, पति के भाई, उनके लड़के और फिर क्रमसे (पति के) दूसरे सपिण्ड, समानोदक और बन्धु। इसमें संशय नहीं है। व्यवहारमयूख को माननेवालों में तो नवासे (सपत्नी से उत्पन्न कन्याके पुत्र) के भी अभाव में पहले पिता और फिर माता। उसके बाद सगेभाई, मरे हुए सगे भाईयों के लड़कों के साथ (हकदार) माने गये हैं। तथा बंबई प्रान्त में सगोत्र सपिण्डों की स्त्रियां भी हकदार होती हैं।

अविध्यूढस्त्रियाः सोऽर्थः क्रमादम्बां च तातकम्।
पितृदायहरांश्चाथ भर्तृदायहरान्नृपम्॥ ६१०॥
पितृदायहरास्त्वत्र मृताया भ्रातरस्तथा।
भ्रातृव्याश्च विमाताथ स्वसारस्तत्सुताः पुनः॥ ६११॥
मातामही पितृव्याश्चाऽपरे पतृसपिण्डकाः।
समोदका बान्धवाश्च पूर्वाऽभावेऽपराः क्रमात्॥ ६१२॥

शास्त्र की विधि के बिना ब्याही हुई स्त्री का वह (शुल्क से भिन्न) धन क्रम से माता को, पिता को, और फिर पिता के हकदारों को, पति के हकदारों को और राजा को मिलता है। यहां पर पिता के हकदार तो–मरी हुई स्त्री के भाई, भतीजे, सौतेली माता, बहनें, उनके पुत्र, फिर दादी, चाचा और पिता के दूसरे सपिण्ड, समानोदक और बन्धु, क्रम से पहलों के अभाव में उनके बाद के, होते हैं।

केवलं स्यान्महाराष्ट्रे दाये प्राप्तं धनं स्त्रिया।
पूर्वोक्तासु त्ववस्थासु स्त्रीधनं याति तत्पुनः॥ ६१३॥
मैताक्षरेषु पूर्वोक्तविधिनैव न संशयः।
मायूखेषु पुनर्याति पुत्रान्पौत्रांश्च तत्सुतान्॥ ६१४॥
पुत्रीरथ च दौहित्रान्दौहित्रीः क्रमतस्ततः।
निजसन्ततिहीनाया विध्यूढायाः स्त्रिया धनम्॥ ६१५॥
पतिं स्वीयांश्च दायादान् पतिवंशसमुद्भवान्।
पतिदायहरा एव स्वीयदायादशब्दतः॥ ६१६॥

ज्ञेया अत्रापि ते चाथ पूर्वमेव प्रदर्शिताः।
सपत्नीसंभवा भर्तुः पुत्राद्या निश्चयेन हि ॥ ६१७॥

केवल बंबई प्रान्त में स्त्री द्वारा दाय (हकदारी) में पाया धन पहले कही अवस्थाओं में (देखो श्लोक ५०६–५१० और ५१२) स्त्री-धन होता है और वह मिताक्षरा को माननेवालों में पहले कही रीति से ही जाता है (देखो श्लोक, ६०२ से ६१२ तक) इसमें संशय नहीं है। और व्यवहारमयूख को माननेवालों में क्रम से बेटों को, पोतों को, परपोतों को, लड़कियों को, नवासों को, नवासियों को और उसके बाद अपनी आल-औलाद से हीन शास्त्रानुसार विवाहित स्त्री का धन (शुल्क–भिन्न स्त्री--धन) पति को, और पति के वंश में उत्पन्न हुए अपने (स्त्री के) हकदारों को जाता है। यहां पर भी अपने हकदार इन शब्दों से पति के हकदार ही जानने चाहिए और वे पति के सौत से उत्पन्न हुए पुत्र आदि निश्चयरूप से पहले ही बतला दिये गये हैं। (देखो श्लोक ६०५ से ६०८ तक।)

अविध्यूढस्त्रिया याति क्रमात्सोऽर्थस्तु मातरम्।
पितरं तातदायादान् भ्रात्रादीन्पूर्ववर्णितान् ॥ ६१८॥

विना शास्त्र की रीति से ब्याही स्त्री का वह धन (शुल्कभिन्न स्त्री--धन) माता को, पिता को और पहले कहे भाई आदि पिता के हकदारों को मिलता है। (देखो श्लोक ६१० से ६१२ तक।)

स्त्रीपुंसाभ्यां स्त्रिया प्राप्तधनदाये तु या भिदा।
सा विस्तराद् यथास्थानमग्रे वै सूचयिष्यते ॥ ६१९ ॥

स्त्री द्वारा स्त्री और पुरुष से प्राप्त किये धन के उत्तराधिकार में जो भेद है, वह यथास्थान आगे विस्तारसे बताया जायगा।

सामान्येन विवाहस्तु जातो विधिविधानतः।
एवानुमीयते तावद्यावन्नो तस्य खण्डनम् ॥ ६२० ॥

जब तक उसका खण्डन न हो, तब तक विवाह साधारण तौर पर शास्त्र की रीति से हुआ ही अनुमान किया जाता है।

मिताक्षरानुसारेण स्त्रीधनं तु मृतस्त्रियाः।
तस्याः स्त्रीसन्तति याति पूर्वं पुंसन्ततेर्ध्रुवम् ॥ ६२१ ॥

मरी हुई स्त्री का स्त्री--धन मिताक्षरा के अनुसार निश्चय ही उसकी पुरुष सन्तान के पूर्व स्त्री सन्तान को मिलता है।

स्त्री–धनं तु स्त्रिया याति प्राक्पुत्रं च ततः पतिम्।
पुत्रे त्वधर्मजे भर्ता नूनं तस्या धनं हरेत् ॥ ६२२॥

स्त्री का स्त्री--धन पहले पुत्र को और बाद में पति को मिलता है। पुत्र के व्यभिचार से उत्पन्न हुए होने पर निश्चय ही उसका धन पति लेता है।

ऊढानूढासु कन्यासु भेदो यः कथितः पुरा ।
दौहित्रीषु त्वनूढासु ह्यूढासु स न संमतः ॥ ६२३ ॥

ब्याही हुई और बिन ब्याही कन्याओं में जो भेद पहले कहा है (देखो श्लोक ६०२) वह बिन ब्याही और ब्याही नवासियों में नहीं माना है ।

वाराणसेयाः स्त्रीधनस्य दायनियमाः ।

बनारस के स्त्री-धन की हकदारी के नियम ।

वाराणस्यां तु पूर्वोक्तो मैताक्षरमतानुगः ।
स्त्र्यर्थस्य दायनियमः तत्रत्यैर्विबुधैर्मतः ॥ ६२४ ॥

बनारस में तो वहां के पण्डितों ने पहले कहा मिताक्षरा के मत के अनुसार चलनेवाला स्त्री-धन की हकदारी का नियम माना है । (देखो श्लोक ६०२ से ६०७ तक, और ६१० से ६१२ तक ।)

महाराष्ट्रीयाः स्त्रीधनस्य दायनियमाः ।

बंबई के स्त्री-धन की हकदारी के नियम ।

मयूखस्तु मतो मुम्बाद्वीपेऽथो गुर्जरे पुनः ।
उत्तरे कोङ्कणेऽन्यत्र विज्ञानेश्वरनिर्णयः ॥ ६२५ ॥

बंबई द्वीप में, गुजरात में और उत्तर कोंकण में व्यवहारमयूख माना गया है और दूसरी जगह विज्ञानेश्वर के निर्णय (मिताक्षरा को) माना है ।

विज्ञानेश्वरभक्तेषु ज्ञेयो दायक्रमो बुधैः ।
मिताक्षरायां कथितः पूर्वोक्तस्तत्र निश्चितम् ॥ ६२६ ॥

विद्वानों को वहां पर, विज्ञानेश्वर के अनुयायियों में, निश्चय ही, मिताक्षरा में वर्णित पहले कहा दायक्रम जानना चाहिये । (देखो श्लोक ६०० से ६०७ तक और ६१० से ६१२ तक ।)

मयूखीयाः स्त्रीधनस्य दायनियमाः ।

व्यवहारमयूख में कहे स्त्री-धन के दाय के नियम ।

व्यवहारमयूखे तु द्विधा भक्तं स्त्रिया धनम् ।
पारिभाषिकमेकं हि यौगिकं चापरं पुनः ॥ ६२७ ॥

व्यवहारमयूख में तो स्त्री-धन दो में बांटा गया है । एक पारिभाषिक (technical) और दूसरा यौगिक (non-technical)

बन्धुभिस्तूपहारेण मृतिपत्रेण वा पुनः ।
दत्तं यद्वा कदाप्यत्राऽपरैरध्यग्नि वाऽथवा ॥ ६२८ ॥

अध्यावाहनिके दत्तं स्त्रीधनं पारिभाषिकम् ।
एतद्भिन्नं च विज्ञेयं यौगिकं हि स्त्रिया धनम् ॥ ६२९ ॥

बन्धुओं ने यहां पर जब कभी भी उपहार के द्वारा दिया या मृत्यु--पत्र के द्वारा दिया और अन्य लोगों ने विवाहाग्नि के सामने दिया या फिर स्त्री के पहले पहल पति के घर जाते समय दिया पारिभाषिक (technical) स्त्री--धन होता है । इससे भिन्न (स्त्री--धन) को यौगिक (non-technical) स्त्री-धन जानना चाहिए ।

चतुर्धा तु पुनर्भक्तं स्त्रीधनं पारिभाषिकम् ।
शुल्कं च यौतकं भर्तृदत्तं तेभ्योऽपरं तथा ॥ ६३० ॥

फिर पारिभाषिक स्त्री--धन चार में बांटा है-शुल्क, यौतक, भर्तृदत्त और इनसे भिन्न ।

भाण्डानि पशवो गावोऽलङ्कारास्तत्कृतेऽथवा ।
द्रव्यं स्त्रियै प्रदत्तं तु तत्र शुल्कं विनिश्चितम् ॥ ६३१ ॥

स्त्री को दिये बरतन, (सवारी या बोझा लादने के) पशु, गायें (दूध देनेवाले पशु) और जेवर या उनके लिए (एवज़ में) दिया धन वहां (व्यवहारमयूख में) शुल्क निश्चित किया गया है ।

एकासने स्थितायै तु विवाहे स्वामिना सह ।
दत्तं हि यौतकं पत्न्यायुतत्वात्तत्र तु स्त्रियाः ॥ ६३२ ॥

विवाह में पति के साथ एक आसन पर बैठी हुई स्त्री को दिया, वहां पर स्त्री के पति से युक्त होने के कारण, यौतक होता है ।

पत्या तु निजभार्यायायुपहारेण यद्धनम् ।
मृतिपत्रेण वा दत्तं भर्तृदत्तं हि तत्स्मृतम् ॥ ६३३ ॥
स्वबन्धुभिस्तथा भर्तृबन्धुभिस्तु समर्पितम् ।
मृतिपत्रोपहाराभ्यां विवाहान्ते तु यद्धनम् ॥ ६३४ ॥
अन्वाधेयकनाम्ना तत्स्मृतिकारैर्विनिश्चितम् ।
तस्याप्यस्मिन्समावेशो मयूखे विहितः पुनः ॥ ६३५ ॥

पति ने उपहार द्वारा या मृति--पत्र द्वारा जो धन अपनी स्त्री को दिया हो, उसे भर्तृदत्त कहा है । अपने बन्धुओं ने या पति के बन्धुओं ने मृति-पत्र या उपहार के द्वारा विवाह के बाद (स्त्री को) जो धन दिया हो, उसे स्मृतिकर्ताओं ने अन्वाधेयक नाम से निश्चित किया है और व्यवहारमयूख में उसका भी समावेश इस (भर्तृदत्त) में ही कर दिया गया है ।

आधिवेदनिकाद्यं तु यदुक्तं स्त्रीधनं पुनः ।
तत्तु तत्र मतं नूनमपरं पारिभाषिकम् ॥ ६३६ ॥

पति ने अपने दूसरे विवाह के समय स्त्री को दिया आधिवेदनिक आदि जो स्त्री-

धन कहा है, उसे वहां पर (व्यवहारमयूख में) निश्चय ही अन्य पारिभाषिक धन माना है ।

यौगिकं तु स्त्रिया प्राप्तं दाये स्त्रीधनरूपतः ।
स्त्रियार्जितं प्रदत्तं वा तद्वृत्त्यायपरैस्तथा ॥ ६३७ ॥
अध्यग्न्यध्यावाहनिकभिन्नमुपहृतं पुनः ।
मृतिपत्रेण वा दत्तमन्यच्चापारिभाषिकम् ॥ ६३८ ॥

स्त्री द्वारा दायमें स्त्री-धनरूप से प्राप्त किया, स्त्री द्वारा कमाया, उसकी जीविका (maintenance) के लिए दिया और दूसरे (रिश्तेदारों से भिन्न) लोगों ने विवाहाग्नि के सामने और स्त्री के प्रथमवार पति के घर को जाने के समय दिये धन को छोड़कर उपहार में दिया या मृति-पत्र से दिया (bequeathed) और दूसरा जो पारिभाषिक धन में नहीं गिनाया गया है वह यौगिक धन (nontechnical) स्त्री-धन होता है ।

शुल्कस्तु पूर्वकथितरीत्यैवात्रापि गच्छति ।
यौतकं यात्यनूढाश्च कन्याः पूर्वं ततश्च तत् ॥ ६३९ ॥
असत्सु तासु भर्तारं तद्दायादानथ क्रमात् ।
विध्यूढायास्तथाऽन्याया मातरं पितरं तथा ॥ ६४० ॥
पितृदायहरांश्चाथ क्रमान्नैवात्र संशयः ।
अनूढकन्यकाभावे तूढाः कन्याश्च तत्सुताः ॥ ६४१ ॥
तासां पुत्राश्च प्राग्भर्तु र्दायार्हाः कस्यचिन्मते ।
मिताक्षरायामपि ते यतः प्राग्दायभागिनः ॥ ६४२ ॥

शुल्क तो यहां पर भी पहले कही रीति से ही जाता है । (देखो श्लोक ५६६ और ५६७ ।) यौतक पहले क्वांरी कन्याओं को और फिर उनके न होने पर शास्त्रानुसार विवाहिता स्त्री का पति को और फिर क्रम से उसके हकदारों को मिलता है । तथा दूसरी (शास्त्र की रीति से नहीं ब्याही गई स्त्री) का क्रम से माता को, पिता को और पिता के हकदारों को मिलता है, इसमें सन्देह नहीं है । किसी के मतमें क्वांरी कन्या के न होने पर ब्याही हुई कन्या, उसकी लड़कियां, उसके लड़के पति से पहले दाय के योग्य माने गये हैं, क्योंकि मिताक्षरा में भी वे पहले दाय-धन के हकदार होते हैं ।

भर्तृदत्ते मयूखोक्ते स्त्रियाः पुत्राश्च कन्यकाः ।
अनूढाः सहभागार्हाः समभागहरास्तथा ॥ ६४३ ॥
अनूढानामभावे तु पुत्रा ऊढाश्च कन्यकाः ।
पूर्वोक्तरीत्या भागार्हास्तदभावे सुतासुताः ॥ ६४४ ॥
दौहित्राश्च स्वजननीभागतः प्राप्नुयुर्धनम् ।
स्त्रियाः पौत्राश्च स्वीयेन पितृभागेन भागिनः ॥ ६४५ ॥

तस्याः सन्तत्यभावे तु विध्यूढायाः स्त्रियास्तु तत्।
पतिं तस्याथ दायादान् क्रमाद्याति सुनिश्चितम्॥ ६४६॥
अविध्यूढस्त्रिया याति मातरं पितरं तथा।
पितृदायहरान्नूनं भर्तृदत्तं क्रमात् क्रमात्॥ ६४७॥

व्यवहारमयूख में कहे भर्तृदत्त--(स्त्री--धन) में स्त्री के पुत्र और स्त्री की क्वारी लड़कियां साथ--साथ भाग पाने योग्य होते हैं और बराबर हिस्सा लेते हैं। अविवाहित कन्याओं के न होने पर (उसके) पुत्र और विवाहित लड़कियां पहले कही रीति से (साथ--साथ और बराबर) भाग के योग्य होते हैं। उनके न होने पर लड़की की लड़कियां (नवासियां) और नवासे अपनी माता के भाग से धन पाते हैं (अर्थात्-कन्याओं के हिसाब से धन के भाग करके प्रत्येक कन्या के लड़के और लड़कियों में उसका हिस्सा बांट दिया जाता है)। उसके बाद स्त्री के पोते पिता के हिस्से से हिस्सेदार होते हैं (अर्थात्-स्त्री के पुत्रों की संख्यानुसार उसके धन के भाग करके प्रत्येक पुत्र के पुत्रों में उसका भाग बांट दिया जाता है)। उस स्त्री के सन्तान के अभाव में शास्त्रनुसार ब्याही स्त्री का वह (भर्तृदत्त) निश्चय ही पति को और फिर क्रम से उसके हकदारों को मिलता है। तथा अशास्त्रीय रीति से ब्याही स्त्री का भर्तृदत्त धन निश्चय ही क्रम--क्रम से माता को, पिता को और पिता के हकदारों को मिलता है।

अन्वाधेयकवित्तस्य भर्तृदत्तसमत्वतः।
एष एव क्रमो ज्ञेयो दाये तत्र सुनिश्चितम्॥ ६४८॥

अन्वाधेयक (विवाह के बाद रिश्तेदारों ने और पति ने दी) संपत्ति का भर्तृदत्त के समान होने से उसकी भी दाय (हकदारी) में निश्चयरूप से यही क्रम जानना चाहिए।

पारिभाषिकमन्यद्यत्तद्याति क्रमशः पुनः।
अनूढाः कन्यकास्तस्या ऊढास्ताश्चाप्रतिष्ठिताः॥ ६४९॥
ऊढाः प्रतिष्ठिताः कन्यासन्ततिं च ततः पुनः।
स्त्रियाः पुत्रानथो पौत्रांस्तदभावे च निश्चितम्॥ ६५०॥
विध्यूढायाः पतिं तस्य दायादान् क्रमतस्तथा।
अविध्यूढस्त्रियाः किन्तु प्रसूं तातं तदुत्तरान्॥ ६५१॥

फिर जो दूसरा पारिभाषिक (technical) (स्त्री-धन) है वह क्रम से उस (स्त्री) की क्वारी लड़कियों को, ब्याही हुई गरीब लड़कियों को, ब्याही हुई संपन्न लड़कियों को और उसके बाद कन्या की सन्तति (लड़के--लड़कियां) को, फिर स्त्री के पुत्रों को, स्त्री के पौत्रों को और उनके न होने पर निश्चय ही शास्त्र की विधि से ब्याही हुई (स्त्री) के पति को तथा क्रमसे उसके हकदारों को मिलता है। परन्तु

शास्त्र की विधि से नहीं ब्याही हुई स्त्री की माता को पिता को और उस (पिता) के उत्तराधिकारियों को मिलता है ॥

यौगिकं स्त्रीधनं याति पुत्रान्पौत्रान्प्रपौत्रकान् ।
पुत्रीमथ च दौहित्रं दौहित्रीं च ततः परम् ॥ ६५२ ॥
विध्यूढायाः पतिं तस्य दायादान्क्रमतः पुनः ।
अविध्यूढस्त्रियास्तत्तु प्रसूं तातं तदुत्तरान् ॥ ६५३ ॥

यौगिक (अपारिभाषिक-non-technical) स्त्री-धन बेटों, पोतों और परपोतों को फिर लड़की को, नवासे को और नवासी को तथा उसके बाद शास्त्र की विधि से ब्याही हुई स्त्री का वह (धन) (उसके) पति को और फिर क्रमसे उस (पति) के हकदारों को मिलता है । और शास्त्र की विधि से नहीं ब्याही स्त्री का वह (अपारिभाषिक स्त्री--धन) माता को, पिता को और उस (पिता) के उत्तराधिकारियों को मिलता है ।

गोत्रजाभिर्महाराष्ट्रे दायप्राप्तं स्त्रिया धनम् ।
यौगिकार्थस्य रीत्यैव मायूखेषु तु गच्छति ॥ ६५४ ॥

बंबई प्रान्त में (अपने) गोत्र में उत्पन्न हुई स्त्रियों द्वारा दाय में प्राप्त किया स्त्री–धन व्यवहारमयूख को माननेवालों में यौगिक (अपारिभाषिक) धन की रीति से ही (हकदारों को) मिलता है ।

दाये शुल्कं परित्यज्य स्त्रीधनस्याखिलस्य हि ।
मिताक्षरायामेकैव रीतिरङ्गीकृता ध्रुवम् ॥ ६५५ ॥

शुल्क को छोड़कर सारे ही स्त्री-धन की हकदारी (succession) में मिताक्षरा में निश्चय ही एक ही रीति मानी है ।

मयूखे तु द्विधा भक्तं पारिभाषिकरूपतः ।
तदन्यरूपतश्चाथ स्त्रीधनं हि तथा पुनः ॥ ६५६ ॥
भर्तृदत्तं तथान्वाधेयकं याति सहैव हि ।
स्त्रीपुंप्रसूतिं नार्यास्तु यौगिकं च क्रमादथ ॥ ६५७ ॥
प्राक्पुंप्रसूतिमन्ते च स्त्रीप्रसूतिं सुनिश्चितम् ।
मिताक्षरायां नैवैतादृशो भेदो मतः परम् ॥ ६५८ ॥
अपारिभाषिकं नूनं पारिभाषिकवद्ध्रुवम् ।
तत्र स्त्रीसन्ततिं पूर्वं याति पुंसन्ततिं ततः ॥ ६५९ ॥

व्यवहारमयूख में स्त्री-धन पारिभाषिक रूप और उससे भिन्न (अपारिभाषिक या यौगिक) रूप से दो में बाँटा गया है और फिर भर्तृदत्त और अन्वाधेय (स्त्री-धन) स्त्री की स्त्री और पुरुष सन्तान को साथ-साथ मिलता है । तथा यौगिक (अपारिभाषिक) निश्चय ही क्रम से पहले पुरुष सन्तान को और बाद में स्त्री सन्तान को मिलता है ।

परन्तु मिताक्षरा में इस प्रकार का भेद नहीं माना गया है। वहां पर निश्चय ही अपारिभाषिक (non-technical) स्त्री-धन (पारिभाषिक technical) की तरह पहले स्त्री सन्तान को और उसके बाद पुरुष सन्तान को मिलता है।

पतिदायादहीनाया विहीनायाश्च सन्ततेः।
केवलभ्रातृभगिनीमत्याः शास्त्रानुसारतः॥ ६६० ॥
ऊढायाः प्राप्तजननीस्त्रीधनायाः स्त्रिया मृतौ।
महाराष्ट्रे नयाधीशैस्तस्याः स्वसृसहोदरौ॥ ६६१ ॥
तत्पितुर्दायभागित्वाद्दायभागीकृतौ समम्।
मिताक्षरानुगामिन्यास्तस्यास्तु सुविनिश्चितम्॥ ६६२ ॥
परं तन्निर्णयं त्वन्ये नाभिनन्दन्ति शास्त्रतः।
मन्यन्ते भ्रातरं ते तु स्वसुः प्राग्दायहारिणम्॥ ६६३ ॥

मिताक्षरा को माननेवाली पति के हकदारों से हीन और अपनी आल-औलाद से हीन, केवल बहन और भाईवाली, शास्त्रानुसार ब्याही गई और माता का धन पानेवाली स्त्री के मरने पर बंबई प्रान्त में (हाइकोर्ट के) न्यायाधीशों ने उसके बहन और भाई को, उसके पिता के दाय के भागी होने से, निश्चय रूप से साथ साथ ही उसका हकदार बना दिया है। परन्तु दूसरे (लोग) शास्त्रों की दृष्टि से उस निर्णय को पसन्द नहीं करते। वे भाई को बहन से पहले हकदार मानते हैं।

द्राविडाः स्त्री-धनस्य दायनियमाः।

मद्रास के स्त्री-धन के दाय के नियम।

पाराशरो माधवीयस्तथा च स्मृतिचन्द्रिका।
द्रविडे तु मतौ मुख्यौ तत्रत्यैर्न्यायशास्त्रिभिः॥ ६६४ ॥
सरस्वतीविलासोऽथ व्यवहारस्य निर्णयः।
यथोचितं तु मन्येते द्वावेतावपि तत्र च॥ ६६५ ॥

मद्रास में वहां के न्यायशास्त्रियों ने पाराशरमाधवीय और स्मृतिचन्द्रिका मुख्य माने हैं और फिर सरस्वतीविलास और व्यवहारनिर्णय भी वहां पर यथोचित-रूप से माने जाते हैं।

यत्रानैकमता एते तत्र त्वद्य मिताक्षरा।
स्त्र्यर्थस्य निर्णये नूनं दायाद्ये चापि मन्यते॥ ६६६ ॥

जहां पर ये (चारों ग्रन्थ) एक मत नहीं होते, वहां पर आज कल स्त्री-धन के निर्णय में और उसकी दाय-प्राप्ति (succession) में भी मिताक्षरा मानी जाती है।

स्मृतिचन्द्रिकया स्त्र्यर्थः पारिभाषिक एव हि।
मतः स च प्रवृत्ते यत्बन्धुभिर्यर्हि कर्हिचित्॥ ६६७ ॥

धनमध्यग्नि वा दत्तं तद्भिन्नैरथवा पुनः।
अध्यावाहनिके, तत्र नो मतोऽपारिभाषिकः ॥ ६६८ ॥

स्मृतिचन्द्रिका ने पारिभाषिक (technical) स्त्री-धन ही माना है और वह रिश्तेदारों ने जो जिस किसी भी समय दिया हो या उनसे भिन्न पुरुष (strangers) ने विवाहाग्नि के सामने अथवा स्त्री के पहलीवार पति के घर जाते समय दिया हो होता है। वहां पर अपारिभाषिक (non--technical) स्त्री--धन नहीं माना है।

पुनश्चतुर्धा तत्राऽपि विभक्तः पारिभाषिकः।
मयूख इव नार्यार्थः स शुल्को यौतकं तथा ॥ ६६९ ॥
भर्तृदत्तश्च सान्वाधेयकस्तेभ्योऽपरः पुनः।
यौतकं भर्तृदत्तश्चाऽन्वाधेयं प्राक्प्रदर्शितः ॥ ६७० ॥

फिर वहां पर भी पारिभाषिक स्त्री-धन व्यवहार मयूख की तरह चार प्रकार से बांटा गया है और वह शुल्क, यौतक, अन्वाधेय सहित भर्तृदत्त और उन सबसे भिन्न रूपवाला होता है। यौतक, भर्तृदत्त और अन्वाधेय (स्त्री--धन) पहले बतला दिये गये हैं।

भाण्डादिभ्यः पशुभ्यो वा गोभ्यो वाप्तं तु यद्धनम्।
भूषणादिकृते यच्च तच्छुल्कं तत्र संमतम् ॥ ६७१ ॥

(स्त्री ने) बरतनों आदि के लिए, (बोझ ढोनेवाले) पशुओं के लिए या गायों आदि (दूध देनेवाले चौपायों) के लिए जो धन पाया हो और जो गहनों आदि के लिए पाया हो, उसे वहां शुल्क माना है।

शुल्कस्तु पूर्वकथितरीत्यैवात्रापि गच्छति।
यौतकं यात्यनूढा हि कन्याः प्राक् च ततः सुताः ॥ ६७२ ॥

शुल्क तो यहां पर भी पहले कही रीति से ही जाता है (देखो श्लोक ५१६ और ५६७)। तथा यौतक पहले क्वारी लड़कियों को मिलता है और बाद में (उनके न होने पर) पुत्रों को मिलता है।

भर्तृदत्तोऽथ चान्वाधेयकं याति सहैव हि।
पुत्रान्पुत्रीश्च तुल्येन भागेनात्र न संशयः ॥ ६७३ ॥
पुत्रीषूढा अनूढाश्च भागार्हाः सममेव हि।
पुत्र्यो मृतधवाः किन्तु भागार्हास्तेषु नो मताः ॥ ६७४ ॥

भर्तृदत्त और अन्वाधेय पुत्रों और पुत्रियों को साथ ही और बराबर भाग से मिलता है। इसमें संशय नहीं है। पुत्रियों में ब्याही और क्वारी साथ ही भाग पाने योग्य होती हैं। परन्तु उनमें विधवा पुत्रियां भाग पाने योग्य नहीं मानी गई हैं।

पारिभाषिकमन्यद्धनं प्रयात्यथ क्रमात्।
सह कन्या अनूढाश्च ऊढा अप्यप्रतिष्ठिताः ॥ ६७५ ॥

समभागहरास्ताश्च ह्यूढाऽनूढास्तु कन्यकाः।
तासामभाव ऊढास्तु कन्या लोके प्रतिष्ठिताः ॥ ६७६ ॥
तदभावे च दौहित्रीदौहित्रांश्च सुतांस्ततः।
पौत्रांस्तस्याप्यभाऽत्रेथ निःसन्तानस्त्रिया धनम् ॥ ६७७ ॥
विध्यूढायास्तु शुल्काद्धि भिन्नं यातीह तत्पतिम्।
अविध्यूढस्त्रियास्तच्च मातरं पितरं क्रमात् ॥ ६७८ ॥
तत्र तेषामभावे नो कृतो दायविनिर्णयः।
स्मृतिचन्द्रिकयोक्तं हि मतमेतत्प्रदर्शितम् ॥ ६७९ ॥

और (इन सब से भिन्न) दूसरा जो पारिभाषिक धन है वह क्रम से क्वारी कन्याओं के साथ ही व्याही हुई गरीब कन्याओं को भी मिलता है। तथा वे व्याही और बिन व्याही कन्यायें समान भाग लेती हैं। उनके न होने पर व्याही हुई दुनिया में प्रतिष्ठित (मालदार) कन्यायें (भाग पाती हैं), उनके अभाव में (वह धन) नवासियों को, नवासों को, पुत्र को और पौत्र को मिलता है और उनके भी अभाव में शास्त्र की विधि से व्याही गई निःसन्तान स्त्री का शुल्क से भिन्न स्त्री-धन उसके पति को और शास्त्र की विधि से नहीं व्याही गई स्त्री का वह (शुल्क से भिन्न स्त्री-धन) क्रम से माता को और पिता को मिलता है। वहां पर (स्मृति-चन्द्रिका में) उन सब के अभाव में हकदारी (succession) का निर्णय नहीं किया है। यह स्मृतिचन्द्रिका का कहा मत प्रदर्शित किया है।

पाराशरे माधवीये बृहस्पतिमतं परम्।
उद्धृतं तन्मते स्त्र्यर्थो हीनायाः पत्यपत्यतः ॥ ६८० ॥
विध्यूढायाः स्त्रियास्त्वन्ते याति भर्तृस्वसुःसुतम्।
भर्तृभ्रातुः सुतं भर्तुरनुजं च सुनिश्चितम् ॥ ६८१ ॥
मातापितृविहीनाया अविध्यूढस्त्रियाः पुनः।
निस्तोकायास्तु तद्याति निजस्वसृसुतं तथा ॥ ६८२ ॥
स्वीयभ्रातृसुतं चाथ निजं जामातरं पुनः।
पौर्वापर्यं परं तेषु तत्र नो विशदीकृतम् ॥ ६८३ ॥

परन्तु पाराशरमाधवीय में बृहस्पति का मत उद्धृत किया है। उसके मत में पति और सन्तान से हीन शास्त्र की विधि से व्याही स्त्री का स्त्री-धन उसके बाद (उसके मरने पर) निश्चय ही पति के भानजे को, पति के भतीजे को तथा पति के छोटे भाई को मिलता है। और माता-पिता से हीन, शास्त्र की रीति से नहीं व्याही हुई सन्तान के अभाववाली स्त्री का वह (स्त्री-धन) अपने भानजे को अपने भतीजे को या फिर अपने दामाद को मिलता है। परन्तु इनमें कौन पहले और कौन पीछे लेना है यह वहां पर (बृहस्पति के मत में) स्पष्ट नहीं किया है।

यौतके भर्तृदत्ते च तथान्वाधेयके स्त्रियाः।
पुत्रपुत्रीविहीनाया नो दायादा विनिश्चिताः॥ ६८४॥
स्मृतिचन्द्रिकयाऽथो च नूनं मैताक्षरे मते।
स्त्रीधनं शुल्करहितं पुत्रीस्तत्सन्ततिं तथा॥ ६८५॥
याति, तासामभावे च सुतांस्तस्याः स्त्रियाः पुनः।
द्राविडानां नयेशानां मतमग्रेऽथ दृश्यते ॥ ६८६॥

यौतक, भर्तृदत्त और अन्वाधेयक (स्त्री–धन) में पुत्र और पुत्री से हीन स्त्री के हकदारों का स्मृतिचन्द्रिका ने निश्चह नहीं किया है। परन्तु मिताक्षरा के मत में निश्चय ही शुल्क से भिन्न स्त्री-धन (क्रम से) पुत्रियों को और उनकी सन्तान को मिलता है और उनके न होने पर फिर उस स्त्री के पुत्र को मिलता है। अब आगे मद्रास के जजों (न्यायाधीशों) का मत दिखलाया जाता है।

यौतके न कृतस्तैस्तु नव्यो निजविनिर्णयः।
भर्तृदत्ते तथान्वाधेयके मैताक्षरं मतम्॥ ६८७॥
तैर्मतं तेन ते यातः पूर्वोक्तनियमेन हि।
पूर्वं कन्या न तु समं पुत्रपुत्रीः कदाचन॥ ६८८॥

उन्होंने (जजों ने) यौतक धन के बिषय में अपना कोई नया निर्णय नहीं किया है। तथा भर्तृदत्त और अन्वाधेयक के विषय में उन्होंने मिताक्षरा का मत मान लिया है। इस लिए वे दोनों (भर्तृदत्त और अन्वाधेयक) पहले कहे (मिताक्षरो के) नियम से पहले कन्याओं को मिलते हैं। लड़के और लड़की को साथ कभी नहीं मिलते।

चतसृष्वेव द्रविडमान्यव्याख्यासु निश्चितम्।
व्याख्यातं भिन्नरूपेण बृहस्पतिमतं यतः॥ ६८९॥
पूर्वोक्तं तु ततस्तैस्तत्यक्तं, मैताक्षरं पुनः।
मतं त्वपत्यहीनायाः स्त्रियाः,स्त्र्यर्थकृते मतम्॥ ६९०॥

क्योंकि मद्रास में मानी जाने वाली चारों ही व्याख्याओं (पाराशरमाधवीय, स्मृतिचन्द्रिका, सरस्वतीविलास और व्यवहारनिर्णय) में निश्चय ही पहले कहे बृहस्पति के मत की भिन्न-भिन्न रूप से व्याख्या की गई है, इसलिए उन्हों (जजों) ने उसे छोड़ दिया है और सन्तान हीन स्त्री के स्त्री-धन के लिए मिताक्षरा का मत मान लिया है।

अपारिभाषिकः स्त्र्यर्थः स्मृतिचन्द्रिकया नहि।
स्वीकृतो द्रविडैः किन्तु न्यायेशैः संमतः स च॥ ६९१॥
स्त्रीभृत्यर्थं प्रदत्तोऽर्थो ह्यसंबद्धैर्जनैः पुनः।
सधवायै प्रदत्तोऽपि, दायाद्यं ह्यथ तस्य तु॥ ६९२॥

मिताक्षरायां कथिता रीतिरेव हि संमता।
स्मृतिचन्द्रिकया तस्य स्त्र्यर्थं त्वग्रहणाद् ध्रुवम् ॥ ६९३ ॥

स्मृतिचन्द्रिका ने अपारिभाषिक (यौगिक nontechnical) स्त्री-धन नहीं माना है। परन्तु मद्रास के न्यायकर्त्ताओं ने (उसे) माना है और वह स्त्री को गुज़ारे के लिए दिया धन और रिश्तेदारों से भिन्न पुरुषों ने ब्याही हुई स्त्री को दिया धन (भी) होता है। तथा उसके हक़दारी (succession) के विषय में मिताक्षरा में कही रीति ही मानी है, क्योंकि स्मृतिचन्द्रिका ने उसे निश्चय ही स्त्री-धन में नहीं ग्रहण किया है।

मैथिलाः स्त्रीधनस्य दायनियमाः।

मिथिला के स्त्री--धन की हक़दारी के नियम।

मिथिलायां व्युपपदवादचिन्तामणिर्मतः।
मुख्यशास्त्रेषु स पुनः पारिभाषिकमेव हि ॥ ६९४ ॥
स्त्री-धनं मनुते तच्च बन्धुभिर्यर्हिकर्ह्यपि।
अन्यैरध्यग्निवाध्यावाहनिके यत्समर्पितम् ॥ ६९५ ॥

मिथिला में 'वि' उपपदवाला वादचिन्तामणि (विवादचिन्तामणि) मुख्य शास्त्रों में माना गया है। तथा वह (केवल) पारिभाषिक (tecnnical) को ही स्त्री-धन मानता है तथा वह जो रिश्तेदारों ने जिस किसी भी समय दिया हो और दूसरों ने विवाह की अग्नि के सामने या पत्नी के पहलीवार पति के घर जाते समय दिया हो, होता है।

शुल्कं च यौतकं ताभ्यां भिन्नं तच्च त्रिधा पुनः।
विभक्तं नो मतस्तत्र स्त्र्यर्थश्चापारिभाषिकः ॥ ६९६ ॥

तथा उस (पारिभाषिक स्त्री--धन) को शुल्क, यौतक और उन दोनों से भिन्न तीन में बाँटा है। वहां पर अपारिभाषिक (स्त्री-धन) नहीं माना गया है।

अशास्त्रीये विवाहे यत्प्राप्तं वित्तं स्त्रिया भवेत्।
तच्छुल्कं, यद्विवाहे च दत्तं स्वपतिना सह ॥ ६९७ ॥
एकासनस्थितायै तु स्त्रियै तद्यौतकं तथा।
एताभ्यां यद्भवेद्भिन्नं तदन्यत्पारिभाषिकम् ॥ ६९८ ॥

शास्त्र की रीति से भिन्न रीति द्वारा किये विवाह में स्त्री ने जो धन पाया हो, वह शुल्क होता है। जो विवाह में पति के साथ एक आसन पर बैठी हुई स्त्री को दिया गया हो, वह यौतक होता है। और इन दोनो से जो भिन्न होता है, वह अन्य पारिभाषिक (स्त्री-धन) होता है।

शुल्कं पूर्वोक्तरीत्यैव दाये गच्छति निश्चितम्।
यौतकं प्रागनूढा हि कन्या ऊढास्ततश्च ताः ॥ ६९९ ॥

दौहित्रीरथ दौहित्रान्पूर्वाऽभावे परान्क्रमात्।
मिताक्षरोक्तरीत्यैव न भेदस्तत्र कश्चन ॥ ७०० ॥
पारिभाषिकमन्यद्यत्तत्पुत्रांश्चाविवाहिताः।
कन्याः सहैव व्रजति समभागतया पुनः ॥ ७०१ ॥
अनूढाभावतः पुत्रान्प्रत्ताः कन्यास्तथा समम्।
दौहित्रीश्चाथ दौहित्रान्पूर्वस्याभावतः परम् ॥ ७०२ ॥

दाय (succession) में शुल्क पहली कही रीति से ही जाता है (देखो श्लोक ५१६ और ५१७) यौतक मिताक्षरा की रीति से ही पहले क्वारी लड़कियों को और फिर ब्याही हुई उन (लड़कियों) को फिर नवासियों को और नवासों को, पहले के न होने पर पिछले को, क्रम से मिलता है। इसमें किसी प्रकार का भेद नहीं है। दूसरा जो पारिभाषिक (धन) है वह क्वारी लड़कियों और पुत्रों को साथ-साथ और बराबर भाग से मिलता है। उन (क्वारी कन्याओं) के न होने पर पुत्रों और ब्याही हुई पुत्रियों को साथ-साथ मिलता है। उसके बाद नवासियों को और नवासों को पहले के अभाव में बादवाले को (नवासी के अभाव में नवासे को) मिलता है।

स्वसन्तानविहीनायाः स्त्रियाः स्त्र्यर्थो व्रजेत् पुनः।
मिताक्षरोक्तरीत्यैव शुल्काद्भिन्नस्तु निश्चितम् ॥ ७०३ ॥
मैथिलेत्वभियोगे हि वङ्गीयैर्न्यायशास्त्रिभिः।
प्रागेष निर्णयो दत्तः किन्त्वन्यत्र पुनश्च तैः ॥ ७०४ ॥
मिथिलासंमते श्री वि-वादरत्नाकरे खलु।
समुद्धृतं तु प्रागुक्तं बृहस्पतिमतं मतम् ॥ ७०५ ॥

फिर अपनी सन्तान से हीन स्त्री का शुल्क से भिन्न स्त्री-धन निश्चय ही मिताक्षरा की रीति से ही जाता है (देखो श्लोक ६०२ से ६१२ तक)। यह निर्णय बंगाल के न्यायाधीशों ने पहले मिथिला से संबन्ध रखनेवाले मुकद्दमे में दिया था; परन्तु फिर दूसरे (मुकद्दमे) में उन्होंने मिथिला में माने गए विवादरत्नाकर में उद्धृत पहले कहे बृहस्पति के मत को मान लिया। (देखो श्लोक ६८० से ६८३ तक)।

न्यायाधीशैस्तु कुसुमपुरीयैरधुना परम्।
मिताक्षरीया प्रागुक्ता सरण्येवानुमोदिता ॥ ७०६ ॥

परन्तु पटना (हाईकोर्ट) के न्यायाधीशों ने हाल में पहले कही मिताक्षरा की रीति का ही अनुमोदन किया है।

दायभागीयाः स्त्रीधनस्य दायनियमाः।

दायभाग में स्त्री-धन की हकदारी के नियम।

दायभागे मतं नूनं स्त्रीधनं तु चतुर्विधम्
दायाद्यर्थं च तच्छुल्कं यौतकं चाप्ययौतकम् ॥ ७०७ ॥

तथान्वाधेयकं तेषु शुल्कं भर्तृगृहाय ताम्।
गमनोत्साहदं दत्तं यद् द्रव्यं तन्मतं पुनः ॥७०८॥

दाय भाग में स्त्री-धन हकदारी (succession) के लिए चार तरह का माना है और वह शुल्क, यौतक, अयौतक और अन्वाधेयक है। उनमें उस (स्त्री) को पति के घर जाने के लिए उत्साहित करनेवाला जो धन दिया गया हो, वह शुल्क माना गया है।

विवाहोपायनं यत्तद्यौतकं स्त्रीधनं पुनः।
वङ्गीयैश्च नयाधीशैर्दत्तमध्यग्नि यद्धनम् ॥ ७०९ ॥
तन्मात्रस्यैव नो तस्मिन्समावेशो मतः परम्।
समस्ते तु विवाहस्य संस्कारे श्राद्धतः खलु ॥ ७१० ॥
प्रारभ्य पत्न्याः स्वपतिप्रणामान्तं समर्पितम्।
भवेद्यत्तु स्त्रियै वित्तं यौतकं तत्तु संमतम् ॥ ७११ ॥
असंबद्धैश्च यद्दत्तमध्यग्नि द्रविणं स्त्रियै।
अध्यावाहनिके वाथ यौतकं तदपि स्मृतम् ॥ ७१२ ॥

फिर जो विवाह में उपहार रूप से मिला हो, वह यौतक स्त्री-धन होता है। बंगाल के न्यायकर्ताओं ने जो धन विवाह की अग्नि के सामने दिया हो केवल उसका ही उस (यौतक) में समावेश होना नहीं माना है; किन्तु सारे ही विवाह संस्कार में निश्चय ही श्राद्ध से प्रारम्भ करके पत्नी के अपने पति को प्रणाम करने तक स्त्री को जो धन दिया गया हो उसको यौतक माना है। संबन्धियों से भिन्न लोगों (strangers) ने जो धन स्त्री को विवाह की अग्नि के सामने या पत्नी के पहलीवार पति के घर जाते समय दिया हो, उसे भी यौतक माना है।

विवाहान्ते स्वपित्रा यदुपहारेण वा पुनः।
मृतिपत्रेण यद्दत्तं तदन्वाधेयकं यतः ॥ ७१३ ॥
संबन्धिभिस्तु यद्दत्तं विवाहान्ते स्त्रियै धनम्।
तदन्वाधेयकं नूनं स्मृतिकारैस्तु संमतम् ॥ ७१४ ॥

विवाह के बाद अपने पिता ने जो उपहार द्वारा या फिर जो मृतिपत्र (bequest) द्वारा (लड़की को) दिया हो उसे अन्वाधेयक कहा है; क्योंकि संबन्धियों ने विवाह के बाद जो धन स्त्री को दिया हो, उसे स्मृति-कर्ताओं ने निश्चय ही अन्वाधेयक माना है।

अयौतकं तूपहृतं मृतिपत्रेण वार्पितम्।
संबन्धिभिर्विवाहात्प्राग्विवाहान्तेऽथवा स्त्रियै ॥ ७१५ ॥
अस्मिन्पित्रा विवाहात्प्राक्पुत्र्यायुपहृतं हि यत्।
मृतिपत्रेण वा दत्तं तद् ग्राह्यं नान्यदर्पितम् ॥ ७१६ ॥

संबन्धियों ने विवाह के पहले या विवाह के बाद स्त्री को जो (धन) उपहार में दिया हो या मृत्युपत्र से दिया हो, वह अयौतक होता है । पिता ने पुत्री को विवाह के पहले जो (धन) उपहार में दिया हो या मृतिपत्र से दिया हो, वह इसमें लेना चाहिए । अन्य समय पर दिया नहीं लेना चाहिए ।

शुल्कं क्रमाद् भ्रातरं च मातरं पितरं तथा ।
भर्तारं दायभागीयरीत्या प्रागुक्तया व्रजेत् ॥ ७१७ ॥

शुल्क स्त्री-धन क्रम से भाई को, माता को, पिता को तथा पति को पहले दायभाग की रीति से मिलता है । (देखो श्लोक ५६८—५६६)

यौतकं प्रागवाग्दत्ता वाग्दत्ता कन्यकास्ततः ।
सपुत्रा वाथ संभाव्यपुत्रा ऊढाः कनीः पुनः ॥ ७१८ ॥
ततो विवाहिता वन्ध्याः पुत्रीश्चाप्रजसोऽधवाः ।
व्रजेत्सह समांशेन तदभावे सुतांस्ततः ॥ ७१९ ॥
दौहित्रांश्चाथ पौत्रांश्च प्रपौत्रांस्तदभावतः ।
यायात् सपत्न्याः पुत्रांश्च पौत्रांश्चाथ प्रपौत्रकान् ॥ ७२०

यौतक (स्त्री-धन) पहले मँगनी नहीं की हुई कन्याओं को फिर मँगनी की कन्याओं को उसके बाद पुत्रवाली या पुत्र होने की संभावनावाली ब्याही हुई लड़ कियों को, फिर ब्याही हुई बाँझ लड़कियों को और सन्तान हीन विधवा कन्याओं साथ-साथ बराबर के हिस्से से मिलता है । उनके न होने पर पुत्रों को फिर को, उसके बाद पोतों को और उनके न होने पर परपोतों को मिलता है । उ बाद (न होने पर) सपत्नी के पुत्रों को, पोतों को और परपोतों को मिलता है

प्रागुक्तानामभावे तु विध्यूढायाःस्त्रिया धनम् ।
क्रमात्पतिं च सोदर्यं मातरं पितरं व्रजेत् ॥ ७२१ ॥

पहले कहे हुओं के न होने पर शास्त्र की रीति से ब्याही हुई स्त्री का धन पति को, भाई को, माता को और पिता को मिलता है ।

अविध्यूढस्त्रियास्तच्च मातरं पितरं तथा ।
भ्रातरं तत्पतिं चाथ क्रमाद्याति सुनिश्चितम् ॥ ७२२ ॥

और शास्त्र की रीति से नहीं ब्याही हुई (married in an unappro form) स्त्री का वह (यौतक) निश्चय ही क्रम से माता को, पिता को, भाई तथा उसके पति को मिलता है ।

पूर्वोक्तानामपि पुनरभावे उभयोरपि ।
क्रमाद्दायहरो भर्तुरनुजो भ्रातृजस्तथा ॥ ७२३ ॥
स्वस्त्रीयोऽथ पत्युर्हि स्वस्त्रीयो भ्रातृजः स्वकः ।
जामाता च भवेत्तत्र बृहस्पत्युक्तिसंश्रयात् ॥ ७२४ ॥

फिर पहले कहे हुओं का भी अभाव होने से वहां पर दोनों ही (विधि से ब्याही गईं और बिना विधि से ब्याही गईं स्त्रियों) के हकदार, वृहस्पति के वचनों के आधार से, क्रम से पति का छोटा भाई और (पति का) भतीजा, उस (स्त्री) का अपना वहन का लड़का, पति की बहन का लड़का, अपना भतीजा, और दामाद होता है (देखो श्लोक ६८० से ६८३)।

ततः पत्युः सपिण्डाश्च सकुल्याश्च समोदकाः
पितुः संबन्धिनश्चाथ नेदिष्ठन्यायतः क्रमात् ॥ ७२५ ॥

उसके बाद नजदीकवाला पहले हकदार होता है–इस न्याय से क्रम से पति के सपिण्ड, सकुल्य और समानोदक तथा पिता के संबन्धि (kinsmen) हकदार होते हैं।

पित्रा तूपहृतं दत्तं मृतिपत्रेण वा धनम्।
विवाहान्ते तु कन्यायै याति यौतकरीतितः ॥ ७२६ ॥
परमेष विशेषोऽस्ति तत्र यत्तत्सुता ध्रुवम्।
ऊढाभ्यस्तु कनीभ्यः प्राग्दायं गृह्णन्ति तद्गतम् ॥ ७२७ ॥
अपुत्राया मृतायास्तु उभयत्रापि सोदराः।
माता पिता पतिश्चाथ क्रमाद्दायहरा मताः ॥ ७२८ ॥

पिता ने विवाह के बाद कन्या को उपहार में दिया या मृतिपत्र से दिया धन यौतक (धन) की रीति से (हकदारों को) मिलता है। परन्तु उसमें यह विशेषता है कि उस श्रेणी में रहे दाय-धन को उस स्त्री के पुत्र निश्चय ही ब्याही हुई लड़कियों से पहले ग्रहण करते हैं और निःसन्तान अवस्था में मरी हुई स्त्री के (इस धन के) दोनों स्थानों पर ही (स्त्री चाहे विधि से ब्याही हो अथवा बिना विधि के ब्याही हो) भाई, माता, पिता और पति क्रम से दाय-धन पाने वाले माने गये हैं।

अयौतके धने पुत्रा अनूढाश्चापि कन्यकाः।
सहभागहराश्चाथ समभागहरास्ततः ॥ ७२९ ॥
पुत्रवत्यः सुता ऊढाः संभावितसुतास्तथा।
समं, ततःस्वपौत्राश्च स्वदौहित्राः क्रमात्पुनः ॥ ७३० ॥
प्रसूता वन्ध्याः सुता भर्तृहीनास्ताश्चानपत्यकाः।
सहभागहरा नूनं दायभागोक्तरीतितः ॥ ७३१ ॥

अयौतक धन में पुत्र और क्वारी कन्यायें साथ-साथ भाग लेनेवाली और बराबर भाग लेनेवाली होती हैं। उनके बाद ब्याही हुई पुत्रवाली लड़कियां या जिनके पुत्र होने की संभावना हो ऐसी लड़कियां साथ-साथ भाग पाती हैं। फिर अपने पोते

तथा नवासे क्रमसे (लेते हैं) और फिर ब्याही बाँझ लड़कियां और सन्तान हीन विधवा लड़कियां, निश्चय ही, साथ-साथ भाग पाती हैं ।

दौहित्रान्ते दायकर्मसंग्रहे स्वप्रपौत्रकाः ।
सपत्नीसंभावाश्चाथ पुत्राः पौत्राः प्रपौत्रकाः ॥ ७३२ ॥
प्राग् दायार्हा मताः पश्चादूढा वन्ध्याः सुतास्तथा ।
निस्तोका अधवाः पुत्र्यः सहदायहराः कृताः ॥ ७३३ ॥

दायकर्मसंग्रह में नवासे के बाद अपने परपोते फिर सौत से पैदा हुए बेटे, पोते और परपोते पहले दाय पाने योग्य माने हैं । उसके बाद ब्याही हुई बांझ लड़कियों को और सन्तान हीन विधवा पुत्रियों को साथ-साथ दाय पानेवाली माना है ।

प्रागुक्तानामभावे तु सर्वासामप्ययौतकम् ।
भ्रातरं मातरं तातं पतिं तस्यानुजं तथा ॥ ७३४ ॥
तद्भ्रातृजं स्वभगिनीपुत्रं पत्युः स्वसुः सुतम् ।
स्वभ्रातृव्यं तथा जामातरं भर्तुः सपिण्डकान् ॥ ७३५ ॥
सकुल्यांश्च समोदांश्च पितृसंबन्धिनः क्रमात् ।
रीतिर्हि दायभागीया ज्ञेयेषा शास्त्रिभिर्ध्रुवम् ॥ ७३६ ॥

पहले कहे हुए रिश्तेदारों के न होने पर सारी ही (विधि से ब्याही और बिना विधि से ब्याही) स्त्रियों का अयौतक (स्त्री-धन) भाई को, माता को, पिता को, पतिको, उस (पति) के छोटे भाई को, उस (पति) के भतीजे को, अपनी बहन के पुत्र (भानजे) को, पति की बहन के पुत्र (भानजे) को, अपने भतीजे को, दामाद को, पति के सपिण्डों को, पतिके सकुल्यों को, पति के समानोदकों को और पिता के संबन्धियों (kinsmen) को क्रमसे मिलता है । विद्वानों को इसे निश्चय रूप से दायभाग की रीति जानना चाहिए ।

स्वभ्रातृव्यः सपत्नीजापुत्रात्प्राग् दायभाग्यतः ।
स्वदौहित्रेषु नो तस्य संख्यानं तत्र संमतम् ॥ ७३७ ॥

(स्त्री का) अपना भतीजा सौत से पैदा हुई कन्या के पुत्र से पहले हकदार होता है, क्योंकि वहां पर (दायभाग में) उसकी अपने नवासों में गणना नहीं मानी है ।

स्त्रिया भर्तुः सपिण्डेषु सपत्नीजासुतस्य हि ।
संख्यानं दायभागीये मते नूनं विनिश्चितम् ॥ ७३८ ॥

स्त्री के सौतके नवासे की गिनती निश्चय ही दायभाग के मतमें (उसके) पतिके सपिण्डों में निर्णीत की गई है ।

सार्वत्रिकाः स्त्रीधनस्य दायनियमाः ।

सब जगह माने जानेवाले स्त्री-धन के हकदारी के नियम ।

भर्तृदायहराऽभावे विधवायाः स्त्रिया धनम्।
पितृवंश्यान्नृपात्पूर्वं प्रयाति सुविनिश्चितम्॥ ७३९॥

विधवा स्त्री का स्त्री--धन पति के हकदारों के अभाव में राजा से पहले निश्चय ही पिता के वंशवालों (her blood relations) को मिलता है।

सहदायहरा एकाधिकाः स्त्र्यर्थस्य निश्चितम्।
संपृक्ता अप्यसंपृक्तस्वार्था एव मता बुधैः॥ ७४०॥
अप्येकत्र धृतस्वार्थाः संसृष्टेष्ववशिष्टितः।
असमर्थाः समादातुं स्वार्थं स्वेषु मृतस्य ते॥ ७४१॥

विद्वानों ने स्त्री–धन के एक से अधिक हकदारों को साझेवाले होने पर भी जुदा स्वार्थ (interest) रखनेवाले ही माना है। वे एक ही स्थान पर (स्त्री--धन) में स्वार्थ रखनेवाले होने पर भी साझेदारों में पीछे जीवित रहजाने से अपने (साथ के साझेदारों) में से मरे हुए के स्वार्थ को प्राप्त करने में असमर्थ होते हैं। (अर्थात् वे tenants in common के समान ही होते हैं।)

स्त्र्यर्थदायहरा वंश्या द्वितीये पुरुषे ध्रुवम्।
शाखानुसारिणो भागहरा नैव स्वसंख्यया॥ ७४२॥
अतः पौत्राः स्वजनकभागतो भागहारिणः।
दौहित्राश्चाथ दौहित्र्यः स्वमातृद्वारतः पुनः॥ ७४३॥

स्त्री--धन के हकदार वंशज दूसरी पीढ़ी में निश्चय ही शाखा के अनुसार भाग लेनेवाले होते हैं, अपनी संख्या से नहीं। (अर्थात्–वे per stripes भाग लेते हैं per capita नहीं।) इसलिए पोते अपने पिता के भाग से भाग लेनेवाले होते हैं और नवासे और नवासियां अपनी माता के द्वारा (माता के भाग से) भाग पाते हैं।

पुरुषेण गृहीतस्तु स्त्र्यर्थस्तस्यैव संमतः।
तद्दायादान्तदन्ते स याति तद्धनवद् ध्रुवम्॥ ७४४॥

पुरुष द्वारा लिया गया स्त्री--धन उसीका माना गया है और वह उसके मरने पर निश्चय ही उसके धन की तरह उसके हकदारों को मिलता है।

स्त्रिया चापि महाराष्ट्रे प्राप्तः स्त्र्यर्थो भवेद् ध्रुवम्।
तस्या एव तदन्ते च तद्दायादान् व्रजेत् पुनः॥ ७४५॥
स्त्र्यर्थे त्वन्यत्र तत्स्वाम्यं भवेत्परिमितं तथा।
तन्मृत्यौ स व्रजेत्पूर्वस्वामिन्या दायहारिणः॥ ७४६॥

बंबई प्रान्त में स्त्री द्वारा भी प्राप्त किया गया स्त्री-धन निश्चय रूपसे उसीका होता है और फिर उस (स्त्री) के बाद उसके हकदारों को मिलता है। दूसरी जगह

तो स्त्री--धन में उस (स्त्री) का अधिकार परिमित होता है और उसके मरने पर वह (पाया हुआ स्त्री–धन) पहले की मालिकन के हकदारों को मिलता है।

पुंदायादा मताः पुत्रा दौहित्राः पौत्रकादयः।
स्त्रीदायादाः सुतास्तासां पुत्र्याद्याः स्त्रीधनस्य तु ॥७४७॥

स्त्री–धन के पुरुष हकदार लड़के, नवासे, और पोते आदि होते हैं। तथा स्त्री हकदार लड़कियां और नवासियां आदि होती हैं।

अधर्मजा अपि सुता मातुः स्त्र्यर्थहराः परम्।
धर्मजे सति पुत्रे तु ते दायार्हा न संमताः ॥ ७४८ ॥

जारज (illegitimate) पुत्र भी माता के स्त्रीधन को प्राप्त करने वाले होते हैं। परन्तु असली (legitimate) पुत्र के मौजूद होने पर, वे हकदार नहीं माने गये हैं।

स्त्रियास्त्वधर्मजनिताः पुत्रा नूनं परस्परम्।
दायार्हाः संमता लोक आर्येषु न्यायशास्त्रिभिः ॥ ७४९ ॥

कानून के विद्वानों ने हिन्दुओं में स्त्री के जारज (illegitimate) पुत्रों को निश्चय ही यहां पर आपस में दाय-धन पानेवाले माना है (जारज पुत्र के पूर्व पति हकदार होता है। देखो श्लोक ६२२)

स्त्री वेश्यात्वेन पतिता जात्या चापि च्युता भवेत्।
परं नो पित्र्यरुधिरसंबन्धाच्च्यवतेऽत्र सा ॥ ७५० ॥
ऊढा चेत्तर्हि पत्युर्हि वंशसंबन्धतोऽपि नो।
वञ्च्यते हिन्दुशास्त्रीयनियमैस्तु कदाचन ॥ ७५१ ॥
अतस्तस्या धनं याति तत्स्त्रीवित्तवदेव हि।
क्रमाद् भ्रातॄन् स्वसॄर्भ्रातुष्पुत्रान् पित्रन्यवंशजान् ॥ ७५२ ॥
तस्याः पतिः सपत्नीजः पत्युश्चान्यसपिण्डकाः।
अप्यार्येषु मतास्तस्या दायप्राप्तौ क्षमा बुधैः ॥ ७५३ ॥

स्त्री वेश्यापन से पतित और जाति से भी च्युत हो जाती है, परन्तु वहां पर पिता के साथ के रुधिर के संबन्ध (tie connecting her to her kindred) से नहीं गिरती और यदि वह विवाहित हो, तो पति के वंश के संबन्ध (tie of kindred between her and members of her husband's family) से भी हिन्दू शास्त्रों के नियमों द्वारा कभी वञ्चित नहीं की जा सकती। इसलिए उसका धन उसके स्त्री-धन के समान ही क्रम से भाइयों को, बहनों को, भतीजों को और पिता के दूसरे रिश्तेदारों (her other relations by blood) को मिलता है। विद्वानों ने हिन्दुओं में उसके पति, सौत के पुत्र और पति के दूसरे सपिण्डों को भी उसका दाय-धन लेने में समर्थ माना है।

सपुत्रा विधवा वेश्या भूत्वा चेज्जनयेत्सुताम्।
पत्यौरसात्मजस्तर्हि तदन्ते प्राप्नुयाद्धनम्॥ ७५४॥

पुत्रवाली विधवा स्त्री वेश्या होकर यदि पुत्री को जन्म दे तो, उस (स्त्री) के बाद उसके पति से उत्पन्न हुआ पुत्र ही धन पाता है (वह लड़की धन नहीं पाती)।

भिन्नतातास्तु वाणिन्याः पुत्रा दायहरा मिथः।
तेष्वेकस्यौरसस्तेषां तत्सुतानां तथोत्तरः॥ ७५५॥

नर्तकी के भिन्न-भिन्न पितावाले पुत्र आपस में (एक दूसरे का) धन लेते हैं और उनमें के एक का असली लड़का (भी) उनका और उनके लड़कों का उत्तराधिकारी होता है।

जात्या वेश्या न वृत्त्या या व्यूढा वैधव्यमागता।
भजेदन्ते तु वेश्यात्वं सा स्याद् व्यूढाऽसतीसमा॥ ७५६॥
तद्दायस्य विभागः स्यात् सामान्यनियमानुगः।
प्राप्तदायाः सुता तस्या मितामधिकृतिं वहेत्॥ ७५७॥

जो जाति से वेश्या हो वृत्ति (कर्म) से न हो और विवाह के बाद विधवा होने पर अन्त में वेश्यावृत्ति ग्रहण करले, वह ब्याही हुई असती स्त्री के समान समझी जाती है और उसके धन का बटवारा साधारण नियम के अनुसार ही होता है। उसकी उत्तराधिकार में धन पाने वाली लड़की परिमित (आजीवन) अधिकार (ही) पाती है।

ताभिराधीकृतश्चार्थः प्रत्यादाधिकृतौ नहि।
बाधां करोति यस्मात्ता मिताधिकृतिका मताः॥ ७५८॥

उन (कन्याओं) के द्वारा गिरवी किया धन उनसे धनका अधिकार वापस प्राप्त करने वाले (reversioner) के अधिकार में बाधा नहीं करता; क्योंकि वे सीमित अधिकार वाली मानी गई हैं।

कष्टावगम्या नियमाः स्त्र्यर्थसंबन्धिनो यतः।
अतो वैशद्यतस्तेऽत्र वर्णिताः स्पष्टताकृते॥ ७५९॥

क्योंकि स्त्री-धन संबन्धी नियम कठिनता से समझ में आने लायक हैं, इसलिये खुलासे के लिए वे यहां पर विशद रूप से वर्णन किये गये हैं।

११ स्त्रिया दायप्राप्तं धनम्।

स्त्री का दाय में पाया धन।

कात्यायनीयं वचनमुद्धृत्य प्रकृतमनुसरिष्यते।

कात्यायन के वचन को लिखकर प्रस्तुत बात का अनुसरण करेंगे।

भर्तृदायं मृते पत्यौ विन्यसेत् स्त्री यथेष्टतः।
विद्यमाने तु संरक्षेत् क्षययेत्तत्कुलेऽन्यथा॥

स्त्री पति के दिये (या दाय में पाये) धन को पति के मरने पर अपनी इच्छानुसार काम में ले। परन्तु उसकी जीवित अवस्था में तो उस (धन) की रक्षा करे अथवा उस (पति) के कुल में सौंप दे।

अपुत्रा शयनं भर्तुः पालयन्ती गुरौ स्थिता ।
भुञ्जीतामरणात् क्षान्ता दायादा ऊर्ध्वमाप्नुयुः ॥

विना पुत्रवाली विधवा पति की शय्या की रक्षा करती हुई (सतीत्व से रहती हुई) तथा अपने से बड़े (रक्षक) की संरक्षकता में रहती हुई और मर्यादा से चलती हुई मरण पर्यन्त धनका उपभोग करे। उसके बाद हकदार धन को लेवें।

अधुना तु—

आजकल तो—

मृते पत्यौ तु तद्दत्तं स्त्री व्ययेत यथेप्सितम् ।
तस्मिञ्जीवति तद्दत्तं रक्षेद्वा रक्षयेन्निजैः ॥ ७६० ॥

स्त्री पति के मरने पर उसके दिये धनको इच्छानुसार खर्च कर सकती है। (परन्तु) उस (पति) के जीवित रहने पर उसके दिए हुए की रक्षा (स्वयं) करे या अपने लोगों (kindred) द्वारा करवावे।

पुत्रहीना सती भार्या विधवा रक्ष्युपाश्रया ।
मर्यादया व्ययेतार्थमाजीवं च ततस्तु सः ॥ ७६१ ॥
यायादन्यान हि दायादानिति कात्यायनोक्तयः ।
लभ्यन्ते याः कृतास्ताभिर्मितस्वाम्याः स्त्रियो नये ॥ ७६२ ॥

पुत्र हीन अच्छे आचरणवाली और रक्षक के पास रहनेवाली विधवा पत्नी अपने जीवनभर मर्यादा के साथ धन खर्च कर सकती है और उसके बाद वह (धन) दूसरे हकदारों को मिलता है--ऐसे कात्यायन के जो वचन मिलते हैं, उनसे कानून में स्त्रियां परिमित अधिकारवाली करदी गई हैं।

नारदः स्थिरवर्जं हि पत्युः प्राप्तं तु यद्धनम् ।
वैधव्ये सा यथेच्छं तद् व्ययेतेत्येव मन्यते ॥ ७६३ ॥

नारद पति से मिला स्थिर को छोड़कर जो दूसरा धन है, उसे वह (स्त्री) विधवापन में अपनी इच्छानुसार खर्च कर सकती है ऐसा ही मानते हैं।

पैतृकं तु परित्यज्याऽन्यस्त्रीपुंसेभ्य आगते ।
दाये पूर्णोऽधिकारी स्यान्नरो मैताक्षरे मते ॥ ७६४ ॥

पिता, दादा और परदादा के धन को छोड़कर दूसरे स्त्रियों या पुरुषों से आये दाय (हकदारी के-धन) में पुरुष, मिताक्षरा के मत से, पूर्ण अधिकारी होता है।

अन्यत्र तस्याऽधिकृतिः पूर्णैव परिकल्पिता ।
पैतृकेऽपैतृके दाये न भिदा तत्र वर्तते ॥ ७६५ ॥

दूसरे स्थानों पर (दायभाग के मत में) उस (पुरुष) का पूरा अधिकार निश्चित किया गया है। उन स्थानों पर पैतृक (बाप-दादों के) और दूसरे (हकमें मिलनेवाले) धनमें भेद नहीं है।

दायप्राप्ते धने स्त्रिया दायादाः ।

हकदारी में पाये धन में स्त्री के हकदार ।

वङ्गेषु विधवा भार्या पुत्री माता पितामही ।
प्रपितामह्यपि पुनः पुंसां दायहराः स्त्रियः ॥ [२३९]

बंगाल में विधवा पत्नी, लड़की, माता, दादी और परदादी पुरुषों का दाय लेनेवाली (उत्तराधिकार पानेवाली) स्त्रियां हैं।

मिताक्षरायां विधवा स्त्री कन्याऽम्बा पितामही ।
प्रपितामह्यथ पुनः पुंदायार्हाः स्त्रियो मताः ॥ [२४०]

मिताक्षरा में (भी) विधवा पत्नी, लड़की, मा, दादी और परदादी पुरुषों का दाय (धन) पाने योग्य स्त्रियां मानी गई हैं।

पौत्र्यस्तथा च दौहित्र्यो भगिन्यश्च यथाक्रमम् ।
मिताक्षरानुगेष्वद्य दायार्हा नव्यरीतितः [२४३]

तथा मिताक्षरा के अनुसार चलनेवालों में नवीन रीति (ई० सं० १९२१ के The Hindu law of Inheritance (Amendment) Act 1920) से आजकल पोतियां, नवासियां और बहनें क्रम से हकदार होती हैं।

मानवं शास्त्रमाश्रित्य द्रविडे भगिनी निजा ।
सोदर्याऽथा प्यसोदर्या पौत्री दौहित्रिका तथा [२४४]
भ्रातृकन्या स्वसुः पुत्री पितृव्यस्य सुता पुनः ।
सर्वा एताः स्त्रियश्चापि संख्याता दायभागिषु [२४५]

मानव धर्मशास्त्र का आधार लेकर मद्रास में अपनी सगी बहन, सौतेली बहन, पोती, नवासी, भतीजी, भानजी, और चाचा की पुत्री—ये सब स्त्रियां भी (श्लोक २४० में कही स्त्रियों के अतिरिक्त) हक पानेवालों में गिनी गई हैं।

पञ्चाष्ट-नव-चन्द्राऽब्द-दायशोधि विधानतः ।
पूर्वं बन्धुत्वतः पौत्र्यो दौहित्र्यश्चाथ जामयः ॥ ७६६ ॥
दायार्हा द्रविडे ह्यासन् विधानोर्ध्वं परन्तु ताः ।
दायार्हा अभवन्सार्धं गोत्रजातसपिण्डकैः ॥ ७६७ ॥

(विक्रम) संवत् १९८५ (ई० सं० १९२९) के हकदारी का संशोधन करनेवाले कानून (The Hindu law of Inheritance (Amendment) Act) से पहले मद्रास में पोतियां, नवासियां और बहनें बन्धु होने के कारण दाय-धन पाती

थीं; परन्तु उक्त विधान (कानून के पास होने) के बाद (वे) गोत्रज-सपिण्डों के साथ दाय-धन लेने योग्य हो गई हैं ।

महाराष्ट्रमृतेऽन्यत्र स्त्रीपुंसेभ्यः समागते ।
दाये मिताऽधिकाराऽर्हाः स्त्रीदायादा मताबुधैः ॥ ७६८ ॥

विद्वानों ने बंबई-प्रदेश को छोड़कर दूसरी जगह (अर्थात्--बङ्गाल, बनारस, मिथिला और मद्रास में) स्त्रियों या पुरुषों से मिले दाय (उत्तराधिकार के धन) में (पूर्वोक्त) स्त्री हकदारों को परिमित (आजीवन) अधिकार वाली माना है ।

महाराष्ट्रेऽधवा पत्नी कन्याम्बा च पितामही ।
प्रपितामह्यपि पुनर्दायार्हाः स्युस्तथैव च ॥ ७६९ ॥
आपञ्च पुरुषं नूनं वंश्यपूर्वजयोस्तथा ।
भिन्नशाखागतानां तु वंशजानां सुताः पुनः ॥ ७७० ॥
गोत्रजातसपिण्डानां पत्न्यो मृतधवा अपि ।
संमता दायलाभार्हास्तत्रत्यैर्न्यायशास्त्रिभिः ॥ ७७१ ॥

बंबई-प्रान्त में विधवा पत्नी, लड़की, माता, दादी और परदादी भी दाय पाने योग्य होती हैं । तथा उसी प्रकार वहां के कानून के विद्वानों ने निश्चितरूप से पांच पीढ़ी तक के वंशजों और पूर्वजों की तथा भिन्न शाखा में रहे वंशजों (collaterals) की लड़कियों को तथा गोत्रज सपिण्डों की विधवा स्त्रियों को भी दाय-प्राप्ति के योग्य माना है ।

उत्पन्नया प्रमीतस्य गोत्रेऽत्रार्थाधिकारिणः ।
विवाहेनाऽपरं गोत्रं गतया च स्त्रिया तथा ॥ ७७२ ॥
तत्पुत्रीभिर्हि संप्राप्तं स्त्रीपुंसेभ्यस्तु यद्धनम् ।
दाये तत्तु मतं तत्र स्त्रीधनं सुविनिश्चितम् ॥ ७७३ ॥

यहां पर मरे हुए धन के अधिकारी के गोत्र में उत्पन्न हुई और विवाह के द्वारा दूसरे गोत्र में गई स्त्री ने या उसकी कन्याओं ने स्त्री या पुरुष से जो धन दाय (हक-दारी inheritance) में पाया हो उसे वहां पर (बंबई प्रान्त में) निश्चय स्त्री-धन माना है ।

मिताक्षरानुगानां तत्तत्रोक्तप्रथया व्रजेत् ।
मयूखानुगतानां च यायात्तत्रोक्तरीतितः ॥ ७७४ ॥

मिताक्षरा को माननेवालों का वह (स्त्री--धन) उसमें कही रीति से जाता है और व्यवहारमयूख को माननेवालों का (स्त्री-धन) उसमें कही रीति से जाता है ।

तत्रैव च निजं गोत्रं विवाहेन प्रविष्टया ।
नरेभ्योऽधिगतो दायो मिताऽधिकृतिको मतः ॥ ७७५ ॥

और वहीं (बंबई-प्रदेश में) विवाह के द्वारा अपने गोत्र में घुसी स्त्री (भार्या

आदि) द्वारा पुरुषों से पाया उत्तराधिकार का धन परिमित अधिकार वाला माना गया है ।

स्त्रीभ्यो गोत्रसपिण्डानामप्याप्तं पुंधनं तु यत् ।
स्वगोत्राऽगतया नार्या तद् मिताऽधिकृति स्मृतम् ॥ ७७६ ॥

गोत्रज सपिण्डों की स्त्रियों के द्वारा भी अपने गोत्र में आई स्त्री को मिला जो पुरुष का धन हो, वह परिमित अधिकार वाला ही माना गया है ।

स्त्रीधनं तु पुनस्ताभिरपि प्राप्तं स्त्रिया धनम् ।
भवेत्तच्च पुनर्यायात्तस्या एवोत्तरान् ध्रुवम् ॥ ७७७ ॥

उन (विवाह द्वारा अपने गोत्र में आई हुई) स्त्रियों को मिला हुआ भी स्त्री-धन तो स्त्री का धन ही होता है । और फिर वह निश्चय ही उसी के उत्तराधिकारियों को मिलता है ।

दायो मिताऽधिकारेऽन्ते प्रत्येति स्वप्रभूत्तरम् ।
पूर्णाऽधिकारे किन्त्वेष जनमेत्युत्तरं स्त्रियाः ॥ ७७८ ॥

परिमित (आजीवन) अधिकार में दाय अन्त में (अधिकारिणी के बाद) अपने मालिक के उत्तराधिकारी के पास लौट जाता है । परन्तु पूर्ण अधिकार में वह (उस) स्त्री के उत्तराधिकारी को ही मिलता है ।

दायभागः स्त्रियै दत्तः पत्या पुत्रैश्च पौत्रकैः ।
सामान्येनाऽत्र प्रत्येति तदन्ते पुत्रपौत्रकान् ॥ ७७९ ॥

यहां पति, पुत्र या पौत्रों द्वारा स्त्री को दिया उत्तराधिकार के धन का हिस्सा साधारण तौर पर उसके बाद बेटों और पोतों को वापस मिल जाता है ।

जैनी स्त्री स्वार्जिते पत्युर्धने पूर्णाऽधिकारिणी ।
कचित्,कचित्स्त्रियोऽप्यन्यास्तादृश्यः स्युः प्रथाबलात्॥७८०॥

कहीं जैनधर्मानुयायिनी स्त्री पति के खुद के कमाये धन में पूर्ण अधिकार वाली होती है और कहीं दूसरी स्त्रियां भी रिवाज के बल पर उसीके समान (पूर्णाधिकार वाली) हो जाती हैं ।

सारमेतद्धि विज्ञेयं पूर्वोक्तस्य बुधैस्तु यत् ।
द्रविडे मिथिलायां च वाराणस्यां च वङ्गके ॥ ७८१ ॥
पुंस्त्रियोर्दायरूपेण प्राप्तेऽर्थे योषितो मताः ।
मितस्वाम्याश्च तन्मृत्यौ स प्राक्पूर्णाधिकारिणः ॥ ७८२ ॥
अन्यं नेदिष्ठदायादं यायाच्च तु मृतस्त्रियाः ।
दायादं, हि यतो नासीत्सा तत्पूर्णाधिकारिणी ॥ ७८३ ॥

विद्वानों को पहले कहे का यह सार जानना चाहिए कि मद्रास, मिथिला, बनारस और बंगाल में पुरुष और स्त्री से दायरूप में पाये धन में स्त्रियां परिमित अधिकार

वाली मानी गई हैं और उसके मरने पर वह (धन) (उस स्त्री से) पहले के पूर्ण अधिकारी के (उस मृत स्त्री से) दूसरे सब से नजदीक के हकदार को मिलता है। मरनेवाली स्त्री के हकदार को नहीं मिलता; क्योंकि वह (स्त्री) उस (धन) की पूर्ण अधिकारिणी नहीं थी।

हित्वा परिणय-द्वारा मृतगोत्रं गताः स्त्रियः।
अपराभिहृतो दायो महाराष्ट्रे स्त्रिया धनम्॥ ७८४॥

विवाह के द्वारा मृत (पुरुष) के गोत्र में गई स्त्रियों को छोड़कर दूसरी स्त्रियों ने पाया दाय-धन बंबई प्रान्त में स्त्री-धन होता है

विवाहेनागताभिस्तु मृतस्यार्थाधिकारिणः।
गोत्रे स्त्रीभिर्हि-संप्राप्तः पुंदायो न स्त्रिया धनम्॥ ७८५॥
अपूर्णमेव तत्स्वाम्यं तत्र, यत्तत्प्रयाति सः।
प्राक् पूर्णस्वामिनो दायहरांस्तासां मृतौ ध्रुवम्॥ ७८६॥

विवाह के द्वारा मृत धन के अधिकारी के गोत्र में आई हुई स्त्रियों द्वारा प्राप्त किया पुरुष का दाय-धन स्त्री-धन नहीं होता। क्योंकि उन (स्त्रियों) का उस पर परिमित अधिकार ही होता है। इसलिए उन (स्त्रियों) के मरने पर, निश्चय ही, वह (धन) पहले के पूर्ण स्वामी के हकदारों को मिलता है।

स्त्रीदायादानां दायप्राप्तेऽर्थेऽधिकारः।

स्त्री हकदारों का दाय (हकदारी) में पाये धन पर अधिकार।

द्रविडे मिथिलायां च वाराणस्यां च वङ्गके।
स्त्रीभ्यो वा पुरुषेभ्यस्तु प्राप्ते दाये स्त्रियः खलु॥ ७८७॥
मितस्वाम्या अतस्त्वर्थस्वामिनो विधवा तथा।
कन्या माता पितुर्माता पितामहजनिः पुनः॥ ७८८॥
पौत्री चाप्यथ दौहित्री भगिनी च मता बुधैः
मिताधिकारा दायाप्तसंपत्तौ नात्र संशयः॥ ७८९॥

मद्रास में मिथिला में बनारस में और बंगाल में स्त्रियों से या पुरुषों से मिले दाय (हकदारी के धन) में स्त्रियां, निश्चय ही, परिमित अधिकारवाली होती हैं, इसलिए विद्वानों ने धन के स्वामी की विधवा पत्नी, कन्या, माता, दादी, परदादी, पोती, नवासी और बहन को दाय (inheritance) में पाये धन में परिमित (limited) अधिकार वाली माना है। इसमें संशय नहीं है।

एवमेव स्त्रियः सर्वाः स्त्र्यर्थदायहरास्तथा।
स्त्रीबान्धवा अपि मितस्वाम्याः स्युर्द्रविडे पुनः॥ ७९०॥

इसी प्रकार स्त्री-धन का दाय लेनेवाली सारी स्त्रियां (Stri-dhan heirs)

भी (मिताधिकारिणी) होती हैं। फिर मद्रास में स्त्री--बन्धु भी परिमित अधिकार वाले ही होते हैं।

महाराष्ट्रे स्त्रियः सर्वाः स्त्रीणां दायहरास्तु याः।
पूर्णस्वाम्या मतास्तास्तु दायाप्तेऽपि धने ध्रुवम्॥ ७६१॥

बंबई प्रान्त में जो स्त्रियों का दाय प्राप्त करनेवाली सारी स्त्रियां है, वे निश्चय ही दाय में पाये धन में भी पूर्ण अधिकार वाली मानी गई हैं।

पुंसो दायहरा यास्तु मृतस्यार्थाधिपस्य हि।
विवाहेनागता गोत्रमधवा स्त्री प्रसूस्तथा॥ ७६२॥
पितामही च जनकपितृमाताऽधवाःपुनः।
गोत्रजातसपिण्डानां मितस्वाम्या हि ता अपि॥ ७६३॥

पुरुष का दाय-धन लेनेवाली और विवाह के द्वारा मरे हुए धन के स्वामी के गोत्र में आई जो स्त्रियां (धन के स्वामी की) विधवा पत्नी, माता, दादी, परदादी और गोत्रज सपिण्डों की विधवायें है, वे भी परिमित अधिकार वाली होती हैं।

गोत्रजातसपिण्डानां विधवाः स्युः स्नुषाधवा।
मृतभ्रातृपितृभ्रात्रादीनां चापि स्त्रियस्तथा॥ ७६४॥

गोत्रज सपिण्डों की विधवा स्त्रियां-विधवा पुत्र वधू, मरे हुए भाइयों की स्त्रियां, मरे हुए चाचाओं की स्त्रियां आदि होती हैं।

अन्या मृतस्य धनिनो गोत्रोत्पन्नाः स्त्रियः खलु।
दायाप्तेऽपि धने पूर्णस्वाम्या एव मताः परम्॥ ७६५॥

परन्तु दूसरी मरे हुए धन के स्वामी के गोत्र में उत्पन्न हुई स्त्रियां दाय में मिले धन में भी निश्चय ही पूर्ण अधिकारवाली ही मानी गई हैं।

गोत्रोत्पन्नास्तु दुहिता भगिनी भ्रातृजादयः।
मृतस्य धनिनो विज्ञैर्विज्ञेया निश्चयेन हि॥ ७६६॥

गोत्र में उत्पन्न स्त्रियां तो विद्वानों को निश्चय रूप से मृत धनिक की लड़की, बहन, भतीजी, आदि को जानना चाहिए।

महाराष्ट्रमतेऽन्यत्र तस्मात्तु धनिनोऽधवा।
माता पितामही तातपितृमाता सुता तथा॥ ७६७॥
पौत्री दौहित्रिकाप्येवं भगिनी चापि निश्चितम्।
मितस्वाम्या मताः प्राप्ते पुंसो दाये तु पण्डितैः॥ ७६८॥

इसलिए विद्वानों ने बंबई प्रान्तको छोड़कर दूसरे प्रान्तों में धन के मालिक की विधवा स्त्री, माता, दादी, परदादी, लड़की, पोती, नवासी और बहन को पुरुष से पाये दाय--धन में तो परिमित अधिकार वाली माना है।

महाराष्ट्रे सुता पौत्री दौहित्री भगिनी तथा।
पुंसः प्राप्तेऽपि दाये स्युः पूर्णस्वाम्याः परं ध्रुवम् ॥७९९॥

परन्तु बंबई प्रान्त में निश्चय ही लड़की, पोती, नवासी और बहन पुरुष से प्राप्त किये दाय--धन में भी पूर्ण अधिकार वाली होती हैं।

स्त्रीप्राप्तास्त्रैणवित्तस्य स्त्रीनाशेऽन्त्याऽमितप्रभोः।
दायार्हा उत्तरा ज्ञेयाः प्रत्यादास्तत्पुनर्ग्रहात् ॥ ८०० ॥

स्त्री के द्वारा प्राप्त किये स्त्री--धनसे भिन्न धन के, (उस) स्त्री की मृत्यु के उपरान्त, अन्तिम पूर्णाधिकारी के हक पाने योग्य उत्तराधिकारियों को उस (धन) के फिर से लेने के कारण 'प्रत्याद' (reversioner) जानना चाहिए।

अप्राप्तदाये प्रत्यादा अपि कर्तुं पणादिकम्।
अक्षमाः स्युर्यतस्तस्य प्राप्तिर्लोकेऽस्त्यनिश्चिता ॥ ८०१ ॥

प्रत्याद (reversioners-अन्तिम पूर्ण-स्वामी का हक पानेवाले) लोग बिना मिले हकदारी के धनके विषय में किसी प्रकार की प्रतिज्ञा नहीं कर सकते; क्योंकि संसार में उस (धन) की प्राप्ति अनिश्चित ही होती है। (कौन हकदार पहले मरेगा और कौन पीछे यह किसी को मालूम नहीं होता।)

प्रत्यादेभ्यो न प्रत्यादा दायस्वाम्यमवाप्नुयुः।
दायस्याऽधिकृतावन्त्यपूर्णस्वाम्येव कारणम् ॥ ८०२ ॥

प्रत्याद (अन्तिम पूर्ण स्वामी के हकदार) लोग (दूसरे) प्रत्याद (अन्तिम पूर्ण स्वामी के हकदार) के द्वारा दाय (धन) का हक नहीं पा सकते। दाय (धन) के अधिकार के हक में तो अन्तिम पूर्ण स्वामी ही कारण होता है।

मिताऽधिकृतिकः प्राप्तः पत्युर्दायः स्त्रिया स्मृतः।
स्त्रीदायो विधवादायोऽथवेत्युभयनामतः ॥ ८०३ ॥

स्त्री द्वारा प्राप्त किये परिमित अधिकार वाले पति के दाय (धन) को 'स्त्री-दाय' अथवा 'विधवा-दाय' इन दोनों नामों से कहा गया है।

मिताऽधिकृतिका नार्योऽप्याजीवं प्रभुतां पराम्।
प्राप्नुवन्ति धने नूनं मूलाऽपव्ययवर्जिताम् ॥ ८०४ ॥

परिमित अधिकार वाली स्त्रियां भी (प्राप्त) धन के विषय में, मूल धन को अनावश्यक तौर पर खर्च करने के अधिकार को छोड़कर, निश्चय ही, आजीवन पूरी प्रभुता पाती हैं।

शक्तास्तस्य व्यये तास्तु न्याय्यावश्यकताकृते।
तद्धिताय च नेदिष्ठप्रत्यादानुमतेन वा ॥ ८०५ ॥

वे (स्त्रियां) न्याय्य (legal) आवश्यकता के लिये और उस (संपत्ति)

के लाभ के लिये या सब से नजदीकी प्रत्याद (reversioner) की अनुमति से उस (दाय-धन) को खर्च कर सकती हैं ।

प्रातिनिध्येन पूर्णस्याऽत्राऽन्तिमस्याऽधिकारिणः ।
पत्युर्दायहरा नार्यः स्त्रीदायेऽपि तथैव ताः ॥ ८०६ ॥

स्त्रियां निश्चय ही यहां पर अन्तिम पूर्णाधिकारी पति के प्रतिनिधि-रूप से हकदारी का धन प्राप्त करती हैं और स्त्री-धन में भी वे उसी तरह (प्रतिनिधि-रूप से) अधिकार प्राप्त करती हैं ।

दायस्यांशं त्वधिकृतं केनाप्यनधिकारिणा ।
स्वामिनः प्रातिनिध्याद्धि व्यहारेण साऽऽप्नुयात् ॥ ८०७ ॥

किसी अनधिकारी के द्वारा दबाये हुये दाय (धन) के हिस्से को वह (स्त्री) उस दाय के स्वामी की प्रतिनिधि होने से, (दीवानी) मुकद्दमे के द्वारा प्राप्त कर सकती है ।

अभियोज्या पुनः सापि पत्युर्ऋणकृते तथा ।
प्रत्यादानपि बध्नाति शासनं तत्कृते कृतम् ॥ ८०८ ॥

फिर पति के कर्जे के लिए उस पर भी अभियोग चल सकता है और उस विषय में की गई डिग्री प्रत्यादों (reversioners) को भी बांध लेती हैं (उन पर भी लागू होती है) ।

स्थावरं द्वादशाब्दान्तं षडब्दान्तं चलं तथा ।
हीनाऽभियुक्ति-परगं धनं नादीयते पुनः ॥ ८०९ ॥

विना अभियोग (मुकद्दमे) के बारह बरस तक पराये अधिकार में रहा स्थावर और छ वर्ष तक रहा अस्थावर धन पीछा नहीं लिया जा सकता ।

व्यवहारे न शक्ता चेद् द्वादशाब्दानपीह सा ।
तर्हि तस्या अधिकृतिर्नश्यत्यवधिनिर्गमात् ॥ ८१० ॥
प्रत्यादः किन्तु शक्तोऽत्र स्वाधिकाराप्तितो ध्रुवम् ।
आ द्वादशाब्दमादातुं व्यवहारेण तद्धनम् ॥ ८११ ॥

यदि वह मुकदमा करने में बारह वर्ष (तक) भी समर्थ न हो, तो अवधि के निकल जाने से, उसका अधिकार नष्ट हो जाता है । परन्तु वहां पर उस धन के अन्तिम पूर्ण अधिकारी का उत्तराधिकारी, अपने को अधिकार मिलने के समय से बारह बरस तक, मुकद्दमे के द्वारा निश्चय ही (उसे) लेने में समर्थ होता है ।

चेज्जीवन्त्यां स्त्रियामेवाऽभियोगः स्यान्निराकृतः ।
कालातिक्रमणात्तर्हि प्रत्यादोऽपि प्रतार्यते ॥ ८१२ ॥

यदि स्त्री के जीते जी ही मयाद निकल जाने से मुकद्दमा खारिज कर दिया गया

हो, तो पूर्णाऽधिकारी का आगे का हकदार भी (हक से) वञ्चित कर दिया जाता है।

व्यवहारोद्धृतो लाभभागांशो न्यूनितो यदि।
पुनर्विचारे तर्हि स्यात्सा तत् प्रत्यर्पभारिणी॥ ८१३॥

यदि फिर विचार (अपील) के समय मुकद्दमे के द्वारा प्राप्त किये लाभ के एक भाग को कम कर दिया गया हो तो उसको लौटाने का भार उसी (स्त्री) पर रहता है।

आजीवं सा क्षमा मूलस्यायं तु व्ययितुं ध्रुवम्।
निजेच्छया, स तद्भर्तुर्नो ऋणाय प्रयुज्यते॥ ८१४॥
बद्धा नैव तदायेन सा भर्तुर्वंशजन्मनाम्।
भृत्य तथा विवाहार्थं तत् सर्वं मूलवित्तगम्॥ ८१५॥

वह (स्त्री) जीवन पर्यन्त ही मूल--धन की आमदनी को इच्छानुसार खर्च कर सकती है। वह (आमदनी) पति के कर्जे के लिए काम में नहीं ली जा सकती। वह (स्त्री) उस (मूल--धन) की आमदनी से पति के रिश्तेदारों की परवरिश करने या उनका विवाह करने को बँधी नहीं होती, क्योंकि वे सब (बातें) मूल--धन से संबन्ध रखती हैं।

भाटकं पतिदायाप्तसंपत्तेः स्यात्तदंशकः।
भर्तृणशोधने तस्योपयोगो न्यायसंमतः॥ ८१६॥

पति से दाय में पाई संपत्ति का किराया (rent) उसी (संपत्ति) का हिस्सा होता है। पति के कर्जे के चुकाने में उसका उपयोग करना न्याय से माना हुआ है।

न्याय्यकार्याय नेदिष्ठप्रत्यादानुमतेन वा।
कृतो व्ययः स्त्रिया सर्वसंपदोऽपीह मन्यते॥ ८१७॥

स्त्री द्वारा न्याय्य (legal) कार्य के लिये या नजदीकी प्रत्याद (next reversioner) की अनुमति से किया सारी संपत्ति का खर्च भी मान्य होता है।

निजमाजीवनस्वार्थं तद्गतं सा क्षमा पुनः।
विक्रेतुमुपहर्तुं चाधीकर्तुं व्ययितुं तथा॥ ८१८॥

फिर वह (स्त्री) उस (धन) में रहे अपने जीवन पर्यन्त के स्वार्थ (life interest) को बेचने, उपहार में देने, गिरवी रखने या खर्च करने में समर्थ होती है।

पतिवंशस्थितानां तु भृत्यायुपयमाय च।
तयोर्न्याय्यत्वतः सेशा विक्रेतुं पतिसंपदम्॥ ८१९॥

पति के वंश में रहे हुओं (रिश्तेदारों) के भरण और विवाह के लिए, उन दोनों (बातों) के न्यायसंगत होने से, वह (स्त्री) पति की संपत्ति को बेच सकती है।

दायाप्तपतिसंपत्तेः प्रबन्धे सा क्षमा परम्।
कुर्यान्नापव्ययं तस्याः कर्म तद्धानिकृत्तथा ॥ ८२० ॥

वह (स्त्री) दाय में पाई पति की संपत्ति का प्रबन्ध कर सकती है। परन्तु (वह) उस (संपत्ति को फ़ज़ूल खर्च तथा उस (संपत्ति) को हानि पहुँचानेवाला काम न करे।

प्रत्यादानामभावेऽपि न्याय्यावश्याकतामृते।
साऽशक्ता तद्व्यये यस्मात्तदन्ते तत्प्रभुर्नृपः ॥ ८२१ ॥

प्रत्यादों (reversioners) के न होने पर भी न्याय्य आवश्यकता के बिना वह (स्त्री) उस (संपत्ति) को खर्च नहीं कर सकती, क्योंकि उस (स्त्री) के बाद उस (धन) का मालिक राजा होता है

दधाना पतिसंपत्तिं स्वामित्वेनापि न क्षमा।
परिवर्तयितुं पत्नी तद्गतान्नियमान्ध्रुवम् ॥ ८२२ ॥

पत्नी मालिक बनकर पति की संपत्ति को रखती हुई भी उसके साथ लगे नियमों को, निश्चय ही, नहीं बदल सकती।

महाराष्ट्रमृतेऽन्यत्र पुत्र्यादिभिरपि ध्रुवम्।
प्राप्ते परिमितस्वाम्ये दाय एषैव पद्धती ॥ ८२३ ॥

बंबई प्रान्त को छोड़ कर और जगहों पर लड़कियो आदि द्वारा प्राप्त किये परिमित अधिकार वाले दाय-धन में भी निश्चय ही यही तरीका है।

प्राप्ताधिकारा विधवा मितस्वाम्यास्तथाऽपराः।
स्त्रियो दायाप्तसंपत्तेरायं तु व्ययितुं क्षमाः ॥ ८२४ ॥
यावज्जीवं यथेच्छं हि पूर्णस्वाम्यतया, ततः।
न ताः प्रत्यादनिक्षेपरक्षिकाः केवलं मताः ॥ ८२५ ॥

अधिकार प्राप्त करने वाली विधवा और परिमित अधिकार वाली दूसरी स्त्रियां जीवनपर्यन्त पूरे अधिकार वाली होने से, दाय (हकदारी) में पाई संपत्ति की आमदनी को खर्च कर सकती हैं। इसलिये वे केवल प्रत्याद (reversioner) के सौंपे हुए धन की रक्षा करनेवाली (trusty) ही नहीं मानी गई हैं।

दायं संत्यज्य लेखेनाजीवं भोगकृतेऽत्र या।
लब्धा संपत्तदायस्तु लेखस्य दिवसात्पुनः ॥ ८२६ ॥
मूलतो भिन्नतां याति तदर्थं न ततो भवेत्।
स्त्रियाः स्वाम्यस्य शङ्का तत्सञ्चयेऽपि सुनिश्चितम् ॥ ८२७ ॥

फिर यहां पर हकदारी (succession) में पाये हुए को छोड़कर लेख के द्वारा जो संपत्ति आजीवन भोग के लिए पाई हो, उसकी आमदनी, लेख लिखने के दिन

से ही, मूल धन से भिन्न हो जाती है। इस लिये, उस (आमदनी) के इकट्ठी हो जाने पर भी, उसके लिये निश्चय ही, स्त्री के अधिकार के विषय में शङ्का नहीं होती।

परं दायाप्तसंपत्तेरायो यत्रोपचीयते।
तस्यां स्थितायामन्यस्य स्वाम्ये स्त्र्यधिकृतौ तथा ॥८२८॥
तत्र तूपचितायस्तु स्त्र्यर्थो वा नेति निश्चये।
निम्नरीत्या विभज्यैव निर्णयोऽस्य विधीयते ॥ ८२९ ॥

परन्तु जहां पर दाय (हकदारी) में पाई संपत्ति की आमदनी, उस (संपत्ति) के दूसरे के अधिकार में रहते समय या स्त्री के अधिकार में रहते समय इकट्ठी हो जाती है, वहां पर इकट्ठी हुई आमदनी स्त्री धन है या नहीं इसके निश्चय करने में नीचे लिखी रीति से विभाग करके ही इसका निर्णय किया जाता है।

यस्तु जीवति पत्यौ वा स्वाम्येऽन्यपुरुषस्य वा।
पूर्वाधिकारिणस्त्वायोपचयः स्यात्तथा च यः ॥ ८३० ॥
मरणान्ते तयोः प्राक् च नार्या अधिकृतेर्भवेत्।
आयस्य संचयो वाथ कृतः स्याद्यस्तया स्वयम् ॥ ८३१ ॥
स्वाम्यमायस्य वा तस्योपचयस्य त्वनिश्चितम्।
यत्र तत्र तदायस्य पूर्वोत्तरचयौ च यौ ॥ ८३२ ॥
तथा पत्या प्रदत्तो यः स्त्रियै स्वस्यायसंग्रहः।
इच्छापत्रेण वा लेखपत्रेणाथ भवेत्पुनः ॥ ८३३ ॥
वृद्धिरन्यप्रकारेण संपत्तेर्या तु निश्चिता।
इतीदृक् षड्विधो ज्ञेय आयस्योपचयो बुधैः ॥ ८३४ ॥

जो आमदनी का संग्रह पति के जीते जी या (स्त्री से) पहले के अन्य अधिकारी पुरुष के समय हुआ हो अथवा जो आमदनी का संग्रह उन दोनों (उपर्युक्त पति या अन्य पूर्वाधिकारी पुरुष) के मरने के बाद और स्त्री के अधिकार के पहले हुआ हो या जो उस (स्त्री) ने स्वयं किया हो या जहां पर आमदनी या उसके, संचय का अधिकार निश्चित न हो (अर्थात् उनका स्वामी कौन है यह अनिश्चित हो) वहां पर पहले और दूसरे (आमदनी या आमदनी के संग्रह) के संचय हुए हों अथवा पति ने अपनी आमदनी का जो संग्रह इच्छापत्र से या लेख-पत्र (deed) से स्त्री को दिया हो या फिर जो दूसरे प्रकार से संपत्ति की निश्चित वृद्धि हुई हो—इस प्रकार विद्वानों को छह प्रकार का आमदनी का संग्रह जानना चाहिए।

संपत्तेर्हि समो नूनं प्रथमस्त्वायसञ्चयः।
तत्र तस्य मितस्वाम्यमेवाप्नोति ततस्तु सा ॥ ८३५ ॥

प्रथम प्रकार का आमदनी का संग्रह संपत्ति (मूल-धन) के समान होता है।

इसलिए वहां पर वह (स्त्री) उस (आमदनी के संग्रह) का परिमित अधिकार ही पाती है ।

द्वितीयेऽथ तृतीयेऽत्राऽभिप्रायेणैव तु स्त्रियाः ।
आयसञ्चयवित्तस्य भागत्वं प्राप्तसंपदः ॥ ८३६ ॥
अथवा स्त्रीधनत्वं हि बुधैर्निर्णीयते ततः ।
स्त्र्यर्थ एव स नो यत्र सूचितः स्यात्तयाऽन्यथा ॥ ८३७ ॥

यहां पर दूसरे और तीसरे में विद्वानों द्वारा स्त्री के अभिप्राय से ही आमदनी से इकट्ठे हुए धन का पाई हुई संपत्ति का भाग होना या स्त्री-धन होना निश्चित किया जाता है । इसलिए जहां पर अन्य प्रकार से सूचित न किया हो (अर्थात्-उस संचय को संपत्ति का भाग न प्रकट किया हो) वहां पर वह स्त्री--धन ही होता है ।

आयक्रीता स्थिरा संपद्दीर्घकालोत्तरं न सा ।
पुत्र्यै दातुं समर्था यत्सांशः स्यात्प्राप्तसंपदः ॥ ८३८ ॥
परं क्रयोत्तरं तां तूपयुञ्जाना निजार्थवत् ।
शक्ता दातुं यथेच्छं सा स्त्र्यर्थस्तत्र तु सा मता ॥ ८३९ ॥

(संपत्ति की) आमदनी से खरीदी हुई स्थिर संपत्ति को वह (स्त्री) बहुत समय के बाद पुत्री को देने में समर्थ नहीं होती; क्योंकि वह प्राप्त की हुई संपत्ति (मूल--धन) का भाग हो जाती है । परन्तु खरीदने के बाद उसका अपने (स्त्री) धन की तरह उपयोग करती हुई वह (स्त्री) (उसे) अपनी इच्छानुसार दे सकती है; क्योंकि वहां पर वह स्त्री--धन मानी गई है ।

दद्यात्स्वोत्तरप्रत्यादायाप्तार्थायांशमत्र या ।
ऋणे प्राक्, प्राप्नुयादन्ते शासनं तद्ग्रहाय च ॥ ८४० ॥
परं ग्रहणतः पूर्वं सा म्रियेत तदा ध्रुवम् ।
तस्याः स्त्र्यर्थाधिकारी तदृणादाने क्षमोभवेत् ॥ ८४१ ॥

जो (स्त्री) यहां पर पहले अपने बाद के प्रत्याद-हकदार (reversioner) को पाये हुए धन की आमदनी का कुछ भाग कर्ज दे और फिर उसको प्राप्त करने के लिए डिग्री प्राप्त करे, परन्तु उसके लेने के पहले ही वह (स्त्री) मरजाय, तो निश्चय ही उस (स्त्री) का स्त्री--धन का हकदार उस कर्ज को वसूल करने में समर्थ होता है ।

स्वामिन्या पतिसंपत्तेः क्रीता विधवया तु या ।
प्राक्क्रयस्याधिकारेण तत्संपत्पार्श्वसंस्थिता ॥ ८४२ ॥
संपत्तिः स्यात्स्त्रिया वित्तं चेन्नो पत्यर्थतः क्रयः ।
प्राक्क्रयस्याधिकारात्तिस्तत्र नो बाधते ध्रुवम् ॥ ८४३ ॥

पति की संपत्ति की मालिक बनी विधवा ने उस संपत्ति के पास में रही संपत्ति पहले खरीद सकने (pre--emption--हक शफा) के अधिकार से खरीदी हो, परन्तु

यदि वह पति के धन (मूल–धन) से नहीं खरीदी गई हो, तो स्त्री–धन होती है । पहले खरीद सकने (हक–शफा) के अधिकार की प्राप्ति (जो कि पति की संपत्ति की मालिक होने से मिली थी) निश्चय ही, उसमें बाधा नहीं डालती ।

वङ्गे दायाप्तसंपत्तेरायो न व्ययितः स्त्रिया ।
परं स तद्गृहीतोऽर्थो ऽर्थः स्त्र्यर्थ इवाहितः ॥ ८४४ ॥
यत्र तत्र स एकेषां मते नार्युत्तरान् व्रजेत् ।
शक्ता तेषां मते दातुं स्वेच्छापत्रेण तं च सा ॥ ८४५ ॥
अन्येषां स मते यायात्तत्पत्युर्दायहारिणः ।
इच्छापत्रेण तद्दानेऽप्यक्षमा सा च तन्मते ॥ ८४६ ॥
पूर्वेषां निर्णयस्त्वत्र प्रागुक्तनियमानुगः ।
अन्येषां तद्विरुद्धोऽपि कैश्चित्तत्र समादृतः ॥ ८४७ ॥

बंगाल में जहां पर स्त्री ने दाय (हकदारी) में पाई संपत्ति की आमदनी खर्च नहीं की हो, परन्तु उसे और उससे प्राप्त (खरीदे) धन को स्त्री–धन की तरह रक्खा (treat किया) हो, वहां पर कुछ के (जज Mitter) के मत में वह (आमदनी) स्त्री के (मरने पर उसके) उत्तराधिकारियों को मिलती है और उनके मत में वह (स्त्री) उसे इच्छापत्र (will) से दे सकती है । दूसरों के (जज Page) के मत में वह (आमदनी) उस (स्त्री) के पति के हकदारों को मिलती है और उनके मत में वह उसको इच्छापत्र से देने में भी असमर्थ होती है । यहां पर पहलेवालों का निर्णय पहले कहे नियमों के अनुकूल है और दूसरों का उसके विरुद्ध होने पर भी वहां पर (बंगाल में) कुछ लोगों ने मानलिया है ।

वङ्गेऽथ कोशले चेन्नाऽधवया व्ययितः स्वयम् ।
जीवन्त्याप्तधनस्यायः शासनं तत्कृते तथा ॥ ८४८ ॥
प्राप्तं नैवोपयुक्तं वा नोपयुक्तस्तथैव च ।
अनिश्चितस्वाम्य आयश्चतुर्थे स तदाऽक्षमा ॥ ८४९ ॥
अर्थान्प्राक्कथितान्दातुमिच्छापत्रेण तत्र तु ।
तदन्ते यान्ति ते सर्वे तत्पतेरेव चोत्तरान् ॥ ८५० ॥
तदाशयस्तथान्यत्र मुख्यो निर्णायको मतः ।
तदिच्छाया विरोधस्याऽभावेऽप्येष स्त्रिया धनम् ॥ ८५१ ॥

बंगाल में और अवध में यदि जीती हुई विधवा ने पाये हुए धनकी आमदनी को खुद खर्च न किया हो या उसके लिए प्राप्त की हुई डिग्री को काम में नहीं लिया हो अथवा अनिश्चित स्वाम्य (held in suspense) वाली आमदनी का उपभोग नहीं किया हो, तो वहां पर चौथी हालत में वह (स्त्री) पहले कहे धनों को इच्छापत्र से नहीं दे सकती, तथा उसके बाद वे सब उसके पति के ही उत्तराधिकारियों को

मिलते हैं। दूसरे स्थानों पर (तो) उस (स्त्री) का अभिप्राय (ही) मुख्य निर्णायक माना गया है और उसकी इच्छा का विरोध न होने पर भी यह (अन्यत्र की आमदनी) स्त्री-धन होती है।

पञ्चमे यत्र लेखेन स्वेच्छापत्रेण वा स्त्रियै।
पत्या दत्तस्तदाजीवमायस्तु निजसंपदः ॥ ८५२ ॥
दत्ता संपत्तथान्यस्मै तत्र तूक्तायसञ्चयः।
तेन क्रीतान्यसंपच्च स्त्रीधनं स्यात्सुनिश्चितम् ॥ ८५३ ॥

पाँचवीं अवस्था में जहां पर पति ने लेख (deed) से या इच्छापत्र (will) से स्त्री को उसके जीवन पर्यन्त के लिए अपनी संपत्ति की आमदनी दी हो तथा संपत्ति दूसरे को दी हो, वहां पर उस कही हुई आमदनी का संग्रह (accumulation) और उससे खरीदी दूसरी संपत्ति, निश्चय ही, स्त्री-धन होती है।

शासनेन स्वभर्तुर्हि धनात्प्राप्तभृतेश्चयः।
तेन क्रीता च संपत्तिर्विधवायाः स्त्रिया धनम् ॥ ८५४ ॥

डिग्री के द्वारा अपने पति की संपत्ति से पाई आजीविका का संग्रह और उससे खरीदी संपत्ति विधवा स्त्री का स्त्री-धन होती है।

षष्ठे विधवया यत्र दायाप्तपतिसंपदः।
ऋत आयात्कृता वृद्धिस्तत्र सा न स्त्रिया धनम् ॥ ८५५ ॥

छठी अवस्था में जहां पर विधवा ने दाय में पाई पति की संपत्ति की आमदनी को छोड़कर (अन्य प्रकार से) (उसकी) वृद्धि की हो, वहां पर वह संपत्ति स्त्री-धन नहीं होती है।

व्ययितोऽधवया वान्यमितस्वाम्यस्त्रिया स्थिरः।
दायार्थश्चेत्तदा तस्य न्याय्यत्वस्य तु सिद्धये ॥ ८५६ ॥
आवश्यकत्वं निम्नोक्तकारणानां मतं बुधैः।
न्याय्यावश्यकताभावः क्रेतुर्वाथ क्रयो ध्रुवम् ॥ ८५७ ॥
कालोचितपरीक्षातः सिद्धे न्याय्ये हि विक्रये।
तस्मिंस्तदुत्तराणां वा प्रत्यादानां तु संमतिः ॥ ८५८ ॥
तस्याः स्वार्थस्य सर्वस्य सर्वसंपद्गतस्य वा।
उत्सर्गः स्वीयनेदिष्ठप्रत्यादस्य कृतेऽथवा ॥ ८५९ ॥
प्रत्यादानां कृते नूनं व्ययकाले तु संपदः।
प्रागुक्तानामभावे तु व्ययोऽमान्योऽत्र तत्कृतः ॥ ८६० ॥

जहां पर विधवाने या मिताधिकार वाली अन्य स्त्री ने दाय में मिले स्थिर धन को खर्च कर दिया हो, वहां पर उसके न्याय्य सिद्ध करने के लिए विद्वानों ने नीचे कहे

कारणों को आवश्यक माना है--न्याय्य (legal) आवश्यकता का होना या खरीद-दार का समयोचित जांच के द्वारा बेचने के न्याय्य सिद्ध होने पर खरीदना या उस (बेचान) में उसके अगले प्रत्यादों (हकदारों–reversioners) की संमति अथवा संपत्ति के खर्च के समय उस स्त्री के सारी ही संपत्ति में रहे सारे ही स्वार्थ (inter-est) का अपने सब से नजदीक के प्रत्याद (हकदार) के लिए या प्रत्यादों (हक-दारों) के लिए त्याग (surrender) । पहले कहे (कारणों) के अभाव में यहां पर उस (विधवा या मिताधिकारिणी स्त्री) का किया खर्च अमान्य होता है ।

प्रथमासु व्यवस्थासु मितस्वाम्यस्त्रिया कृतः ।
व्ययः समग्रसंपत्तेस्तदंशस्यापि मन्यते ॥ ८६१ ॥
अवस्थायां चतुर्थ्यां तु सर्वस्या एव संपदः ।
व्ययः स्वीक्रियते न्यायशास्त्रिभिर्नात्र संशयः ॥ ८६२ ॥

पहली तीन अवस्थाओं में परिमित अधिकारवाली स्त्री का किया सारी संपत्ति का या उसके कुछ भाग का भी खर्च (alienation) मान्य समझा जाता है; परन्तु चौथी अवस्था में न्यायशास्त्र के पण्डितों द्वारा सारी संपत्ति का खर्च ही स्वीकार किया (मान्य) समझा जाता है । इसमें सन्देह नहीं है ।

न्याय्यावश्यकताहेतोः कृतस्यर्णस्य शुद्धये ।
विधवा पतिसंपत्तिं व्ययितुं हि क्षमा मता ॥ ८६३ ॥

न्याय्य (legal) आवश्यकता के लिए किए क़र्ज को चुकाने के लिए विधवा स्त्री पति की संपत्ति को खर्च करने में समर्थ मानी गई है ।

महाराष्ट्रमृतेऽन्यत्र दायप्राप्तं स्थिरास्थिरम् ।
मितस्वाम्याः स्त्रियस्त्वन्या विधवार्थाधिपस्य वा ॥८६४॥
दातुं लेखेन वा स्वेच्छापत्रेणाप्यक्षमा मताः ।
मैताक्षरेष्वशक्तास्ता महाराष्ट्रेऽपि निश्चितम् ॥ ८६५ ॥

बंबई-प्रान्त को छोड़कर दूसरी जगह हकदारी में पाये अचल और चल धन को परिमित अधिकार वाली दूसरी स्त्रियां या धनके स्वामी की विधवा लेख (deed) से या अपने इच्छापत्र (will) से भी देने में असमर्थ मानी गई है और मिताक्षरा को माननेवालों में तो वे बंबई प्रान्त में भी, निश्चय ही, (लेख या इच्छापत्र से देने में) असमर्थ होती हैं ।

मायूखेषु मताः शक्तास्ता दायाप्तं चलं धनम् ।
विक्रेतुमुपहर्तुं वा व्ययितुं वान्यरीतितः ॥ ८६६ ॥
अक्षमाः किन्तु ता दातुमिच्छापत्रेण तद्धनम् ।
अवशिष्टं तदन्ते च पूर्णांशस्यान्तिमस्य हि ॥ ८६७ ॥

याति नेदिष्ठदायादं तथा पुत्रैः सहांशने।
प्राप्तं ताभिश्चलं वित्तं प्रागुक्तेन समं मतम् ॥ ८६८ ॥

व्यवहारमयूख को माननेवालों में वे (परिमित अधिकार वाली स्त्रियां और धन के मालिक की विधवा) हकदारी में पाये चल (अस्थावर) धन को बेचने को, उपहार में देने को अथवा अन्य प्रकार से खर्च करने को समर्थ मानी गई हैं। परन्तु वे उस धन को इच्छापत्र से देने में असमर्थ होती हैं। और उन (स्त्रियों) के मरने पर बाकी रहा (धन) अन्तिम पूर्ण स्वामी के सब से नजदीकी हकदार को मिल जाता है। फिर उनके द्वारा पुत्रों के साथ हिस्सा करने में पाया चल धन पहले कहे हकदारी में पाये धन के समान ही माना गया है।

मितस्वाम्याः स्त्रियो दाये संप्राप्तं तु स्थिरास्थिरम्।
तदंशं वाऽक्षमा दातुमिच्छापत्रेण निश्चितम् ॥ ८६९ ॥

परिमित अधिकार वाली स्त्रियां हकदारी में मिली अचल या चल संपत्ति को या उसके कुछ भाग को इच्छापत्र के द्वारा देने में, निश्चय ही, असमर्थ होती हैं।

केवलं दानधर्माभ्यामथवा न्यायकर्मणे।
दायाप्तर्थाव्यये शक्ता मितस्वाम्याः स्त्रियः खलु ॥ ८७० ॥
श्राद्धं वाऽन्त्येष्टिकृत्यं हि मृतवित्ताधिकारिणः।
आवश्यकत्वतो ग्राह्यं विबुधैर्दानधर्मयोः ॥ ८७१ ॥
मृतोऽर्थस्याधिपो बद्ध आसीद्येषां कृते पुनः।
विधातुं धर्मकर्माणि तेषां श्राद्धादिकं तथा ॥ ८७२ ॥
पत्यात्मशुभदं कर्म ग्राह्यं पूर्वोक्तयोर्बुधैः।
प्रायोऽनावश्यकत्वेन हेयत्वेऽपि सुनिश्चितम् ॥ ८७३ ॥

परिमित अधिकार वाली स्त्रियां, निश्चय ही केवल दान (charity) और धर्म (religious) कामों के लिए अथवा न्याय (legal) के काम के लिए दाय में प्राप्त किये, धन को खर्च कर सकती हैं। विद्वानों को मरे हुए धन के स्वामी के श्राद्ध को या और्ध्वदैहिक कर्म को, (उनके) आवश्यक होने से, दान और धर्म में लेना चाहिए। फिर, विद्वानों को मरा हुआ धन का स्वामी जिनके लिए धर्म कृत्य करने को बाध्य था, उनका श्राद्ध आदि और पति की आत्मा का कल्याण करनेवाला काम, निश्चय ही अधिकतर अनावश्यक (unessential) होने से त्याज्य होने पर भी, पहले कहे दोनों (दान और धर्म) में लेना चाहिए।

प्रागुक्तावश्यकेभ्यस्तु कृत्येभ्योऽखिलसंपदम्।
अल्पायामल्पमूल्यां वा विक्रेतुं सा क्षमा परम् ॥ ८७४ ॥
अनावश्यककृत्येभ्यः शर्मकृद्भ्यस्तु सा क्षमा।
इयत्तां संपदोदृष्ट्वोचितांशं व्ययितुं ततः ॥ ८७५ ॥

वंशस्यावस्थया यत्र तद्व्ययश्चापि नोचितः।
व्ययितुं तत्र साऽशक्ता तन्मात्रामपि संपदम् ॥ ८७६ ॥

पहले कहे जरूरी (essential or obligatory) कामों के लिए तो वह (परिमित अधिकार वाली स्त्री) कम आमदनी वाली या कम मूल्य की सारी ही संपत्ति को बेच सकती है। परन्तु कल्याणकर अनावश्यक (गैर जरूरी--unessential or unobligatory) कामों के लिए वह (स्त्री) संपत्ति की हैसियत को देखकर उसमें से उचित अंश खर्च कर सकती है। जहां पर वंश की अवस्था (circumstance) से (कुछ अंश का) खर्च (भी) उचित न हो, वहां पर वह उतनी संपत्ति को भी खर्च नहीं कर सकती।

मृतस्यार्थाधिपस्यात्र ऋणशोधकृतेऽपि सा।
विक्रये संपदः शक्ता तत्कर्मावश्यकं यतः ॥ ८७७ ॥

यहां मरे हुए धन के स्वामी के कर्ज को चुकाने के लिए भी वह (स्त्री) संपत्ति को बेच सकती है; क्योंकि वह काम जरूरी होता है।

आयस्तु संपदो ज्ञेयः स्त्रिया एव धनं बुधैः।
तत्प्रयोगस्तदायत्तः कृत्येष्वेतादृशेष्वतः ॥ ८७८ ॥

विद्वानों को संपत्ति की आमदनी को स्त्री का ही धन जानना चाहिए। इसलिए ऐसे (पहले कहे) कामों में उस (आमदनी का प्रयोग) उस (स्त्री) के अधीन होता है।

प्रागुक्ता यत्र पोषार्हा एव तत्र न ताः क्षमाः।
संपत्तिं स्वाम्यतो बाह्यां व्ययितुं धर्मकर्मणे ॥ ८७९ ॥
तदर्थं यत्र नो वृत्तौ प्रागेवार्थः समर्पितः।
तत्राभियोगतो वृत्तौ तास्तं योजयितुं क्षमाः ॥ ८८० ॥

जहां पर पहले कही (स्त्रियां) केवल भरण-पोषण की ही हकदार हों, वहां पर वे अधिकार से बाहर रही संपत्ति को धर्म के कामों के लिए खर्च नहीं कर सकतीं। तथा जहां पर पहले ही उस (धर्म--कृत्य) के लिए वृत्ति (पोषणार्थ मिलनेवाले धन) में धन नहीं दिया गया हो, वहां पर वे मुकद्दमे के द्वारा वृत्ति में उसे जुड़वा सकती हैं।

दानधर्मौ विनान्यत्र मितस्वाम्याः स्त्रियः खलु।
व्ययितुं दायसंप्राप्तां संपदं केवलं क्षमाः ॥ ८८१ ॥
सति प्रयोजने संपल्लाभार्थमथवा पुनः।
अत्र प्रयोजनाज्ज्ञेयं संपन्नाशभयादिकम् ॥ ८८२ ॥

परिमित अधिकार वाली स्त्रियां निश्चय ही उत्तराधिकार में पाई संपत्ति को दान और धर्म के कामो (charitable and religious acts) के अतिरिक्त दूसरी

जगह केवल प्रयोजन होने पर अथवा फिर संपत्ति के लाभ के लिए खर्च कर सकती हैं। यहां पर प्रयोजन से संपत्ति के नाश का भय आदि समझना चाहिए।

न्याय्यावश्यकतार्थं वा लाभार्थं संपद कृतः।
व्ययस्ताभिस्तु बध्नाति प्रत्यादानपि संपदः॥ ८८३॥

उन (स्त्रियों) के द्वारा न्याय्य (legal) आवश्यकता के लिए या संपत्ति के लाभ के लिए किया खर्च (उस) संपत्ति के प्रत्यादों (reversioners) को भी बांध लेता है।

यत्र न्याय्यो व्ययो नूनं संपदस्तत्र प्राक्तनः।
कुप्रबन्धो न बाधादः क्रेतुर्न्याय्ये क्रये पुनः॥ ८८४॥

जहां पर संपत्ति का बेचान न्याय्य (legal) हो, वहां पर पहले का (संपत्ति का) कुप्रबन्ध खरीदने वाले की न्याय्य (उचित) खरीद में बाधा नहीं डालता। (अर्थात्–उसकी खरीद न्यायोचित ही मानी जाती है।)

न्याय्यावश्यकतायां च प्रबन्धार्थं तु संपदः।
तद्दायाप्त्यर्थमथवा राजपत्रग्रहाय हि॥ ८८५॥
राजस्वस्याप्रदत्तस्य दानायाथ मृते पुनः।
धनेशेऽदत्तभाटार्थलब्धशासनहेतवे॥ ८८६॥
ताभिराधीकृता संपद्विक्रीता वाऽत्र मन्यते।
नेच्चापरं भवेद् द्रव्यं तदर्थं हि सुनिश्चितम्॥ ८८७॥
दानाभावे च संपत्तेर्हठाद्विक्रयसंभवः।
संपत्तेः कुप्रबन्धस्तु तत्कृतो नाऽत्र बाधकः॥ ८८८॥
तावद्यावन्न तत्क्रेतुराधेरादातुरेव वा।
संपर्कः कुप्रबन्धे नो निश्चयेन प्रमाणितः॥ ८८९॥

न्याय्य (lagal) आवश्यकता के लिए, संपत्ति के प्रबन्ध के लिए अथवा उसके हक को प्राप्त करने के लिए राजपत्र (letter of administration or succession certificate) के लेने के लिए नहीं दिये हुए राज–कर (Govern-ment revenue) के देने के लिए और धनके स्वामी के मरने पर नहीं दिए हुए भाड़े (rent) के लिए पाई डिग्री के लिए उन (मिताधिकार वाली) स्त्रियों द्वारा गिरवी रक्खी या बेची हुई संपत्ति, यदि निश्चय ही उसके लिए दूसरी संपत्ति न हो और (उनके) नहीं देने पर संपत्ति के जबरदस्ती बेचे जाने का संभव हो तो, यहां पर, मानली जाती है। उस (स्त्री) का किया संपत्ति का कुप्रबन्ध उसमें तब तक बाधक नहीं होता, जब तक कि खरीदने वाले या गिरवी लेनेवाले का लगाव कुप्रबन्ध में निश्चय रूपसे, प्रमाणित न कर दिया जाय।

राजस्वं भाटकं वापि धनेशमरणान्तजम् ।
तत्संपदायतो देयं स्त्रिया नो मूलसंपदः ॥ ८९० ॥

स्त्री को धन के स्वामी के मरने के बाद का राजस्व (Government revenue) और किराया (rent) उसकी संपत्ति की आमदनी से देना चाहिए मूल संपत्ति से नहीं।

धनेशमृतिपर्यन्तमदत्तं तेन भाटकम् ।
राजस्वं चात्र दातव्यं संपत्तेर्मूलवित्ततः ॥ ८९१ ॥

धन के स्वामी के मरण पर्यन्त का नहीं दिया किराया (भाड़ा-rent) और राज-कर (Government revenue), यहां पर, संपत्ति के मूल धन से देना चाहिये।

विक्रेतुं संपदं शक्ताः पोषाय स्वात्मनश्च ताः ।
बद्धो धनेशः पोषाय येषां तेषां कृतेऽथवा ॥ ८९२ ॥
तत्कुटुम्बकृते जातमृणं दातुमथो पुनः ।
पितामह्यम्बिकाऽनूढकन्याद्याः स्युरिहादृताः ॥ ८९३ ॥

वे (मिताधिकार वाली) स्त्रियां अपनी आत्मा के भरण-पोषण के लिये अथवा जिनके भरण-पोषण के लिये धन का स्वामी बंधा (जिम्मेवार) था उनके लिये या फिर उस (धन के स्वामी) के कुटुम्ब के लिए हुए ऋण के देने के लिये संपत्ति को बेच सकती हैं। इस (धन) के स्वामी के कुटुम्ब में दादी, माता और क्वारी कन्या आदि मानी जाती हैं।

पुनस्तास्तां क्षमा आधीकर्तुं विक्रेतुमत्र वा ।
वंशकन्याविवाहाय मृतस्यार्थाधिपस्य तु ॥ ८९४ ॥
तासु ग्राह्या सुता पौत्री प्रपौत्र्यर्थाधिपस्य वा ।
पैतृव्यस्य सुताद्याश्च यास्तदर्थाश्रिताऽपराः ॥ ८९५ ॥

फिर वे (परिमित अधिकार वाली) स्त्रियां यहां पर मरे हुये धन के स्वामी के वंश की कन्याओं के विवाह के लिए उस (संपति) को गिरवी रखने व बेचने में समर्थ होती हैं। उन (वंश की कन्याओं) में धन के स्वामी की लड़की, पोती, परपोती और भतीजे की लड़की आदि तथा जो दूसरी (कन्यायें) उस (धन के स्वामी) के धन के आश्रित हों लेनी चाहिए।

पितृदायहरायाश्चेत्कन्यायास्त्वप्रतिष्ठितः ।
भर्ता तर्हि क्षमा सा स्वां तेनोद्वाहयितुं कनीम् ॥ ८९६ ॥
पतिदायहराः किन्तु विधवा न क्षमा मताः ।
तेनोद्वाहयितुं स्वीया दौहित्रीस्तु कथञ्चन ॥ ८९७ ॥

पिता का दाय-धन पानेवाली कन्या का पति यदि ग़रीब हो, तो वह उस

(धन) से अपनी कन्या का विवाह कर सकती है। परन्तु पति का दाय-धन पानेवाली (उसकी) विधवा स्त्री उस (धन) से अपनी नवासियों का विवाह किसी तरह भी नहीं कर सकती।

स्वकन्योपयमे शक्ता उपहर्तुं यथोचितम्।
जामात्रे वाथ कन्यायै दायाप्तधनतोऽधवाः ॥ ८९८ ॥
गर्भाधानाय गच्छन्त्यै पुत्र्यै पतिगृहं प्रति।
तथैवोपहृतौ शक्तास्ता दायाप्तधनाद् ध्रुवम् ॥ ८९९ ॥
क्षमास्ताश्च पुरैवोक्ताः संपत्तेराधिविक्रये।
संपद्धिताय तस्मिंश्च तस्या रक्षाकृते तु यः ॥ ९०० ॥
अभियोगव्ययो यश्च तस्या जीर्णोद्धृतौ पुनः।
स ग्राह्यो न तु तद्वृद्धिसंस्काराभ्यां कृतो व्ययः ॥ ९०१ ॥

विधवा स्त्रियां दाय में पाये पति के धन से अपनी कन्या के विवाह में दामाद को या कन्या को उचित (reasonable) उपहार दे सकती हैं। वैसे ही गौने के लिए पति के घर को जाती हुई कन्या को भी, निश्चय ही, दाय में पाये धन से उपहार दे सकती हैं। तथा वे पहले ही संपत्ति के हित (benefit) के लिए (दाय में पाई) संपत्ति के गिरवी रखने या बेचने में समर्थ कही गई हैं। उस (संपत्ति) के हित में, जो उस संपत्ति की रक्षा के लिये मुकद्दमे में या जो उसके जीर्णोद्धार में खर्च हो, वही लेना चाहिए उस (संपत्ति) की वृद्धि (development) या संस्कार (improvement) के लिए किया खर्च नहीं लेना चाहिए।

यत्र चैकाधिका भार्यास्त्यक्त्वा भर्ता मृतः पुनः।
तत्र तास्सहवासिन्य इव दायमवाप्नुयुः ॥ ९०२ ॥
तास्वेकस्यां मृतायां तद्भागः पृक्तावशिष्टितः।
याति तस्याः सपत्नीश्च किन्तु ताः स्युः क्षमा ध्रुवम् ॥९०३॥
विभज्य संपदं पत्युरादातुं येन ताः पुनः।
पृथग्रूपेण प्रत्येकं सममायमवाप्नुयुः ॥ ९०४ ॥

फिर जहां पर पति एक से अधिक पत्नियां छोड़कर मरा हो, वहां वे साथ रहनेवालियों की तरह दाय-धन पाती हैं। उनमें से एक के मरने पर उसका भाग पृक्तावशिष्ट (साझेदारों में पीछे बचने वाले के) न्याय (right of survivorship) से उसकी सपत्नियों को मिलता है। परन्तु वे निश्चय ही पति की संपत्ति को बांटकर ले सकती हैं, जिससे कि वे प्रत्येक अलग-अलग रूप से बराबर-बराबर आमदनी पा सकें।

कुर्वत्यः साहचर्येण व्यवस्थां ताः क्षमा मताः।
अनिवार्यऋणोद्धृत्यै व्ययितुं सर्वसंपदम् ॥ ९०५ ॥

एकाकिन्यः परं ता नो क्षमाः स्युर्व्ययितुं धनम् ।
न्याय्यावश्यकताहेतोः कृतर्णस्यापि शुद्धये ॥ ६०६ ॥
यतो वियुक्ता अप्येताश्छेत्तुं स्वांशव्ययेन नो ।
स्वार्थं पृक्तावशिष्टानां सपत्नीनां क्षमा मताः ॥ ६०७ ॥
संमत्यैव च तास्तासां व्यये शक्ता अथो पुनः ।
शक्ताश्च त्वप्रार्थिता दद्यु रन्यास्तां नाविवेकतः ॥ ६०८ ॥
पृक्ताऽवशिष्टस्वाम्यं तु ताश्च त्यक्तुं मिथः क्षमाः ।
सत्येवं प्रतिषेद्धुं ता न शक्ताः स्युः कदाचन ॥ ६०९ ॥
कयापि व्ययमानेंऽशे प्रत्यादः किन्तु निश्चितम् ।
समर्थस्तन्निषेधे यत्स तत्त्यागान्न वञ्च्यते ॥ ६१० ॥

साथ होकर (पति की संपत्ति का) प्रबन्ध करती हुईं वे जरूरी ऋण (debt contracted for necessity) के चुकाने के लिए सारी संपत्ति को खर्च (alie. nate) कर सकती हैं । परन्तु अकेली वे धन को न्याय्य आवश्यकता के लिए किये कर्जे की शुद्धि के लिए भी खर्च नहीं कर सकतीं; क्योंकि अलग हुई भी वे अपने हिस्से के खर्च कर देने के द्वारा साझेदारों में पीछे बची सपत्नियों के स्वार्थ को नष्ट करने को समर्थ नहीं मानी गई हैं । वे उनकी संमति से ही खर्च कर सकती हैं या फिर यदि प्रार्थना करने पर भी अन्य सपत्नियां अविवेक के कारण (unreasonably) उस (संमति) को न दें तो (खर्च करने में) समर्थ होती हैं । परन्तु वे (सपत्नियां) साझेदारों में पीछे जीवित बचने से मिलने वाले अधिकार को आपस में छोड़ सकती हैं और ऐसा होने पर वे किसी के द्वारा अपने हिस्से के खर्च किये जाने पर रोकने में कभी समर्थ नहीं होतीं । परन्तु प्रत्याद (reversioner) निश्चय ही, उस (खर्च) का निषेध करने में समर्थ होता है; क्योंकि वह उनके (आपस के हक के) छोड़ देने से (अपने अधिकार से) वंचित नहीं किया जा सकता ।

सत्यावश्यकभावे तु मितःस्वाम्याः स्त्रियोऽथवा ।
धनेशविधवाः शक्ता आधौ वा विक्रये ध्रुवम् ॥ ६११ ॥
दायसंप्राप्तसंपत्तः स्वार्थं चाप्यथ तद्धितम् ।
रक्षन्त्यः पूर्णरूपेण प्रत्यादस्य हितं तथा ॥ ६१२ ॥

आवश्यकता होने पर तो परिमित अधिकार वाली स्त्रियां या संपत्ति के स्वामी की विधवायें अपने स्वार्थ की, उस (संपत्ति) के हित की और प्रत्याद (reversioner) के हित की पूर्णरूप से रक्षा करती हुईं, निश्चय ही, दाय में पाई संपत्ति को गिरवी रखने या बेचने में समर्थ होती हैं ।

यत्र ताश्च तथा क्रेता द्वावपि न्यायवर्तिनौ ।
तत्राधिविक्रयेऽर्थस्य ताः स्वतन्त्रा मनाङ् मताः ॥ ६१३ ॥

जहां पर वे (स्त्रियां) और खरीददार दोनों ही न्याय्य मार्ग में स्थित हों, वहां पर (उपर्युक्त) संपत्ति के गिरवी रखने या बेचने में वे (स्त्रियां) कुछ--कुछ स्वतन्त्र मानी गई हैं।

कर्तेवात्र कुटुम्बस्य पत्युर्दायहराधवा।
प्रत्यादे शुद्धचित्ता तूचितं स्वातन्त्र्यमर्हति ॥ ६१४ ॥

यहां पर कुटुम्ब के कर्ता (manager प्रबन्धक) के समान, प्रत्याद के प्रति शुद्ध चित्तवाली, पति का दाय-धन पानेवाली, विधवा उचित स्वतन्त्रता की पात्र होती है। (अर्थात्–प्रबन्धक के समान ही वह विधवा भी उस संपत्ति को गिरवी रखने या बेचने में एक हद तक स्वतन्त्र होती है)।

मितस्वाम्याः स्त्रियः स्वार्थं व्ययितुं नितरां क्षमाः।
परं यतेरन् यदि ताः संपत्तेराधिविक्रये ॥ ६१५ ॥
तर्हि तद्ग्राहकः पूर्वं परीक्ष्यावश्यकीं दशाम्।
तद्गतां बन्धकीकुर्यात्क्रीणीयाद्वाथ तां यतः ॥ ६१६ ॥
तदर्थमभियोगे तु स एवोत्तरदो मतः।
न्याय्यावश्यकताया हि वास्तविक्यास्तु सिद्धये ॥ ६१७ ॥
तदर्थग्रहणात्पूर्वं कृतया वानुसंधया।
आवश्यक्योपलब्धेस्तु निश्चितायाः सुसिद्धये ॥ ६१८ ॥

परिमित अधिकार वाली स्त्रियां (दाय में पाई संपत्ति में के) अपने स्वार्थ को पूर्णरूप से व्यय (dispose) कर सकती हैं। परन्तु यदि वे (उक्त) संपत्ति के गिरवी रखने या बेचने का यत्न करें, तो उस (संपत्ति) का लेने वाला पहले उस (गिरवी रखने या बेचने) में रही आवश्यकता की परीक्षा करके उसको गिरवी ले या खरीदे; क्योंकि उस (संपत्ति) के लिए मुकद्दमा होने पर वही वास्तविक न्याय्य आवश्यकता को पूरीतौर से सिद्ध करने के लिए या उस संपत्ति के लेने के पहले किये अनुसन्धान से निश्चित आवश्यकता की मौजूदगी की सिद्धि के लिए उत्तरदाता माना गया है।

तस्यावश्यकभावस्य सिद्ध्यैवासौ क्षमो भवेत्।
गृहीतायास्तु संपत्तेरधिकारेऽत्र नान्यथा ॥ ६१९ ॥
अथवा तद्ग्रहात्पूर्वं कृतया त्वनुसंधया।
तद्व्ययावश्यकत्वं तु ज्ञात्वा क्रीतेति सिद्धितः ॥ ६२० ॥

वह (खरीदने या गिरवी रखने वाला) उस (खर्च) की आवश्यकता होने की सिद्धि से ही, यहां पर, ली हुई संपत्ति के अधिकार में समर्थ होता है, अन्य प्रकार से नहीं। अथवा उस (संपत्ति) के लेने के पहले की खोज से उस (संपत्ति) के

खर्च की आवश्यकता को मालूम करके ही खरीदी थी—इस बात की सिद्धि से (अधिकार में समर्थ) होता है।

जनितः कुप्रबन्धेन मितस्वाम्यस्त्रिया अपि।
स आवश्यकभावोऽर्थाऽऽदाने तस्य न बाधकः ॥९२१॥
परं चेत्कारणं सोऽपि कुप्रबन्धे स्वयं भवेत्।
तर्हि तस्य क्रयो वाधिग्रहोऽन्याय्यो मतो बुधैः ॥९२२॥

परिमित अधिकार वाली स्त्री के द्वारा भी किये कुप्रबन्ध से उत्पन्न हुई वह आवश्यकता उस (खरीददार) के संपत्ति के लेने में बाधक नहीं होती। परन्तु यदि वह (खरीद ने वाला) खुद भी (उस) कुप्रबन्ध में कारण हो, तो उसका खरीदना या गिरवी रखलेना विद्वानों ने अनुचित माना है।

मूल्यं हि संपदो दत्तमुपयुक्तं न वा स्त्रिया।
कार्यस्यावश्यकस्यैव पूर्त्यै भारी न तत्र सः ॥ ९२३ ॥

संपत्ति का दिया हुआ मूल्य स्त्री ने आवश्यक काम के पूर्ण करने में ही काम में लिया या नहीं उस (बात) में वह (खरीददार) जिम्मेदार नहीं होता।

प्रमाणयोरभावे तूभयोः प्रागुक्तयोरिह।
मिताधिकृतया नार्या कृतस्यार्थव्ययस्य तु ॥ ९२४ ॥
न्याय्यत्वसिद्धये तस्मिन्नर्थे स्वार्थवतां ननु।
अनिरस्तं मतं मान्यं प्रत्यादानां मतं पुनः ॥ ९२५ ॥

फिर पहले कही दोनों बातों (वास्तविक आवश्यकता की सिद्धि या खरीद ने के पहले की पूछ--ताछ से आवश्यकता के प्रतीत होने की सिद्धि) के अभाव में, यहांपर, परिमित अधिकार वाली स्त्री द्वारा किये संपत्ति के खर्च के औचित्य की सिद्धि के लिए निश्चय ही उस संपत्ति में स्वार्थ रखनेवाले प्रत्यादों (reversioners) का, (दूसरे के द्वारा) खण्डन नहीं किया गया, मत मान्य माना गया है।

अनुमत्या न नेदिष्ठप्रत्यादस्यैव सिध्यति।
न्याय्यत्वं स्त्रीकृतस्याऽत्र दायाप्तार्थव्ययस्य तु ॥ ९२६ ॥
तद्व्ययस्यानिवार्यत्वमात्रं तेनानुमीयते।
परं स्त्र्यन्तेऽभियोक्तुं स्यात्प्रत्यादो वास्तवः क्षमः ॥९२७॥
तत्कृतेऽथ स एवात्रान्याय्यत्वं तस्य साधयेत्।
तेनैवानुमते पूर्वं तद्व्यये त्वक्षमोऽत्र सः ॥ ९२८ ॥
छलावाप्तामनुमतिं यावन्नासौ प्रमाणयेत्।
क्र तैवैवं सति पुनस्तत्प्रमाणोत्तरप्रदः ॥ ९२९ ॥

सब से नजदीक के प्रत्याद की अनुमति से ही यहां पर स्त्री द्वारा हकदारी में

पाये धन के खर्च का उचित होना सिद्ध नहीं होता । उससे केवल उस खर्च के आवश्यक होने का अनुमान होता है । परन्तु (उस) स्त्री के मरने पर वास्तविक प्रत्याद (हकदार) उसके लिए मुकद्दमा चला सकता है । और ऐसे स्थान पर उसी (प्रत्याद) को उस (खर्च) का अनुचित होना सिद्ध करना होता है। उस प्रत्याद के द्वारा ही पहले उस खर्च की अनुमति दे दीजाने पर वह इस कार्य (मुकद्दमा चलाने) में तब तक असमर्थ होता है, जब तक वह (अपनी) अनुमति को धोखे से प्राप्त की गई प्रमाणित न करदे । तथा ऐसा (उसका धोखे से पाना सिद्ध) होने पर खरीददार को ही उस प्रमाण का जवाब देना होता है ।

साधारण्येन सर्वेषां प्रत्यादानां हि संमतिः ।
भवेदावश्यकी किन्तु यत्र सा स्यादसंभवा ॥ ६३० ॥
तत्र त्वधिकसंख्यानां तेषां ग्राह्या पुरैव सा ।
अर्थव्ययात्तदन्ते वाऽनुमीयेतात्र निश्चितम् ॥ ६३१ ॥
येनादानप्रदानस्य हिन्दुन्यायेन युक्तता ।
व्यये कस्मिन्नपि पुनर्वैशिष्ट्यात्स्याद्विशिष्टता ॥ ६३२ ॥

साधारण तौर से सारे ही प्रत्यादों की संमति आवश्यक होती है । परन्तु जहां पर वह असंभव हो, वहां पर अधिक संख्यावाले उन (प्रत्यादों) की वह (संमति) संपत्ति के व्यय से पहले ही या उसके बाद ले लेनी चाहिए; जिससे कि, यहां पर, निश्चय ही, हिन्दून्याय से लेन देन का औचित्य अनुमान करलिया जा सके । फिर किसी व्यय (alienation) में खास बात होने से खास तरीका हो सकता है ।

संमतिश्चापि मान्यात्र ज्ञेयं ज्ञात्वा तु तद्गतम् ।
चेद्दत्ता, व्ययलेखे तत्साक्ष्यं मान्यं न केवलम् ॥ ६३३ ॥

यहां पर संमति भी यदि उसके संबन्ध की जानने लायक (सारी ही) बातों को जान कर दी गई हो, तो मान्य होती है । व्यय के लेख (deed) में उन (प्रत्यादों) का केवल साक्ष्य (attestation) ही मान्य नहीं होता ।

मूलस्य विक्रये चाधौ स्त्रीप्रत्यादानुमोदनम् ।
नालं तत्रानिवार्या स्यात्पुंप्रत्यादानुसंमतिः ॥ ६३४ ॥
महाराष्ट्रे मता पूर्णस्वाम्या नार्यः कुटुम्बजाः ।
इष्टा नेदिष्ठ-पुंनारी-प्रत्यादाज्ञा त्विहापि हि ॥ ६३५ ॥

मूल संपत्ति के बेचने या गिरवी रखने में स्त्री प्रत्याद का अनुमोदन पर्याप्त नहीं होता । वहां पर पुरुष-प्रत्याद की संमति भी आवश्यक होती है । बंबई-प्रान्त में (धन के स्वामी के) कुटुम्ब में उत्पन्न हुई स्त्रियां पूर्णाधिकारवाली मानी जाती हैं । परन्तु वहां पर भी सब से नजदीक के स्त्री और पुरुष दोनों प्रत्यादों की आज्ञा (अनुमति) की आवश्यकता होती है ।

परं तया प्रदत्ता चेदनुज्ञाऽर्थस्य विक्रये ।
आधौ वा न भवेच्छक्ता तर्हि सा तद्विरोधने ॥ ६३६ ॥

परन्तु यदि उस (स्त्रीप्रत्याद) ने संपत्ति के बेचने या गिरवी रखने में संमति दे दी हो, तो वह उसका विरोध करने में समर्थ नहीं होती ।

न स्वाधीनाः स्त्रियः शास्त्रे संमताः क्वापि निश्चितम् ।
यस्मात्तस्मादनुज्ञा नो तासां निर्णयकारिणी ॥ ६३७ ॥

क्योंकि शास्त्र में निश्चय ही कहीं भी स्त्रियां स्वाधीन नहीं मानी गई हैं; इसलिए उनकी संमति (उपर्युक्त कार्य में) निर्णय करनेवाली नहीं होती ।

व्ययस्त्वर्थस्य विहितः स्त्रीप्रत्यादानुमोदनात् ।
अनुज्ञानाच्च दूरस्थपुंप्रत्यादस्य निश्चितम् ॥ ६३८ ॥
पुंप्रत्यादं तु नेदिष्ठं बाधते न कदाचन ।
दायाप्तार्थव्ययस्यात्र स्त्रीकृतस्य विरोधने ॥ ६३९ ॥

स्त्री--प्रत्यादों (female reversioners) की संमति से और निश्चय ही दूर के पुरुष प्रत्याद (distant male reversioners) की संमति से किया संपत्ति का खर्च नज़दीक के पुरुष प्रत्याद (male reversioner) को, यहां पर स्त्री द्वारा किये दाय में पाई संपत्ति के खर्च (alienation) का विरोध करने में, बाधा नहीं डालता ।

स्त्रियर नेदिष्ठप्रत्यादानुज्ञया व्ययितं धनम् ।
कृत्स्नं तदंशो वा मान्यो विहितो न्यायसंसदा ॥ ३४० ॥

प्रीवी काउंसिल (The Privy Council) ने (विधवा) स्त्री द्वारा नज़दीक के प्रत्यादों (next reversioners) की अनुमति से किया सारी संपत्ति का या उसके अंश का खर्च मान्य कर दिया है ।

आधिविक्रयरूपाभ्यां व्ययस्त्वर्थस्य संमतः ।
पट्टतो मितकालार्थदानरूपेण वा पुनः ॥ ६४१ ॥

संपत्ति का खर्च (alienation) गिरवी रखने या बेचने के रूप से मान्य किया गया है, या फिर पट्टे (lease) द्वारा नियत समय के लिए देने के रूप में माना गया है ।

अपूर्णस्वाम्यया नार्या दत्तं वाऽधवया पुनः ।
दायाप्तं हि धनं कृत्स्नं तदंशं वोपहारतः ॥ ६४२ ॥
त्यक्त्वा नेदिष्ठप्रत्यादमपरस्मै जनाय तु ।
प्रत्यादं वास्तवं नैव बाधतेऽत्र कथञ्चन ॥ ६४३ ॥
दत्तं नेदिष्ठप्रत्यादानुमतेनाऽपि चेद् ध्रुवम् ।
व्यय एव यतस्तत्तु न्याय्यावश्यकसाधकम् ॥ ६४४ ॥

परिमित अधिकार वाली स्त्री-द्वारा या विधवा द्वारा दाय में पाया सारा धन या उसका कुछ भाग, नज़दीक के प्रत्याद को छोड़कर, अन्य पुरुष को उपहार--रूप से दिया जाने पर भी, चाहे वह निश्चय ही नज़दीक के प्रत्याद की अनुमति से ही दिया गया हो, यहां पर, वास्तविक (actual) प्रत्याद को किसी तरह बाधा नहीं पहुंचाता। क्योंकि वह (नज़दीक के प्रत्याद की संमति) (धन के) खर्च (alie- nation) में ही न्याय्य आवश्यकता की साधक होती है।

न्याय्यावश्यकता यस्मादुपहारे न मन्यते।
तस्मात्तत्र न नेदिष्ठप्रत्यादानुमतिस्त्वलम् ॥ ९४५ ॥

क्योंकि उपहार (gift) में न्याय्य (lagal) आवश्यकता नहीं मानी जाती। इसलिए वहां पर नज़दीकी प्रत्याद की अनुमति पर्याप्त नहीं होती।

कृता नेदिष्ठप्रत्यादायोपदा हि स्त्रिया स्वयम्।
कृत्स्नस्य दायसंप्राप्तधनस्यात्र तु संमता ॥ ९४६ ॥
बुधैस्तत्त्यागरूपेण परं सा चेत्प्रदीयते।
कतिभ्यश्चित्प्रभूतेषु प्रत्यादेषु स्थितेष्वपि ॥ ९४७ ॥

विनाऽपरेषां संमत्या न मान्या सा प्रकीर्तिता।
दायाप्तसंपदोंऽशस्योपहृतिश्च कृता तया ॥ ९४८ ॥
प्रत्यादेभ्यः समग्रेभ्योऽप्यमान्यैवात्र संमता।
यतस्तस्या न तत्रास्ति निश्चिता त्यागरूपता ॥ ९४९ ॥

स्त्री के द्वारा स्वयं ही दाय में पाये सारे धन का सब से नजदीक के प्रत्याद के लिये उपहार में दे देना विद्वानों ने, उस स्त्री के त्याग के रूप से, मान्य माना है। परन्तु यदि वह (उपहार) बहुत से प्रत्यादों के मौजूद होने पर भी कुछ प्रत्यादों को ही, दूसरों की संमति के विना, दे दिया जाय, तो वह मान्य नहीं कहा है। और उस (स्त्री) के द्वारा दाय में पाई संपत्ति के कुछ भाग का सारे ही प्रत्यादों को उपहार-रूप से देना भी यहां पर अग्राह्य ही माना है। क्योंकि वहां पर (सारी संपत्ति का उपहार न होने से) उस (उपहार) में उस (उपहार) की निश्चित तौर से त्यागरूपता नहीं होती।

लेखेनोपहृतिर्दायप्राप्तार्थांशस्य योषिता।
कृता नेदिष्ठप्रत्यादकृते यत्रैक एव सः ॥ ९५० ॥
दत्तो विक्रयलेखेन स तेनाऽन्यजनाय च।
मान्यो नेदिष्ठप्रत्यादानुमत्यर्पितवद् ध्रुवम् ॥ ९५१ ॥
यदिप्राक्कथितौ लेखावुभावपि परस्परम्।
संबध्य विक्रयस्यैव स्यातामत्र प्रसाधकौ ॥ ९५२ ॥

स्त्री के द्वारा लेख के जरिये सब से नजदीक के प्रत्याद के लिये, जहां पर वह (नजदीकी प्रत्याद) एक ही हो, उपहार में दिया दाय में पाये धन का कुछ भाग और उस (प्रत्याद) के द्वारा बेचने के लेख के जरिये दूसरे (third) पुरुष को दिया वह (धन का भाग), यदि पहले कहे दोनों लेख आपस में संबद्ध होकर, यहां पर, बेचान को ही सिद्ध करते हों, तो निश्चय ही नजदीकी प्रत्याद की अनुमति से दिये के समान मान्य होता है ।

दत्तः स्त्रियाऽथ नेदिष्ठप्रत्यादेन सहैव हि ।
दायाप्तार्थः समग्रोऽत्राऽपरस्मै पुरुषाय तु ॥ ९५३ ॥
मान्यो, परं न तद्दानमेकाकिन्या स्त्रिया कृतम् ।
निजनेदिष्ठप्रत्यादायाऽपरस्मै जनाय च ॥ ९५४ ॥
भवेन्मान्यं विशेषेण यत्रस्यादवयःस्थितः ।
स्वस्य नेदिष्ठप्रत्याद, इति न्यायेन निश्चितम् ॥ ९५५ ॥

स्त्री ने और सब से नजदीकी प्रत्याद (reversioner) ने साथ होकर दूसरे पुरुष (stranger) को दिया सारा ही हकदारी में पाया धन मान्य होता है । परन्तु अकेली स्त्री-द्वारा अपने नजदीकी प्रत्याद और अन्य पुरुष के लिये किया वही दान अमान्य होता है । विशेषकर जहां पर अपना नजदीकी प्रत्याद नाबालिग हो । ऐसान्याय से निश्चित किया गया है ।

वङ्गीयैः प्राड्विवाकाग्र्यैर्नूनं विधवयार्पितम् ।
सर्वेषामेव नेदिष्ठप्रत्यादानामनुज्ञया ॥ ९५६ ॥
सर्वं स्वमुपहारेणाऽपरस्मै पुरुषाय तु ।
मतं मान्यं स्त्रियास्तस्यास्त्यागरूपेण संपदः ॥ ९५७ ॥
दाने चास्मिन्ननुमता व्यवहारद्वयी पुनः ।
प्रथमः स्त्रीकृतस्त्यागः प्रत्यादेभ्योऽत्र संपदः ॥ ९५८ ॥
येनामीषां भवेत्स्वाम्यं जीवन्त्यामपि योषिति ।
तदर्थ, उपहारोऽन्यस्तेषामन्यजनं प्रति ॥ ९५९ ॥

बंगाल हाईकोर्ट के जजों ने निश्चय ही विधवा का सारे ही पास के प्रत्यादों की अनुमति से, अन्य पुरुषों को उपहार के रूप से दिया सारा ही धन, उस स्त्री के संपत्ति के त्याग के रूप से, मान्य माना है । फिर इस देने में दो व्यवहार माने गये हैं । पहला यहां पर स्त्री द्वारा प्रत्यादों के लिए किया संपत्ति का त्याग, जिससे उनका स्त्री के जीते जी ही उस धन पर अधिकार हो जाता है । दूसरा उन (प्रत्यादों) का दूसरे पुरुष के प्रति उपहार ।

महाराष्ट्रे स प्रत्यादं वास्तवं नैव बाधते ।
न बाधते च दानान्ते स्त्रिया दत्तीकृतं सुतम् ॥ ९६० ॥

बाधते केवलं तां स विधवामुपहारदाम्।
प्रत्यादांश्च तदर्थं यैर्दत्ता स्यात्संमतिर्निजा ॥ ६६१ ॥

बंबई प्रान्त में वह (पूर्वोक्त उपहार) वास्तविक प्रत्याद को बाधा नहीं देता और न (उस उपहार के) देने के बाद स्त्री द्वारा गोद लिये पुत्र की ही बाधा देता है। वह तो केवल उपहार में देनेवाली उस विधवा स्त्री को बाधा देता है और इन प्रत्यादों को, जिन्होंने उसके लिये अपनी संमति दी हो, बाधा देता है।

व्ययितोऽथवया त्वर्थो न्याय्यावश्यकतामृते।
प्रत्यादानामनुमतिमृतेऽथो नैव बाधते ॥ ६६२ ॥
प्रत्यादं, स तु बाधेत तस्या एव स्त्रिया निजम्।
स्वार्थं तदर्थगं यं सा कुर्यादपरहस्तगम् ॥ ६६३ ॥

विधवा ने न्याय्य आवश्यकता के बिना धन खर्च कर दिया हो, तो वह प्रत्यद को बाधा नहीं देता। वह खर्च उस स्त्री के ही उस धन में रहे अपने स्वार्थ को, जिसे उसने दूसरे के हस्तगत कर दिया हो, बाधा देता है।

कृतो विधवया वात्र सीमितस्वाम्यया स्त्रिया।
दायाप्तार्थव्ययो न्याय्यावश्यकत्वेन निश्चितम् ॥ ६६४ ॥
संमत्या वाथ नेदिष्ठप्रत्यादानां मतो बुधैः।
बाधतेऽसौ तु प्रत्यादान् पूर्वानुत्तरजानथ ॥ ६६५ ॥
व्ययकर्त्री च, दत्तेऽथ पूर्णस्वाम्यं स तद्धने।
क्रेतारं संपदो नूनमहार्यं न्यायनिश्चितम् ॥ ६६६ ॥

यहां पर विधवा द्वारा या परिमित अधिकार वाली स्त्री द्वारा, निश्चित ही, न्याय्य आवश्यकता के लिए किया दाय में पाये धन का खर्च या नजदीकी प्रत्यादों की संमति से किया खर्च विद्वानों ने मानलिया है। यह (खर्च) पहले के और बाद में उत्पन्न हुए प्रत्यादों को और खर्च करनेवाली (स्त्री) को बाधा देता है और वह संपत्ति खरीदनेवाले को उस धन में, निश्चय ही, नहीं छीना जाने लायक और न्याय से स्वीकृत, पूर्ण अधिकार देता है।

विहितोऽथवया वान्यमिताधिकृतया स्त्रिया।
व्ययो दायाप्तसंपत्तेर्न्याय्यावश्यकतां विना ॥ ६६७ ॥
विना नेदिष्ठप्रत्यादसंमत्या च न बाधते।
प्रत्यादान् परमाजीवं वक्ष्यते स्वार्थतस्तु सा ॥ ६६८ ॥
तद्गतादथ यस्मै स तया दत्तः स निश्चितम्।
तस्या जीवनपर्यन्तं तत्स्वार्थं तद्गतं भजेत् ॥ ६६९ ॥
प्रत्यादाः स्युस्तदन्तेऽलं मान्यामान्यत्वनिर्णये।
स्वीकृतस्तद्व्ययस्यात्राभियोगेन विनैव हि ॥ ६७० ॥

अमान्ये च कृते तस्मिन्यतेरंस्ते तु तद्ग्रहे।
प्राग्यत्नारम्भतस्तज्जलाभे ते नाधिकारिणः ॥ ६७१ ॥

विधवा ने या अन्य परिमित अधिकार वाली स्त्री ने, विना न्याय्य आवश्यकता के और विना नज़दीकी प्रत्यादों की संमति के किया दाय में पायी संपत्ति का खर्च प्रत्यादों को बाधा नहीं देता। परन्तु वह (स्त्री) जीवन पर्यन्त उस (धन) में रहे स्वार्थ से वञ्चित हो जाती है और जिसको उसने वह स्वार्थ दे दिया है, वह निश्चय ही उस (स्त्री) के जीते रहने तक उस (धन) में रहे उसके स्वार्थ को भोगता है। परन्तु उस (स्त्री) के मरने पर प्रत्याद लोग उस स्त्री के किये उस खर्च को, यहां पर, मान्य या अमान्य ठहराने में, विना मुकद्दमे के ही, समर्थ होते हैं। तथा उस (खर्च) के अमान्य कर देने पर उन्हें उसके लेने के लिए यत्न करना चाहिए। वे लोग यत्न आरम्भ करने के पूर्व हुए उसके लाभ के अधिकारी नहीं होते।

मिताधिकृतया वाथाधवयाऽनुचिते व्यये।
कृते नेदिष्ठप्रत्यादा निषेद्धुं तं क्षमा मताः ॥ ६७२ ॥
साधारण्येन, चान्येऽपि क्षमाः स्वार्थधराः परम्।
यथा राट् यस्तदर्थेशः प्रत्यादेषु मृतेष्विह ॥ ६७३ ॥

परिमित अधिकार वाली (स्त्री) के या विधवा के अनुचित खर्च करने पर साधारणतौर से नज़दीकी प्रत्याद उसका निषेध करने में समर्थ माने गये हैं। परन्तु दूसरे स्वार्थ रखनेवाले भी निषेध कर सकते हैं। जैसे राजा, जो कि, यहां पर, (सारे ही) प्रत्यादों के मरने पर उस धनका स्वामी होता है।

प्रत्यादानक्षमास्त्वन्ये स्वार्थाद्वञ्चयितुं जनाः।
आध्यादात्रादयो वाथाभियोक्तुमपि तान्पुनः ॥ ६७४ ॥
यथाप्राग्बन्धकीकृत्य संपदं त्वपरान्तिके।
उपायनीकृता सैव प्रत्यादाय स्त्रिया यदि ॥ ६७५ ॥
तस्यां मृतायां प्रत्यादो हरेत्तां संपदं ध्रुवम्।
प्रतिषेद्धुमशक्तस्तं तत्कृते स्वाधिहारकः ॥ ६७६ ॥

दूसरे लोग प्रत्यादों को स्वार्थ से वञ्चित नहीं कर सकते, अथवा गिरवी लेनेवाले आदि उन पर मुकद्दमा भी नहीं चला सकते। जैसे स्त्री ने यदि पहले संपत्ति को दूसरे के पास गिरवी रखकर उसी (संपत्ति) को प्रत्याद को उपहार में दे दी हो, तो उस स्त्री के मरने पर प्रत्याद निश्चय ही उस संपत्ति को ले सकता है। गिरवी लेनेवाला उसके लिए उसको मना नहीं कर सकता।

यं भूमेरधिपं याति मृते भूम्यधिवासिनि।
अपुत्रे, तस्य संपत्तिः सोऽपि तद्विधवा कृतम् ॥ ६७७ ॥

स्त्रिया मिताधिकृतया कृतं वापि, क्षमो मतः।
व्ययं स्वाम्येन रहितं निषेद्धुं, नात्र संशयः ॥ ९७८ ॥

भूमि पर बसनेवाले (tenant) के अपुत्र मरने पर उसकी संपत्ति जिस भू-स्वामी (landlord) को मिलती है, वह भी उस (भूमि में बसनेवाले) की विधवा के किये या परिमित अधिकार वाली (अन्य) स्त्री के भी किये अधिकार से शून्य (unauthorized) व्यय (alienation) का विरोध करने में समर्थ माना गया है। इसमें सन्देह नहीं है।

प्रबन्धाऽधिकृता नारी मितस्वाम्याऽधवा तथा।
संपत्त्यन्तर्गतं वित्तं पट्टे दातुं क्षमा परम् ॥ ९७९ ॥
न्याय्यावश्यकताऽभावे स्थिरं वा दीर्घकालिकम्।
प्रत्यादबाधनं पट्टं दातुं सा न क्षमा मता ॥ ९८० ॥

प्रबन्ध का अधिकार रखनेवाली परिमित अधिकारवाली स्त्री या विधवा संपत्ति में रहे धनको पट्टे (lease) पर देने को समर्थ होती है। परन्तु न्याय्य आवश्यकता के अभाव में वह प्रत्याद को बाधा पहुंचानेवाले स्थायी या लंबे समय वाले, पट्टे को देने में समर्थ नहीं मानी गई है।

न्याय्यावश्यकताकाले संपत्तेर्वा हिताय सा।
तथा नेदिष्ठप्रत्यादसंमत्या तत्कृते क्षमा ॥ ९८१ ॥

वह (उपर्युक्त स्त्री) न्याय्य आवश्यकता के होने पर या संपत्ति के हित के लिए तथा नज़दीकी प्रत्यादों की संमति से, उस (पट्टा देने) के लिए समर्थ होती है।

स्थिरस्तथा नवो भाटो निश्चितः समयोचितः।
अन्याय्याऽधवया नैव मतो न्याय्यो विशारदैः ॥ ९८२ ॥
यतो भाटकवृद्ध्या स्यात्काले प्राप्तिस्तु संभवा।
अधिकस्यापि लाभस्य तदर्थमिति निश्चितम् ॥ ९८३ ॥

विद्वानों ने विधवा द्वारा निश्चित किया समयोचित स्थायी तथा नया भाड़ा (rent) भी यहां पर न्याय्य नहीं माना है; क्योंकि समय पर भाड़े के बढ़ जाने से अधिक लाभ की भी प्राप्ति संभव हो सकती है। इसीलिए यह (स्थिर भाड़े का अन्याय्य होना) निश्चित किया है।

एतदर्थं कृतं पट्टं नाऽमान्यं स्वयमेव हि।
अमान्यं किन्तु नेदिष्ठप्रत्यादानुमतेन तत् ॥ ९८४ ॥
विधवान्ते तदन्तो नो तावद्यावन्निराकृतिः।
क्रियते तस्य रीत्याऽनौचित्यतया नैव निश्चिता ॥ ९८५ ॥

इस (स्थायी भाड़े) के लिए किया पट्टा स्वयं ही अमान्य नहीं होता; परन्तु नजदीकी प्रत्यादों की अनुमति से वह अमान्य होता है। विधवा के मरजाने पर तब तक उस पट्टे का अन्त नहीं होता, जब तक कि उचित रीति से, यहां पर, उसका निश्चित तौर पर निराकरण नहीं किया जाता।

स्थायिपट्टं तु नो मान्यमुत्कर्षार्थेऽपि चेत्कृतम्।
भुवोऽथात्र यतो लाभशब्देनादीयते बुधैः ॥ ९८६ ॥
स्थैर्यमर्थस्य रक्षा च नोत्कर्षस्तु कदाचन।
अर्थोत्कर्षकृते तस्मात्कृतं नो न्याय्यतामियात् ॥ ९८७ ॥

फिर यदि स्थायी पट्टा (permanent lease) यहां पर भूमि के उत्कर्ष (improvement) के लिए भी किया हो, तो भी मान्य नहीं होता, क्योंकि लाभ (benefit) शब्द से विद्वानों द्वारा संपत्ति की स्थिरता (preservation) और रक्षा (protection) ली गई है, उत्कर्ष (improvement) कभी भी नहीं लिया गया है। इसलिए संपत्ति के उत्कर्ष के लिए किया (स्थायी पट्टा) मान्य नहीं होता।

मिताधिकृतया वाथाऽधवयाप्तं प्रमापकम्।
पत्रमर्थप्रबन्धाय प्राक्, प्राप्ता च ततः पुनः ॥ ९८८ ॥
नेत्राष्टाङ्कसंख्याब्ददायप्राप्तिविधानतः।
ध्रुवं न्यायालयस्याज्ञा संपत्तेर्व्ययहेतवे ॥ ९८९ ॥
यत्र, तत्र क्षमा सा स्याद्दातुं पूर्णाधिकारिताम्।
संपत्तेर्ग्राहकायालं न्याय्यावश्यकतां विना ॥ ९९० ॥
तथा प्रत्यादसंमत्या विना विक्रीय संपदम्।
क्रेत्रे न्यायालयाज्ञैव प्रमाणं तत्कृते यतः ॥ ९९१ ॥

जहां पर परिमित अधिकार वाली स्त्री ने या विधवाने पहले संपत्ति के प्रबन्ध के लिए प्रमाण-पत्र (letter of administration) प्राप्त करलिया हो और फिर उसके बाद वि० सं० १९८२ (ई० सं० १९२५) वर्ष के दाय-प्राप्ति के कानून (The Indian Succession Act, S 307) के अनुसार संपत्ति के खर्च के लिए निश्चय ही, अदालत की आज्ञा प्राप्त करली हो, वहां पर वह स्त्री, न्याय्य आवश्यकता के विना और प्रत्यादों की संमति के विना, संपत्ति को बेचकर संपत्ति को लेनेवाले को पूर्ण अधिकार देने में, पूरी तौर से, समर्थ, होती है। क्योंकि खरीदनेवाले के लिए उस विषय की अदालत की आज्ञा ही (न्याय्यता का) प्रमाण है।

ऋते नेदिष्टप्रत्यादसंमतेर्वा विना पुनः।
न्याय्यावश्यकतायास्तु मितस्वाम्यस्त्रिया कृतः ॥ ९९२ ॥
कृतो विधवया वाथ व्ययो यत्रावमन्यते।
तत्र पूर्णतया तस्यामाऽन्यत्वं समयेन वा ॥ ९९३ ॥

सहितं स्यादिति प्रश्नो नूनमुत्पद्यते तथा।
तस्योत्तरार्थं सूच्यन्ते मतानि विविधानि च ॥ ९९४ ॥

जहां पर बिना नजदीकी प्रत्यादों की संमति के अथवा बिना न्याय्य आवश्यकता के परिमित अधिकार वाली स्त्री द्वारा किया या विधवा द्वारा किया खर्च अमान्य किया जाता है, वहां पर उसका पूरी तौर से अमान्य होना या शर्त के साथ अमान्य होना होता है, यह प्रश्न निश्चय ही उत्पन्न होता है। तथा उसके उत्तर के लिए अनेक मत दिये जाते हैं।

महाराष्ट्रे न्यायाधीशैरमान्ये विक्रये कृते।
प्रतिदानं क्रयार्थस्याज्ञाप्यतेऽव्ययितो यदि ॥ ९९५ ॥
सोऽधवामरणान्ते स्याद्देयं चापि धनं पुनः।
क्रयिकेणोपयुक्तं यदुत्कर्षायात्र संपदः ॥ ९९६ ॥

बंबई प्रान्त में न्यायाधीशों द्वारा बेचान के अमान्य कर दिये जाने पर यदि खरीद का धन विधवा के मरण पर्यन्त खर्च न किया गया हो, तो उसको लौटाने की आज्ञा (भी) दी जाती है। तथा फिर खरीददार द्वारा संपत्ति के उत्कर्ष के लिए लगाया धन भी लौटाना होता है।

निश्चितं चात्र विषये मुख्यया न्यायसंसदा।
यद्यत्र भर्तृदायाप्तं न्याय्यावश्यकतां विना ॥ ९९७ ॥
विक्रीयते विधवया धनं क्रेता च तद्गतम्।
न्याय्यत्वमनुसंधायैवोत्कर्षं नयते च तत् ॥ ९९८ ॥
तत्र चेद्विक्रयोऽमान्यः क्रियते तर्हि निश्चितम्।
आज्ञाप्यः खलु प्रत्यादः क्रेत्रे दातुं हि तद्धनम् ॥ ९९९ ॥
येनात्र संपदो मूल्यवृद्धिस्तेन कृता भवेत्।
अतो दत्त्वैव तद्वित्तं प्रत्यादोऽर्थं हरेत्ततः ॥ १००० ॥

इस विषय में मुख्य न्यायसभा (The Judicial Committee) ने यह निश्चय किया है कि, जहां पर पति का दाय में मिला धन विधवा द्वारा, विना न्याय्य आवश्यकता के बेच दिया जाता है और खरीदनेवाला उस (बेचान) में रहे न्याय्यत्व का अनुसंधान (खोज) कर उस (धन) को उत्कर्ष पर पहुँचाता है, वहां पर यदि बेचान अमान्य कर दिया जाय, तो निश्चय ही प्रत्याद को खरीददार के लिए उस धन को देने की आज्ञा देनी चाहिए जिससे कि, यहां पर, उसने संपत्ति के मूल्य की वृद्धि की हो। इसलिये उस (संपत्ति के उत्कर्ष के लिए खर्च किये) धन को देकर ही प्रत्याद उस (खरीददार) से संपत्ति ले सकता है।

महाराष्ट्रे तु पूर्वोक्तो निर्णयो न्यायसंसदः।
बन्धकीकरणेऽर्थस्य स्वीकृतो न्यायशास्त्रिभिः ॥१००१॥

वंबई प्रान्त में न्याय के विद्वानों (Judges of the High Court) ने न्याय-सभा (The Judicial Committee) का पहले कहा निर्णय (फैसला) संपत्ति के गिरवी रखने में स्वीकार कर लिया है ।

परं प्रयागे नो मान्यो मतोऽसावुक्तनिर्णयः ।
उपहारे तथा पट्टे बन्धकी करणेऽपि च ॥ १००२ ॥
अतः परस्य हस्ते चेद्दत्ता संपत्सुनिश्चितम् ।
न्याय्यावश्यकताऽभावे तदार्थोत्कर्षहेतवे ॥ १००३ ॥
आदात्रा व्ययितं वित्तं प्रत्यादेन न दीयते ।
जाता यद्यपि तेनात्र मूल्ये वृद्धिर्धनस्य तु ॥ १००४ ॥

परन्तु इलाहाबाद में (न्याय परिषद् का) यह (पहले) कहा हुआ निर्णय उपहार (gift), पट्टे (lease) और गिरवी रखने (mortgage) में भी मान्य नहीं माना है। इसलिए न्याय्य आवश्यकता (legal necessity) के अभाव में यदि संपत्ति दूसरे के हाथ मे, निश्चय रूप से, देदी गई हो, तो लेनेवाले द्वारा संपत्ति के उत्कर्ष (improvement) के लिये खर्च किया धन प्रत्याद (reversioner) द्वारा नहीं दिया जाता (लौटाया जाता), चाहे उस (खर्च किये धन) से, यहां पर, संपत्ति के मूल्य में वृद्धि भी हुई हो ।

अधवायामथो सत्यां ततः प्राप्तधनो जनः ।
तद्धनार्थं कृतस्यार्थव्ययस्यात्र तु निष्कृतिम् ॥ १००५ ॥
प्राप्ता नवेति प्रत्यादोऽभियोगे व्यापकेऽक्षमः ।
प्रष्टुं, शक्तोऽधवान्ते सोऽभियोगसमये परम् ॥ १००६ ॥

प्रत्याद, विधवा की मौजूदगी में, उससे संपत्ति पाया हुआ पुरुष उस संपत्ति के लिए खर्च किये धन का एवज़ाना (compensation) पायगा या नहीं यह बात व्यापक अभियोग (declaratory suit) में नहीं पूछ सकता । परन्तु विधवा के मरने पर (अपने अधिकार के लिए) मुकद्दमा चलाने पर (पूछने में) समर्थ होता है ।

निर्णीतं मुख्यया न्यायसंसदा त्वचिरेण यत् ।
पतिसंप्राप्तदायार्थोऽधवयोपहृतं यदि ॥ १००७ ॥
जनान्तराय, विक्रीतः स तेनाथ च तत्क्रयी ।
न्याय्यं स्वाम्यं निजं तत्र मत्वाऽस्योत्कर्षहेतवे ॥ १००८ ॥
व्ययीकरोति संपत्तिं तद्यमान्ये कृते ध्रुवम् ।
उपहारे तु तत्-क्रेता प्राप्नुयाद्व्ययितं धनम् ॥ १००९ ॥
जनाद्यो नोपहारस्याऽमान्यत्वं कार्यतेऽथवा ।
विक्रीणीत निजं स्वार्थं तत्रत्यं क्रयिकाय सः ॥ १०१० ॥

हाल ही में मुख्य न्याय-सभा (The Judicial Committee) ने निर्णय किया है कि यदि विधवा स्त्री ने पति से पाई दाय की संपत्ति को दूसरे पुरुष (stranger) को उपहार में दिया हो और उसने उसे बेच दिया हो, तथा उस (संपत्ति) का खरीददार उस पर अपना न्याय्य (legal) स्वामित्व मान कर उसके उत्कर्ष (improvement) के लिए धन खर्च करे, तो उस उपहार के निश्चय ही अमान्य कर दिये जाने पर उस संपत्ति का खरीददार उस पुरुष से, जिसने उपहार की अमान्यता करवाई हो, (अपना) खर्चा हुआ धन पा सकता है; अथवा वह (उपहार को अमान्य कराने वाला) उस (संपत्ति) में रहे अपने स्वार्थ को खरीददार को बेच सकता है।

अथ स्वपतिसंप्राप्तदायार्थोऽधवया स्त्रिया।
न्याय्यावश्यकतायै हि नूनं विक्रीयते परम्॥ १०११॥
न्याय्यावश्यकतार्थं नो सर्वं मूल्यं प्रयुज्यते।
यत्र, तत्र यदि न्यायमान्यः सिध्यति विक्रयः॥ १०१२॥
दत्तं क्रेत्रा च तन्मूल्यमुचितं शुद्धभावतः।
न्याय्यावश्यकतासत्तामनुसंधाय निश्चितम्॥ १०१३॥
प्रत्यादस्तर्हि नो शक्तोऽमान्यं कर्तुं हि विक्रयम्।
यतः क्रेता न दत्तार्थोपयोगायोत्तरप्रदः॥ १०१४॥

फिर विधवा स्त्री ने जहां पर पति से पाये दाय-धन को, निश्चय रूप से, न्याय्य आवश्यकता के लिए ही बेचा हो, परन्तु न्याय्य आवश्यकता के लिए सारा मूल्य (का धन) नहीं लगाया हो, वहां पर यदि बेचना न्याय से मान्य सिद्ध होता हो और खरीददार ने, निश्चितरूप से, न्याय्य आवश्यकता के होने की छान-बीन कर शुद्ध भाव से उसका उचित मूल्य दिया हो, तो प्रत्याद बेचान को अमान्य नहीं कर सकता; क्योंकि खरीददार (मूल्य में) दिये हुए धन के उपयोग के लिए उत्तर-दाता नहीं होता।

तदर्थमप्रयुक्तोऽत्र मूल्यभागोऽधिकोऽथवा।
अल्पो न जनयेद्भेदं पूर्वोक्ते निश्चये पुनः॥१०१५॥

यहां पर उस (न्याय्य आवश्यकता) के लिए उपयोग में नहीं लिया मूल्य का भाग अधिक हो या थोड़ा, (वह) पहले कहे निश्चय में फरक नहीं करता।

प्रयागीयैर्नयेशैस्तु मूल्यभागेऽधिके सति।
अप्रयुक्ते न मान्यत्वं विक्रयस्य मतं तथा॥ १०१६॥
समाविष्टश्च प्रत्यादो दातुं क्रेत्रेऽत्र तन्मितम्।
धनं स्याद्यन्मितं न्याय्यकार्याय व्ययितं स्त्रिया॥ १०१७॥

इलाहाबाद (हाइकोर्ट) के जजों ने तो (न्याय्य आवश्यकता के कार्य में) नहीं लगाये (संपत्ति के) मूल्य के भाग के अधिक होने पर बेचान को मान्य नहीं

माना है । और प्रत्याद (reversioner) को, यहां पर, खरीददार के लिए उतना धन देने की आज्ञा दी है, जितना कि स्त्री ने न्याय्य कार्य में खर्च किया हो ।

न्याय्यकार्यप्रयुक्तेऽर्थमूल्यभागेऽधिके सति ।
विक्रयस्तु मतो मान्यः क्रेताज्ञप्तः परन्तु तैः ॥ १०१८ ॥
प्रत्यादाय धनं दातुं तन्मितं यन्मितं स्त्रिया ।
न्याय्यकार्यकृते नोपयुक्तं स्यादर्थमूल्यतः ॥ १०१९ ॥

न्याय्य-कार्य के लिए काम में लिये संपत्ति के मूल्य के भाग के अधिक होने पर (इलाहाबाद के जजों ने) बेचान को तो मान्य माना है, परन्तु उन्होंने खरीददार को प्रत्याद के लिए उतना धन देने की आज्ञा दी है, जितना कि स्त्री ने संपत्ति के मूल्य में से न्याय्य--कार्य में न लगाया हो ।

मुख्यन्यायालयाधीशैः प्रयागीयैः कृतस्त्वयम् ।
भेदोऽमान्यो मतोऽत्रान्यैर्न्यायशास्त्रविशारदैः ॥ १०२० ॥

इलाहाबाद हाइकोर्ट के जजों का किया यह भेद यहां पर दूसरे कानून के पण्डितों ने अमान्य माना है ।

चेद् विक्रयोंशतः सिध्येन्न्याय्यावश्यकताकृते ।
कार्योऽमान्यः स प्रत्याद आज्ञाप्यश्च नयाधिपैः १०२१ ॥
क्रेत्रे तु तन्मित्तं वित्तं प्रदातुं यन्मितं भवेत् ।
न्याय्यकार्यकृते सिद्धमुचितं तत्र निश्चितम् ॥ १०२२ ॥

यदि (संपत्ति का) बेचान आंशिकरूप से (partially) न्याय्य आवश्यकता के लिए सिद्ध हो, तो न्यायाधीशों को उसे अमान्य कर देना चाहिए और प्रत्याद को खरीददार के लिए उतना धन देने की आज्ञा देनी चाहिए, जितना, वहां पर, न्याय्य कार्य के लिए निश्चितरूप से उचित सिद्ध हो ।

अचिरेणैव निर्णीतं मुख्यया न्यायसंसदा ।
यद्यत्राऽधवया दायप्राप्तं पतिधनं निजम् ॥ १०२३ ॥
अन्यस्माद्युपहारे स्याद्दत्तं तेनै तु तत्पुनः ।
विक्रीतं च ततः क्रेत्रा शुद्धभावतया स्वकम् ॥ १०२४ ॥
स्वाम्यं तस्मिन्विचार्यैव तस्योत्कर्षः सुनिश्चितः ।
कृतस्तत्रोपहारश्चेदमान्यः क्रियते तदा ॥ १०२५ ॥
वादी तु तन्मितं द्रव्यं दद्यात् क्रेत्रे हि यन्मितम् ।
तेन स्याद् व्ययितं स्वीयं तद्धनोत्कर्षहेतवे ॥ १०२६ ॥
विक्रीणीते निजं स्वार्थं तद्धनस्थं स वा पुनः ।
क्रेत्रे मूल्यं समादाय गतिर्नान्या मता ततः ॥ १०२७ ॥

मुख्य न्याय सभा (The Judiciel Committee) ने हाल ही में या

निर्णय किया है कि जहां पर विधवा स्त्री ने दाय में मिले अपने पति के धन को दूसरे को उपहार में दिया हो और उस (दूसरे) ने फिर उसे बेच दिया हो और बाद में खरीददार ने शुद्ध भाव से उस पर अपना अधिकार विचार कर (समझ कर) ही उस (धन) का निश्चयरूप से उत्कर्ष (improvement) किया हो, वहां पर यदि उपहार को अमान्य करदिया जाय तो वादी (plaintiff) उतना धन खरीददार को दे, जितना उसने उस धन के उत्कर्ष के लिए अपना (धन) खर्च किया हो। अथवा फिर वह (वादी) उस धन में रहे अपने स्वार्थ (interest) को मूल्य लेकर खरीददार को बेच दे। इसलिए (इसमें) दूसरी गति नहीं मानी गई है।

दायाप्तं भर्तृवित्तं तु न्याय्यावश्यकताकृते।
विक्रीयाधवया यत्र तन्मूल्यमखिलं ननु ॥ १०२८ ॥
तत्कृते नोपयुक्तं स्यात् सिद्धे तस्मिश्च वादिना।
प्रत्यादेन तु तद्भ्रेषाऽभियोगः संप्रवर्तितः ॥ १०२६ ॥
तत्र चेद्विक्रयो न्याय्यकार्यार्थं विहितस्तया।
दत्तं क्रेत्रा च तन्मूल्यमुचितं शुद्धभावतः ॥ १०३० ॥
विक्रयस्यानुसंधाय न्याय्यत्वमिति सिद्ध्यति।
तदा तन्मूल्यमखिलं नोपयुक्तं स्त्रिया खलु ॥ १०३१ ॥
न्याय्यावश्यकताकार्य इतिमात्रेण वादिनः।
न क्षमास्तदमान्यत्वसिद्धये, नो यतो मतः ॥ १०३२ ॥
क्रेता क्रीतार्थमूल्यस्योपयोगे तूत्तरप्रदः।
तदर्थमप्रयुक्तोऽत्र मूल्यांऽशोऽल्पोऽधिकोऽपि वा ॥ १०३३ ॥

जहां पर विधवा ने दाय में पाये पति के धन को न्याय्य आवश्यकता के लिए बेचकर उसकी सारी कीमत, निश्चय ही, उस (आवश्यककार्य) के लिए काम में न ली हो और इस बात के सिद्ध होने पर वादी प्रत्याद ने उस (बेचान) के अनुचित होने का मुकद्दमा चला दिया हो, वहां पर यदि उस (स्त्री) ने बेचान न्याय्य कार्य के लिए किया था और खरीददार ने शुद्धभाव से बेचान की न्याय्यता की खोज कर उसकी उचित कीमत दी थी-ऐसा सिद्ध हो जाय, तो उस (संपत्ति) की सारी कीमत स्त्री ने, निश्चय ही, न्याय्य आवश्यकता के कार्य में नहीं लगाई-इतने से ही वादी लोग उस (बेचान) को अमान्य सिद्ध करने में समर्थ नहीं होते। क्योंकि खरीददार खरीदे हुए धन के मूल्य के उपयोग के विषय में उत्तर--दाता नहीं माना गया है।

प्रयागे तु तदंशस्याऽधिकस्याऽल्पके या कृता भिदा।
अमान्यैव प्रकथिता सात्र न्यायविशारदैः ॥ १०३४ ॥

इलाहाबाद में उस (न्याय्य कार्य में नहीं लगाये) अंश के अधिक या थोड़े

होने पर जो भेद किया गया है (देखो श्लोक १०१६--१०२०) उसे न्याय शास्त्र के विद्वानों ने, यहां पर अमान्य ही कहा है ।

विक्रयस्यांशतः सिध्येन्न्याय्यत्वं यत्र निश्चितम् ।
कार्यं ससमयं तस्याऽमान्यत्वं तत्र शास्त्रिभिः ॥१०३५॥
समयश्चात्र-प्रत्यादस्तावत्क्रेत्रे समर्पयेत् ।
धनमावश्यकं सिध्येद् यावन्न्याय्याय कर्मणे ॥१०३६॥

जहां पर निश्चय-रूप से बेचान का न्याय होना कुछ भाग में सिद्ध हो, वहां पर विद्वानों को शर्त के साथ उस (बेचान) का अमान्य होना तय करना चाहिए। यहां पर की शर्त यह है कि प्रत्याद खरीददार को उतना धन दे, जितना न्याय्य कार्य के लिए आवश्यक सिद्ध हो ।

व्ययः स्वभर्तृसंपत्तेर्विहितोऽधवया स्त्रिया ।
न्याय्यावश्यकताऽभावे निष्फलः स्वयमेव नो ॥१०३७॥
समर्थो निष्फलीकर्तुं प्रत्यादस्तं परं ततः ।
मान्याऽमान्यत्वमस्य स्यात्तस्यैवेच्छावशानुगम् ॥१०३८॥
मानितेऽस्मिन्न शक्तः स पुनस्तस्य विरोधने ।
परं तन्निर्णये शक्तः स प्राक् स्वाम्यागमादपि ॥१०३९॥

विधवा स्त्री द्वारा न्याय्य आवश्यकता के बिना किया अपने पति की (दाय में मिली) संपत्ति का खर्च अपने आप ही निष्फल नहीं होता है। परन्तु प्रत्याद उसे निष्फल करने में समर्थ होता है । इस (खर्च) का मान्य होना या अमान्य होना उसी (प्रत्याद) की इच्छा के अधीन होता है । उसके (एकवार) इसको मान लेने पर, वह फिर इसका विरोध नहीं कर सकता। परन्तु उस (मान्य और अमान्य) के निर्णय में वह (प्रत्याद) (उस धन पर) अधिकार-प्राप्ति के पहले भी समर्थ होता है। (अर्थात्--अधिकार--प्राप्ति के बाद तो होता ही है।)

स्त्रीपुंसयोः समत्वेन प्रत्यादेषु प्रयुज्यते ।
एतद्विधानमखिलं न्यायशास्त्रविशारदैः ॥१०४०॥

न्याय-शास्त्र के पण्डितों द्वारा यह सारा (श्लोक १०३७-से १०३९ तक में कहा) कानून प्रत्यादों में स्त्री--पुरुष दोनों के लिए समानभाव से प्रयोग किया जाता है ।

प्रत्यादेषु पुमान् स्त्री वा यः कोऽप्यत्रानुमोदयेत् ।
मितस्वाम्यस्त्रिया वाऽथाऽधवया व्ययितं धनम् ॥१०४१॥
न्याय्यावश्यकताऽभावे सोऽन्ते ननु विरोधने ।
[illegible] प्राप्तस्तेन यद्यपि ॥१०४२॥

निजसंमतिदानार्थे लाभः कोऽप्यत्र निश्चितः ।
उपहारेण विहिते व्ययेऽप्येष नयोमतः ॥१०४३॥

प्रत्यादों में पुरुष या स्त्री जो कोई भी यहां पर परिमित स्वाम्यवाली स्त्री द्वारा या विधवा स्त्री द्वारा न्याय्य आवश्यकता के बिना किये गये धन के खर्च का अनुमोदन करता है, वह, यद्यपि उसने अपनी संमति के देने के लिए, यहां पर, कोई भी निश्चित लाभ न प्राप्त किया हो, तथापि अन्त में (उस स्त्री के मरने पर) उस खर्च का विरोध नहीं कर सकता । उपहार द्वारा किये खर्च में भी यही न्याय माना गया है ।

प्रत्यादो वास्तवस्त्वन्यः प्रत्यादाद्दत्तसंमतेः ।
तद्व्यये विधवान्ते चेद्भवेत्तर्हि सुनिश्चितम् ॥१०४४॥
न्याय्यावश्यकताऽभावं साधयित्वैव स क्षमः ।
विरोद्धुं तं व्ययं, शक्तो नान्यथा सोऽपि निश्चितम्॥१०४५

उस खर्च में संमति देनेवाले प्रत्याद से, विधवा के बाद, वास्तविक प्रत्याद दूसरा हो जाय तो निश्चय ही वह (उस खर्च में) न्याय्य आवश्यकता के अभाव को सिद्ध करके ही उस खर्च का विरोध कर सकता है । अन्यथा निश्चय ही वह भी (ऐसा करने में) समर्थ नहीं होता ।

प्रत्यादो वास्तवोऽनुज्ञादातुः पुत्रोऽपि चेत्तदा ।
संमत्या स्वपितुर्नैव हीयते सोऽधिकारतः ॥१०४६॥
परं चेत् संमतिर्दत्ता तत्पित्रा लाभहेतवे ।
भुक्तस्तेन च लाभः स तदाऽशक्तो विरोधने ॥१०४७॥

वास्तविक प्रत्याद संमति देनेवाले का पुत्र भी हो, तो भी वह अपने पिता की संमति के कारण (विरोध करने के) अधिकार से वञ्चित नहीं होता । परन्तु यदि उसके पिता ने (अपने) फायदे के लिए संमति दी हो और उस (पुत्र) ने (भी) (उसका) लाभ भोगा हो, तो वह (उस खर्च का) विरोध नहीं कर सकता ।

विधवाप्तधनाद्येन प्रत्यादेनाथ तद्धनम् ।
गृहीतमाधिरूपेण नाऽशक्तोऽसौ सुनिश्चितम् ॥१०४८॥
विधवामरणान्तेऽत्र तद्व्ययस्य विरोधने ।
यतस्तस्य स्थितिर्भिन्ना मता संमतिदायिनः ॥१०४९॥
व्ययेऽमान्ये कृतेऽप्यत्र प्रत्यादः संमतिप्रदः ।
न स्वांशं लभते तस्मिन्धने ग्राहकतो ध्रुवम् ॥१०५०॥

विधवा से धन प्राप्त करनेवाले से जिस प्रत्याद ने वह धन गिरवी रखलिया हो, वह निश्चय ही यहां पर विधवा के मरने पर, उस खर्च का विरोध करने में असमर्थ नहीं होता । क्योंकि संमति देनेवाले की स्थिति से उसकी स्थिति भिन्न मानी गई है ।

खर्च के अमान्य कर दिए जाने पर (भी) ऐसे स्थान पर, संमति देनेवाला प्रत्याद निश्चय ही (धनके) लेनेवाले से उस धन में हिस्सा नहीं पाता ।

प्रयागीयैर्न्यायाधीशैः पितृसंमतितः सुतः ।
बद्धः स्यादिति निर्णीतं यत्तदन्यैर्न मानितम् ॥१०५१॥

इलाहाबाद (हाईकोर्ट) के जजों ने (स्त्री कृत खर्च में) पिता की संमति से पुत्र भी बंधा है--ऐसा जो निर्णय किया है, वह दूसरों ने नहीं माना है ।

विधवा वा मितस्वाम्या नारी यत्र कुटुम्बिभिः ।
समयं कुरुते वंशसंपत्तेस्तु प्रबन्धने ॥१०५२॥
व्यये वा तत्र प्रत्यादो यः स्यात्सहकरस्तथा ।
लाभभागी न शक्तः स तद्व्ययस्य विरोधने ॥१०५३॥
तद्वंशजा अपि पुनस्तल्लाभे लाभभागिनः ।
न शक्तास्तं व्ययं नूनं विरोद्धुं निजतातवत् ॥१०५४॥

जहां पर विधवा या परिमित अधिकार वाली स्त्री कुटुम्ब की संपत्ति के प्रबन्ध के लिए या खर्च (alienation) के लिए कुटुम्बियों के साथ मामला तय (Compromise) करती है, वहां पर जो प्रत्याद उसमें साथ देता है और जो (उससे) लाभ उठाता है, वह उस खर्च का विरोध नहीं कर सकता । फिर उसके लाभ में लाभ उठानेवाले उसके वंशज भी अपने पिता के समान ही उस खर्च का विरोध करने में असमर्थ होते हैं ।

यदाऽधवा मितस्वाम्या नारी वोचितरूपतः ।
विवादान् धनसंबद्धान् निराकर्त्तुं परस्परम् ॥१०५५॥
निश्चित्य कुरुते वंशप्रबन्धं स तदा ध्रुवम् ।
तटस्थानपि प्रत्यादान् सर्वान् बध्नाति नीतितः ॥१०५६॥

जब विधवा या परिमित अधिकार वाली स्त्री धन से संबन्ध रखने वाले झगड़ों को उचित रूपसे निपटाने के लिए आपस में निश्चय (compromise) कर वंश का प्रबन्ध करती है, तब निश्चय ही वह (प्रबन्ध) (उससे) जुदा रहे सब प्रत्यादों को भी, कानून के अनुसार बांध लेता है ।

मिथो निर्णीय विहितो निश्चयस्तु तया यदि ।
न स्वस्वार्थकृते किन्तु लाभार्थं वंशसंपदः ॥१०५७॥
तर्हि वंशप्रबन्धाद्धि भिन्नाप्येषा विनिश्चितिः ।
सर्वांस्तटस्थान्प्रत्यादानपि बध्नात्यलं तथा ॥१०५८॥
तस्यां यथाऽभियुक्तायां वंशसंपत्तिहेतवे ।
दत्ता तत्प्रतिकूला हि राजाज्ञा न्यायकारिभिः ॥१०५९॥

यदि उस (परिमित अधिकार वाली स्त्री) ने आपस में निर्णय (compro-

mise) करके अपने लिए नहीं किन्तु कुटुम्ब की संपत्ति के लाभ के लिए निश्चय किया हो, तो कुटुम्ब के प्रबन्ध से भिन्न भी यह निश्चय (इससे) जुदा रहे सारे प्रत्यादों को पूरी तौर से इस तरह बांध लेता है, जिस तरह उस स्त्री पर कुटुम्ब की संपत्ति के लिए मुकद्दमा चलाये जाने पर जजों द्वारा, निश्चित रूपसे, उस (स्त्री) के विरुद्ध दी हुई डिग्री (बांधलेती है ।)

मिथः समयतो जातः संपत्तेस्तु व्ययः पुनः ।
उभयत्रापि संमान्यो मतो न्यायविशारदैः ॥१०६०॥

आपस में तय होने (compromise) से हुआ संपत्ति का खर्च न्याय के विद्वानों ने (श्लोक १०५५ से १०५६ तक और श्लोक १०५७ से १०५६ तक कहे) दोनों स्थानों पर मान्य माना है ।

मिथो निश्चयकाले यः संबद्धो नैव संपदा ।
व्ययस्तत्तोषजनकः प्रत्यादं नैव बाधते ॥१०६१॥

आपस में निश्चय करने (compromise) के समय जो संपत्ति से संबन्ध नहीं रखता हो, उसके सन्तोष के लिए किया खर्च प्रत्याद को नहीं बांधता ।

विरोद्धुं विधवादत्तमुपहारं प्रवर्तितः ।
अभियोगस्तु संभाव्यप्रत्यादेन, तया पुनः ॥१०६२॥
संपदोंऽशं प्रदायास्मै विरोधोऽपहृतस्तयोः ।
निर्णयो बाधते नैव प्रत्यादं वास्तवं ध्रुवम् ॥१०६३॥

विधवा के दिये उपहार का विरोध करने के लिए अनुमित (presumptive) प्रत्याद ने मुकद्दमा चलाया हो और उस (विधवा) ने संपत्ति का कुछ अंश उसे देकर विरोध को दूर कर दिया हो तो उन दोनों का यह निर्णय (compromise) निश्चय ही वास्तविक प्रत्याद को नहीं बांधता ।

स्त्रिया विधवया यत्र दायाप्ता पतिसंपदा ।
आधीकृताऽभियुक्ता च सा तद्वन्धकधारिणा ॥१०६४॥
तं विवादं निराकर्तुमनुमीय ऋणं तया ।
मिथो निर्णयतो दत्ताऽभियोक्त्रे साऽखिला पुनः ॥१०६५॥
तदर्थं चेद्विवादः स्यात्तर्हि तत्र प्रमाणयेत् ।
अधिग्राहक एवासौ यत्तयोर्निर्णयस्तु सः ॥१०६६ ॥
न्याय्यः प्रत्यादमान्यश्च न विरोध्यः कथञ्चन ।
मुख्यन्यायालयाधीशैर्द्राविडैरितिनिश्चितम् ॥१०६७॥

जहां पर विधवा स्त्री ने दाय में मिली पति की संपत्ति को गिरवी रखदी हो और उसके गिरवी लेनेवाले ने उस (स्त्री) पर मुकद्दमा चलाया हो तथा (ऐसे स्थान पर) उस (स्त्री) ने उस झगड़े को मिटाने के लिए, कर्ज का अन्दाज करके,

आपस के निर्णय (समझौते) से, वह सारी संपत्ति (उस) मुकद्दमा चलानेवाले को देदी हो, यदि उसके लिये झगड़ा (उठ खड़ा) हो, तो वहां वह गिरवी लेनेवाला ही यह प्रमाणित करे कि उन दोनों का समझौता न्यायानुकूल और प्रत्यादों के मान ने लायक है तथा किसी तरह भी विरोध करने लायक नहीं है। ऐसा द्रविड-देश के हाईकोर्ट के जजों ने निश्चित किया है।

प्रत्याध्युपात्तवित्तार्थमभियुज्याधिकारकम्।
तद्विक्रयायाधवया संप्राप्तं राजशासनम् ॥१०६८॥
न्यायालयाज्ञयाऽन्ते च क्रीतोऽशस्तद्धनस्य तु।
उद्घोष्य विहिते सार्वजनिके विक्रये, ततः ॥१०६९॥
विक्रयं तु विरोद्धुं तमभियोगः प्रवर्तितः।
आधीकर्त्रा, स्त्रियान्ते च समाधानं मिथो कृतम् ॥१०७०॥
प्रत्यादास्त्वभियोक्तारः साधयेयुर्विरोधने।
यत्तयोस्तत् समाधानं तेषां नास्त्यत्र बाधकम् ॥१०७१॥
एतन्न्यायालयाधीशैर्मैथिलैस्तु विनिश्चितम्।
अङ्गीकृतं च तन्नूनं मुख्यया न्यायसंसदा ॥१०७२॥

विधवा स्त्री ने पति द्वारा गिरवी में लिये धनके लिए गिरवी रखने वाले पर मुकद्दमा चलाकर उसको बेचने के लिए डिग्री प्राप्त करली हो और बाद में न्यायालय की आज्ञा (प्राप्त कर लेने) से नीलाम में उस-धन का कुछ अंश खरीद लिया हो तथा इसके बाद गिरवी रखनेवाले ने उस बेचान का विरोध करने के लिए मुकद्दमा चलाया हो और बाद में (उस विधवा) स्त्री ने आपस में समझौता करलिया हो, तो विरोध में मुकद्दमा चलानेवाले प्रत्याद सिद्ध करें कि उन दोनों का वह समझौता, यहां पर, उन (प्रत्यादों) को बाधा नहीं पहुँचाता-यह पटना की हाइकोर्ट के जजों ने निश्चित किया है। और उसे मुख्य जुडिशियल कमेटी ने भी मान लिया है।

स्वार्थायाऽन्तिकप्रत्यादेनाभिनुन्नाऽधवाऽबला।
दायाप्तपतिवित्ता चेन्निर्णीय कुरुते मिथो ॥१०७३॥
कौटुम्बिकीं समुचितां योजनां तद्धनाय हि।
सर्वानपीयं प्रत्यादान् बध्नात्यर्थप्रभाविका ॥१०७४॥

नजदीकी प्रत्याद द्वारा अपने स्वार्थ (claim) के लिए प्रेरित की गई, दाय में पति का धन प्राप्त की हुई विधवा स्त्री यदि आपस में निर्णय (समझौता) करके, उस धन के लिए कुटुम्ब से सम्बन्ध रखनेवाली समुचित योजना कर देती है, तो (उस) धन पर प्रभाव डालनेवाली वह (योजना) सारे ही प्रत्यादों को बांध लेती है।

छलमाश्रित्य विहितो विभागोऽर्थस्य तस्य तु ।
प्रत्यादेनाथ विधवास्त्रिया नूनं परस्परम् ॥१०७५॥
वंशप्रबन्धरूपेण नो मान्यः संमतो बुधैः ।
वञ्चनामात्रमेव स्यादतः प्रागधवा यदि ॥१०७६॥
प्रत्यादायान्तिकायात्र समस्तां पतिसंपदम् ।
दद्याद्यच्छेच्च तामेव पुनस्तद्विधवाकृते ॥१०७७॥
पूर्णस्वाम्या भवेद्येन साऽधवा तत्र संपदि ।
प्रयच्छेच्च पुनः सांशं प्रत्यादाय तदर्थतः ॥१०७८॥
वंशप्रबन्धरूपेण नैव मान्यो मतस्तदा ।
तस्या मृतौ न बाधेत प्रत्यादं वास्तवं तथा ॥१०७९॥
प्रत्यादस्यानुमन्तुस्तु सुतोऽप्येष भवेद्यदि ।
छलमात्रं यतो दानादानमेतन्न संशयः ॥१०८०॥

प्रत्याद और विधवा स्त्री द्वारा छल का सहारा लेकर, उस (पति से दाय में पाये) धन का वंश के प्रबन्ध (family arrangement) के रूप से, निश्चित तौर से, आपस में किया बटवारा विद्वानों ने मान्य नहीं माना है। यह तो ठगना मात्र होता है। इसलिए यहां पर यदि विधवा स्त्री पहले नजदीकी प्रत्याद को पति की सारी ही संपत्ति दे दे और फिर वह (प्रत्याद) निश्चय ही उस (संपत्ति) को उस विधवा को दे दे (लौटा दे), जिससे कि वह विधवा उस संपत्ति में पूर्णाधिकार वाली हो जाय, तथा इसके बाद वह (विधवा) प्रत्याद को उस धन में से कुछ हिस्सा, कुटुम्ब के प्रबन्ध के रूप से, दे दे, तो यह मान्य नहीं माना गया है और (वह) उस विधवा स्त्री के मरने पर वास्तविक प्रत्याद को बाधा नहीं पहुँचाता; चाहे वह संमति देनेवाले प्रत्याद का पुत्र ही हो; क्योंकि यह देन-लेन केवल छल ही है। इसमें संशय नहीं है।

आकूतयन्ती पूर्णैश्यं दायाप्तां संपदं यदि ।
हस्तेसमर्पयत्यन्यजनस्यैषा तदा ध्रुवम् ॥१०८१॥
प्रत्यादो वास्तवः शक्तोऽभियोगेन कृतं हि तत् ।
विधातुमकृतं न्यायामान्यत्वादिति निश्चितम् ॥१०८२॥

यदि पूर्णाधिकार की भावना को प्रकट (purport) करती हुई यह (विधवा स्त्री) दाय में पाई पति की संपत्ति को दूसरे पुरुष (third person) के हाथ में दे देती है, तो निश्चय ही वास्तविक प्रत्याद उस किये हुए को, न्याय से अमान्य होने के कारण, मुकद्दमे द्वारा नहीं किया (अग्राह्य) कर देने को समर्थ होता है-ऐसा निश्चय किया गया है।

मृतार्थाधिपतिप्राप्तव्यापारजमृणं यदि ।
न्याय्यं तर्हि मितस्वाम्या नारी वा विधवा क्षमा ॥१०८३॥
तस्य शोधकृते नूनं व्ययितुं तस्य संपदम् ।
दातुं तदर्थतो वात्र तदृणं नात्र संशयः ॥१०८४॥
व्यापारे प्राक्क्रयश्चान्ते विक्रयः स्थिरसंपदः ।
अन्तर्गतो यदि तदा पूर्णस्वाम्या हि तत्र सा ॥१०८५॥

यदि मृत धन के स्वामी से पाये व्यापार से पैदा हुआ कर्जा न्याय्य (properly incurrod) हो, तो परिमित अधिकार वाली स्त्री या विधवा उसको चुकाने के लिए, निश्चय ही, उस (मृत धन-स्वामी) की संपत्ति को खर्च कर सकती है अथवा यहां पर उस धन से उस कर्ज को देने (चुकाने) में समर्थ होती है । इसमें संशय नहीं है । (उस) व्यापार में पहले स्थिर संपत्ति का खरीदना और फिर बेचना (भी) शामिल हो, तो वहां पर (उस लेने--बेचने में) वह पूर्ण अधिकार वाली होती है । (अर्थात्-वहां पर बेचने के लिए न्याय्य आवश्यकता की अपेक्षा नहीं रहती ।)

ऋणं विधवया त्वात्तं मितस्वाम्यस्त्रियाऽथवा ।
साधारणमृणं ज्ञेयं कृतं न्याय्याय कर्मणे ॥१०८६॥
न्याय्यावश्यकता त्वत्र तत्कन्योपयमस्तथा ।
ऋणं व्यापारसंभूतं न्यायविद्भिरितीरितम् ॥१०८७॥

विधवा द्वारा या परिमित अधिकार वाली स्त्री द्वारा लिये कर्ज को न्याय्य (legal) कार्य के लिए किया साधारण कर्जा जानना चाहिए । यहां पर न्याय्य आवश्यकता-उसकी कन्या का विवाह या व्यापार से उत्पन्न हुआ कर्जा होता है-ऐसा विद्वानों ने कहा है ।

तदृणं न गृहीतं चेदाधीकृत्यात्र संपदम् ।
संपत्तौ तस्य भारो वा नो निक्षिप्तः स्त्रिया, तदा ॥१०८८॥
तस्यां मृतायां प्रत्यादहस्तस्थायां च संपदि ।
ऋणशुद्धयै तु सा संपद् भारार्हा वा न वा भवेत् ॥१०८९॥
मतैक्यं नात्र विदुषां तच्चाग्रेऽत्र विविच्यते ।
द्राविडाश्च प्रयागीया मुख्यन्यायालयाधिपाः ॥१०९०॥
संपदं तां न मन्यन्त ऋणभारवहां, यतः ।
ऋणदात्रा स्त्रिया एव व्यक्तित्वं भारवाहकम् ॥१०९१॥
अङ्गीकृत्य ऋणं दत्तं ततो नासौ क्षमो भवेत् ।
तदृणानतुबद्धायायनुयोक्तुं तु संपदे ॥१०९२॥

यदि स्त्री ने वह (पूर्वोक्त) ऋण संपत्ति को गिरवी रख कर न लिया हो अथवा संपत्ति पर उस (कर्ज का) भार न डाला हो, तो उस स्त्री के मरने पर और प्रत्याद के हाथ में संपत्ति के हो जाने पर कर्ज के चुकाने में वह संपत्ति जिम्मेदार होती है या नहीं-इस विषय में विद्वानों का एक मत नहीं है। आगे यहां पर उसका विवेचन किया जाता है। मद्रास और इलाहाबाद की हाइकोर्ट के जज उस संपत्ति को कर्ज का भार धारण करने वाली नहीं मानते; क्योंकि कर्ज देनेवाले ने स्त्री के व्यक्तित्व को ही जिम्मेदार मानकर कर्ज दिया था। इसलिए वह (कर्ज देने वाला) उस कर्ज से संबन्ध नहीं रखने वाली संपत्ति के लिए मुकद्दमा नहीं कर सकता।

मुख्यन्यायालयाधीशैर्वङ्गीयैस्तु मता पुनः।
सा संपदृणभारार्हा, यतोन्याय्यायकर्मणे ॥१०६३॥
गृहीतं तदृणं नार्या तत आधीकृता न वा।
भारीकृता न वा संपद् न भेदं जनयेत्तथा ॥१०६४॥
जीर्णोद्धृत्यै गृहादीनां व्ययः स्याद्यत्र संपदः।
तत्रापि संपदो लाभं मत्वा सा भारिणी मता ॥१०६५॥
जीर्णोद्धारोऽनिवार्यस्तु दायाप्तपितृसद्मनः।
कृतः पुत्र्यास्तत ऋणेनार्थलाभाय तैर्मतः ॥१०६६॥

बंगाल की हाइकोर्ट के जजों ने उस संपत्ति को कर्ज का भार धारण करने लायक माना है; क्योंकि स्त्री द्वारा न्याय्य कार्य के, लिए वह ऋण लिया गया था। इसलिए संपत्ति को गिरवी रक्खा हो या न रक्खा हो अथवा उस पर भार डाला हो या न डाला हो, इससे फर्क नहीं पड़ता। फिर जहां पर घर वगैराओं की मरम्मत के लिये संपत्ति का खर्च हुआ हो, वहां पर भी संपत्ति का लाभ मानकर उस (संपत्ति) को (कर्ज का) भार धारण करने वाली माना है। इसलिए पुत्री द्वारा दाय में पाये पिता के घर की कर्ज द्वारा की गई, निश्चय ही, आवश्यक मरम्मत यहां पर उन्होंने (जजों ने) संपत्ति के लाभ के लिए ही मानी है।

महाराष्ट्रस्थितैर्मुख्यन्यायौकेशैर्निजं मतम्।
पुराणं संपरित्यज्य वङ्गीयं मतमादृतम् ॥१०६७॥

बंबई-स्थित हाइकोर्ट के जजों ने अपना पुराना मत छोड़ कर बंगाल का (पूर्वोक्त मत) ग्रहण कर लिया है।

पुनर्नागपुरीयैश्चाप्येतद् वङ्गविनिश्चितम्।
मतमङ्गीकृतं, शुद्धयायेतादृशऋणस्य तु ॥१०६८॥
अभियोक्तुं परं तत्र चेदिच्छेद्दृणदस्तदा।
स्त्रियं संपत्तिसहितां नूनमेषोऽभियोजयेत् ॥१०६९॥

केवलं त्वभियुक्तायां विधवायां सुनिश्चितम्।
तत्स्वार्थमेव गृह्णीत ऋणशुद्ध्यै न संपदः ॥११००॥

और फिर नागपुरवालों ने भी यह बंगाल का निश्चित किया मत मान लिया है। परन्तु यदि वहां पर कर्ज देनेवाला ऐसे कर्ज को चुकाने के लिए मुकद्दमा चलाना चाहे, तो वह, निश्चय ही, संपत्ति के साथ रही स्त्री पर मुकद्दमा चलावे। केवल विधवा पर मुकद्दमा करने पर निश्चय ही, कर्ज चुकाने के लिए उसका स्वार्थ (interest) ही लिया जायगा; संपत्ति नहीं।

विश्रम्भे पतिदायाप्तं व्यापारार्थं निधाय चेत्।
ऋणं व्यापारसंबद्धमुचितं कुरुतेऽधवा ॥११०१॥
तदा तन्मरणान्तेऽपि तद्व्यापारधनाद्धि तत्।
तद्दायहरप्रत्यादादिवैव परिगृह्यते ॥११०२॥
स्थापितो नापि चेद्भारो वैशिष्ट्येन तु तद्धने।
तदृणस्य, तथाप्येतत्तस्मादेवात्र गृह्यते ॥११०३॥

यदि विधवा स्त्री विश्वास (पैठ-credit) में पति से दाय में पाई व्यापार की संपत्ति (assets of the business) को रख कर, व्यापार से संबन्ध रखने वाला उचित कर्जा करती है, तो उस (स्त्री) के मरजाने पर भी वह (कर्ज), उसका दाय धन लेने वाले प्रत्याद से लेने के समान ही, उस व्यापार के धन से ले लिया जाता है। यदि उस कर्ज का भार खास तौर पर उस धन पर नहीं भी रक्खा हो, तो भी वह (कर्ज) यहां पर उसी (धन) से लिया जाता है।

साधारणेन लेखेन ऋणमादाय प्राक् ततः।
आधीकर्तुं तदर्थं तु संपदं विधवा क्षमाः ॥११०४॥

विधवा स्त्री पहले साधारण लेख(bond) द्वारा कर्ज लेकर बाद में संपत्ति को उस (कर्ज) के लिए गिरवी कर सकती है।

वेदाष्टाङ्कैकवर्षान्तावधिशोधिविधानतः।
प्राङ् मितस्वाम्यया नार्याऽधवया वा सुनिश्चितम् ।११०५॥
ऋणमङ्गीकृतं तस्या नासीत्प्रत्यादबाधकम्।
नूनं हि निर्णयेनात्र मुख्यया न्यायसंसदः ॥११०६॥
अधुना तद्विधानस्य धारया तु तृतीयया।
निश्चितं, यदृणं नार्या स्वीकृत्य लिखितं दलम् ॥११०७॥
तदर्थं संप्रदत्तं वा किञ्चिद्वित्तं तया तदा।
तत् तद्दायादप्रत्यादे तद्भारं विनिवेशयेत् ॥११०८॥

वि० सं० १९८४ (ई० स० १९२७) में ग्रहण किये अवधि में संशोधन करने वाले कानून (The Indian Limitation (Amendment) Act 1927)

से पहले, निश्चय ही, मुख्य-न्याय-सभा (The Judicial Committee) के निर्णय से परिमित अधिकार वाली स्त्री द्वारा या विधवा द्वारा, निश्चित रूप से, स्वीकार किया कर्ज उस (स्त्री) के प्रत्याद को बाधा पहुंचाने (bind करने) वाला नहीं था। किन्तु आज कल उस कानून की तीसरी धारा (Section) द्वारा निश्चित कर दिया गया है कि स्त्री द्वारा कर्ज स्वीकार करके पत्र लिख दिया गया हो या फिर उस (स्त्री) ने उस (कर्ज) के लिए कुछ धन देदिया हो, तो वह उसका दाय लेने वाले प्रत्याद पर उस (कर्ज) का भार डाल देता है।

मिताधिकृतया वाथ स्त्रिया विधवया कृतम्।
दानं दायाप्तसंपत्तेरखिलायास्तु मन्यते ॥११०९॥
स्वीयनेदिष्ठप्रत्यादकृते चेत्केवलोऽत्र सः।
दानकाले,ऽथ सर्वेभ्यस्तेभ्यश्चे ऽद्बहवो हि ते ॥१११०॥
तत्र नावश्यकत्वस्य प्रश्न उत्पद्यते परम्।
वञ्चनारहितं दानन्याय्यत्वं समपेक्षितम् ॥११११॥

परिमित अधिकार वाली स्त्री या विधवा द्वारा किया, यदि दान के समय वह अकेला ही हो तो, अपने नजदीकी प्रत्याद के लिए और यदि (दान के समय) वे बहुत से हों, तो उन सब के लिए, दाय में पाई सारी संपत्ति का दान मान लिया जाता है। वहां पर आवश्यकता का प्रश्न नहीं उठता। परन्तु छल से रहित दान का उचित होना आवश्यक होता है।

विक्रयस्तु न मान्योऽत्र स्वलाभायैव संपदः।
संपूर्णदानरूपेण वञ्चना सा तु निश्चिता ॥१११२॥

अपने लाभ के लिए ही संपत्ति का बेचना, यहां पर, संपूर्ण दान के रूप से नहीं माना जा सकता। वह तो निश्चितरूप से ठगाई ही होती है।

एकाधिका भवेयुश्चेद्विधवा यत्र तत्र तु।
सर्वासामेव तासां तु पूर्णदानं मतं बुधैः ॥१११३॥

जहां पर एक से अधिक विधवायें हों, वहां पर विद्वानों ने उन सब का ही (किया) पूर्ण दान माना (मान्य समझा) है।

दानं विधवया वाथ मितस्वाम्यस्त्रिया कृतम्।
दायाप्ताखिलसंपत्तावस्थितस्य निजस्य हि ॥१११४॥
पूर्णस्वार्थस्य सर्वेभ्यः प्रत्यादेभ्यस्तु निश्चितम्।
नेदिष्ठेभ्यो भवेन्मान्यमथ मुक्तः प्रमादतः ॥१११५॥
संपदोऽप्यल्पभागो हि दाने निष्फलतां नयेत्।
'दानं नो, चेद् भवेद् न्याय्यमन्यथा तदसंशयम् ॥१११६॥

विधवा द्वारा या परिमित अधिकार वाली स्त्री द्वारा हकदारी में पाई सारी संपत्ति में रहे अपने सारे स्वार्थ का, सारे ही नजदीकी प्रत्यादों के लिए किया, निश्चित दान मान्य होता है। तथा गलती से दान में छोड़ा गया संपत्ति का बहुत थोड़ा भाग, यदि वह (दान) और तरह से निस्सन्देह उचित हो, तो (उस)दान को निष्फल नहीं कर सकता।

दायाप्तसंपदः पूर्णदानेनात्र तु ताः स्त्रियः ।
मृता इव प्रजायन्ते तदर्थाधिकृतौ यतः ॥१११७॥
ततो नेदिष्टप्रत्यादा जीवन्तीष्वपि तासु तु ।
संपत्तिमधिकुर्वन्ति तत्स्वाम्यं तत्र नान्यथा ॥१११८॥
अतोऽसमग्रसंपत्तेर्दाने त्वर्धमृता इव ।
ताः स्युस्तस्मान्न प्रत्यादास्तदर्थहरणे क्षमाः ॥१११९॥

क्योंकि हकदारी में पाई सारी संपत्ति के दे देने से वे (देनेवाली) स्त्रियां, यहां पर, उस संपत्ति के अधिकार में, मरी हुई के समान हो जाती हैं। इसीसे उनके जीते रहने पर भी नजदीकी प्रत्याद संपत्ति पर अधिकार कर लेते हैं। दूसरी तरह से उन (प्रत्यादों) का अधिकार उस पर नहीं हो सकता। इसीलिए अधूरी संपत्ति के दान में वे (स्त्रियां) आधी मरी हुई की तरह ही होती हैं। इससे प्रत्याद उनका धन नहीं ले सकता।

तत्पूर्णसंपदो दानं क्रमशोऽपि कृतं यदि ।
अन्ते पूर्णीकृतं तर्हि मान्यमेव मतं बुधैः ॥११२०॥

यदि उस (हकदारी में पाई) संपत्ति का दान क्रम-क्रम से भी किया हो, परन्तु अन्त में पूरा कर दिया हो, तो विद्वानों ने मान्य ही माना है।

दायाप्तायास्तु संपत्तेः पूर्णदानकृते कृतः ।
लेखोऽत्रोपायनस्यैव लेखवद्विबुधैर्मतः ॥११२१॥

हकदारी में पाई संपत्ति के पूर्ण-दान के लिए किया लेख यहां पर विद्वानों ने उपहार के लेख के समान ही माना है।

यत्र नेदिष्टप्रत्यादः संपदं प्राप्य दानतः ।
तदंशं तत्कृते दद्याद् दातृसंदर्शितं जनम् ॥११२२॥
तत्र तत्तच्छलं ज्ञेयं, जीवनान्ता तु तद्भृतिः ।
मिथो निर्णयतो दत्ताऽऽदात्रा दानं न बाधते ॥११२३॥

जहां पर नजदीकी प्रत्याद, दान से संपत्ति को पाकर उसके लिए (उसकी एवज में) उस (संपत्ति) का एक भाग देनेवाली (स्त्री) द्वारा बतलाये पुरुष को दे दे, तो वहां पर उस (समग्र संपत्ति) के दान को छल ही समझना चाहिए।

परन्तु धन लेनेवाले द्वारा, आपस के निर्णय (compromise) से, जीवन पर्यन्त के लिए दी गई उस (स्त्री) की जीविका दान को बाधा नहीं पहुँचाती।

समग्रसंपदो दाने स्त्रिया भावो न गृह्यते।
अतो भावस्य प्रश्नस्तु तत्र नैवोपपद्यते ॥११२४॥

संपूर्ण संपत्ति के दान में स्त्री का भाव नहीं लिया जाता। इसलिए वहां पर भाव का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

दानं तु पूर्णसंपत्तेः स्त्रीप्रत्यादकृते कृतम्।
तत्स्वाम्यं नाधिकं कुर्यात् स्वाम्याद्दायाप्तसंपदः ॥११२५॥
शीघ्रतां संपदः स्वाम्ये स्त्रीप्रत्यादस्य किन्तु तत्।
दानं हि कुरुते, नान्यो भेदस्तेन तु जायते ॥११२६॥

स्त्री प्रत्याद के लिए किया पूर्ण संपत्ति का दान उस (प्रत्याद) के अधिकार को, दाय में पाई संपत्ति के अधिकार से, अधिक नहीं करता। परन्तु वह दान स्त्री-प्रत्याद के संपत्ति के अधिकार में शीघ्रता करता है। उससे और कोई फर्क नहीं पड़ता।

अतस्तन्मरणे याति प्रत्यादं तदनन्तरम्।
सा संपत्तु प्रत्येति दानदात्रीं कथञ्चन ॥११२७॥

इसलिए उस (स्त्री) के मरने पर संपत्ति उसके बाद के प्रत्याद को मिलती है। दान देनेवाली को किसी भी तरह लौट कर नहीं जाती।

महाराष्ट्रे यतो गोत्रजाताः कन्यादयोमताः।
पूर्णस्वाम्या हि पुंदाये तत्र नैप नयस्ततः ॥११२८॥
पूर्णं दानं कृतं तत्र पुत्र्यादिभ्यस्तु निश्चितम्।
पूर्णस्वाम्यतया तासां तासामेवोत्तरान् व्रजेत् ॥११२९॥

क्योंकि बंबई प्रान्त में गोत्र में उत्पन्न हुई कन्या आदि पुरुष से पाये दाय-धन में पूर्ण अधिकार वाली मानी जाती हैं, इसलिए वहां पर यह नियम काम नहीं देता। वहां पर पुत्री आदि के लिए निश्चितरूप से किया पूर्ण दान उनके पूर्ण अधिकार के कारण उन्हीं के उत्तराधिकारियों को मिलता है। (यहां पर आदि शब्द से नवासी आदि लेनी चाहिए।)

दत्ता नेदिष्ठप्रत्यादसंमत्याऽधवयाऽखिलाः।
पुरुषायापरस्मै तूपहारेणात्र संपदः ॥११३०॥
संपूर्णदानरूपेण प्रत्यादं वास्तवं स्त्रियाः।
बाधते वा न वा नात्र मतैक्यं विदुषां पुनः ॥११३१॥

फिर यहां पर विधवा द्वारा, नजदीकी प्रत्यादकी संमति से, अन्य पुरुष के लिए उपहाररूप से दी गई संपूर्ण संपत्ति संपूर्ण दान के रूप से स्त्री के वास्तविक

प्रत्याद को बाधा पहुँचाती है या नहीं, इस विषय में विद्वानों का एक मत नहीं है। (देखो श्लोक ६५६ से ६६१)।

व्ययितः संपदो भागोऽधवया न्यायकर्मणि।
यथा भर्तृ णशुद्धौ वोचिते त्वपरकर्मणि ॥११३२॥
शेषस्तु पूर्णदानस्य रूपेणैव समर्पितः।
यत्र तत्र हि तद्दानं मान्यमेव मतं बुधैः ॥११३३॥

जहां पर विधवा स्त्री ने संपत्ति का कुछ भाग न्याय्य कार्य में जैसे पति के कर्ज के चुकाने में या अन्य न्याय्य काम में खर्च कर दिया हो, और बाकी का, संपूर्ण दान के रूप से दे दिया हो, वहां पर विद्वानों ने उस दान को मान्य ही माना है।

पतिदायाप्तसंपत्तेर्भागस्त्वधवया यदि।
न्याय्यावश्यकताऽभावे व्ययितः प्राक्ततस्तया ॥११३४॥
तच्छेषं पूर्णदानेन प्रत्यादाय समर्पितम्।
नेदिष्ठाय तदा मान्यमेव दानं तु तन्मतम् ॥११३५॥
विधवाऽन्त एव किन्त्वत्र तद्व्ययीकृतसंपदि।
सोऽधिकर्तुं क्षमो नास्यां जीवन्त्यां तु कदाचन ॥११३६॥
बाधते तद्व्ययो नूनमधवाधिकृतिं यतः।
तस्यां मृतायामेवासावतस्तां पुनराहरेत् ॥११३७॥

यदि विधवा ने, पति से दाय में पाई संपत्ति का कुछ हिस्सा, पहले न्याय्य आवश्यकता के न होने पर, खर्च कर दिया हो और बाद में उसने उस (संपत्ति) का बचा हुआ भाग, संपूर्णदान के द्वारा, नजदीकी प्रत्याद को सौंप दिया हो, तो उस दान को मान्य ही माना गया है। परन्तु ऐसे स्थान पर वह (प्रत्याद) विधवा के मरने पर ही उसके द्वारा खर्च की हुई संपत्ति पर अधिकार कर सकता है, उसके जीते जी कभी नहीं। क्योंकि वह (विधवा द्वारा न्याय्य आवश्यकता के विना किया) खर्च निश्चय ही विधवा के अधिकार को बाधा पहुँचाता है। इसलिए वह (प्रत्याद) उस (विधवा) के मरने पर ही उस (खर्च की हुई संपत्ति) को वापस ले सकता है।

वङ्गीयप्राड्विवाकेन परमेकेन निश्चितम्।
दानं संपूर्णसंपत्तेः प्रत्यादाय कृतं स्त्रिया ॥११३८॥
निष्फलीकुरुते नूनं तत्कृतं प्राक्तनं व्ययम्।
जीवन्त्यामप्यतस्तस्यां प्रत्यादोऽशं तु तं हरेत् ॥११३९॥

परन्तु बंगाल के एक जज (Mr. J. Page) ने निश्चत किया है कि स्त्री द्वारा प्रत्याद के लिए किया समग्र संपति का दान उस (स्त्री) के द्वारा पहले किये खर्च

को निष्फल कर देता है। इसलिए उसके जीते जी ही प्रत्याद उस हिस्से को ले सकता है।

मितस्वाम्यस्त्रिया वित्तं न्याय्यावश्यकतामृते।
विना नेदिष्ठप्रत्यादानुज्ञया वा व्ययीकृतम्॥११४०॥
प्राक् ततश्च गृहीतोऽत्र दत्तकस्तु तया तदा।
तत्कालमेव शक्तः स प्रत्याहर्तुं तु तद्धनम्॥११४१॥

परिमित अधिकार वाली स्त्री द्वारा न्याय्य आवश्यकता के विना या नजदीकी प्रत्याद की अनुमति के विना पहले धन खर्च कर दिया गया हो और बाद में उसने यहां पर पुत्र गोद लिया हो, तो वह (दत्तक पुत्र) उसी समय उस (खर्च किये) धन को वापस ले सकता है।

महाराष्ट्रस्थितैर्मुख्यन्यायाधीशैस्तु निश्चितम्।
यद्दद्याद्विधवा पूर्वमुपहारेण चेद्धनम्॥११४२॥
सर्वं त्वन्यजनायान्ते प्रत्यादायान्तिकाय हि।
यच्छेत्तदखिलं तर्हि नो मान्यं तद् भवेद्यतः॥११४३॥
प्राक्तनेनोपहारेण सा जाताऽनधिकारिणी।
तद्धनेऽतस्तु तद् दातुं प्रत्यादायाऽक्षमा हि सा॥११४४॥

बंबई की हाइकोर्ट के जजों ने निश्चित किया है कि यदि विधवा पहले उपहार के द्वारा सारे धन को अन्य पुरुष (third person) को दे दे और बाद में उस सारे (धन) को नजदीकी प्रत्याद को दे दे, तो वह (पिछला देना) मान्य नहीं होता। क्योंकि पहले के उपहार से वह (स्त्री) उस धन पर अधिकार हीन हो चुकी थी, इसलिए वह उस (धन) को प्रत्याद को नहीं दे सकती।

प्राग्दत्तास्तूपहारेणाधवया पतिसंपदः।
निजनेदिष्ठप्रत्यादकृते न्याय्यविधानतः॥११४५॥

गृहीतो दत्तकश्चान्ते न शक्तः स परासितुम्।
तं न्याय्यमुपहारं तदन्याय्ये तु क्षमो भवेत्॥११४६॥

विधवा ने, पति की संपत्ति को पहले, न्याय की विधि से, उपहार के द्वारा, अपने नजदीकी प्रत्याद को दे दी हो और बाद में पुत्र गोद लिया हो, तो वह उस न्याय्य उपहार को रद नहीं कर सकता। परन्तु उस (उपहार) के अन्याय्य होने पर (रद करने में) समर्थ होता है।

मितस्वाम्याथ विधवा दायाप्तायास्तु संपदः।
शक्ता प्रबन्धे बालार्थप्रबन्धक इव ध्रुवम्॥११४७॥

परिमित अधिकारवाली स्त्री या विधवा दाय में पाई संपति के प्रबन्ध में, बालक

की संपत्ति के प्रबन्धक के समान ही, समर्थ होती है। (अर्थात्–उस स्त्री का अधिकार उस प्रबन्धक के समान ही होता है।)

कौटुम्बिक्या हि संपत्तेः प्रबन्धक इवाऽधवा।
स्वाधिकारप्रयोगे तूचितं स्वातन्त्र्यमर्हति ॥११४८॥
तावद्यावद्धि संभाव्यस्वामिनेऽर्थस्य तत्कृतः।
प्रबन्धः शुद्धभावेन युक्तः श्रेयस्करो भवेत् ॥११४९॥
न्यायाधीशास्तु नो कुर्युर्हस्तक्षेपं प्रबन्धने।
तस्या यावन्न शङ्कास्यात्संपद्धानेस्तु निश्चिता ॥११५०॥

कुटुम्ब की संपत्ति के प्रबन्धकर्ता के समान ही विधवा अपने अधिकार को काम में लाने में तब तक उचित (reasonable) स्वतन्त्रता (latitude) पाने योग्य होती है, जबतक कि धन के संभावित (expectant) स्वामी (heir) के लिए उसका किया प्रबन्ध शुद्ध भाव से युक्त और कल्याणकारी हो। न्यायाधीश भी उसके प्रबन्ध में तब तक हस्तक्षेप न करें, जब तक संपत्ति की हानि होने की निश्चित शङ्का न हो।

आयेन पतिसंपत्तेस्तदृणप्रतिदत्तये।
नो बद्धा विधवा किन्तु बद्धा तद्वृद्धिदत्तये ॥११५१॥
ऋणशुद्ध्यै तु सा शक्ता विक्रेतुं पतिसंपदम्।
आधीकर्तुं तथा यस्मात्तदायस्तद्धनं मतम् ॥११५२॥

विधवा स्त्री पति की संपत्ति की आमदनी से उस (पति) के कर्ज़ को वापस देने के लिए नहीं बँधी होती, परन्तु उस (कर्ज़) के ब्याज को देने के लिए बँधी होती है। कर्ज़ चुकाने के लिए तो वह (स्त्री) पति की संपत्ति को बेचने या गिरवी रखने में (भी) समर्थ होती है। क्योंकि उस (संपत्ति) की आमदनी उस (स्त्री) का (ही) धन होती है।

पुनः सा विधवा नात्र चेतुमायं हि संपदः।
प्रयोक्तुं वाथ तं बद्धा प्रत्यादस्य हिताय तु ॥११५३॥
बद्धा परं तदायेन दातुं तस्याः करादिकम्।
भर्तुं वंश्यांस्तथा चान्यांस्तदाश्रयगतानिह ॥११५४॥
प्रमाद्य लोककार्येषु तथाऽनौचित्यतस्तु सा।
भर्तृणां वर्धयित्वा नो प्रत्यादं हि क्षतिं नयेत् ॥११५५॥

फिर यहां पर वह विधवा स्त्री संपत्ति की आमदनी को इकट्ठा करने या प्रत्याद के फ़ायदे के लिए उसका प्रयोग करने को बँधी नहीं होती। परन्तु वह उस (संपत्ति) की आमदनी से उसका कर (पेशकश) आदि देने को तथा उस (संपत्ति) के

आश्रय पर रहे वंशवालों और अन्य (ऐसे ही) लोगों का भरण--पोषण करने को निश्चय ही, यहां पर, बंधी होती है। वह ऊपर कहे कामों में गफलत न करे और अन्याय से पति के कर्ज को बढ़ाकर प्रत्याद को क्षति न पहुँचावे।

शक्ताऽथवा नियोक्तुं हि पत्यर्थांशं यथेप्सितम्।
व्यापारेषु भवेद्दायाधिक्यं येनाधिकं ध्रुवम् ॥११५६॥

विधवा स्त्री पति के धन के कुछ भाग को अपनी इच्छानुसार व्यापार (securities) में लगा सकती है, जिससे, निश्चयरूप से, अधिक आमदनी हो।

आधावादाय संपत्तिं परस्यैषा पुनः क्षमा।
ऋणं दातुं स्वलाभार्थं तस्मै स्वपतिवित्ततः ॥११५७॥

फिर वह (स्त्री) दूसरे की संपत्ति को गिरवी लेकर, अपने लाभ के लिए, अपनी पति की संपत्ति से उस (दूसरे पुरुष) को कर्ज दे सकती है।

न्यायाधीशैस्तु नो बाधा कार्या तस्याः प्रबन्धने।
न्याय्ये स्वभर्तृसंपत्तेः, सा शक्ता तत्कृते यतः ॥११५८॥

न्ययाधीशों को उस (स्त्री) के अपने पति की संपत्ति के, न्याय पूर्वक किये, प्रबन्ध में रुकावट नहीं करनी चाहिए; क्योंकि वह उसके लिए समर्थ होती है।

खनिश्चेत्पतिसंपत्तावायस्तत्खननोद्भवः।
यथेच्छं सोपयुञ्जीत किन्तु निःशेषयेन्न ताम् ॥११५९॥

पति की संपत्ति में यदि (किसी प्रकार की) खान हो, तो उसके खोदने से हुई आमदनी को वह (स्त्री) अपनी इच्छानुसार काम में ले। परन्तु खान को समाप्त न करडाले।

मितस्वाम्याऽथवा स्त्री वाऽभियोगे संपदर्थके।
मन्यते न्यायमर्मज्ञैः प्रतिभूः सर्वसंपदः ॥११६०॥
अतस्तु शासनं दत्तं तद्विरुद्धं नयाधिपैः।
तदर्थं विक्रयश्चापि संपत्तेस्तां स्त्रियं तथा ॥११६१॥
तस्यास्तत्स्थान्प्रत्यादानपि बध्नाति नीतितः।
चेद् भवेदभियोगः स संपत्तेर्बन्धकारिणे ॥११६२॥
व्यापारायापरायाथ ऋणायाथ च शासनम्।
स्त्रीविरुद्धं प्रदत्तं चेन्न्यायाधीशैरसंशयम् ॥११६३॥
संपत्तेः प्रतिभूरूपां मत्वैनां न्यायरीतितः।
न तु स्वप्रतिभूरूपां मत्वैनां तु कथञ्चन ॥११६४॥

संपत्ति के लिए किये गये मुकद्दमे में, परिमित अधिकार वाली या विधवा स्त्री कानून जानने वालों द्वारा सारी संपत्ति की प्रतिनिधि (representative) मानी

जाती है। इसलिए जजों द्वारा उस (स्त्री) के विरुद्ध दी गई डिग्री और उस (डिग्री) के लिए किया संपत्ति का बेचान उस स्त्री को और उसके तटस्थ (मुकद्दमे से दूर रहे) प्रत्यादों को भी, यदि वह (पूर्वोक्त) मुकद्दमा निश्चय ही संपत्ति को बांधने वाले दूसरे व्यापार (transaction) के लिये या कर्ज के लिए हो, या फिर जजों ने कानून की रीति से उस (स्त्री) को निःसन्देह संपत्ति की प्रतिनिधि रूप (representative) मान कर ही (उस) स्त्री के विरुद्ध डिग्री दी हो, न कि, किसी प्रकार भी, अपनी खुद की प्रतिनिधिरूप मान कर दी हो, तो कायदे से बाँध लेता है।

अर्थाऽभियोगे शक्तासाऽथवा कर्तु परस्परम्।
निर्णयं, तत्कृते यत्स्याच्छासनं तदपीह तु ॥११६५॥
राजनिर्णयतस्त्वन्ते दत्तशासनवद् ध्रुवम्।
मान्यं तयाथ प्रत्यादैर्यदि ताभ्यां कृतस्त्वसौ ॥११६६॥
भवेत्संपत्तिलाभाय पारस्परिकनिर्णयः।
परं स स्वीयलाभार्थं कृतो नो मान्यतामियात् ॥११६७॥

वह विधवा संपत्ति के मुकद्दमे में आपस में निर्णय (compromise) कर सकती है और उसके लिए जो डिग्री हो, वह भी यहां पर, यदि उन दोनों (अभियोगकर्ता और स्त्री) के द्वारा किया वह आपस का निर्णय संपत्ति के लाभ के लिए हो, तो राजा के निर्णय से (मुकद्दमे के) अन्त में दी हुई डिग्री के समान ही उस (स्त्री) के द्वारा और प्रत्यादों के द्वारा मान्य होती है। परन्तु वही (आपस का निर्णय) अपने लाभ के लिए किया हो, तो मान्य नहीं होता।

नासौ संपत्तिलाभाय निर्णयस्तु तयोरिह।
इत्येवमभियुञ्जानः प्रत्यादस्तत्प्रमाणयेत् ॥११६८॥

उन दोनों का यह निर्णय यहां पर संपत्ति के लाभ के लिए नहीं है—इस प्रकार का अभियोग लगाता हुआ प्रत्याद (ही), इस बात को सिद्ध (भी) करे।

यत्राऽभियुक्ता नेदिष्ठप्रत्यादेनाऽथवा पुनः।
पतिदायाप्तवित्तार्थं तत्र यो निर्णयोऽन्तिमः ॥११६९॥
स एवापरप्रत्यादकृते मान्योऽभियोजने।
पूर्वापरौ तु प्रत्यादावसंबद्धावपीह चेत् ॥११७०॥

फिर जहां पर नजदीकी प्रत्याद ने पति से दाय में पाई संपत्ति के लिए विधवा पर मुकद्दमा चलाया हो, वहां पर जो अन्तिम निर्णय हो, वही मुकद्दमा करने पर दूसरे प्रत्याद के लिए भी मान्य होता है। यदि पहला और दूसरा प्रत्याद आपस में संबद्ध न भी हों। (अर्थात्-दूसरा प्रत्याद पहले प्रत्याद के द्वारा हकदार न भी हो, तब भी वह पहला निर्णय उसको मानना होता है)।

विधवापतिदायाप्ते वित्ते तस्याः प्रमादतः।
द्वादशाब्दान्तमथवाऽधिककालं ततोऽपि यः ॥११७१॥
अविच्छिन्नाऽधिकारं स्वं रक्षन् प्राप्तो भवेद् ध्रुवम्।
प्रतिकूलोऽधिकारो हि तस्मिन्नत्र स न क्षमः ॥११७२॥
तस्या नेदिष्ठप्रत्यादं तदन्तेऽर्थाधिकारतः।
नूनं वञ्चयितुं, शक्तः प्रत्यादस्त्वत्र तद्ग्रहे ॥११७३॥
द्वादशाब्दं स्थिरे तस्मिन्विधवामरणात्पुनः।
षडब्दमस्थिरे तस्मिन्नवधेस्तु विधानतः ॥११७४॥

विधवा द्वारा दाय में पाये पति के धन पर उस (विधवा) की, लापरवाही से बारह बरस तक या उससे भी अधिक समय तक अपना लगातार अधिकार रखते हुए (पुरुष ने) उस (धन) पर, निश्चय रूप से, जो प्रतिकूल अधिकार (adverse possession) प्राप्त कर लिया हो, वह (अधिकार), यहां पर, उस (स्त्री) के मरने पर उसके नजदीकी प्रत्याद को धन के अधिकार से निश्चय ही वञ्चित नहीं कर सकता। ऐसे स्थान पर प्रत्याद अवधि के कानून (The Indian Limitation Act 1908) से, उस (धन) के स्थिर (संपत्ति) होने पर विधवा के मरने से बारह वर्ष तक और उसके अस्थिर (संपत्ति) होने पर छ वर्ष तक उसे ले सकता है।

परं चेच्छासनं प्राप्तं तस्यां सत्यां हि वादिना।
प्रतिकूलाधिकारस्याधारेणैवात्र संपदि ॥११७५॥
स्वस्वाम्यार्थं तदा नैव प्रत्यादस्तु क्षमो भवेत्।
विधवान्तेऽपि तद्वित्तं प्रत्यादातुं कथञ्चन ॥११७६॥

परन्तु यदि उस (विधवा) की मौजूदगी में ही वादी ने प्रतिकूल अधिकार (adverse possession) के आधार पर ही, यहां पर, संपत्ति पर अपने अधिकार के लिए डिग्री पाली हो, तो प्रत्याद विधवा के मरने पर भी किसी तरह उस धन को पीछा लेने में समर्थ नहीं होता।

विधवाभिः परिमितस्वाम्याभिरपराभिर्वा स्त्रीभिरनधिकारं कृतानां कर्मणां प्रतीकाराः।

विधवाओं या परिमित अधिकार वाली अन्य स्त्रियों द्वारा विना अधिकार के किये कार्यों का इलाज।

प्रत्यादृस्त्वेन दायार्हो जनः शक्तोऽभियोजने।
विधवां वा परिमितस्वाम्यां नारीं सुनिश्चितम् ॥११७७॥
अर्थरक्षाकृते, येन न स्यादर्थविघातनम्।
तद्भोगसमयेऽतश्च शक्तः सोऽत्राऽभियोगतः ॥११७८॥

स्त्रियं वारयितुं त्वेनामर्थोऽपव्ययनस्तथा ।
वित्तस्य हानितो नूनं भूत्वा प्रतिनिधिः स्वयम् ॥११७६॥
प्रत्यादानां तु सर्वेषां यतोऽक्षुण्णा हि संपदः ।
प्रत्यादांस्तांस्तु गच्छेयुर्येऽर्हाः प्राप्तुं विधानतः ॥११८०॥

प्रत्याद होने से दाय पाने योग्य पुरुष (reversionary heir) संपत्ति की रक्षा के लिए विधवा या परिमित अधिकार वाली स्त्री पर मुकद्दमा चला सकता है जिस से कि उसके भोग (अधिकार) के समय संपत्ति का नाश न हो । तथा इसी से वह, यहां पर स्वयं सारे ही प्रत्यादों का प्रतिनिधि बन कर, मुकद्दमे के द्वारा उस (ऊपर कही) स्त्री को संपत्ति की फजूल खर्ची (waste) से और संपत्ति की हानि (injury) से रोक सकता है, जिससे कि बिना नष्ट हुई (unimpaired) संपत्ति उन सारे ही प्रत्यादों को मिल सके, जो कि कानून से उसके पाने योग्य हों ।

शक्तश्चाऽपि स तेनैवाऽभियोक्तुं शासनाय ताम् ।
प्रत्यादांश्चैव बध्नीयात्तत्कृतोऽर्थव्ययो यतः ॥११८१॥

और वह उसी कारण से उस स्त्री पर आज्ञा (declaration) के लिए मुकद्दमा कर सकता है, जिससे कि उसका किया संपत्ति का खर्च (alienation) प्रत्यादों को न बांध सके ।

शासनायाऽभियुज्यैनां प्रत्यादो म्रियते तदा ।
तत्र नेदिष्ठप्रत्यादः शक्तो न तु मृतात्परः ॥११८२॥

यदि (उपर्युक्त) आज्ञा (declaration) के लिए इस (स्त्री) पर मुकद्दमा चलाकर प्रत्याद मर जाय, तो वहां पर (उस मुकद्दमे में) नजदीकी प्रत्याद (ही) समर्थ होता है (हक पाता है), मरने वाले (प्रत्याद) का उत्तराधिकारी नहीं होता ।

मृतार्थाधिपवित्तस्य तत्पत्नीमरणोत्तरम् ।
संभाव्यस्त्वत्र प्रत्यादो नेदिष्ठोऽपि न संमतः ॥११८३॥
क्षमोऽभियुज्यस्वासन्नप्रत्यादत्वविघुष्टये ।
किन्तु नूनं मतः शक्तः प्रतिभूरूपतस्त्वसौ ॥११८४॥
प्रत्यादानां हि सर्वेषामभियोजयितुं स्त्रियम् ।
वक्ष्यमाणेन विधिना संपदो रक्षणाय तु ॥११८५॥

मरे हुए धन के स्वामी के धन का, उसकी स्त्री के मरने पर, यहां पर, संभव होने वाला (expectant) नजदीकी प्रत्याद भी, मुकद्दमा चलाकर अपने नजदीकी प्रत्याद होने की घोषणा के (करवाने के) लिए समर्थ नहीं माना गया है । परन्तु

वह निश्चय ही सब प्रत्यादों के प्रतिनिधिरूप से, आगे कही जाने वाली रीति से, (देखो श्लोक ११९० से १२००) संपत्ति की रक्षा के लिए स्त्री पर मुकद्दमा चलाने में समर्थ माना गया है ।

कृतोऽभियोगः प्रत्यादैर्घोषणार्थं हि यत्र तु ।
यत्स्त्रीकृतो व्ययोऽर्थस्य न तेषां स्वाम्यबाधकः ॥११८६॥
भविता, तत्र तत्पक्ष्या वदेयुश्चेद्यतस्त्विमे ।
यमाश्रित्य वदन्ति स्वं प्रत्यादत्वं जनो न सः ॥११८७॥
आसीत्पुमधिकार्यन्त्यो नूनमस्यास्तु संपदः ।
तस्याः पुंस्वामिनोऽन्त्यस्य प्रत्यादाः स्मो वयं परम् ॥११८८
वादिनां चाभियुक्तानां मिथ इत्थं विरोधने ।
न्यायाधीशैस्तु कर्तव्यः प्राग्विविच्यास्य निर्णयः ॥११८९॥

जहां पर प्रत्यादों ने (इस) घोषणा (declaration) के लिए मुकद्दमा किया हो कि स्त्री (विधवा) का किया धन का खर्च (transaction) उनके अधिकार का बाधक न होगा, वहां पर यदि उस (स्त्री) के पक्षवाले (defendants) कहें कि ये (वादी—plaintiffs जिसका सहारा (रिश्ता) लेकर अपना प्रत्या- दपन प्रकट करते हैं, वह पुरुष, निश्चय ही, इस संपत्ति का अन्तिम पुरुष अधिकारी नहीं था । परन्तु उस (संपत्ति) के अन्तिम पुरुष स्वामी के प्रत्याद हम हैं । इस प्रकार वादियों (plaintiffs) और अभियुक्तों (defendants) के आपस में विरोध करने पर न्यायाधीशों को पहले विचार कर इस (झगड़े) का निर्णय करना चाहिए ।

मितस्वाम्याथ विधवा यत्र दायाप्तसंपदः ।
अपव्ययमथाप्यन्यत्कर्म वर्ज्यं करोति हि ॥११९०॥
प्रत्यादस्य भवेद्धानिर्येन तत्राभियोगतः ।
शक्तो नेदिष्ठप्रत्यादस्ततो वारयितुं हि ताम् ॥११९१॥
परं न्यायालयाधीशैर्वञ्च्यते न प्रबन्धतः ।
सा यावन्नैव विश्वासः संपद्धानेस्तु निश्चितः ॥११९२॥

जहां पर परिमित अधिकार वाली या विधवा स्त्री, दाय में पाई संपत्ति की फजूल खर्ची (waste) या अन्य मना करने लायक कार्य करती है, जिससे कि प्रत्याद की हानि हो, वहां पर नजदीकी प्रत्याद मुकद्दमे द्वारा उसे उस (कार्य) से रोक सकता है । परन्तु जब तक संपत्ति की हानि का निश्चितरूप से विश्वास न हो जाय, तब तक न्यायाधीशों द्वारा वह (स्त्री) प्रबन्ध से वञ्चित नहीं की जाती ।

न्याय्यावश्यकताऽभावे दायार्थो व्ययितस्तथा ।
ऋते नेदिष्ठप्रत्यादसंमत्याऽधवयाऽथवा ॥११९३॥

मितस्वाम्यस्त्रिया वाथ त्यागोऽर्थांशस्य केवलम् ।
निजनेदिष्ठप्रत्यादकृते यत्र कृतस्तया ॥११६४॥
असति न्याय्यकर्मणे व्ययितोऽर्थोऽथवा पुनः ।
क्रेत्रा वाऽननुसंधाय क्रीतं वित्तं छलेन तु ॥११६५॥
तत्र नेदिष्ठप्रत्यादो दैवसादधिकार्यपि ।
घोषणायाभियोक्तुं तां शक्तो यत्तत्कृतो व्ययः ॥११६६॥
तदर्थस्य न प्रत्यादान् भंत्स्यत्यत्र कथञ्चन ।
सिद्धे तदभियोगे तु न्यायेशस्तत्र शासनम् ॥११६७॥
दद्याद्यत्तत्कृतस्त्वेव व्ययः स्त्रीमरणावधि ।
एवं मान्यो न तन्मृत्यौ प्रत्यादं भंत्स्यति ध्रुवम् ॥११६८॥

विधवा ने या परिमित अधिकार वाली स्त्री ने न्याय्य (legal) आवश्यकता के अभाव में या नज़दीकी प्रत्याद की संमति के बिना दाय का धन खर्च कर दिया हो, अथवा जहां पर उसने अपने नज़दीकी प्रत्याद के लिए (दाय--प्राप्त) धन के केवल एक भाग का त्याग (दान-surrender) किया हो, या फिर न्यायकार्य के लिए किये ऋण के न होने पर भी धन खर्च किया हो, अथवा खरीददार ने बिना छान--बीन (reasonable inquiry) के किये ही छल से संपत्ति को खरीद लिया हो, तो वहां पर नज़दीकी प्रत्याद, भाग्य (chance) के अधीन अधिकार (succession) वाला होने पर भी, घोषणा (declaration) के लिए उस (स्त्री) पर मुकद्दमा चला सकता है कि उस (स्त्री) का किया उस धन का खर्च (alienation) यहां पर प्रत्यादों को किसी तरह भी नहीं बांधेगा । उसके अभियोग (इलज़ाम) के सिद्ध हो जाने पर न्यायाधीश वहां पर, डिग्री दे कि उस (स्त्री) का किया यह खर्च स्त्री के मरने तक ही माना जायगा । और उसके मरने पर प्रत्यादों को निश्चय ही नहीं बांधेगा ।

नो बद्धा अत्र प्रत्यादा जीवन्त्यां हि स्त्रियां पुनः ।
घोषणायाभियोगं तु कर्तुं, शक्ताः परन्तु ते ॥११६६॥
ग्राहकं तद्धनस्यैव स्त्रीमृतावभियुज्य हि ।
प्रत्यादातुं स्त्रिया दत्तं धनं नात्रास्ति संशयः ॥१२००॥

फिर यहां पर प्रत्याद लोग स्त्री के जीते जी ही घोषणा के लिए मुकद्दमा चलाने को बँधे नहीं हैं । परन्तु वे स्त्री के मरने पर उस धन के लेनेवाले (alienee) पर मुकद्दमा करके स्त्री के दिये धन को वापस ले सकते हैं । इसमें सन्देह नहीं है ।

मितस्वाम्यस्त्रिया यत्राधवया वा लिपीकृतम् ।
इच्छापत्रं मितस्वाम्यं धनं दातुं न तत्र तु ॥१२०१॥

तस्याऽमान्यत्वघोषायाऽभियोगस्य प्रयोजनम्।
अतो न शासनं देयं तत्र न्यायाधिपैर्ध्रुवम् ॥१२०२॥

जहां पर परिमित अधिकार वाली स्त्री ने या विधवा ने परिमित अधिकार वाला धन देने के लिए इच्छापत्र लिख दिया हो, वहां पर उस (इच्छापत्र) की अमान्यता की घोषणा (declaration) के लिए मुकद्दमे का प्रयोजन नहीं है। इसलिए वहां पर, निश्चय ही, न्यायाधीशों को घोषणा की आज्ञा नहीं देनी चाहिए।

तस्यानेदिष्ठप्रत्याद एव शक्तोऽभियोजने।
मुख्यत्वेन, न शक्ता स्तत्कृतेऽन्ये, किन्तु यत्र सः ॥१२०३॥
अभियोगाय नो सज्जो विना पर्याप्तकारणम्।
सङ्गतो वञ्चनायां वा मितस्वाम्यस्त्रियाऽथवा ॥१२०४॥
तदर्थं वा निषिद्धः स्वाचारेणाथ स्वकर्मणा।
निर्धनत्वेन वाऽशक्तस्तत्राऽन्येऽपि क्षमा मताः ॥१२०५॥

उस (स्त्री) का नज़दीकी प्रत्याद ही मुख्य होने से (उस पर) मुकद्दमा चला सकता है। उसके लिए दूसरे (प्रत्याद) समर्थ नहीं होते। परन्तु जहां पर वह (नज़दीकी प्रत्याद) बिना पूरे कारण के ही मुकद्दमे के लिए तैयार न हो, या ठगाई करने में अथवा परिमित अधिकार वाली (उस) स्त्री के साथ मिल गया हो अथवा अपने आचार (conduct) या काम (act) के कारण उस मुकद्दमे के लिए निषिद्ध (preclude) कर दिया गया हो, या निर्धन होने से समर्थ न हो, वहां पर, दूसरे (प्रत्याद) भी समर्थ माने गये हैं।

वङ्गीया द्राविडाश्चाथ मैथिलास्तु नयाधिपाः।
स्त्रिया मिताधिकारिण्याः प्रत्यादत्वेऽन्तिके सति ॥१२०६॥
क्षमानन्यांस्तु प्रत्यादान्मन्यन्तेऽत्राभियोजने।
प्रयागीया नयाधीशा गृह्णन्त्येतन्मतं क्वचित् ॥१२०७॥
क्वचिन्मिताधिकारिण्यास्तस्यापक्षे हि साधिते।
अर्थापव्ययसक्तायां स्त्रियां गृह्णन्ति तत्पुनः ॥१२०८॥

बंगाल, के मद्रास के और बिहार (पटना) के न्यायाधीश परिमित अधिकार वाली स्त्री के नज़दीकी प्रत्याद होने पर दूसरे प्रत्यादों को (भी) यहां पर (ऐसे स्थान पर) मुकद्दमा चलाने में समर्थ मानते हैं।

प्रयाग (इलाहाबाद) के न्यायाधीश कहीं इस मत को मानते हैं और कहीं उस मिताधिकार वाली (नज़दीकी प्रत्याद) स्त्री के धन को फ़ज़ूल खर्च करने में लगी स्त्री (मौजूदा धन की स्वामिनी) में (के प्रति) पक्षपात (collusion) के सिद्ध कर देने पर उस (उपर्युक्त मत) को ग्रहण करते हैं।

यत्रावयःस्थो नेदिष्ठप्रत्यादस्तत्र स क्षमः ।
तत्कृते निजपक्षीयद्वारेणैवाऽ परस्तु नो ॥१२०६॥

जहां पर नजदीकी प्रत्याद नाबालिग हो, वहां पर वह उस (मुकद्दमे) के लिए अपने पक्षवाले (next friend) के द्वारा ही समर्थ होता है । दूसरा (दूर का प्रत्याद) समर्थ नहीं होता ।

मिताधिकृतया वाथाऽ धवयाऽर्थव्यये कृते ।
आद्वादशाब्दमेवात्र तद्दिनात्त् क्षमोभवेत् ॥१२१०॥
प्रत्यादस्त्वभियोक्तुं हि राजघोषाय यत्र सः ।
व्ययः स्त्रियान्ते प्रत्यादस्वाम्यबाधां करिष्यति ॥१२११॥
अत्रावधिविधानस्य पञ्चद्वयं काङ्कधारया ।
निश्चितस्त्ववधिनूनं न्यायशास्त्रविशारदैः ॥१२१२॥

परिमित अधिकार वाली या विधवा स्त्री के धन को खर्च करने पर, यहां पर, उस दिन से बारह वर्ष तक ही प्रत्याद राजघोषणा के लिए, कि वह खर्च स्त्री के मरने पर प्रत्याद के अधिकार की बाधा नहीं करेगा, मुकद्दमा चलाने में समर्थ होता है। यहां पर न्यायशास्त्र के विद्वानों ने अवधि के कानून (The Indian Limitation Act, 1908) की १२५ वीं धारा से, निश्चय ही, अवधि का निर्णय किया है ।

परमार्येषु प्रत्यादो मिताधिकृतया कृते ।
परहस्तप्रदानेन मृतिपत्रेण वा पुनः ॥१२१३॥
दानेनार्थव्यये यस्तु करोत्यत्र सुनिश्चितम् ।
घोषणायाभियोगं यत् तत्कृतोक्तव्ययो नहि ॥१२१४॥
तत्स्वाम्ये बाधकः सोत्र वित्तपुंस्वामिनो ध्रुवम् ।
अन्त्यस्यैव हि प्रत्यादो भूत्वा गृह्णाति तद्धनम् ॥१२१५॥
इति येषां मतं तैस्तु प्रयुक्ता तद्विधानगा ।
सविंशतिशताङ्कीया धारा तत्र न संशयः ॥१२१६॥

परन्तु हिन्दुओं में परिमित अधिकार वाली स्त्री के दूसरे के हाथ में देने (transfer) के द्वारा या फिर मृति-पत्र (bequest) के द्वारा अथवा दान के द्वारा धन को खर्च करने पर जो प्रत्याद यहां पर, निश्चय ही, घोषणा के लिए कि उस (स्त्री) का किया वह खर्च उस (प्रत्याद) के स्वाम्य का बाधक नहीं होगा, मुकद्दमा चलता है, वह (प्रत्याद) यहां पर, निश्चय ही, उस धन के अन्तिम पुरुष स्वामी का प्रत्याद होकर ही उस धन को लेता है, ऐसा जिनका मत है, उन्होंने यहां पर उस कानून (The Indian Limitation Act) की १२० वीं धारा का ही प्रयोग किया है । इसमें सन्देह नहीं है ।

घोषायात्राभियोगस्तु प्रातिनिध्येन संमतः।
प्रत्यादानां तु सर्वेषां सतां तत्समयेऽथवा ॥१२१७॥
भविष्यतां तदन्ते तु तथा सर्वेऽपि ते पुनः।
समाश्रित्य स्थिता हेतुमेकं, यस्य समुद्भवः ॥१२१८॥
जायतेऽर्थव्ययस्यैव दिवसात्तेन निश्चितम्।
आ द्वादशाब्दमेवात्र नाभियोगस्तु चेत्कृतः ॥१२१९॥
वर्तमानैर्हि प्रत्यादैस्तर्हि ते तत्र न क्षमाः।
तदन्ते जातप्रत्यादैः सममेवाभियोजने ॥१२२०॥

यहां पर घोषणा (declaration) के लिए किया जानेवाला मुकद्दमा उस समय मौजूद रहे या उसके बाद होनेवाले सारे ही प्रत्यादों के प्रतिनिधित्व से माना गया है। और फिर वे सब एक ही प्रयोजन (cause) को लेकर स्थित होते हैं, जिसकी उत्पत्ति धनके खर्च करने के दिन से ही हो जाती है। इसलिए, निश्चय ही यदि वर्तमान प्रत्यादों ने (उस दिन से) बारह वर्ष तक मुकद्दमा नहीं किया हो. तो वे उसके बाद उत्पन्न हुए प्रत्यादों के साथ ही, वहां पर, मुकद्दमा चलाने में समर्थ नहीं होते। (अर्थात्–वहां पर अवधि के कानून से उनका अधिकार नष्ट हो जाता है।)

वङ्गीयैर्न्यायिमुख्यैस्तु निश्चितं यद्धि तद्विधिः।
नूनं नेदिष्ठप्रत्यादं बाधते किन्तु बाधते ॥१२२१॥
दैवायत्तं न प्रत्यादं तस्माद्यत्र तु नो कनी।
अभियुङ्क्ते क्षमस्तत्र तत्स्वस्त्रीयस्तदुत्तरः ॥१२२२॥

बंगाल हाइकोर्ट के जजोंने निश्चित किया है कि वह कानून (The Indian Limitation Act) निश्चय रूप से, नजदीकी प्रत्याद को बाधा पहुँचाता है। परन्तु दैव से होने वाले (contingent) प्रत्याद को बाधा नहीं देता। इसलिए जहां पर कन्या (घोषणा के लिए) मुकद्दमा न करे, वहां पर उसका उत्तराधिकारी उसका भानजा (मुकद्दमा करने में) समर्थ होता है।

मितस्वाम्यस्त्रिया मृत्यावधवाया मृतौ तथा।
स्युर्दायार्हास्तु प्रत्यादा ये ते तन्मरणोत्तरम् ॥१२२३॥
आद्वादशाब्दमेवात्र समर्था अभियोजने।
तद्दत्तस्य स्थिरार्थस्य ग्राहकं तद्ग्रहाय तु ॥१२२४॥
स्त्रीदत्तेऽर्थेऽस्थिरे किन्तु षडब्दान्तं हि ते क्षमाः।
अभियोक्तुं ग्रहीतारं प्रत्यादानाय तस्य तु ॥१२२५॥

परिमित अधिकार वाली स्त्री के मरने पर या विधवा के मरने पर जो दाय-धन

पाने योग्य प्रत्याद होते हैं, वे यहां पर, उस (स्त्री) के मरने पर, बारह वर्ष तक ही, उसके दिये स्थिर धन को लेने वाले पर उस (धन) को (वापस) लेने के लिए, मुकद्दमा चला सकते हैं। परन्तु स्त्री के दिये अस्थिर धन में वे, छ वर्ष तक ही, लेनेवाले पर उसके वापस लेने के लिए मुकद्दमा कर सकते हैं

यत्र नेदिष्ठप्रत्यादो मितस्वाम्यां स्त्रियं तथा ।
विधवामथ तद्दत्तवित्तस्य ग्राहकं जनम् ॥१२२६॥
अभियुङ्क्ते हि घोषाय यत्तया विहितो व्ययः ।
दायाप्तसंपदो नूनं प्रत्यादान्नैव भंत्स्यति ॥१२२७॥
प्रत्यादानां हि सर्वेषां प्रातिनिध्येन स स्मृतः ।
अभियोगस्तथा तत्र प्रदत्तं राजशासनम् ॥१२२८॥
प्रति नेदिष्ठप्रत्यादमभितं वा सुनिश्चितम् ।
बध्नाति सर्वप्रत्यादांस्तथा वित्तस्य हारकम् ॥१२२९॥
तथैव तत्प्रतिनिधीन् पुनश्चैव विधिर्मतः ।
तत्र यत्रोत्तमर्णेनाभियुक्ताऽर्णस्य शुद्धये ॥१२३०॥
विधवाथ च संप्राप्तं शासनं प्राक्ततो धनम् ।
गृहीतं पतिदायाप्तं तस्या अन्तेऽभियोजितः ॥१२३१॥
स प्रत्यादेन तद्वित्तमोक्षार्थमथ साधितम् ।
न्याय्यावश्यकताऽभावे कृतं यत्तदृणं तया ॥१२३२॥
तत्स्वाम्यबाधकं नातो भवितेति त्वलं भवेत् ।
न तद्घोषाय चान्यस्याभियोगस्य प्रयोजनम् ॥१२३३॥

जहां पर नजदीकी प्रत्याद परिमित अधिकार वाली स्त्री पर या विधवा पर तथा उसके दिये धन को लेनेवाले पुरुष (alienee) पर घोषणा (declaration) के लिए मुकद्दमा चलाता है कि उस (स्त्री) का किया दाय में पाई संपत्ति का खर्च (alienation) प्रत्यादों को नहीं बांधेगा, (वहां पर) वह मुकद्दमा सब प्रत्यादों के प्रतिनिधित्व (representative के रूप) से माना जाता है और वहां पर नजदीकी प्रत्याद के विरुद्ध या उसके पक्ष में, निश्चितरूप से, (properly) दी गई डिग्री (decree) सब प्रत्यादों को और धन के लेनेवाले (alienee) तथा उसके प्रतिनिधियों को बांध लेती है। फिर यह रीति (principle) वहां पर भी मानी गई है, जहां पर कर्ज देनेवाले ने (अपना) कर्ज वसूल करने के लिए विधवा पर मुकद्दमा चलाकर पहले डिग्री पा ली हो और फिर उसका पति के दाय में पाया धन ले लिया (attached कर लिया) हो तथा बाद में (उस स्त्री के) प्रत्याद ने उस धनको छुड़वाने के लिए उस (डिग्रीदार) पर मुकद्दमा चलाया हो और वह सिद्ध

कर दिया हो कि उस (स्त्री) ने वह कर्जा विना न्याय्य आवश्यकता के किया था इसलिए उस (प्रत्याद) के अधिकार का बाधक नहीं हो सकता, तो इतना ही पर्याप्त होगा। इस बात की घोषणा के लिए दूसरे (fresh) मुकद्दमे की आवश्यकता नहीं होती है।

पुनर्मिताधिकारिण्याऽधवया वा धृतं धनम्।
दायप्राप्तं मितस्वाम्यं परित्यज्याऽपरं तु यत् ॥१२३४॥
द्वादशाब्दान्तमथवाऽधिककालं ततोऽपि वा।
प्रतिकूलाधिकृत्याहि तस्मिंस्तत्स्त्रीधनं स्त्रियाः ॥१२३५॥
इच्छापत्रेण तद्दातुं शक्ता लेखेन वाऽत्र सा।
अदत्तं तु तदन्ते तद् याति तत्स्त्रीधनोत्तरान् ॥१२३६॥

फिर परिमित अधिकार वाली स्त्री ने या विधवा ने दाय में पाये परिमित अधिकार वाले धन को छोड़कर जो दूसरा धन बारह वर्ष तक या इससे भी अधिक समय तक धारण किया (अधिकार में रक्खा) हो, उस में प्रतिकूलाधिकार (adverse possession) हो जाने से वह (उस) स्त्री का स्त्री-धन हो जाता है। वह यहां पर उस (धन) को इच्छापत्र (will) द्वारा या लेख (deed) द्वारा दे सकती है। और उस (स्त्री) के मरने पर नहीं दिया हुआ वह (धन) उस (स्त्री) के स्त्री-धन के उत्तराधिकारियों को मिलता है।

प्रातिनिध्येन पत्युर्हि संपत्तेस्तद्धनं यदि।
धृतं तया न चात्मीयाधिकारेणात्र तर्हि तु ॥१२३७॥
प्रतिकूलाधिकृत्यापि न तस्याः स्त्रीधनं हि तत्।
तत्तु तत्पतिवित्तस्य वृद्धिरूपेण संमतम् ॥१२३८॥
तत्रास्या विधवाप्राप्यं मितस्वाम्यं हि केवलम्।
भवेत्तन्मरणे चैतद्याति तद्भर्तुरुत्तरान् ॥१२३९॥
अतो यत्राधवा भर्तुर्दायप्राप्तं धनं पुनः।
भुञ्जानैव पुनर्भूत्वं प्राप्य स्वाम्याच्च्युता भवेत् ॥१२४०॥
परं साऽविकृतं स्वाम्यमविच्छिन्नं च तद्धने।
धारयेत् खलु तत्रापि मितस्वाम्यैव सा मता ॥१२४१॥

यदि उस (स्त्री) ने पति की संपत्ति की प्रतिनिधि के रूप से वह धन धारण किया हो (अधिकार में रक्खा हो) और अपने निज के अधिकार से नहीं, तो वहां पर प्रतिकूलाधिकृति (बारह वर्ष तक रखने से उत्पन्न हुए अधिकार के) होने से भी वह उसका स्त्री-धन नहीं होता। वह तो उस (स्त्री) के पति के धन का ही बढ़ा हुआ रूप माना गया है। उस (धन) पर उस (स्त्री) का विधवा द्वारा प्राप्त किया-

जानेवाला केवल परिमित अधिकार ही होता है और उस (स्त्री) के मरने पर वह (धन) उसके पति के उत्तराधिकारियों को मिलता है । इसलिए जहां पर विधवा पति के दाय में पाये धन को भोगती हुई फिर से दूसरा विवाह करके (उस धन पर के) अधिकार से गिर जाय, परन्तु (फिर भी) वह उस धन पर पहले जैसा ही और लगातार अधिकार रक्खे, वहां पर भी निश्चय ही व परिमित अधिकार वाली ही मानी गई है ।

सति पुत्रे मृते पत्यौ नूनं पूर्णाधिकारतः ।
भर्तृवित्तं धरेद्यत्राधवा तत्र तु तद्भवेत् ॥१२४२॥
प्रतिकूलाधिकारेण तस्याः स्त्रीधनमेव हि ।
यतो न्यायेन तत्र स्यात्सा भृत्यर्हैव केवलम् ॥१२४३॥
परं ग्रहणकाले चेत्तया स्पष्टीकृतं भवेत् ।
मिताधिकारं ग्रहणं तस्य तर्हि न तत्तथा ॥१२४४॥

जहां पर विधवा स्त्री, पुत्र के विद्यमान होने और पति के मरने पर, निश्चय ही, पति के धन को पूर्ण अधिकार से (अपने पास) रक्खे, वहां पर तो वह (धन) प्रतिकूलाधिकार के कारण उस स्त्री का स्त्री-धन ही हो जाता है; क्योंकि न्याय से ऐसे स्थान पर (अर्थात्-जहां पुत्र जीता हो) वह (विधवा) स्त्री भरण--पोषण की ही हकदार होती है । परन्तु (अधिकार में) लेने के समय यदि उस (विधवा) ने उस (धन) का परिमित अधिकार से लेना प्रकट कर दिया हो, तो वह (धन) वैसा (स्त्री-धन) नहीं होता ।

मिताक्षरानुगस्यात्र श्लिष्टवंशस्य याऽधवा ।
अङ्गभूता धरेद् भागं स्वाधिकारे तु संपदः ॥१२४५॥
तत्संश्लिष्टकुटुम्बस्य द्वादशाब्दमथाधिकम् ।
कालं यथा हि तत्रापि भागोऽसौ स्यात्पृथक् कृतः॥१२४६॥
सातत्येन तु भुञ्जाना सा स्थिता तं यथेप्सितम् ।
कुटुम्बिनां परेषां तु नाशयेदधिकारिताम् ॥१२४७॥
यतः श्लिष्टेषु कस्यापि मरणे श्लिष्टसंपदा ।
याति श्लिष्टावशिष्टेषु नूनं श्लिष्टावशिष्टितः ॥१२४८॥
भृत्यर्हा विधवा तत्र नांशार्हा तु कदाचन ।
श्लिष्टार्थांशाधिकारः प्रागुक्तस्तस्या न तत्र चेत् ॥१२४९॥
भृत्यर्थं समयं कृत्वा दत्तस्तर्हि सुनिश्चितम् ।
भवेत्कालेन सा तत्र प्रतिकूलाधिकारिणी ॥१२५०॥
परं सा देवरैः सार्धं विधाय समयं यदि ।
प्राप्नोति संपदः स्वाम्यं मितं तत्र तु न क्षमा ॥१२५१॥

पूर्णं स्वाम्यं समादातुं स्वैः कार्यैर्वचनैस्तथा।
अपूर्णमेव तस्याः स्यात्तत्र स्वाम्यं सुनिश्चितम् ॥१२५२॥

यहां पर मिताक्षरा को माननेवाले साझे के कुटुम्ब की अङ्गभूत जो विधवा उस साझे के कुटुम्ब की संपत्ति का एक भाग, बारह वर्ष तक या उससे अधिक समय तक, अपने अधिकार में रक्खे—जैसे यह भाग उसके नाम पर अलग कर दिया गया हो और वह (स्त्री) उसको इच्छानुसार लगातार भोगती रही हो, तो (वह) दूसरे कुटुम्बवालों के (उस पर के) अधिकार को नष्ट कर देती है। क्योंकि साझेवालों में किसी के मरने पर 'साझे में पीछे रहे के न्याय' से वहां पर साझे का धन साझे में बचे हुए पुरुषों को मिलता है और विधवा भरण-पोषण पाने के योग्य ही होती है। कभी भी हिस्सा पाने योग्य नहीं होती। यदि वहां पर उस (विधवा) का पहले कहा हुआ साझे के धन के एक भाग पर का अधिकार भरण-पोषण की शर्त करके नहीं दिया गया हो, तो निश्चय ही, वह समय के कारण (बारह वर्षों के बाद) उस (धन) पर प्रतिकूलाधिकारवाली हो जाती है। परन्तु यदि वह (विधवा) देवरों (पति के भाइयों) के साथ शर्त कर के संपत्ति का परिमित अधिकार प्राप्त करती है, तो वहां पर वह अपने कार्यों से या कह देने से पूर्ण अधिकार प्राप्त करने में समर्थ नहीं होती। वहां पर उसका अधिकार निश्चितरूप से अधूरा (परिमित) है।

१२ मिताक्षरामते संसृष्टिनः संसृष्टार्थः

मिताक्षरा के मत में साझेदार और साझे का ध

संसृष्टा जन

साझेदार लोक।

पारम्पर्यात्समुत्पन्ना एकपूर्वजवंशजाः।
सपत्नीकाः कुमारीभिर्युक्ताः संयुक्तवंशकाः ॥१२५३॥

क्रम-क्रम से उत्पन्न हुए एक (ही) पूर्वज के वंशज, अपनी स्त्रियों और क्वांरी कन्याओं सहित, संयुक्त कुटुम्बवाले माने गये हैं।

आर्येषु जन्मजैवाऽस्ति नूनं युक्तकुटुम्बता।
विवाहोर्ध्वं कुमार्यः स्युः संयुक्ताः पत्युरन्वये ॥१२५४॥

आर्य लोगों में जन्म से ही उत्पन्न होनेवाला संयुक्त (साझे का) कुटुम्ब Joint family) पना होता है। कन्यायें विवाह के बाद पति के कुल में संयुक्त जाती हैं।

संयुक्तार्थस्य वाऽपेता संयुक्तेषु मता बुधैः।
सत्यर्थे तद्विभागात्तु संयुक्तत्वं प्रणश्यति ॥१२५५॥

विद्वानों ने संयुक्त कुटुम्बवालों में संयुक्त धन की जरूरत नहीं मानी है। परन्तु (संयुक्त) धन के होने की अवस्था में उसके बांट लेने से साझेदारी (संयुक्त कुटुम्बता) नष्ट हो जाती है।

नाऽसंयुक्तास्तु विच्छेदात् केवलं भोजनार्चयोः ।
वियुक्तास्ते तु विज्ञेयाः संयुक्ताऽर्थविभागतः ॥१२५६॥

केवल भोजन और पूजन के भिन्न-भिन्न हो जाने से संयुक्त-कुटुम्बता नष्ट नहीं होती है। उनको तो संयुक्त धन के बांट ने से ही जुदा जानना चाहिए।

संसृष्टास्तेऽत्र विज्ञेया जन्मनैवाधिकारिताम् ।
संयुक्ते वाथ संसृष्टे द्रविणे प्राप्नुवन्ति ये ॥१२५७॥

यहां पर साझेदार (coparceners) उनको जानना चाहिए, जो जन्म से ही संयुक्त (joint) या साझे (coparcenary) के धन में अधिकार पा लेते हैं।

पित्र्यपैतामहे वाऽथ प्रपितामहके धने ।
पुत्रपौत्रप्रपौत्राणां संसृष्टिर्जन्मतो यथा ॥१२५८॥

जैसे पिता, दादा या फिर परदादा के धन में लड़कों, पोतों और परपोतों का जन्म से ही साझा होता है।

एकपुंपूर्वजोत्पन्नाः पुत्रपौत्रप्रपौत्रकाः ।
संसृष्टाः पूर्वजान्ते तु त एव समशाखिनः ॥१२५९॥

एक ही पुरुष-पूर्वज से उत्पन्न हुए बेटे, पोते और परपोते साझेदार (coparceners) होते हैं। तथा (उस) पूर्वज (मूल पुरुष) के मरने पर वे ही एक शाखावाले (collatrals) हो जाते हैं। (जैसे चाचा, भतीजे आदि।)

संसृष्टा तु प्रकृत्यैव सृज्यन्ते न्यायनिश्चिताः ।
दत्तत्वेनैव चैकेन परमन्योऽत्र युज्यते ॥१२६०॥

कानून से निश्चित किये साझेदार कुदरत से ही उत्पन्न होते हैं। परन्तु केवल एक गोद के द्वारा ही दूसरा पुरुष इस (साझेदारी) में जोड़ लिया जाता है।

भ्रात्रादिभ्यस्तु लब्धेऽर्थे ते संसृष्टा न जन्मतः ।
स्वमृत्यावेव पुत्राद्यास्तत्र दायहरा यतः ॥१२६१॥

भाई आदि से मिले धन में तो वे जन्म से साझेवाले नहीं होते। क्योंकि वहां पर तो अपनी मृत्यु के बाद ही पुत्र आदि हक पाने वाले माने गये हैं।

संसृष्टिन्यः स्त्रियो नैव संमताः पतिपुत्रयोः ।
विधानोक्तस्तु भेदोऽसौ युक्तसंसृष्टयोः पुनः ॥१२६२॥

स्त्रियां पति और पुत्र की साझेदार नहीं मानी गई हैं और संयुक्तों (joint

Family) वालों और साझेदारों (coparceners) में कानून (law) में कहा गया यही भेद होता है ।

एकपु मूलजा एव संसृष्टाः संमताः परम् ।
तत्पुत्रपौत्रतत्पुत्रावध्येवान्तो न मन्यते ॥१२६३॥
संसृष्टेस्तु, यतः शक्तो यः श्लिष्टार्थविभाजने ।
स तदर्थे तु संसृष्टो मतो न्यायविशारदैः ॥१२६४॥
सा स्थितिश्च तदर्थस्य स्वामिनोऽन्त्यस्य निश्चिता ।
त्रिवंशजान्तमेवातः पुत्राः पौत्राः प्रपौत्रकाः ॥१२६५॥
अर्थेषु स्वामिनोऽन्त्यस्य संसृष्टा न प्रपौत्रजाः ।
परं मृतेऽन्तिमे तस्मिन्नर्थस्वामिनि तत्सुतः ॥१२६६॥
यदा धनाधिपोऽन्त्यः स्यात्तदा सोऽपि प्रपौत्रजः ।
तत्प्रपौत्रतयाऽर्थेऽस्मिन् संसृष्टोऽत्र भवेद् ध्रुवम् ॥१२६७॥

एक मूल पुरुष से उत्पन्न हुए ही साझेदार माने गये हैं । परन्तु साझे का अन्त उस (मूल पुरुष) के बेटों, पोतों और परपोतों तक ही नहीं माना गया है, क्योंकि जो साझे के धन का विभाग करने में समर्थ होता है, कानून जाननेवाले उसे उस धन में साझेदार मानते हैं । यह (बटवारा करवा सकने की) स्थिति उस धन के अन्तिम स्वामी की तीन पीढ़ी तक ही निश्चित की गई है । इसलिए धन के अन्तिम पुरुष-स्वामी के बेटे, पोते और परपोते साझेदार होते हैं, परपोते के पुत्र नहीं । परन्तु उस धन के अन्तिम स्वामी के मरने पर जब उसका पुत्र धन का अन्तिम स्वामी हो जाता है, तब वह (पहले कहा) परपोते का पुत्र उसका परपोता होने से इस धन में निश्चय ही साझेदार हो जाता है ।

पिण्डान्यत्र प्रयच्छन्ति धनेशायान्तिमाय ये ।
त एव पैतृके तस्य संसृष्टा जन्मना पुनः ॥१२६८॥

फिर संसार में जो धन के अन्तिम स्वामी को पिण्ड देते हैं, वे ही उसके पिता से मिले धन में जन्म से साझेदार होते हैं ।

तथा प्रपौत्रपुत्रास्तु स्वे वृद्धप्रपितामहे ।
विद्यमाने न संसृष्टास्तद्धने स्युः कदाचन ॥१२६९॥

और परपोते के पुत्र अपने परपरदादा के जीवित होने पर उसके धन में कभी साझेदार नहीं होते ।

स्वपूर्वजत्रये नष्टेऽन्ते वृद्धप्रपितामहः ।
पितृव्यादिषु चाऽन्येषु जीवत्स्वत्र म्रियेत चेत् ॥१२७०॥
अपिण्डदाः प्रपौत्रस्य पुत्रा नो दायभागिनः ।
पिण्डदा एव दायार्हाः पुत्रपौत्रप्रपौत्रकाः ॥१२७१॥

अपने तीन पूर्वजों (पिता, दादा और परदादा) के मरने के बाद और अपने दूसरे चाचाओं आदि के मौजूद रहने पर यदि परपरदादा मरे तो पिण्ड नहीं देने-वाले परपोते के लड़के (उसके) धन का हिस्सा नहीं पाते । पिण्ड देनेवाले (उस) मृतक के) बेटे, पोते और परपोते ही धन का हिस्सा पाते हैं ।

मैताक्षरे मते भागः संसृष्टेषु त्वनिश्चितः ।
प्रत्येकस्य न यावत्स्याद्विभागः पितृसंपदः ॥१२७२॥

मिताक्षरा के मत में (जन्म से) साझेवाले प्रत्येक (पुरुष) का भाग तब तक अनिश्चित रहता है, जब तक कि पिता की संपत्ति का बटवारा न हो जाय ।

जन्मजाऽधिकृतिस्तत्र कारणं निजसंततेः ।
दायभागे तु पित्रन्त एव पुत्रोऽस्ति दायभाक् ॥१२७३॥

उस (अनिश्चितता) में अपनी संतान का जन्म से उत्पन्न होनेवाला अधिकार ही कारण है । परन्तु (बंगाल में प्रचलित) दाय-भाग में तो पिता के बाद ही पुत्र हिस्से का हकदार होता है । (इसलिए उसके मतानुसार हिस्से में अनिश्चितता नहीं रहती ।)

मिताक्षरानुगेष्वत्र संसृष्टा न स्त्रियो मताः ।
पत्यंशे स्वभृतेः स्वार्थं धारयन्त्यपि तद्वधूः ॥१२७४॥
न संसृष्टा भवेत्पत्या माता चापि सुतेन नो ।
कन्यया देवदासी नो मैथिलेष्वप्ययं विधिः ॥१२७५॥

यहां पर मिताक्षरा को माननेवालों में स्त्रियां साझेदार नहीं मानी गई हैं । पति के हिस्से में अपने भरण--पोषण का स्वार्थ रखती हुई भी उसकी पत्नी पति के साथ साझेदार नहीं होती और माता पुत्र के साथ (साझेदार) नहीं होती, तथा लड़की के साथ देवदासी भी (साझेदार) नहीं होती । मिथिलावालों में भी यही नियम है ।

संसृष्टिधनम् ।

साझे का धन ।

मैताक्षरे मते दायो द्विविधः परिकीर्तितः ।
प्रथमोऽप्रतिबन्धश्चाऽपरः सप्रतिबन्धकः ॥११७६॥

मिताक्षरा के मत में दाय (हिस्सा) दो तरह का होता है । पहला बिना रुकावट वाला और दूसरा रुकावट वाला ।

जन्मनैव प्रभुत्वे स्याद्दायस्याऽप्रतिबन्धिता ।
मृतेऽधिकारिणि स्वाम्ये दायस्य प्रतिबन्धिता ॥१२७७॥

जन्म से ही स्वामित्व होने पर हिस्सा बे रुकावटवाला होता है । (धन के पहले) अधिकारी के मरने के बाद अधिकार मिलने पर हिस्सा रुकावटवाला होता है ।

पुत्रपौत्रप्रपौत्रेभ्यः पित्रादीनां धनं ध्रुवम्।
मतमप्रतिबन्धं यज्जन्मना तेऽत्र भागिनः ॥१२७८॥
पुत्रपौत्रप्रपौत्राणामभावे तु मृतस्य यत्।
पित्राभ्रात्रादिभिर्वित्तं प्राप्यते प्रतिबन्धि तत् ॥१२७९॥
अन्ववस्थायिनोऽर्हेयुर्धनमप्रतिबन्धकम्।
स्थित्या दायार्हताप्राप्यं भवेत् सप्रतिबन्धकम् ॥१२८०॥

बेटों, पोतों और परपोतों के लिए पिता आदि (आदि शब्द से दादा और परदादा) का धन, निश्चय ही बिना रुकावटवाला माना गया है; क्योंकि वे जन्म से ही इसमें हिस्सेदार होते हैं। बेटों, पोतों और परपोतों के न होने पर मरे हुए (पुरुष) का जो धन पिता से या भाई आदि से प्राप्त किया जाता है (अर्थात् पिता या भाई आदि को मिलता है), वह रुकावटवाला होता है। बिना रुकावट-वाले धन को (साझे में) पीछे रहनेवाले (survivors) लेते हैं। और रुकावट वाला धन (उस समय की) स्थिति के कारण हुई दाय पाने की हकदारी (succession) से प्राप्त किया जाने योग्य होता है।

वङ्गीये दायभागे तु नार्थस्याऽप्रतिबन्धनम्।
श्लिष्टावशिष्टिस्तत्रापि स्त्रीषु पुत्रीष्वथो मता ॥१२८१॥

बंगाल के दाय-भाग में धन का बिना रुकावटवाला होना नहीं माना गया है। परन्तु पत्नियों और कन्याओं में वहां पर भी साझेदारों में पीछे बच रहने (survivorship) का कायदा माना गया है।

एकाधिकास्तु विधवाः कन्या वा प्राप्नुयुर्धनम्।
संभूय दायतो यत्र तत्रैषातः प्रयुज्यते ॥१२८२॥

इसलिए जहां एक से अधिक विधवायें या (एक से अधिक) कन्यायें साथ-साथ होकर (jointly) दाय (inheritance) से धन पाती हैं, वहां यह (उपर्युक्त श्लिष्टावशिष्टि) काम में ली जाती है।

द्विविधं धनमत्रोक्तं संसृष्टं व्यक्तिगं पुनः।
संसृष्टं पैतृकं स्वीयं संसृष्टैर्वा कृतं तथा ॥१२८३॥
संसृष्टैः पैतृकार्थेनार्जितं संसृष्टमेव तत्।
तस्मिन् श्लिष्टावशिष्ट्यैव स्वाम्यं नार्हतया पुनः ॥१२८४॥
पुत्रपौत्रप्रपौत्राणां तस्मिञ्जन्मनैव भागिता।
व्यक्त्यर्जिते व्यक्तिगे तु तेषां स्वाम्यं मृते प्रभौ ॥१२८५॥

यहां पर धन दो प्रकार का कहा है—साझे का (joint family property) और व्यक्तिगत (seperate property)। साझे का धन बाप, दादा, परदादा से

मिला था साझेदारों ने अपना निज का (धन) वैसा (साझे में) किया होता है । साझेदारों ने बाप, दादा आदि के धन से पैदा किया भी साझे का धन ही होता है । उसमें साझेदारों में पीछे जीते रहने (survivorship) से ही अधिकार मिलता है, हकदारी के योग्य होने (succession) से नहीं । फिर बेटों, पोतों और परपोतों की उसमें जन्म से ही हिस्सेदारी होती है । पुरुष के अपने जुदा तौर से कमाये व्यक्तिगत धन में तो उन (पुत्रादिकों) का (धनके) स्वामी के मरने पर ही अधिकार होता है ।

कुटुम्बार्थमनाश्रित्य संसृष्टै रर्जितं तु यत् ।
तत्रेच्छयैव तेषां स्यान्निर्णयः प्रथयाऽथवा ॥१२८६॥

साझेदारों ने जो धन कुटुम्ब के धन की मदद के विना ही कमाया हो, उसमें उनकी इच्छा से या रिवाज से निर्णय होता है । (अर्थात्–यदि वे चाहें तो उसको कुटुंबका धन मानें और यदि न चाहें तो व्यक्तिगत धन की तरह आपस में बांटलें । परन्तु जहां उनकी इच्छा का प्रमाण न हो, वहां रिवाज के अनुसार किया जाता है । जैसे बंबई-प्रान्त में आज कल वह कुटुम्ब का धन माना जाता है । लाहौर और मद्रास में भी यही रिवाज है ।)

संसृष्टार्थोऽथ संयुक्तकुटुम्बार्थोऽत्र निश्चितम् ।
पर्यायवाचिनावेव शब्दौ ज्ञेयाविमौ बुधैः ॥१२८७॥

विद्वानों को यहां पर, साझे का धन (coparcenary property) और साथ रहे कुटुम्ब का धन (joint family property) इन दोनों शब्दों को, निश्चयरूप से, एक ही अर्थ को प्रकट करनेवाले जानने चाहिए ।

कौटुम्बेऽर्थेऽत्र संसृष्टे सर्वे वै पुंकुटुम्बिनः ।
समवेतहिताश्चान्ते जीविनो ह्यधिकारिणः ॥१२८८॥

साझे के कुटुम्ब के धन में (कुटुम्ब में) उत्पन्न हुए सारे ही पुरुष कुटुम्बी साथ-साथ हकवाले होते हैं और उनमें निश्चय ही 'आखीर में जीवित रहनेवाले अधिकार पाते हैं ।

सपिण्डा एव संसृष्टकुटुम्बा आर्यजातिषु ।
मन्यन्तेऽन्ये तु विज्ञेयाः केवलं सहवासिनः ॥१२८९॥

आर्य जातियों (हिन्दुओं) में (केवल) सपिण्ड (पिण्ड देने और लेनेवाले) ही साझे के कुटुंबवाले माने जाते हैं, दूसरे तो केवल साथ रहनेवाले होते हैं ।

पितृत्रयेतरेभ्योऽत्र प्राप्तं वा स्वार्जितं धनम् ।
चलाऽचलं बुधैर्ज्ञेयं पूर्णस्वाम्यं निजं धनम् ॥१२९०॥

पण्डितों को, पिता, दादा और परदादा को छोड़कर दूसरे से मिला या खुद

का कमाया चल या अचल धन पूर्ण अधिकार वाला अपना (व्यक्तिगत) धन समझना चाहिए ।

तद् दातुं व्ययितुं वाऽपि शक्तः स्वस्येच्छया नरः ।
पुत्रपौत्रप्रपौत्राणां तस्मिन्सत्यत्र नेशता ॥१२६१॥

पुरुष उस (निज के धन) को अपनी इच्छा से (किसी को) देने या खर्च करने में समर्थ होता है । उस (धन के मालिक) की जीवित अवस्था में (उसके) लड़कों, पोतों और परपोतों का उस (धन) पर अधिकार नहीं होता ।

व्यक्तिगार्थाधिपस्यान्ते तन्नो श्लिष्टावशिष्टितः ।
याति, किन्तु प्रयात्येतद् दायार्हत्वेन नृत्तरान् ॥१२६२॥

व्यक्तिगत धन के स्वामी के मरने पर वह (धन) साझे में पीछे जीवित रहने (survivorship) से नहीं प्राप्त होता; किन्तु यह दाय पाने योग्य होने (succession) से उत्तराधिकारियों को मिलता है ।

पितुः पितामहाद्वाथ प्रपितामहतस्तथा ।
पुत्रपौत्रप्रपौत्रैस्तु प्राप्तोऽर्थः पैतृको मतः ॥१२६३॥

पिता, दादा या परदादा से बेटों, पोतों और परपोतों द्वारा पाया धन पैतृक धन माना गया है ।

मिताक्षरानुसारेण पैतृकेऽर्थे मता पुनः ।
पुत्रपौत्रप्रपौत्राणां जन्मनैव तु भागिता ॥१२६४॥

मिताक्षरा के अनुसार बाप, दादा और परदादा के धन में बेटों, पोतों और परपोतों की जन्म से ही हिस्सेदारी होती है ।

सत्सु तेषु तदाऽऽदानकाले जातेषु वा पुनः ।
आदानान्ते जनोऽशक्तो व्ययितुं पैतृकं धनम् ॥१२६५॥

उन (बेटों, पोतों और परपोतों) के उस (धन) के लेने के समय विद्यमान होने पर या फिर लेने के बाद उत्पन्न होने पर वह पुरुष पैतृक धन को खर्च नहीं कर सकता ।

मातामहधनं तस्य दौहित्रैर्यत्र लभ्यते ।
स्वस्रीयैर्मातुलस्याथ तत्र तन्नैव पैतृकम् ॥१२६६॥

जहां पर नाना का धन पोतों को मिलता है और मामा का भानजों को, वहां पर वह पैतृक धन नहीं होता ।

महाराष्ट्रे पितुर्वित्ते कन्या पूर्णाधिकारिणी ।
तदन्ते तत्सुतास्तत्तु हरेयुः स्त्र्यर्थवत्ततः ॥१२६७॥

बंबई में पिता के धन पर कन्या पूर्ण अधिकार वाली होती है, इसलिए उसके बाद उसके पुत्र उस (धन) को स्त्री-धन की तरह लेते हैं ।

पितृव्यतो भ्रातृतश्च मातृतो वा हृतं धनम् ।
कुटुम्बिभ्यस्तथाऽन्येभ्यो व्यक्तिगं परिकीर्तितम् ॥१२६८॥

चाचा से, भाई से या मा से लिया धन अथवा दूसरे कुटुम्बवालों (रिश्तेदारों) से लिया धन व्यक्तिगत (seperate) धन कहा गया है ।

संसृष्टेन हृतो भागः पैतृकार्थविभाजने ।
पुत्रपौत्रप्रपौत्रेभ्यस्तस्य स्यात्पैतृकं धनम् ॥१२६६॥
परमन्यकुटुम्बिभ्यस्तत्तद्व्यक्तिगतं भवेत् ।
अपुत्रे च मृते तस्मिन्दायार्हास्तत्र भागिनः ॥१३००॥

साझेदार (coparcener) ने पैतृक (ancestral) धन के बटवारे में लिया हिस्सा उसके बेटों, पोतों और परपोतों के लिए, पैतृक धन होता है । परन्तु दूसरे कुटुम्बवालों के लिए वह उस (पानेवाले) का व्यक्तिगत धन होता है । तथा उस (पानेवाले) के बिना पुत्र के मरने पर दाय (succession) के योग्य पुरुष उस में हिस्सा लेते हैं ।

पुत्रादीनामभावे चेत् पितुराप्तं व्ययेन्नरः ।
पश्चाज्जातः सुतस्तर्हि न तत्राऽधिकृतिं वहेत् ॥१३०१॥

पुरुष यदि पुत्र आदि (पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र) के न होने पर पिता से मिले (धन) को खर्च करदे, तो पीछे से उत्पन्न हुआ पुत्र उस पर अधिकारी नहीं होता ।

पित्रायत्ते पैतृकेऽर्थे एव तस्याऽधिकारिता ।
प्राप्तं मातृधनं त्वत्र व्यक्तिगं परिकीर्तितम् ॥१३०२॥

पिता के अधिकार में रहे पैतृक (दादा और परदादा के) धन में ही उस (पुत्र) का अधिकार रहता है । मासे मिले मातृ-धन को तो यहां पर (पानेवाले का) व्यक्तिगत धन ही कहा है । (इससे प्रकट होता है कि माता को केवल निर्वाहार्थ दिया धन उसकी मृत्यु के बाद उसके पुत्रों का व्यक्तिगत धन न होकर पैतृक धन ही होता है ।)

पैत्रवित्तविभागान्ते नाऽपुत्रस्याऽपि भागिनः ।
प्राक् संसृष्टा, मृतौ तस्याऽसन्ना एवाऽधिकारिणः ॥१३०३॥

पिता के धन के बांटलेने पर विना पुत्रवाले (पुरुष) के भी पहले के साझेदार हकदार नहीं होते, उसके मरने पर उसके कुटुम्बी ही अधिकारी होते हैं ।

निक्षेपोद्धृतपैत्राऽर्थे पुत्रादीनां समांशिता ।
पैत्रे धने प्रतिक्रीते नो पुत्राद्याः समांशिनः ॥१३०४॥

गिरवी से छुड़ाये पैतृक (बाप, दादा और परदादा) के धन में (अपने) पुत्र

आदि का भी बराबर (साझे का) भाग रहता है। फिर से खरीदे पैतृक धन में पुत्र आदि बराबर के हिस्सेदार (साझेदार) नहीं होते।

इच्छापत्रोपहाराभ्यां पितुर्व्यक्तिगतं धनम्।
लब्धं पुत्रेण चेत्तर्हि तस्य व्यक्तिगतं हि तत् ॥१३०५॥

यदि वसीहत और उपहार (भेंट) के द्वारा पिता का व्यक्तिगत (अपना) धन पुत्र को मिला हो, तो वह उसका व्यक्तिगत धन ही होता है।

वङ्गे तदपि पैत्रं स्यात् पौत्रेभ्यो, द्रविडे पुनः।
अनिश्चितं हि पित्रा चेत् तेभ्यः स्यात् पैत्रमेव तत् ॥१३०६॥

बंगाल में वह उपर्युक्त प्रकार से मिला धन भी पोतों के लिए पैतृक धन हो जाता है। फिर मद्रास में यदि पिता ने (इस प्रकार देते समय उसका व्यक्तिगत धन होना) निश्चित न कर दिया हो, तो उन (पोतों) के लिए वह भी पैतृक (धन) ही होता है। (अर्थात्–वे उस धन में भी अपने पिता के साझेदार होते हैं।)

व्यक्तिगं तन्महाराष्ट्रे पित्रा नो निश्चितं यदि।
तथैव कोशलेऽप्येतन्मतं न्यायविशारदैः ॥१३०७॥
प्रयागे व्यक्तिगं वित्तमेव तत्तु पुनर्मतम्।
मिताक्षरामतं त्वग्रे निर्णयार्थं हि लिख्यते ॥१३०८॥

बंबई में वह (पिता द्वारा इच्छापत्र से दिया गया व्यक्तिगत धन) यदि पिता ने कुछ निश्चय नहीं किया हो, तो व्यक्तिगत धन होता है। इसी प्रकार अवध में भी न्याय के विद्वानों ने यही माना है। फिर इलाहाबाद में उसे व्यक्तिगत धन ही माना है। इसके निर्णय के लिए आगे मिताक्षरा का मत लिखा जाता है।

संसृष्टेन तथाऽन्ययत् पितृवित्तक्षतिं विना।
प्राप्तं स्वयं, तया मित्रोपहारेणाधिसंगतम् ॥१३०९॥
विवाहाप्तं च नादेयं समदायहरैस्तु तत्।
मैताक्षरं मतं त्वेतद् याज्ञवल्क्यप्रवर्तितम् ॥१३१०॥

साझेदार ने, पिता के धन को हानि पहुँचाये विना, जो दूसरा (धन) स्वयं प्राप्त किया हो, या मित्र से उपहार के द्वारा पाया हो, अथवा विवाह में पाया हो, वह साथ-साथ दाय-धन लेनेवालों (co--heirs) द्वारा नहीं लेने लायक होता है।[१] यह मिताक्षरा का मत याज्ञवल्क्य का भी माना हुआ है।

(१) पितृद्रव्याविरोधेन यदन्यत्स्वयमर्जितम्।
मैत्रमौद्वाहिकं चैव दायादानां न तद्भवेत् ॥ ११८ ॥
(व्यवहाराध्यायः; दायविभाग–प्रकरणम्)

संचिते पैत्रवित्ताये तत्क्रीते तस्य साह्यतः।
प्राप्ते तद्विक्रयाप्ते च पुत्रपौत्रप्रपौत्रकाः ॥१३११॥
पश्चाज्जाता अपि सदा पूर्वजातैः समांशिनः।
एतद् मैताक्षरं ज्ञेयं मतं विबुधसंमतम् ॥१३१२॥

बाप-दादाओं के धन की इकट्ठी की हुई आमदनी में तथा उस (बाप-दादा की आमदनी) से खरीदी हुई, उसकी सहायता से मिली और उसके बेचने से मिली संपत्ति में संपत्ति-प्राप्त होने के बाद पैदा हुए लड़के, पोते और परपोते भी पहले उत्पन्न हुए लड़कों, पोतों और परपोतों के बराबर (ही) हकदार होते हैं। यह विद्वानों का माना मिताक्षरा का मत जानना चाहिए।

मिताक्षरानुगेष्वत्र पैतृकेऽर्थे स्थिरास्थिरे।
तातेन समभागी स्याज्जन्मनैव हि नन्दनः ॥१३१३॥

यहां पर मिताक्षरा को माननेवालों में अचल या चल पैतृक धन में जन्म से ही पुत्र पिता के साथ बराबर भाग पानेवाला होता है।

यतः स स्वाधिकारेण तत्र भागहरस्ततः।
यत्र न्यायेन संप्राप्ताधिकारो जनको निजम् ॥१३१४॥
पैतृकार्थस्थितं स्वार्थमपरस्मै समर्पयेत्।
तत्र हानिर्न तत्पुत्रस्वार्थस्य तु कथञ्चन ॥१३१५॥

क्योंकि वह (पुत्र) अपने अधिकार (हक) से वहां पर (पैतृक धन में) भाग लेनेवाला माना गया है। इसलिए जहां पर कानून से अधिकार प्राप्त किया हुआ पिता पैतृक धन में रहे अपने स्वार्थ को दूसरे को दे देता है, वहां पर उसके पुत्र के स्वार्थ की हानि किसी तरह भी नहीं होती।

पैतृकेऽर्थे यथा पुत्रास्तथा पौत्राः प्रपौत्रकाः।
स्वस्वपित्रंशतो भागं लभन्ते नात्र संशयः ॥१३१६॥

पैतृक धन में जिस प्रकार पुत्र उसी प्रकार पोते और परपोते अपने-अपने पिता के हिस्से से भाग पाते हैं। इस में संशय नहीं है।

समांऽशित्वेऽपि किन्त्वेषामुपहर्तुं पिता क्षमः।
पैत्रात् समुचितं भागं न्याय्यकर्तव्यपालने ॥१३१७॥

परन्तु उनके बराबर के हकदार होने पर भी पिता न्याय्य कर्तव्य पालन करने में, बाप-दादाओं की संपत्ति से उचित (मित) भाग भेट में दे सकता है।

कुटुम्बभरणं साह्यं विपत्तावुपदादिकम्।
न्याय्यकर्तव्यमिति तु पितुः शास्त्रविनिश्चितम् ॥१३१८॥

कुटुम्ब का भरण-पोषण, विपत्ति में (उसकी) सहायता और भेट आदि-- यह शास्त्रों में पिता का न्याय्य कर्मतव्य निश्चित किया गया है ।

उपहारं स पुत्रेषु कस्मैचिदपि वाऽथवा ।
भार्यायै वा स्वकन्यायै दातुं शक्नोति नूचितम् ॥१३१९॥

वह (पिता) पुत्रों में किसी को भी या स्त्री को या अपनी लड़की को उचित भेट दे सकता है ।

चलवित्तोपहारेऽन्यः प्रतिबन्धो न कश्चन ।
देशाचारकुलाचारपालनं स्थावरे पुनः ॥१३२१॥

अस्थावर संपत्ति की भेट में दूसरी कोई रुकावट नहीं है । परन्तु स्थावर(अचल) संपत्ति में देश के रिवाज और कुल के रिवाज का पालन आवश्यक होता है ।

आधीकर्तुं तथा दातुं विक्रेतुं स्यात् क्षमो धनम् ।
स्थिरमेकोऽपि विपदि वंशार्थं च सुकर्मणे ॥१३२१॥
मैताक्षरं मतं ह्येतद्दानादुपहृतिर्मता ।
अत्र, किन्तु न शक्तः स दातुमिच्छादलेन तत् ॥१३२२

विपत्ति में या वंश के और धर्म के कामों के लिए अकेला वह (पिता) भी स्थिर धन को गिरवी रख सकता है, दे सकता है या बेच सकता है । यह मिताक्षरा[1] का मत है । यहां पर देने से उपहार देना माना है । परन्तु वह उस धन को इच्छा-पत्र से नहीं दे सकता ।

द्रविडे न मतः शक्तः पैतृकं स्थावरं धनम् ।
उपहर्तुं स्वभार्याया अवयस्थे सुते सति ॥१३२३॥
परं स शक्तः स्वल्पांशमुपहर्तुं प्रथावशात् ।
विवाहे वा विवाहान्ते कन्यायै पैतृकात्स्थिरात् ॥१३२४॥
प्रयागे च महाराष्ट्रे पुत्र्यर्थमपि न क्षमः ।
उपहर्तुं सं तद्वित्तादन्येभ्यस्त्वथ का कथा ॥१३२५॥

मद्रास में वह, पुत्र के नाबालिग होने पर, अपनी पत्नी को भी पैतृक स्थावर धन उपहार में देने में समर्थ नहीं माना गया है । परन्तु वह रिवाज के कारण विवाह के समय या विवाह के बाद कन्या को पैतृक स्थिर धन से थोड़ा भाग उपहार में दे सकता है । इलाहाबाद और बंबई में वह उस धन में से पुत्री को भी उपहार नहीं दे सकता, दूसरों के लिए तो कहना ही क्या ! (अर्थात्-दूसरों को तो दे ही कैसे सकता है ।)

---

(१) एकोऽपि स्थावरे कुर्याद्दानाधमनविक्रयम् ।
आपत्काले कुटुम्बार्थे धर्मार्थे च विशेषतः ॥

संसृष्टिना निजो योऽर्थः कुटुम्बार्थे विमिश्रितः ।
निःसंदेहतया सोऽत्र संसृष्टाऽर्थो भवेद् ध्रुवम् ॥१३२६॥

सामेदार ने अपना जो व्यक्तिगत धन निश्चय रूप से कुटुम्ब के धन में मिला दिया हो, वह यहां पर निश्चय ही सामे का धन हो जाता है ।

संमिश्रयन्ति संसृष्टाः स्वं-स्वं व्यक्तिगत धनम् ।
कुटुम्बाऽर्थे तदा सोऽपि कुटुम्बाऽर्थो मतो बुधैः ॥१३२७॥

(जब) सामेदार अपना-अपना निज का धन कुटुम्ब के धन में मिला देते हैं, तब उसे भी समझदार लोग कुटुम्ब का धन मानते हैं ।

संसृष्टै र्भ्रातृभिः स्वाऽर्थो दायभागानुयायिभिः ।
संसृष्टश्चेत्तदा सोऽपि कुटुम्बार्थो भवेद् ध्रुवम् ॥१३२८॥

यदि दायभाग के अनुसार चलनेवाले सामेदार भाइयों ने अपना धन मिला दिया हो, तो वह भी निश्चय ही कुटुम्ब (सामे) का धन हो जाता है ।

यत्रोपभोग एवास्य स्वार्जितस्यानुमोदितः ।
कुटुम्बिभ्यः समं स्वेन स्वामिना तत्र वा पुनः ॥१३२९॥
यत्राऽऽयोऽस्य स्वपुत्रस्य पोषार्थं तु प्रयोजितः ।
नो पृथग् गणना वास्य स्थापिता तत्र तन्न तत् ॥१३३०॥
परं व्यक्तिगतं वित्तं धने कौटुम्बिके यदि ।
मिश्रितं तर्हि तज्ज्ञेयमत्र कौटुम्बिकं धनम् ॥१३३१॥

जहां पर धन के स्वामी ने अपने साथ ही कुटुम्बियों के लिए (भी) अपने कमाये इस धन का केवल उपभोग ही मंजूर किया हो, वहां पर अथवा फिर जहां पर इस (धन) की आमदनी अपने पुत्र के भरण-पोषण (support) के लिए प्रयुक्त की हो, या जहां पर इस (धन) का हिसाब अलग न रक्खा हो, वहां पर वह (धन) वह (कुटुम्ब का धन) नहीं होता । परन्तु यदि व्यक्तिगत धन को कुटुम्ब के धन में मिला दिया हो, तो उसे यहां पर कुटुम्ब का धन जानना चाहिए ।

संयुक्तार्थोऽपि विज्ञेयस्त्रिविधो विधिनिश्चितः ।
पैत्रोऽथवाऽन्यसंसृष्टः सहकारीय इत्ययम् ॥१३३२॥

बाप-दादा का (*Joint family property*), सामे का (Joint property) या व्यापार-आदि के लिए साझा किया हुआ (partnership property)—इस प्रकार यह पहले कहा संयुक्त (Joint) धन भी तीन प्रकार का होता है ।

पैत्रं धनं तु विज्ञेयमविभक्तं कुटुम्बिभिः ।
पुत्रपौत्रप्रपौत्राः स्युस्तत्र जन्या सहांशिनः ॥१३३३॥

कुटुम्ब के लोगों द्वारा नहीं बांटा हुआ पैत्र (बाप-दादा का या साझे के कुटुम्ब का) धन जानना चाहिए । उसमें बेटे, पोते और परपोते जन्म से ही साथ हकदार होते हैं ।

ज्ञेयं तदन्यसंसृष्टं संसृष्टेष्ववशेषिणः ।
मृतसंसृष्टवित्तस्य यत्र स्युरधिकारिणः ॥१३३४॥

जहां साझेदारों में से पीछे बचे हुए लोग मरे हुए साझेदार के धन के अधिकारी हों, वह दूसरा (साझे में प्राप्त किया) साझे का धन जानना चाहिए । (इसमें उसके बेटे, पोते आदि जन्म से अधिकार नहीं पाते ।)

बोध्यं तत् सहकारीयं मृताऽऽसन्नाः कुटुम्बिनः ।
यत्र स्युर्हि तदंशार्हा विभागस्य विधानतः ॥१३३५॥

जहां पर मरे हुए के नजदीकी रिश्तेदार (हकदार) बटवारे के कानून (ई० सं० १६३२ के Indian Partnership Act) के अनुसार उसके हिस्से के हकदार हों, वह सहकारीय (partnership) का धन जानना चाहिए ।

विनैव पैतृकार्थस्य साह्येनात्र यदर्जितम् ।
संभूय ननु संसृष्टैः प्रमाणं तत्र तन्मतम् ॥१३३६॥
परं लवपुरीयैस्तु महाराष्ट्रस्थितैस्तथा ।
श्लिष्टकौटुम्बिकं वित्तं मतं तन न्यायदाधिपैः ॥१३३७॥
श्लिष्टं कौटुम्बिकं ह्येव द्राविडा अपि तत्पुनः ।
अनुमान्ति न चेत्तत्रार्जकानां मतमन्यथा ॥१३३८॥

जो (धन) यहां पर साझेदारों ने मिलकर, विना पिता के धन की सहायता के ही, कमाया हो, निश्चय ही उसके विषय में उनका मत प्रमाण होता है । (अर्थात्-यदि वे चाहें तो उसे साझे के कुटुम्ब का धन मान सकते हैं ।) परन्तु लाहोर और बंबई की हाइकोर्ट के जजों ने उसे साझे के कुटुम्ब का धन माना है । फिर मद्रास वाले (जज) भी, यदि वहां पर (उस धन के) कमानेवालों का मत इसके विरुद्ध न हो तो, उसे साझे के कुटुम्ब का धन ही मानते हैं ।

संसृष्टिनि मृते स्वाम्यमुक्तं संसृष्टसंपदि ।
शेषसंसृष्टिनामेव न तद् वंशक्रमोद्भवाम् ॥१३३९॥

(किसी) साझेदार के मरने पर साझे के धन पर बाकी के साझेदारों का अधिकार कहा है, उस (मृतव्यक्ति) के वंश क्रम से उत्पन्न होनेवाले (बेटों-पोतों) का नहीं ।

तस्यां विभज्यमानायां तत्पुत्राद्यास्तदंशलाः ।
त एव स्युर्मृतानां च पितॄणामृणदा अपि ॥१३४०॥

उस (साझे) के धनके बांटने के समय उस (मृत पुरुष) के पुत्र आदि उसके हिस्से के हकदार होते हैं। वे (पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र) ही मरे हुए बाप, दादा और परदादा के कर्ज़ चुकानेवाले भी होते हैं।

पुत्रपौत्रप्रपौत्राणां मृतानां विधवास्तथा ।
धनेशविधवा चाऽपि समांशिन्योऽद्य तद्धने ॥१३४१॥

मरे हुए बेटों, पोतों और परपोतों की विधवायें और धन के मालिक की विधवा भी आजकल उस (मृत पुरुष के पुत्रादिकों को मिलनेवाले) धन में बराबर हिस्सा पानेवाली होती हैं।

संसृष्टेष्वपि शक्ते न यदा देशविधानतः ।
विक्रीत आहितो वा स्यात् स्वांशः केनापि जीवता ॥१३४२॥
यदा च ऋणशोधार्थमृणंशस्याऽधिकारिता ।
प्राप्ता जिताभियोगैः स्यात् तस्मिञ्जीवति निश्चितम् ।१३४३॥
ऋणशोधाऽक्षमत्वाच्च यदाऽर्थो राजसात्कृतः ।
तदाऽन्ववस्थितेः स्वाम्यं संसृष्टैर्नात्रमीश्यते ॥१३४४॥

जब देश में प्रचलित कायदे से समर्थ हुए साझेदारों में किसी व्यक्ति ने अपने हिस्से को अपने जीते जी बेच दिया या गिरवी रखदिया हो, जब मुकद्दमा जीतनेवालों ने, कर्ज़ वसूल करने के लिए, कर्ज़दार के धन का अधिकार (attachment) उसके जीते जी, निश्चित तौर से, पालिया हो और जब कर्जा न चुका सकने के कारण धन राजा के अधीन करलिया गया हो (उसका प्रबन्ध राज्याधिकारी official assignee) ने ले लिया हो, तब साझेदार बाद तक जीवित रहने के कारण से (उस धन पर) अधिकार नहीं पा सकते।

ऋणाऽभि योग आज्ञैव दत्तांऽशग्रहणस्य चेत् ।
वस्तुतो नांऽश आत्तः स्यात् तन्मृत्यौ तर्हि साऽफला १३४५॥

कर्ज़ के मुकद्दमे में केवल हिस्से को लेने की आज्ञा (decree) ही दी हो, वास्तव में हिस्से पर कब्जा न हुआ हो, तो उस (कर्ज़दार) के मरने पर वह (आज्ञा) असफल हो जाती है।

पुत्रपौत्रप्रपौत्रेषूत्तरेषु तु तदुत्तरम् ।
आज्ञा साऽप्यत्र पाल्या स्याद् बन्ध्यैवान्यत्र सा भवेत्१३४६

उस (कर्ज़दार) के बाद बेटों, पोतों और परपोतों के उसके उत्तराधिकारी होने पर, तो वह (हिस्से पर अधिकार करने की आज्ञा–decree) भी, यहां पर (कर्ज़दार के मरने पर) पालनीय होती है। दूसरे स्थान पर (जहां बेटे, पोते, परपोते उत्तराधिकारी न हों) वह (decree–आज्ञा) निष्फल हो जाती है।

ऋणशोधकृते पुर्वमर्थो यो राजसात्कृतः ।
निष्पन्ने तत्र तत्स्वाम्यं तं प्रत्येत्यथवोत्तरान् ॥१३४७॥

कर्ज चुकाने के लिए जो धन पहले राजा (officeal raceiver) के अधिकार में ले लिया गया हो, उसका अधिकार, उस (कर्ज) के पूरा हो जाने (चुक जाने) पर, उस कर्ज लेनेवाले या उसके उत्तराधिकारियों को मिल जाता है ।

नवधा व्यक्तिगा संपद्-दायः सप्रतिबन्धकः ।
पित्रा पुरस्कृतोऽल्पांऽशः संपत्तिश्च नृपाऽर्पिता ॥१३४८॥
पैत्रं द्रव्यमनाश्रित्योद्धृतं पैत्रं धनं स्वयम् ।
आयो व्यक्तिगतार्थस्य विद्यया चाऽर्जितं तथा ॥१३४९॥
संसृष्टाऽर्थविभागे स्वो भागोऽपुत्रवता हृतः ।
श्लिष्टावशिष्टेनैकेन प्राप्तं व्यक्त्यर्जितं पुनः ॥१३५०॥

व्यक्तिगत संपत्ति नौ तरह की होती है—प्रतिबन्धवाला (जिसमें अपने जीतेजी पुत्रों आदि का अधिकार न हो ऐसा) दाय-धन, पिता द्वारा उपहार के रूप में दिया (धन का) कुछ भाग, राजा की दी संपत्ति, बाप-दादों के धन के सहारे के बिना ही खुद उद्धार किया (नष्ट हो जाने पर वापस प्राप्त किया) बाप-दादा का धन, व्यक्तिगत धन की आमदनी, विद्या से कमाया हुआ (धन) (देखो The Hindu gains of Learning Act), साझे के धन के बांटने में बिना पुत्रवाले को मिला भाग, साझेदारों में अकेले पीछे बचे पुरुष को मिला (धन) और (बिना पैतृक धनकी सहायता के) खुद का कमाया (धन) ।

संसृष्टार्थः परायत्तः संसृष्टार्थोऽनपेक्षया ।
पित्रोद्धृतस्तु तस्यैव व्यक्तिगोऽर्थो भवेद् ध्रुवम् ॥१३५१॥

दूसरे के अधिकार में गया साझे का धन, बाप-दादा के धन की सहायता के बिना ही, पिता ने वापस प्राप्त किया हो, तो वह निश्चय करके उसी का व्यक्तिगत धन होता है ।

एष एवोद्धृतोऽन्येन चलस्तद्व्यक्तिगो भवेत् ।
स्थिरेऽर्थे तस्य तुर्योऽशः शेषे सर्वे समांऽशिनः ॥१३५२॥

यही (धन) दूसरे (कुटुम्बी) ने वापस प्राप्त किया हो, तो चल धन उसका व्यक्तिगत हो जाता है । अचल धन में उसका चौथा हिस्सा होता है और बाकी (तीन हिस्सों) में सब बराबर भाग पाते हैं । (अर्थात्—यदि किसी अन्य कुटुम्बी ने स्थिर धन का उद्धार किया हो, तो उद्धार करनेवाला पहले उसका चौथा भाग ले लेता है और फिर बाकी का भाग उद्धार करने वाले के साथ ही सब हिस्सेदारों में बट जाता है) ।

धनं श्लिष्टकुटुम्बीयं विश्लिष्टमधुना न वा ।
इति वादे तु विश्लिष्टवादी स्वोक्तं प्रमाणयेत् ॥१३५३॥
यतो निसर्गसंश्लिष्टं मतमार्यकुटुम्बकम् ।
हीयते भावनैषा च क्रमशो दूरगामिषु ॥१२५४॥
संबन्धेष्वत्र वंश्यानामन्त्यपुंवित्तधारकात् ।
यथा वै तातपुत्रेषु भ्रातृषु भ्रातृजेषु च ॥१३५५॥

साझे के कुटुम्ब का धन इस समय जुदा-जुदा हो चुका है या नहीं इस प्रकार के झगड़ेमें जुदा होचुका कहनेवाला अपने कहे को सिद्ध करे; क्योंकि हिन्दुओं का कुटुम्ब स्वभाव से ही साझेवाला माना जाता है। तथा धन के अन्तिम पुरुष अधिकारी से दूर होनेवाले वंशवालों के संबन्धों में यह भावना (खयाल) कम से कम होता जाता है। जैसे कि--पिता-पुत्रों में, भाइयों में और भतीजों में।

विशिष्टं तु धनं श्लिष्टमश्लिष्टं वा कुटुम्बगम् ।
इति वादे स्वयं पृक्तवादी स्वोक्तं हि साधयेत् ॥१३५६॥
तत्सिद्धावपरो वंश्यस्तद्धनं स्वं वदेत्तदा ।
स एवात्र प्रमाणानि वादिदत्तानि खण्डयेत् ॥१३५७॥

कुटुम्ब में रहा खास धन साझे का है या जुदा का इस प्रकार का विवाद होने पर खुद साझे का कहने वाला अपने कहे को प्रमाणित करे। तथा उसके प्रमाणित होने पर दूसरा वंश का पुरुष उस धन को अपना बतलाय, तो। वही वैसा बतलानेवाले के प्रमाणों का खण्डन करे।

व्यापारेणात्र संप्राप्तं धनं श्लिष्टकुटुम्बिना ।
व्यक्तिगं तस्य यावन्नो साध्यते वादिनेत्यदः ॥१३५८॥
यद्धि श्लिष्टकुटुम्बीयधनबीजत एव तः ।
ववृधे वाऽर्जितं तेन कुटुम्बार्थे विमिश्रितम् ॥१३५९॥

यहां पर साझे के कुटुम्बवाले पुरुष द्वारा व्यापार से प्राप्त किया धन, जब तक इस प्रकार सिद्ध न कर दिया जाय कि वह (व्यापार) साझे के कुटुम्ब के बीज (necleus) रूप धन से ही बढा था, या उसने अपना कमाया कुटुम्ब के धन में मिला दिया था, तब तक उस (कमानेवाले) का व्यक्तिगत (separate) धन होता है।

सिद्धो विभागः संश्लिष्टकुटुम्बार्थस्य यत्र तु ।
तत्र श्लिष्टांशवाद्येव तच्छ्लिष्टांशं प्रमाणयेत् ॥१३६०॥

जहां पर साझे के कुटुम्ब के धन का विभाग सिद्ध हो गया हो, वहां पर उसके कुछ भाग को साझे का बताने वाला ही उस साझे में रहे भाग को सिद्ध करे।

नयेशो यत्र साक्ष्येण नो वादिप्रतिवादिनोः।
क्षमोऽभियोगं निर्णेतुं भारः स्यात्तत्र वादिनि ॥१३६१॥

जहां पर न्यायाधीश मुद्दई और मुद्दायलह की गवाहियों से मुकद्दमे का फैसला न कर सके, वहां पर वादी (मुद्दई) पर (सिद्ध करने का) भार (Onus) रहता है।

पैत्रो व्यापार इह चेत् पुत्रपौत्रप्रपौत्रकैः।
प्राप्तः स्यात्तत् स संसृष्टकुटुम्बीयं धनं भवेत् ॥१३६२॥

यदि यहां पर पुत्र, पौत्र और प्रपौत्रों ने पिता का व्यापार पाया हो, तो वह संसृष्ट-कुटुम्ब का धन होता है।

गृहजामातृदत्ताभिः कन्याभिर्वा कुटुम्बिभिः।
अपियोऽधिकृतो यस्य लाभोऽथात्रोपयुज्यते ॥१३६३॥
संसृष्टिनः कुटुम्बस्य व्यये न्यायोपसंगते।
निश्चितं सोऽपि संसृष्टकुटुम्बाऽर्थो मतो बुधैः ॥१३६४॥

जो (व्यापार) घर-जमाई को ब्याही हुई कन्याओं या कुटुम्बवालों द्वारा भी अधिकृत हो और जिसकी आमदनी, यहां पर, साझे के परिवार के उचित व्यय में काम में ली जाती हो, उसे भी विद्वानों ने निश्चय-रूप से साझे के कुटुम्ब का धन माना है।

संसृष्टपरिवारीये सहकारीयके च या।
व्यापारेऽस्ति भिदा साऽत्र विस्तरेण प्रदर्श्यते ॥१३६५॥

साझे के परिवार के (व्यापार) (Joint Family business) और हिस्सेदारी के व्यापार (partnership business) में जो भेद है, वह यहां पर विस्तार से बतलाया जाता है।

संसृष्टिनि मृतेऽप्यत्र पूर्वो नैव प्रणश्यति।
क्षीयते सहकारित्वं मृते तु सहकारिणि ॥१३६६॥

यहां पर (एक) साझेदार के मरजाने पर भी पहला (साझे के कुटुम्ब का व्यापार) नष्ट नहीं होता। (परन्तु एक) हिस्सेदार के मरजाने पर तो हिस्सेदारी समाप्त हो जाती है।

संसृष्टित्वं त्यजन्नाद्यौ हानिलाभौ निरीक्षितुम्।
संसृष्टी न समर्थः स्यात् सहकारी पुनः क्षमः ॥१३६७॥

साझे के परिवार वाला साझा छोड़ते समय पहले के हानि और लाभ की छान-बीन नहीं कर सकता, परन्तु हिस्से के व्यापार वाला कर सकता है।

ऋणशोधग्रहे शक्तः संसृष्टार्थप्रबन्धकः।
एव कौटुम्बकार्येभ्योऽवयसोऽप्यत्र भागिनः ॥१३६८॥

कुटुम्ब के कामों के लिए ऋण (कर्ज) चुकाने और लेने में साझे के धन का प्रबन्धक (मैनेजर) ही समर्थ होता है, और इस देन-लेन में नाबालिग भी जिम्मेदार होते हैं । (अर्थात्--साझे के कुटुम्ब का देन-लेन मुखिया ही कर सकता है, और उसके किये के नाबालिग साझेदार भी जिम्मेदार होते हैं ।)

शोधाऽऽदाने ऋणस्याऽत्र सकलाः सहकारिणः ।
व्यापाराऽर्थे क्षमाः सर्वे पुनस्तद्भारभागिनः ॥१३६९॥

यहां पर व्यापार के लिए ऋण (कर्ज) के चुकाने और लेने में सारे ही सहकारी (partner-हिस्सेदार) समर्थ होते हैं । तथा सब ही उसके जिम्मेदार होते हैं । (अर्थात्--हिस्सेदारी के व्यापार का देन-लेन हर एक हिस्सेदार कर सकता है ।)

कुटुम्बीय ऋणे नूनं स्वसंसृष्टाऽर्थसीमिते ।
संसृष्टिनस्तु ऋणिनो नेता तत्-पूर्णभारभाक् ॥१३७०॥

(साझे के) कुम्टुब के कर्ज में साझेवाले निश्चय ही अपने साझे के धन की सीमातक कर्जदार होते हैं, (कुटुम्ब का) मुखिया उसका पूरा जिम्मेवार होता है ।

वयस्कैश्चेदनुमतं तत् , तत्तेऽपि समांशिनः ।
ऋणे तु सहकारीये सर्वे स्युः सहभागिनः ॥१३७१॥

बालिग साझेदारों ने यदि उसको मानलिया हो, तो वे भी (उस कर्ज के लिए मुखिया के) बराबर ही हिस्सेदार होते हैं । हिस्सेदारी के कर्ज में तो सब ही बराबर भागवाले होते हैं । (अर्थात्--साझे के कुटुम्ब के कर्ज में तो बालिग लोग मुखिया के कर्ज का अनुमोदन कर लेने पर ही अपने साझे के धन की सीमा से आगे जिम्मेदार होते है, परन्तु हिस्सेदारी के व्यापार में तो हर एक हिस्सेदार पूरे कर्ज का जिम्मेदार होता है । उसका व्यक्तिगत धन भी उसे व्यापार के कर्ज में लिया जा सकता है ।)

अतः श्लिष्टैर्वयस्कैस्तदृणं यत्रानुमोदितम् ।
तत्रैव व्यक्तिगं तेषामृणाधिक्ये प्रयुज्यते ॥१३७२॥
व्यापारगतवित्तात्तु ऋणाधिक्ये प्रगृह्यते ।
अपि व्यक्तिगतं वित्तं तच्छुद्धयै सहभागिनाम् ॥१३७३॥

इसलिए जहां पर बालिग साझेदारों ने उस कर्ज को मान लिया हो, वहां पर कर्ज के (व्यापार में लगे धन से) अधिक होने पर उनका व्यक्तिगत धन (कर्ज चुकाने के) काम में ले लिया जाता है । परन्तु व्यापार में लगे धन से कर्ज के अधिक होने पर साथ मिलकर (ordinary partnership से) व्यापार करनेवालों का तो व्यक्तिगत धन भी उस (कर्ज) को चुकाने के लिए ले लिया जाता है । (अर्थात्-- वहां पर उनके द्वारा कर्ज के मंजूर करने का बन्धन नहीं है ।)

उभयत्राऽवयस्कास्तु यावत् संसृष्टिवित्तकम् ।
एवोत्तरप्रदास्तेषां व्यक्तिगोऽर्थो न गृह्यते ॥१३७४॥

नाबालिग तो दोनों जगह (साझे के कुटुम्ब के व्यापार में और हिस्सेदारी के व्यापार में) अपने साझे के धन की सीमा तक ही जिम्मेदार होते हैं । उनका व्यक्तिगत धन (कर्ज चुकाने में) नहीं लिया जा सकता ।

परं प्राप्तवयोभिस्तैस्तदृणं स्वीकृतं यदि ।
तर्हि व्यक्तिगतं वित्तमपि तेषां प्रगृह्यते ॥१३७५॥

परन्तु बालिग हुए उन्हों ने यदि उस कर्जे को स्वीकार कर लिया हो, तो उन (पहले नाबालिग रहे साझेवालों या सहयोगियों) का व्यक्तिगत धन भी (कर्जा चुकाने के लिए) ले लिया जाता है ।

संसृष्टपरिवारीये व्यापारे प्राक्तने नवम् ।
व्यवसायं समारभ्यावयस्कांऽशो न धर्ष्यते ॥१३७६॥

साझे के कुटुम्ब के पुराने व्यापार में नवीन व्यापार का आरम्भकर नाबालिग के हिस्से को नुकसान नहीं पहुँचाया जाता ।

विधिरेष त्वभिमतो दायभागानुयायिषु ।
मैताक्षरेष्वपि पुनर्व्यवसाये नवे सति ॥१३७७॥

यह विधि दायभाग को माननेवालों में मानी गई है। फिर व्यापार के नवीन होने पर मिताक्षरा को माननेवालों में भी मानी गई है ।

पुत्रष्वेकतमस्यात्रनव्यव्यापारसिद्धये ।
कर्तुमाधिं कुटुम्बार्थं पिता नेताऽपि न क्षमः ॥१३७८॥

यहां पर प्रबन्धक पिता भी बहुत से पुत्रों में से एक पुत्र के नवीन व्यापार की सफलता के लिए कुटुम्ब के धन को गिरवी रखने में समर्थ नहीं होता ।

अवयस्कास्तु संसृष्टास्तस्य आधेर्न भारिणः ।
श्लिष्टैर्वयस्कैश्चे द् भूमिः पट्टेनादाय किन्त्विह ॥१३७९॥
संपदाधीकृता तस्या भाटकस्य प्रदत्तये ।
प्रतिभूरूपतश्चान्तेऽप्रदत्ते भाटके तु तैः ॥१३८०॥
उत्तमर्णोऽभियुज्यैतानासवाञ्छासनं ततः ।
आघोष्य विक्रये तस्याः क्रीतोऽशः क्रयिकेण हि ॥१३८१॥
तत्संपदो, न तत्रेशाः संसृष्टा अवयःस्थिताः ।
अभियोगेन विक्रीतां प्रत्यादातुं हि संपदम् ॥१३८२॥
कुटुम्बस्य हितायैव विक्रीता साऽभवद् यतः ।
संपदाधीकृतिर्मान्या ततः सर्वकुटुम्बिभिः ॥१३८३॥

साझे में रहे नाबालिग उस (पिता द्वारा) गिरवी रखने का बोझ नहीं उठाते । (उसके जिम्मेदार नहीं होते) । परन्तु यदि यहां पर साझे में रहे बालिग लोगों ने भूमि पट्टे (lease) पर लेकर उस (भूमि) के भाड़े (rent) के देने के लिए जमानत (security) के रूप में संपत्ति गिरवी रखदी हो, और बाद में उनके भाड़ा न देने पर भूमि देनेवाले ने उन पर मुकद्दमा चलाकर डिग्री प्राप्त करली हो और फिर उस (संपत्ति) के घोषणा करके बेचे जाने (नीलाम किये जाने) पर खरीददार ने उस संपत्ति का कुछ भाग खरीद लिया हो, वहां पर साझे में रहे नाबालिग बेची हुई संपत्ति को मुकद्दमे के द्वारा पीछे लेने में समर्थ नहीं होते । क्योंकि वह कुटुम्ब के लाभ के लिए ही बेची गई थी । इसलिए संपत्ति का गिरवी रक्खा जाना सब कुटुम्बियों को मानना होता है ।

कर्त्ता नवं समारभ्य व्यापारं तद्भरं ध्रुवम् ।
संसृष्टेषु वयःस्थेषु नैव पातयितुं क्षमः ॥१३८४॥
न चेत्तैः स्वीकृतस्त्वेष वाचा व्यञ्जनयाथवा ।
कर्त्रारभ्यापि तं वान्तेऽप्रयुक्ताः श्लिष्टसंपदः ॥१३८५॥
तस्मिँल्लाभाय संश्लिष्टकुटुम्बस्याथवा पुनः ।
तत्स्थितिर्नो कुटुम्बस्य सिद्धा लाभाय निश्चितम् ॥१३८६॥

कर्ता (प्रबन्धक) नवीन व्यापार को प्रारम्भ कर उसका बोझा, निश्चय ही, यदि उन्होंने उस (व्यापार) को वाणी से या इरादे (implication) से स्वीकार न किया हो, या प्रबन्धक ने उस (व्यापार) को प्रारम्भ करके भी बाद में उसमें साझे के कुटुम्ब के लाभ के लिए साझे का धन न लगाया हो, अथवा उस (व्यापार) की स्थिति (continuance), निश्चय ही, कुटुम्ब के लिए लाभदायक न सिद्ध हुई हो, तो साझे में रहे बालिगों पर नहीं डाल सकता ।

द्रविडेऽथ महाराष्ट्रे व्यवसाये नवे पितुः ।
यावत् स्वांशं तु संसृष्टपुत्राः सर्वेऽपि भारिणः ॥१३८७॥

मद्रास और बंबई में पिता के चलाये नये व्यापार में साथ में रहनेवाले (सारे ही) पुत्र अपने हिस्से के धन की सीमा तक ही भार उठाने वाले (जिम्मेदार) होते हैं । (अर्थात्-ऐसे व्यापार में उसके नाबालिग पुत्र भी साझे के धन की सीमा तक जिम्मेवार होते हैं ।)

संसृष्टव्यवसायस्याऽध्यक्षः स्वेषां कुटुम्बिनाम् ।
प्रातिनिध्येन चेत् कुर्यादपरैः सहकारिताम् ॥१३८८॥
व्यवसाये नवे तस्मिन् त एव स्युः कुटुम्बिनः ।
भागिनोऽनुमता यैः सा न तु तेऽनुमता न यैः ॥१३८९॥

यदि साझे के (कुटुम्ब के) व्यापार का प्रबन्धक अपने कुटुम्बियों के प्रतिनिधि के रूप से किसी दूसरे के साथ सहयोग करले, तो उस (हिस्से दारी के) नये व्यापार में वे ही कुटुम्बी, जिन्होंने उसका अनुमोदन किया हो हिस्सेदार होते हैं, जिन्होंने अनुमोदन नहीं किया हो, वे नहीं होते।

नेतैव प्रमुखस्तत्र सहकारी, कुटुम्बिनः।
येऽन्ये स्युरनुमन्तारस्ते तु गौणा मता बुधैः ॥१३६०॥

उस (हिस्सेदारी के व्यापार) में प्रबन्धक ही मुख्य सहकारी होता है। दूसरे जो अनुमोदन करनेवाले कुटुम्बी होते हैं, वे तो विद्वानों द्वारा गौण ही माने गये हैं।

अतस्तस्मिन्मृते ज्ञेया नष्टा सा सहकारिता।
नेतुर्हान्यंशपूर्त्यर्थमप्यन्ये नोत्तरप्रदाः ॥१३६१॥

इसलिए उस (प्रबन्धक) के मरजाने पर उस हिस्सेदारी (सहयोग) को नष्ट हुई जाननी चाहिए। प्रबन्धक के जिम्मे के नुकसान के भाग को पूरा करने को भी दूसरे (गौण हिस्सेदार कुटुम्बी) उत्तरदायी नहीं होते। (अर्थात्-प्रबन्धक का जिम्मे का नुकसान प्रबन्धक की जायदाद से ही लिया जा सकता हैं।)

प्राक्तने व्यवसाये चेत् सहकारी कृतोऽपरः।
यावत् सांसृष्टिकद्रव्यं संसृष्टा उत्तरप्रदाः ॥१३६२॥

यदि पुराने व्यापार में ही (किसी) दूसरे को हिस्सेदार बनालिया हो, तो साझेवाले (कुटुम्बी) साझे के धन की अवधि तक (प्रबन्धक के जिम्मे की हानि के) उत्तरदाता होते हैं।

सहकाराऽवधौ पूर्ण एव संसृष्टसंपदम्।
कर्ताऽऽदातुमलं श्लिष्टश्चेत् सा सहकृतौ स्थिता ॥१३६३॥

साझेदार प्रबन्धक साझेदारी की संपत्ति को, यदि वह हिस्से के व्यापार में लगी हो, तो हिस्सेदारी की अवधि पूरी होने पर ही वापस ले सकता है

संसृष्टसंपदाऽऽरब्धः शाखारूपेण यो नवः।
व्यवसायः स आद्याया अंशो व्यवसितेर्मतः ॥१३६४॥

साझे (के कुटुम्ब) की संपत्ति से (पुराने व्यवसाय की) शाखा के रूप से जो नया व्यापार शुरू किया गया हो, वह पुराने व्यापार का ही हिस्सा माना जाता है।

संसृष्टार्थप्रबन्धः संसृष्टिनामधिकारविवेचनं च।

साझे के धन का प्रबन्ध और साझेदारों के अधिकार का विचार।

संसृष्टाऽर्थे तु विज्ञेया सर्वेषां कृत्स्नसंपदि।
समानाऽधिकृतिस्तत्र हिते चाऽधिकृतौ न भिद् ॥१३६५॥

साझे के धन में तो पूरी संपत्ति पर सब का ही समान अधिकार जानना चाहिए। उसमें (किसी के) लाभ और अधिकार में भेद नहीं होता।

मिताक्षराऽनुगैः स्वः स्वो नांऽशो निश्चीयते ध्रुवम्।
संसृष्टार्थे तु संसृष्टैर्यावन्न स्याद्विभाजनम् ॥१३९६॥

मिताक्षरा के अनुयायी साझेदारों द्वारा साझे के धन में अपना-अपना हिस्सा, जब तक (उसका) बटवारा न हो, निश्चयरूप से निश्चित नहीं किया जाता।

संसृष्टिभिस्तु संसृष्टो यद्येको वञ्च्यते बलात्।
कुटुम्बाऽर्थोपभोगात् तत् तदन्याय्यं मतं बुधैः ॥१३९७॥

यदि साझेदार (मिलकर) जबरदस्ती एक साझेदार को कुटुम्ब के धन के उपभोग से वञ्चित (महरूम) करदें तो विद्वानों ने उसे अन्याय माना है।

सोऽभियुज्य स्वसंसृष्टिं तत्र स्थापयितुं क्षमः।
वञ्च्यते नाऽपरैः सोत्र संसृष्टेस्तन्मतं विना ॥१३९८॥

वह (वञ्चित किया हुआ सझेदार) मुकद्दमा चलाकर उस (धन) में अपने साझे को स्थापित करवा सकता है। उसकी मरज़ी के बिना उसे दूसरे, यहां पर, साझे से हटा नहीं सकते।

संसृष्टाऽर्थे यदाऽऽरभ्याऽधिकारोऽत्र विरोध्यते।
द्वादशब्दं तदाऽऽरभ्याऽभियोगस्तत्र युज्यते ॥१३९९॥

यहां पर साझे के धन में जब से अधिकार का विरोध किया जाता है, तब से बारह वर्षों तक, उसके लिए, मुकद्दमा चलाना ठीक होता है। (अर्थात्-बारह वर्ष के बाद अवधि बीत जाती है।)

नेतारं प्रोज्झ्य संसृष्टेष्वन्यो न प्रतिभूर्भवेत्।
न कोऽपि स्वेच्छया तेषु संपदं विकृतिं नयेत् ॥१४००॥

साझे के कुटुम्बवालों में प्रबन्धक के सिवा दूसरा कोई ज़मिन नहीं हो सकता। उनमें से कोई अपनी इच्छा से ही साझे की संपत्ति के रूप को नहीं बिगाड़ सकता। (अर्थात्-प्रबन्धक के सिवा दूसरा कोई साझेदार, अन्य साझेदारों की अनुमति के बिना, साझे की ज़मीन के किसी भाग पर घर आदि नहीं बनवा सकता)।

संसृष्टेषु वयःस्थास्तु क्षमाः स्वांऽशविभाजने।
महाराष्ट्रप्रदेशे तु पुत्रपौत्रप्रपौत्रकाः ॥१४०१॥
जीवति स्व-स्वजनके तस्यैवाऽनुमतिं विना।
भ्रातृतः पितृतस्तस्य भक्तुं श्लिष्टाऽर्थमक्षमाः ॥१४०२॥

साझेदारों में बालिग लोग अपना हिस्सा जुदा करलेने में समर्थ होते हैं। बंबई

में बेटे, पोते और परपोते अपने-अपने पिता के जीवित रहते उसकी अनुमति के बिना उस (पिता) के भाइयों और पितरों (बाप-दादा) से साझे का धन नहीं बांट सकते । (यद्यपि पुत्र पिता से कुटुम्ब के धन का अपना भाग ले सकता है, परन्तु उसके जीते जी उसकी इच्छा के बिना चाचों या दादा-परदादा से नहीं लेसकता ।)

अवियुज्याऽपि संसृष्टो वङ्ग आयव्ययादिकम् ।
प्रष्टुं शक्तः कुटुम्बाऽर्थप्रबन्धकमथ स्वयम् ॥१४०३॥

बंगाल में साझेवाला (कुटुम्बी), बगैर जुदा हुए ही, कुटुम्ब के धन का प्रबन्ध करनेवाले (manager) से आमदनी और खर्च आदि (अर्थात्-हिसाब) पूछ सकता है ।

मिताक्षराऽनुगा नूनमत्र संसृष्टिनो जनाः ।
द्रविडांश्च महाराष्ट्रान् मध्यदेशानृते क्षमाः ॥१४०४॥
संसृष्टेऽर्थे यथेच्छं नो उपहर्तुं निजांऽशकम् ।
विक्रेतुं बन्धकीकर्तुमपि शक्ता न ते पुनः ॥१४०५॥

यहां पर मिताक्षरा की माननेवाले साझेदार लोग मद्रास, बंबई और मध्यभारत को छोड़कर (अन्य स्थानों में) साझे के धन में के अपने भाग को इच्छानुसार उपहार में देने में समर्थ नहीं होते । फिर वे (उसे) बेच और गिरवी भी नहीं रख सकते ।

संसृष्टिनि मृते नो स्युस्तत्पुत्रास्तु तदुत्तराः ।
किन्तु स्युस्ते हि संसृष्टा ये जीवन्ति तदुत्तरम् १४०६॥

साझेदार कुटुम्बी के मरने पर उसके पुत्र उत्तराधिकारी नहीं होते, परन्तु वे साझेदार, जो उसके बाद जीवित रहते हैं, हकदार होते हैं ।

संसृष्टेभ्य इहाऽन्येभ्यः संसृष्टाऽर्थप्रबन्धकः ।
संसृष्टार्थोपयोगे स्याद् विशेषादधिकारवान् ॥१४०७॥

जगत् में दूसरे साझेदारों से साझे के धन का प्रबन्ध करनेवाला (manager) साझे के धन के उपयोग (काम में लेने) में विशेष अधिकारवाला होता है ।

संसृष्टाऽर्थे विशिष्टैव पितुरप्यधिकारिता ।
उपहर्तुं च विक्रेतुं मितमानं क्षमः स तम् ॥१४०८॥

साझे के धन में पिता का भी खास अधिकार होता ही है । वह एक उचित सीमा तक उस (धन) को उपहार में देने या बेचने में समर्थ होता है ।

प्रबन्धकस्तदधिकाराश्च ।

प्रबन्ध करनेवाला और उसके अधिकार ।

वंशज्येष्ठेन पित्रा वा संसृष्टाऽर्थो नियन्त्र्यते ।
स एव धर्मशास्त्रे च कर्तेति परिकीर्त्यते ॥१४०६॥

साझे के धन का प्रबन्ध वंश में बड़े पुरुष द्वारा या पिता द्वारा किया जाता है; और वही (प्रबन्ध करने वाला) धर्मशास्त्र में 'कर्त्ता' कहा जाता है ।

प्रकृत्यैव पिता कर्ता श्लिष्टवंशार्थयन्त्रणे ।
आवश्यकतया चासौ पुत्रा यत्राऽवयःस्थिताः ॥१४१०॥

साझे के धन के प्रबन्ध में पिता प्रकृति से ही (कुदरती) कर्ता होता है और जहां पुत्र नाबालिग हों, वहां यह आवश्यकता के कारण कर्ता होता है ।

वंशज्येष्ठस्त्यजेद्यत्र कर्तृत्वं तत्र वंशगाः ।
कनिष्ठमपि कर्तृत्वे नियोक्तुं तु क्षमा मताः ॥१४११॥

जहां पर वंश का बड़ा कर्तापन छोड़ दे, वहां वंशवाले छोटे को भी कर्तापन पर नियुक्त कर सकते हैं ।

धर्मार्थमपि या वंशे संपदः स्यात्पृथक्कृताः ।
तासां नियन्त्रणायापि कर्तैवात्र क्षमो भवेत् ॥१४१२॥

कुटुम्ब में धर्म के लिए भी जो संपत्तियां अलग की गई हों, उनके प्रबन्ध के लिए भी यहां पर कर्ता ही समर्थ होता है ।

जन्मतोऽधिगतस्वार्था अपि श्लिष्टे धने सुताः ।
वंशलाभकृते पित्रा कृतं तत्रोचितं व्ययम् ॥१४१३॥
विरोद्धुं न क्षमा, नो च पितुरिच्छां विनैव ते ।
अधिकर्तुं विशिष्टांऽशं शक्तास्तत्संपदः पुनः ॥१४१४॥
क्रियेताधिकृतिस्तैश्चेत्तदंशे तर्हि तत्पिता ।
अभियुज्य तु तां च्छक्तः प्रत्यादातुं तदंशकम् ॥१४१५॥
परं पितृप्रबन्धश्चेत्तेषु कस्यापि नेहितः ।
स तर्हि तु विभागं स्वं पृथक्कारयितुं क्षमः ॥१४१६॥

पुत्र साझे के धन में जन्म से स्वार्थ (हक) पाये हुए होकर भी, वहां पर पिता द्वारा कुटुम्ब के लाभ के लिए किये उचित खर्च का विरोध नहीं कर सकते; न वे फिर पिता की इच्छा के बिना ही उस संपत्ति के किसी खास भाग पर अधिकार कर सकते हैं । यदि उनके द्वारा अधिकार करलिया जाय, तो उनका पिता उन पर मुकद्दमा चलाकर उस अंश को पीछा ले सकता है । परन्तु यदि उनमें किसी को पिता का किया प्रबन्ध पसंद न हो, तो वह अपना हिस्सा अलग करवा सकता है ।

कर्तुर्भोगेऽधिकारस्तु समोऽपरकुटुम्बिभिः ।
केवलं तद्व्यये न्याय्ये किन्तु तत्र विशेषता ॥१४१७॥
कर्ता त्वायव्ययं यन्तुं चितमायं सुरक्षितुम् ।
व्ययितुं वंशकार्येऽर्थं तं च शक्तो यथेप्सितम् ॥१४१८॥

कर्ता का (संपत्ति के) भोगने में तो दूसरे कुटुम्बियों के समान ही अधिकार होता है, परन्तु केवल उस (संपत्ति) के न्याय्य (उचित) खर्च में वहां पर विशेषता है । कर्ता (manager) (उस धन की) आमदनी और खर्च का नियन्त्रण करने, इकट्ठी हुई आमदनी की रक्षा करने और उस धन को कुटुम्ब के काम में इच्छानुसार खर्च करने में समर्थ होता है ।

आयस्य संचयो नास्य प्रबन्धेऽपेक्षितस्तथा ।
यथा वैतनिकस्याथ निक्षेपाधिकृतस्य वा ॥१४१९॥

इस (कर्त्ता) के प्रबन्ध में आमदनी का इकट्ठा करना उतना आवश्यक नहीं होता, जितना तनखा पानेवाले (प्रबन्धक) के या निक्षेप के अधिकारी बनाये (trustee) के प्रबन्ध में होता है । (अर्थात्-पिछले दोनों के लिए बचत करना आवश्यक होता है ।)

संसृष्टार्थस्य कर्तैव रक्षकश्च नियामकः ।
ज्ञात्वा कृतेऽपव्यये तु स एवैतस्य भारभृत् ॥१४२०॥

कर्ता ही साझे के धन का रक्षक और प्रबन्धक होता है । जानकर किये बेजा खर्च में तो वही उसका जिम्मेदार होता है ।

अपव्ययरते तस्मिन् संसृष्टास्तोषवर्जिताः ।
स्व-स्वांशं विभजेयुर्हि सुसमीक्ष्य व्ययादिकम् ॥१४२१॥

उस (कर्ता) के बेजा खर्च में लगे होने पर असंतुष्ट हुए साझेदार निश्चय ही खर्च आदि की जांच करके अपना-अपना हिस्सा बांट ले सकते हैं ।

विद्याविवाहनिर्वाहश्राद्धधार्मिककर्मसु ।
संसृष्टेभ्योऽधिकं वोनं व्ययितं न्याय्यमुच्यते ॥१४२२॥

पढ़ाई, विवाह, गुजारा, श्राद्ध और (दूसरे आवश्यक) धर्म संबन्धी कामों में साझेदारों के लिए खर्च किया अधिक या कम धन न्याय्य (उचित) कहा जाता है । (अर्थात्-इन कामों में प्रत्येक साझेदार की परिस्थिति के अनुसार अधिक या कम धन खर्च किया जाना उचित ही माना गया है । जिस कुटुम्बी के अधिक वंशज होंगे, उस पर अधिक और जिसके कम होंगे उस पर कम खर्च होना स्वाभाविक ही है ।)

अन्याय्याऽपव्ययो नास्ति नाऽस्ति चेद् गोपनं तदा ।
विसृज्यमानः संसृष्टो वर्तमानाऽर्थभागभाक् ॥१४२३॥

यदि बेजा तौर पर फ़ज़ूल खर्च न हो और (किसी बात का) छिपाना न हो, तो जुदा होता हुआ साझेदार मौजूदा धन का ही हिस्सा पाता है ।

तथा सति न शक्तः स प्राक्तनायव्ययाय तु ।
वियुज्यमानः कर्तारं प्रष्टुं वै श्लिष्टसंपदः ॥१४२४॥
परं दर्शयितुं शक्तः कर्तु रायव्ययच्छलम् ।
धनमव्ययितं तेन व्यये संदर्शितं यदि ॥१४२५॥
अथवा चेद्विभजने संपत्तिस्तेन निह्नुता ।
विशदीकर्तुमपि तां क्षमः सोऽत्र मतो बुधैः ॥१४२६॥

ऐसा होने पर वह जुदा होता हुआ साझेदार साझे की संपत्ति की पुरानी आमदनी और खर्च के लिए कर्ता को नहीं पूछ सकता । परन्तु यदि उस कर्ता ने बिना खर्च किया धन खर्च में दिखाया हो, तो कर्ता के जमा-खर्च के कपट को दिखा सकता है । या बटवारे में यदि उस (कर्ता) ने संपत्ति छिपाली हो, तो उसे प्रकट करने में भी विद्वानों ने उसे, यहां पर, समर्थ माना है ।

संसृष्टिरधिकारश्च कर्तु रायव्यये पुनः ।
विभागाऽर्थं समारब्धेऽभियोगे तु प्रणश्यति ॥१४२७॥

हिस्सेदारी के लिए मुकद्दमा चलाये जाने पर साझा और फिर कर्ता (Manager) का आमदनी और खर्च का अधिकार नष्ट हो जाता है ।

तद्दिनात्स ततो रक्षेत्संख्यामायव्ययस्य तु ।
व्ययावशेषमायं च श्लिष्टेषु विभजेत्पुनः ॥१४२८॥
यावन्मात्रं तु लाभाय संपदस्तत्कृतेऽथवा ।
आवश्यकं स गृह्णीयात्तावन्मात्रं धनं ततः ॥१४२९॥

इस लिए उस (बटवारे के लिए किये मुकद्दमे के) दिन से वह जमा-खर्च का हिसाब रक्खे और खर्च से बची आमदनी को साझेदारों में बाँट दे । तथा जितनासा धन संपत्ति के लाभ के लिए या उस (संपत्ति) के लिए आवश्यक हो, उतना ही धन उस (संपत्ति) से ले ।

असन्तुष्टैः प्रबन्धेन कर्तुरत्राभियोजनम् ।
श्लिष्टैर्वयःस्थैर्भागार्थं कार्यमर्थस्य निश्चितम् ॥१४३०॥
नो चेत्तत्सप्रमादस्य प्रबन्धस्यानुमोदकाः ।
मन्यन्ते तेऽपि नो किन्तु स्खलनायाः कथञ्चन ॥१४३१॥

अवयःस्था न मन्यन्ते तत्प्रमादानुमोदकाः।
अतो जातवयस्कास्ते शक्ताः कर्त्रभियोजने ॥१४३२॥

कर्ता के प्रबन्ध से असन्तुष्ट बालिग साझेदारों को, निश्चय ही, धन के बटवारे के लिए मुकद्दमा चलाना चाहिए। नहीं तो वे भी उस (कर्ता) के गफलतवाले प्रबन्ध के अनुमोदन करनेवाले माने जाते हैं; परन्तु (उस कर्ता के) कपटजाल के (अनुमोदक) कभी नहीं माने जाते। नाबालिग (साझेदार) उस (कर्ता) की गफलत के अनुमोदन (स्वीकार) करनेवाले नहीं माने जाते। इसलिए बालिग होने पर वे कर्ता पर (उसकी गफलत से हुई हानि के लिए) मुकद्दमा चला सकते हैं।

संसृष्टेषु जनः कोऽपि संसृष्टायव्ययादिकम्।
प्रष्टुं वङ्गेऽभियोक्तुं च कर्तारं तत्कृते क्षमः ॥१४३३॥

बंगाल में साझेदारों में से कोई भी कर्ता से साझे की आमदनी और खर्च पूछ सकता है और उसके लिए मुकद्दमा चला सकता है।

संसृष्टस्य कुटुम्बस्य व्यवहारकृते क्षमः।
ऋणं न्याय्यं समादातुं कर्तैवान्यो जनस्तु नो ॥१४३४॥

साझे के कुटुम्ब के काम के लिए कर्ता ही उचित कर्जा लेने में समर्थ होता है, दूसरा पुरुष नहीं होता।

भारिणोऽन्येऽत्र संसृष्टा यावत् संसृष्टसंपदम्।
पूर्णभारभृतस्ते स्युः कर्तारः पणिनश्च ये ॥१४३५॥

उस (कर्ज) में दूसरे साझेदार साझे के धन की सीमा तक जिम्मेवार होते हैं। जो कर्ता और वादा करनेवाले होते हैं, वे पूरा बोझ उठानेवाले (पूरे जिम्मेदार) होते हैं।

ऋणादानोत्तरं श्लिष्टो वियुज्येत तदापि नो।
वंशर्णभारतो मुक्तो भवेत्स तु कथञ्चन ॥१४३६॥

कर्ज लेने के बाद यदि साझेदार जुदा हो जाय, तो भी वह कुटुम्ब के कर्ज के भार (जिम्मेवारी) से किसी तरह नहीं छूटता।

संश्लिष्टेष्ववशिष्टेन गृहीतं तु ऋणं पुनः।
प्रातिनिध्येन संश्लिष्टकुटुम्बस्यैव संमतम् ॥१४३७॥

साझेदारों में पीछे बचे एक द्वारा लिया कर्जा उसके साझे के कुटुम्ब के प्रतिनिधि के रूप से लिया ही माना गया है।

कर्त्राऽवश्यकतां वंश्यां प्रदर्श्यर्णे कृते तथा।
वंश्यव्यापारकार्यार्थं कृते दात्राथ सर्वथा ॥१४३८॥

अनुसन्धाय तस्योक्तं दत्ते तस्मिंस्तु स क्षमः ।
अभियोक्तुं तदर्थं हि सर्वस्यै कुलसंपदे ॥१४३९॥
परं चेन्न क्षमः सोऽत्रावश्यकत्वस्य दर्शने ।
ऋणस्य, स्वानुसन्धानस्योचितस्य कृतस्य वा ॥१४४०॥
दानात् प्राक्, कर्तुरुक्ते वा यथार्थत्वेऽनिवार्यता ।
ऋणस्य सिद्धा सुतरां वंशलाभार्थतास्य वा ॥१४४१॥
तर्हीदृशीष्ववस्थासु न क्षमस्त्वभियोजने ।
श्लिष्टायै सर्वसंपत्त्यायिति न्यायविनिश्चितम् ॥१४४२॥

कर्ता द्वारा वंश में उत्पन्न हुई आवश्यकता को प्रकट करके या वंश में होनेवाले व्यापार के काम के लिए कर्ज़ा लेने पर और (कर्ज़ा) देनेवाले के उस (कर्ता) के कहे की, निश्चित रूप से, छान-बीन कर के उस (कर्ज़े) को देने पर वह (कर्ज़ देनेवाला) उस (कर्ज़े) के विषय में सारी ही कुटुम्ब की संपत्ति के लिए मुक़द्दमा चला सकता है । परन्तु यदि वह (कर्ज़ा) देनेवाला, यहां पर, कर्ज़े की आवश्यकता दिखाने में अथवा (कर्ज़ा) देने के पहले उचितरूप से की छान-बीन को या कर्ता की कही बात के ठीक होने पर कर्ज़े की आवश्यकता ठीक तौर से प्रमाणित होती थी इस बात को या उस (कर्ज़े) की वंश की हितकारिता को दिखाने में असमर्थ होता है तो ऐसी अवस्थाओं में साझे की सारी संपत्ति के लिए मुक़द्दमा नहीं चला सकता--ऐसा कानून से निश्चित किया गया है ।

प्रतिज्ञापत्रमथ चेद्दत्वा कर्त्रर्णं कृतम् ।
कुटुम्बव्यवसायार्थं कुटुम्बार्थमथो तदा ॥१४४३॥
अभियोक्तुं क्षमो दाता सर्वांश्छ्लिष्टान् हि वंशजान् ।
यद्यप्येते न तत्रासन् युक्तास्तत्पत्रलेखने ॥१४४४॥
परं संपद्गतस्वार्थपर्यन्तं ते तु भारिणः ।
यतो लेखे तु ये युक्तास्त एवाखिलभारिणः ॥१४४५॥

यदि कर्ता (प्रबन्धक) ने कुटुम्ब के व्यापार के या कुटुम्ब के लिए प्रतिज्ञा-पत्र (promissory note) देकर कर्ज़ा किया हो, तो (कर्ज़) देनेवाला सारे ही साझेदार कुटुम्बियों पर, यद्यपि वे वहां पर उस प्रतिज्ञा पत्र लिखने में शामिल नहीं थे, (तथापि) मुक़द्दमा चला सकता है । परन्तु वे (साझेदार) (उस साझे की) संपत्ति में रहे अपने स्वार्थ तक ही जिम्मेदार होते हैं, क्योंकि जो लेख (लिखने) में शामिल होते हैं, वे ही पूरे जिम्मेदार होते हैं ।

श्लिष्टेषु तेषु चेद्दात्राऽभियोगः स्यात्कृतस्तदा ।
कर्तारमभियुज्यैव संयोज्याऽन्यानपीह वा ॥१४४६॥

भारं न्यासयितुं शक्तः संश्लिष्टे स धनेऽखिले।
अभियुक्तिः परेषां तु दात्रिच्छावशगा मता ॥१४४७॥
विभागान्तेऽभियुक्तौ तु संयोज्या अपरे ध्रुवम्।
यतस्तेभ्यः स दत्तांशमप्यादातुं क्षमो भवेत् ॥१४४८॥

यदि (कर्ज) देनेवाले ने उनके साझे में रहते मुकद्दमा चलाया हो, तो कर्ता पर मुकद्दमा करके ही अथवा दूसरों (अन्य साझेदारों) को भी उसमें शामिल करके, वह साझे के सारे ही धन पर जिम्मेवारी डलवा सकता है। दूसरे साझेदारों पर मुकद्दमा करना तो (कर्ज) देनेवाले की इच्छा के अधीन माना गया है। परन्तु बटवारे के बाद किये मुकद्दमे में तो निश्चय ही दूसरों को भी शामिल कर लेना चाहिए; जिससे कि वह उनको दिये हिस्से को भी ले सके।

दानाऽऽदाने पणे चाङ्गीकारलेखे मिथः कृते।
समये च क्षमः कर्ता व्यवसायस्य सिद्धये ॥१४४९॥

(साझे के) व्यापार को ठीक रखने के लिए कर्ता देन-लेन में, वादा (contract) करने में, रसीद-लिखने में और आपस में फैसला (compromise) करने में (भी) समर्थ होता है।

कर्तुः श्लिष्टधने ज्ञेयोऽधिकारस्तु समः पुनः।
प्रबन्धकेनावयस्थदायादस्य धनस्य हि ॥१४५०॥

फिर साझे के धन में कर्ता (manager) का अधिकार नाबालिग दायाद (heir) के धन के प्रबन्धक (manager) के समान ही होता है।

वयःस्थितानां श्लिष्टानां विनैवानुमतिं क्षमः।
विक्रेतुं श्लिष्टसंपत्तिं मूल्येनात्रोचितेन तु ॥१४५१॥
कर्ता श्लिष्टार्थलाभाय न्याय्यकार्याय वा पुनः।
वयःस्थैरवयःस्थैश्च श्लिष्टैर्मान्यः स विक्रयः ॥१४५२॥
मान्यत्वे विक्रयस्यात्र यतो नैवास्त्यपेक्षिता।
श्लिष्टानां हि वयःस्थानामाज्ञा न्यायविशारदैः ॥१४५३॥

कर्ता, साझे के धन के लाभ के लिए या फिर न्याय्य कार्य (legal necessity) के लिए, बालिग साझेदारों की अनुमति (आज्ञा) के बिना ही, साझे की संपत्ति को, यहां पर, उचित मूल्य से बेच सकता है। वह बेचान बालिग और नाबालिग साझेदारों को मानना होता है। क्योंकि, यहां पर, बेचान की मान्यता में कानून के पण्डितों ने बालिग साझेदारों की आज्ञा की आवश्यकता नहीं समझी है।

यत्र कर्त्ता वयःस्थैश्च श्लिष्टैरनुमतः पुनः।
विक्रयः श्लिष्टसंपत्तेस्तत्र नैतत्प्रमाणयेत् ॥१४५४॥

न्याय्यावश्यकतां, तस्माद् बाध्यन्ते नावयःस्थिताः।
तेन तत्त्वनिवार्यत्वप्रमाणे त्रुटिपूरकम् ॥१४५५॥

फिर जहां पर साझे के धन का बेचान कर्ता ने और बालिग साझेदारों ने मान लिया हो, वहां पर यह बात न्याय्य आवश्यकता का होना प्रमाणित नहीं करती। इसलिए उस बात से नाबालिग नहीं बांधे जाते। वह तो अनिवार्यता (आवश्यकता) के प्रमाण में कोई कसर हो तो उसे पूरा करती है। (अर्थात्–स्वयं आवश्यकता का प्रमाण नहीं होती।)

वयःस्थानां तु संसृष्टौ तेषामाज्ञामवाप्य चेत्।
कर्त्राऽनिवार्यताऽभावे व्ययिताः श्लिष्टसंपदः ॥१४५६॥
तर्हि मान्यो व्ययस्त्वेष परं नासादिता यदि।
आज्ञा तेषां तु सर्वेषां व्यय एष तदा खलु ॥१४५७॥
द्रविडेऽथ महाराष्ट्रे भागमाज्ञाप्रदायिनाम्।
एव बध्नाति किन्त्वेष वङ्गदेशेऽथ कोशले ॥१४५८॥
न बध्नीयाद् विभागान् हि कर्तुराज्ञाकृतामपि।
नूनं तत्र मतोऽशक्तो जनः संश्लिष्टिगं निजम् ॥१४५९॥
विभागमपि विक्रेतुं सर्वेषां श्लिष्टिभागिनाम्।
आज्ञामृतेऽत उक्तोऽसौ विक्रयो निष्फलो मतः ॥१४६०॥

कर्ता ने यदि (केवल) बालिगों के साझे में, उन (सब) की आज्ञा प्राप्त करके साझे का धन आवश्यकता के अभाव में भी खर्च कर दिया (बेच दिया) हो, तो यह खर्च मान्य होता है। परन्तु यदि उन सब की आज्ञा नहीं ली हो, तो निश्चय ही, यह खर्च मद्रास और बंबई प्रान्त में आज्ञा देनेवालों के हिस्से को ही बांधता है। किन्तु बंगाल प्रदेश में और संयुक्त प्रान्त में कर्ता और आज्ञा करने (देने) वालों के हिस्सों को भी नहीं बांधता। क्योंकि वहां पर निश्चय ही पुरुष साझे में रहे अपने भाग को भी सारे ही साझेदारों की आज्ञा के विना नहीं बेच सकता। इसलिए यह कहा हुआ बेचान निष्फल माना गया है।

विक्रयस्तु कृतः कर्त्रा श्लिष्टायाः संपदो ध्रुवम्।
न्याय्यावश्यकताऽभावे नाऽमान्यः स्वयमेव हि ॥१४६१॥
श्लिष्टाधीनः परं तस्य मान्यामान्यत्वनिर्णयः।
उत्तमर्णस्तु नो तस्य प्रत्याख्याने क्षमो मतः ॥१४६२॥

कर्ताद्वारा विना न्याय्य आवश्यकता के किया साझे के धन का बेचान निश्चय ही अपने आप अमान्य नहीं होता। परन्तु उसके मानने या नहीं मानने लायक होने का निर्णय साझेदारों के अधीन होता है। रुपया देनेवाला (creditor) उसका विरोध (repudiation) करने में समर्थ नहीं माना गया है।

व्ययेन विक्रयोऽर्थस्य बन्धकीकरणं तथा ।
स्थायिपट्टे प्रदानं वा गृह्यतेऽत्र विशारदैः ॥१४६३॥

यहां पर विद्वानों द्वारा व्यय (alienation) से धन का बेचान (sale), गिरवी रखना (mortgage) या स्थायी पट्टे (permanent lease) पर देना लिया जाता है ।

उत्तमर्णोऽधमर्णस्य ऋणार्थव्ययहेतवे ।
नैवोत्तरप्रदस्तत्र कर्तैवोत्तरदो मतः ॥१४६४॥

रुपया देनेवाला रुपया लेनेवाले के कर्ज़ के (लिए लिये) धन के खर्च के लिए जिम्मेदार नहीं होता । वहां पर तो कर्ता ही जिम्मेवार होता है ।

व्ययो राजकरोद्धारदाने संसृष्टसंपदः ।
संसृष्टानां सवंश्यानां पालनस्य व्ययः पुनः ॥१४६५॥
तेषां विवाहे मरणे तत्कन्योपयमे च यः ।
अपराधेऽभियुक्तानां तेषां रक्षाकृते तथा ॥१४६६॥
उद्धारे रक्षणे वाऽथ व्ययः संसृष्टसंपदः ।
व्यापारादिकृते यश्च परिवारकृते च यः ॥१४६७॥
अन्यः सोऽत्र बुधैर्ज्ञेयो न्याय्य आवश्यको व्ययः ।
तदर्थं स्यात् क्षमः कर्ता विक्रेतुमपि संपदम् ॥१४६८॥

साझे के धन पर के राज्य के कर और कर्ज़ के देने का खर्च, कुटुम्ब सहित साझेदारों के भरण-पोषण का खर्च और जो खर्च उन (साझेदारों) के विवाह, मरण और उन की कन्याओं के विवाहों में हो और जो अपराध में अभियुक्त हुए, उन (साझेदारों) की रक्षा के लिए हो, अथवा साझे की संपत्ति के बचाने और उसकी रक्षा करने का खर्च, या जो खर्च (साझे के) व्यापार आदि के लिए हो, या कुटुम्ब के लिए अन्य प्रकार से हो, उसे विद्वानों को, जगत् में, उचित और जरूरी खर्च समझना चाहिए । कर्ता उसके लिए संपत्ति को बेच भी सकता है ।

मिताक्षराबृहस्पतिमतयोस्तु[1]—

मिताक्षरा और बृहस्पति के मत में तो ।

(१) संपत्तिव्यये मिताक्षरा वचनम्—
संपत्ति के खर्च के विषय में मिताक्षरा में लिखा है—

स्थावरं द्विपदं चैव यद्यपि स्वयमर्जितम् ।
असंभूय सुतान् सर्वान् न दानं न च विक्रयः ॥

मिताक्षरामतेनाऽत्र पिता स्थावरसंपदम् ।
विच्छेत्तुमसमर्थः स्यादननुज्ञात आत्मजैः ॥

मिताक्षरा के मत से पिता विना पुत्रों की अनुमति के स्थावर संपत्ति को नहीं खर्च कर सकता । (बेच, दे, या गिरवी नहीं रख सकता) ।

गुरोर्मते तथैकोऽपि विच्छेत्तुं स्थावरं धनम् ।
कृच्छ्रे कुटुम्बरक्षार्थं श्रेयसे ऽप्यथवा क्षमः ॥

और वृहस्पति के मत में अकेला भी आपत्ति के समय, कुटुम्ब-रक्षा के लिए या शुभ कार्य के लिए अचल संपत्ति को खर्च कर सकता है । (बेच, दे, या गिरवी रख सकता है) ।

परं कर्ता पितुर्भिन्नो यदि तर्हि तु केवलम् ।
ऋणं पुराणमेवासीदित्यलं न प्रदर्शनम् ॥१४६९॥

परन्तु कर्ता यदि पिता से भिन्न हो, तो कर्ज़ा पुराना था, केवल ऐसा बतलाना (साझे की संपत्ति के खर्च की न्याय्यता के लिए) पर्याप्त नहीं होता ।

लाभेऽपि संपदो नूनं मतैक्यं नैव विद्यते ।
एकेषां तु मते नाशात्संकटाद्वा सुरक्षणम् ॥१४७०॥
संपदश्चापरेषां तु मते यद्दूरदर्शिना ।
स्वामिना वा निधे रक्षाधिकृतेन विचार्य हि ॥१४७१॥
तात्कालिकीं स्थितिं लभ्यां व्यवहारस्तु संपदः ।
कृतः स संपदो लाभ इत्येतेन प्रगृह्यते ॥१४७२॥

संपत्ति के लाभ के विषय में भी एक मत नहीं जाना जाता । कुछ लोगों के मत में तो संपत्ति का नष्ट होने से या संकट से बचाना और दूसरों के मत में तो दूरदर्शी स्वामी द्वारा या ट्रस्टी (रक्षक) द्वारा उस समय की प्राप्त (ज्ञात) हो सकने लायक स्थिति को विचार कर संपत्ति का जो लेन-देन (transaction) किया गया हो उसे संपत्ति का लाभ इस (कथन) से ग्रहण किया जाता है ।

स्थावर और दास-दासी आदि यद्यपि स्वयं प्राप्त किये हों, तथापि सब पुत्रों की संमति के विना न उनका दान किया जा सकता है न बेचान ही ।

वृहस्पतिस्तु--

परन्तु वृहस्पति ने लिखा है--

एकोऽपि स्थावरे कुर्याद्दानाधमनविक्रयम् ।
आपत्काले कुटुम्बार्थे धर्मार्थे च विशेषतः ॥

आपत्ति काल में कुटुम्ब के लिए और विशेष कर धर्म के लिए अकेला (पुरुष) भी स्थावर संपत्ति का दान, गिरवी रखना और बेचान कर सकता है ।

यस्त्वस्याः सुप्रबन्धस्य कृत आवश्यको भवेत् ।
व्यवहारः स चाप्यत्र संपल्लाभाय मन्यते ॥१४७३॥

जो देन-लेन इस (संपत्ति के) अच्छे प्रबन्ध के लिए आवश्यक हो, वह भी यहां पर संपत्ति के लाभ के लिए माना जाता है ।

आधीयेरन्, यदा कर्त्रा विक्रीयेरन् यदाऽथवा ।
संसृष्टसंपदो लोके तदा तु धनदः स्वयम् ॥१४७४॥
निमित्तं प्राक् परीक्षेत विक्रयस्य यथोचितम् ।
यतोऽभियोगसंप्राप्तौ स तदुत्तरदो मतः ॥१४७५॥

जगत् में जिस समय कर्ता द्वारा साझे की संपत्ति गिरवी रक्खी जाय अथवा जिस समय बेची जाय, उस समय रुपया देनेवाला खुद ही पहले बेचने के उचित कारण की परीक्षा करले, क्योंकि मुकद्दमा चलने पर वही उसका उत्तरदाता माना गया है ।

आधिग्रहेच्छुः प्रोत्साह्य ह्यवयःस्थस्य रक्षकम् ।
न्यायालयाज्ञामादातुमाधीकृत्य तु तद्धनम् ॥१४७६॥
ऋणादानाय, शक्तो न तदाधारतया परम् ।
प्रागुक्तादनुसंधानभारादाप्तुं स्वमोक्षणम् ॥१४७७॥

गिरवी लेनेवाला नाबालिग के रक्षक को उस (नाबालिग) के धन को गिरवी रखकर कर्जा लेने की न्यायालय की आज्ञा प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित कर उस (आज्ञा) के आधार पर पहले कही छान-बीन के भार से अपने को मुक्त नहीं कर सकता ।

आध्यादाताऽथवा क्रेता न्याय्यावश्यकतां यदि ।
साधयेत्तर्हि कर्तुः प्राक्प्रबन्धस्य प्रमादतः ॥१४७८॥
जातायामपि तस्यां तु मान्य एव व्ययो भवेत् ।
चेन्नोत्तमर्णस्तत्र स्यात्प्रमादे कारणं स्वयम् ॥१४७९॥

यदि गिरवी लेनेवाला या खरीदनेवाला न्याय्य आवश्यकता को सिद्ध करदे, तो कर्ता की पहले प्रबन्ध की गफलत से उस (आवश्यकता) के पैदा होने पर भी, यदि रुपया देनेवाला खुद उस गफलत में कारण (शामिल) न हो तो, (धन का) खर्च मान्य ही होता है ।

अथ चेत्स्वानुसंधानं न्याय्यमेष प्रमाणयेत् ।
कृतं प्रागृणदानाद्धि, कर्तुरुक्तिमथो पुनः ॥१४८०॥
यथार्थत्वे तु यस्याभूत्सिद्धाऽवश्यकता खलु ।
तर्ह्यप्यत्र भवेन् न्याय्यो व्यवहारस्तु संपदः ॥१४८१॥

अथवा यदि यह (कर्ज देनेवाला) कर्ज देने के पहले की अपनी उचित

खोज का, या कर्ता के कहने को, जिसके ठीक होने पर निश्चय ही (कर्ज की) आवश्यकता सिद्ध होती थी, प्रमाणित करदे, तो भी यहां पर धन का देन-लेन न्याय्य होता है।

कर्ताऽऽप्तमत्र संसृष्टसंपदो विक्रये धनम्।
कथं प्रयुक्तमित्यत्र धनदो नोत्तरप्रदः ॥१४८२॥

कर्ता ने यहां पर साझे की संपत्ति को बेचने में पाया धन कैसे काम में लिया था इस विषय में धन देनेवाला उत्तरदाता नहीं होता।

यथासंपत्ति तद्वृद्धिर्निश्चेया चोचिता बुधैः।
अन्याय्यायां तु तस्यां स्यात् प्राड्विवाकैर्हि निर्णयः।१४८३

विद्वानों को संपत्ति के अनुसार ही उसका उचित सूद निश्चित करना चाहिए। उस (सूद) के अनुचित होने पर न्यायाधीशों द्वारा निर्णय होता है।

पुराणबन्धकोत्पन्नऋणोद्धाराय यः कृतः।
समयो विक्रयार्थं हि संपत्तेर्मान्य एव सः ॥१४८४॥
न्याय्यावश्यकता तत्र यतःसिद्धा मता परम्।
यत्र प्राक्समयं कृत्वा कर्ता विक्रयहेतवे ॥१४८५॥
धनांशस्य न शक्तः स्यात्पूर्णं कर्तुं हि तत्पणम्।
कालान्तरे पुनर्जाते ह्रासे मूल्यस्य संपदः ॥१४८६॥
अपर्याप्ते तथा तस्मिन् वंश्यावश्यकताकृते।
स एव पूर्णयेत्तं तु समयं तत्र नो मतः ॥१४८७॥
मान्यः स विक्रयः किन्तु बन्धकर्णकृते यदि।
विक्रयाप्तं धनं तत्तु प्रयुक्तं तर्हि स क्षमः ॥१४८८॥
उत्तमर्णोऽधिकर्तुं तद् बन्धकस्थं धनं ध्रुवम्।
संसृष्टा एव तत्र स्युर्लाभाधिक्यात्तु वञ्चिताः ॥१४८९॥
यथा कालेऽभवत्पूर्वं विक्रयस्य पणस्य हि।
मूल्याधिक्यं तु पण्यस्य न्यूनताधिऋणस्य च ॥१४९०॥
परं स समयो नैवं कर्त्रा संपूरितस्तदा।
पुनर्यदा समे मूल्यऋणे जाते तदा कृतः ॥१४९१॥
विक्रयस्य पणः पूर्णः संसृष्टा येन वञ्चिताः।
तन्मूल्याधिक्यतालाभप्राप्तितस्त्वभवन् ध्रुवम् ॥१४९२॥

पुराने, गिरवी रखने से उत्पन्न हुए, कर्जे को चुकाने को जो संपत्ति को बेचने का वादा (contract) किया हो, वह मान्य ही होता है; क्योंकि वहां पर न्याय्य आवश्यकता सिद्ध हुई मानी जाती है। परन्तु जहां पर कर्ता पहले धन के एक भाग

को बेचने के लिए पहले वादा करके उस वादे को पूरा करने को समर्थ न हो, और फिर वही (कर्ता) दूसरे वक्त संपत्ति के मूल्य की कमी होने पर और उस (मूल्य) के कुटुम्ब की आवश्यकता के लिए पर्याप्त न होने पर, उस वादे (contract) को पूरा करे, वहां पर वह बेचान मान्य नहीं माना गया है। परन्तु यदि बेचान से पाया वह धन गिरवी के कर्जे के लिए (उस कर्जे के देने के लिए) काम में लिया गया हो, तो वह रुपया देनेवाला उस गिरवी में रहे धन पर, निश्चय ही, अधिकार कर सकता है। वहां पर साझेदार ही अधिक लाभ से वञ्चित होते हैं। जैसे--पहले बेचान के वादे के समय बेची जानेवाली वस्तु के मूल्य की अधिकता और गिरवी के कर्जे की कमी थी, परन्तु कर्ता ने वह वादा (contract) उस समय पूरा नहीं किया। फिर जब मूल्य और कर्ज बराबर होगये, तब बेचान का वादा पूरा किया, जिससे कि साझेदार उसके अधिक मूल्य की प्राप्ति के लाभ से निश्चय ही, वञ्चित हो गये।

शिलष्टार्थविक्रयाप्तार्थं समग्रं न प्रयोजितम्।
कर्त्रा तस्मिन् यदर्थं स विक्रीतोऽर्थः कुटुम्बगः ॥१४८३॥
परं क्रेत्रा तु स क्रीतो विधानोक्तप्रकारतः।
यत्र तत्र तु यो मान्यः प्राक् प्रोक्तो विक्रयः स तु ॥१४८४॥
कोशले विक्रये मान्यो नाधौ किन्तु कथञ्चन।
विक्रये हि यतोऽशक्तस्तावन्मात्रं धनं जनः ॥१४८५॥
विक्रयार्थं पृथक्कर्तुं यावन्मात्रस्य मूल्यतः।
ऋणोद्धाराय निर्दिष्टमेवार्थं प्राप्नुयादिह ॥१४८६॥
परमाधौ क्षमः कर्तोद्धारमात्रऋणग्रहे।
मिथिलायामपि पुनरेष एव मतो विधिः ॥१४८७॥

जहां पर कर्ता ने साझे के धन को बेचने से मिला सारा-धन उस काम में, जिसके लिए वह कुटुम्ब का धन बेचा गया था, नहीं लगाया हो, परन्तु खरीदने वाले ने कानून में कही रीति से (अनुसंधान आदि करके) उसे खरीदा हो, वहां पर जो पहले बेचान को मान्य कहा है, वह अवध में बेचान में ही मान्य होता है, गिरवी रखने में किसी तरह भी नहीं होता। क्योंकि पुरुष बेचने में उतना धन बेचने के लिए अलग नहीं कर सकता, जितने की कीमत से यहां पर कर्ज को चुकाने के लिए नियत किया मूल्य ही प्राप्त कर सके। परन्तु गिरवी रखने में केवल कर्ज के बराबर उधार ले सकता है। पटना में भी यही रीति मानी गई है।

आसन्नानां हि कर्तृणामभावे मातरोऽधवाः।
कर्त्र्यः स्युरवयस्कानां पुत्राणां न्यायतो ध्रुवम् ॥१४८८॥

नजदीकी कर्ताओं के न होने पर निश्चय ही कानून के अनुसार विधवा मातायें नाबालिग लड़कों की अभिभाविकायें हो सकती हैं।

वंशव्यापारजन्याय्यावश्यकत्वप्रपूर्तये।
आधीकर्तुं च विक्रेतुं कर्तार्थं वंशगं क्षमः ॥१४९९॥
अत्रावश्यकता तज्जऋणदानाय वाथवा।
तत्कार्यचालनायैव मता सन्न्यायशास्त्रिभिः ॥१५००॥
लाभालाभौ तु संचिन्त्य व्यापारस्याथ स ध्रुवम्।
तं विक्रेतुमथोद्धाराऽऽदत्या चालयितुं क्षमः ॥१५०१॥
एषु स्थलेषु क्रेता वाऽऽध्यादाता विधिरीतितः।
चेत्प्रवर्तेत तर्ह्यर्थो वंश्यस्तद्व्ययभारभृत् ॥१५०२॥
मान्यः पृक्तैर्वयःस्थैश्चावयःस्थैः स मतः पुनः।
उत्तमर्णो व्यापृतीयलाभालाभस्य नो मतः ॥१५०३॥
तत्रोत्तरप्रदो नैव दत्तवित्तव्ययस्य च।
तयोर्निर्णायकः कर्ता ह्येव तत्र मतो बुधैः ॥१५०४॥

कर्ता कुटुम्ब के व्यापार से उत्पन्न हुई न्याय्य आवश्यकता को पूरी करने के लिए कुटुम्ब के धन को गिरवी रखने और बेचने को समर्थ होता है। न्याय-शास्त्र के विद्वानों ने यहां पर उस (व्यापार) से उत्पन्न हुए कर्ज को देने अथवा उस (व्यापार) के काम को चलाने के लिए आवश्यकता मानी है। तथा वह (कर्ता) व्यापार के नफे और नुकसान को विचार कर उस (व्यापार) को, निश्चय ही, बेच सकता है या कर्ज लेकर चला सकता है। ऐसे स्थानों पर खरीदनेवाला या गिरवी रखनेवाला यदि कानून की रीति से (पहले आवश्यकता का अनुसंधान आदि करके) काम करता है, तो कुटुम्ब का धन उस (बेचने और गिरवी रखने द्वारा हुऐ) खर्च का जिम्मेदार होता है और वह (खर्च) बालिग और नाबालिग साझेदारों द्वारा मान्य माना गया है। फिर वहां पर पैसा देनेवाला (उस) व्यापार की हानि या लाभ का और दिए हुए धन के खर्च का उत्तरदाता नहीं माना गया है। विद्वानों ने, वहां पर, उन दोनों (बातों) का निर्णय करनेवाला कर्ता को ही माना है।

व्यापारस्यं विवृध्यर्थं नवपण्यक्रयेण तु।
कर्त्रा त्वाधीकृता संपद् बध्नात्यखिलसंपदम् ॥१५०५॥
पृक्तानामवयःस्थानां वयःस्थानां च निश्चितम्।
चेदाधीकरणं तत्तु स्वामिना दूरदर्शिना ॥१५०६॥
सुविचार्य स्थितिं सर्वां तत्रत्यां विहितं भवेत्।
निर्णयस्त्वेष विहितो न्यायशास्त्रविशारदैः ॥१५०७॥

कर्ता द्वारा नवीन व्यापार की वस्तु (fresh stock) खरीदकर व्यापार की वृद्धि करने के लिए गिरवी रक्खी संपत्ति, यदि दूरदर्शी (prudent) स्वामी (owner) द्वारा उस विषय की सारी ही स्थिति को अच्छी तरह से सोच-समझ कर गिरवी की गई हो, तो निश्चय ही, नाबालिग साझेदारों को सारी ही संपत्ति को बांधलेती है। यह निर्णय कानून के विद्वानों ने किया है।

जनको वाऽथ कर्तारः कुटुम्बहितकाम्यया।
संसृष्टार्थविवादांस्तु कर्तुं मध्यस्थसात् क्षमाः ॥१५०८॥

पिता या दूसरे कर्ता, परिवार की भलाई की इच्छा से, साझे के झगड़ों को मध्यस्थ के हाथ में देने में समर्थ होते हैं।

मध्यस्थनिर्णयस्तत्र संसृष्टैरपरैरपि।
वयःस्थैरवयःस्थैश्च मान्यो नूनं मतो बुधैः ॥१५०९॥

वहां पर मध्यस्थ का निर्णय विद्वानों ने बालिग और नाबालिग साझेदारों द्वारा निश्चय ही मान्य माना है।

कर्त्रा न्यायेन विहितः समयस्तु परस्परम्।
वंशलाभाय, मान्यः स्यादवयःस्थैरपि ध्रुवम् ॥१५१०॥

कर्ता द्वारा कुटुम्ब के लाभ के लिए न्याय से किया आपस का समझौता नाबालिगों के भी मानने लायक होता है।

अवयःस्थस्य पुत्रस्य पितृकर्तुश्च मध्यगम्।
संसृष्टाऽर्थविवादं तु निर्णेतुं न पिता क्षमः ॥१५११॥

पिता, नाबालिग पुत्र और कर्ता पिता (खुद) के बीच के साझे के धन के झगड़े का निर्णय करने में समर्थ नहीं होता।

न्यायालयाज्ञया किन्तु स तत्रापि क्षमो भवेत्।
अन्यथा निर्णयस्तस्याऽवयःस्थं नैव बाधते ॥१५१२॥

परन्तु अदालत की आज्ञा से वह (कर्ता) उसमें भी समर्थ होता है। बिना उस आज्ञा के उस (कर्ता) का निर्णय नाबालिग को नहीं बांधता।

पृक्तवंशऋणे कर्ता कर्तुं न्यायोचितं क्षमः
वंश्योऽवयःस्थो नो तस्य प्रत्याख्याने क्षमः पुनः ॥१५१३॥

कर्ता साझे के कुटुम्ब के कर्ज में न्याय से उचित माना हुआ काम कर है और नाबालिग कुटुम्बी उसका विरोध नहीं कर सकता।

ऋणेऽवधिस्थे कर्तैव कुर्याद् यदुचितं भवेत्।
निर्गताऽवधिके तस्मिन् सोप्यङ्गीकर्तुमक्षमः ॥१५१४॥

कर्जा मियाद के अन्दर हो तो कर्ता ही जो उचित समझे करे। उस (कर्जे) के मियाद से बाहर के होने पर वह (कर्ता) भी उसे स्वीकार नहीं कर सकता।

जाते विभागे कर्त्ताऽपि दत्वा मुद्रादिकं स्वयम्।
नाऽन्येभ्यस्तु कुटुम्बिभ्य ऋणं जीवयितुं क्षमः ॥१५१५॥

(साझे का) बटवारा हो जाने पर कर्ता भी, खुद रुपया आदि देकर, दूसरे परिवार वालों के लिए कर्जे को जीवित रखने (मियाद बाहर न जाने देने) में समर्थ नहीं होता।

नाऽपि शक्तः स संसृष्टमृणं त्यक्तुं निचेच्छया।
स्वऋणे चाऽथ नो तस्य भागिनोऽन्ये कुटुम्बिनः ॥१५१६॥

वह (कर्ता) साझे से दिये कर्जे को भी अपनी इच्छा से नहीं छोड़ सकता और उसके अपने कर्जे में दूसरे परिवारवाले हिस्सेदार नहीं होते।

यत्र त्वधिकृतः कर्ता स्वनाम्नैव करोत्यथ।
समयं विक्रयं वाधीकृतिं पृक्तधनस्य तु ॥१५१७॥
अभियोक्तुं परानन्यैर्भवितुं चाभियोगितः।
एक एव क्षमः स्वीयव्यवहाराय तत्र सः ॥१५१८॥
यत्र त्वाधीकृतिः कर्त्रा कृता स्वार्थं न केवलम्।
तस्यैव किन्तु सर्वेषामेव संसृष्टिनां पुनः ॥१५१९॥
बध्नाति, तत्र विज्ञेयो व्यवहारः कृतः स तु।
प्रातिनिध्येन सर्वेषां तेषां तस्मात्तु तत्कृते ॥१५२०॥
नावश्यकं मतं तेषामभियोगेऽनुमेलनम्।
प्रत्याख्याता परं तेषु योज्यस्तस्मिन्यदीच्छति ॥१५२१॥

जहां पर अधिकार प्राप्त किया हुआ कर्ता अपने नाम से ही साझे के धन के संबन्ध का वादा (cotract), बेचान, या गिरवी रखना करता है, वहां पर वह अपने किये काम (transaction) के लिए अकेला ही दूसरों पर मुकद्दमा चलाने और दूसरों द्वारा मुकद्दमे में अभियुक्त होने (be sued) में समर्थ होता है। फिर जहां पर कर्ता द्वारा गिरवी रक्खा जाना केवल उसी के स्वार्थ को नहीं, किन्तु सारे ही साझेदारों के स्वार्थ को बांधता हो, वहां पर वह काम (लेन-देन) उन सारों (साझेवालों) ही के प्रतिनिधिरूप से किया जानना चाहिये। इसलिये उस (लेन-देन) के लिए किये मुकद्दमे में उनका मिलाना (साथ करना) आवश्यक नहीं होता। परन्तु उनमें के विरोध करने वाले (साझेदार) को, यदि वह चाहे तो, अवश्य मिला लेना (अभियुक्त करलेना) चाहिये।

एकाऽधिकास्तु कर्तारः संसृष्टेऽर्थे पुनः क्वचित्।
संहता एव ते सर्वे प्रबन्धेष्वधिकारिणः ॥१५२२॥

फिर कहीं साझे के धन में एक से अधिक कर्त्ता होते हैं। तथा वे सब इकट्ठे ही प्रबन्ध में अधिकारी होते हैं।

संहता एव ते सर्वेऽभियोक्तुमपरान् क्षमाः।
अपरैरभियुज्यन्ते संसृष्टेषु त एव च ॥१५२३॥

वे सब इकट्ठे ही दूसरों पर मुकद्दमा चला सकते हैं और दूसरे भी साझेदारों में (केवल) उन्हीं पर मुद्दकमा दायर करते हैं। (अर्थात्–लेन-देन की कानूनी कार्रवाई के वे ही जिम्मेवार होते हैं।)

समयोऽलिखितो यत्र कर्त्रक्षरविवर्जितः।
तत्रापि प्रातिनिध्येन कर्ता शक्तोऽभियोजने ॥१५२४॥

जहां पर वादा (contract) बिना लिखा और कर्ता के हस्ताक्षर से रहित हो, वहां पर भी कर्ता सब (साझेदारों) के प्रतिनिधिरूप से मुकद्दमा चला सकता है।

पृक्तस्थिरधनैश्याय कर्ता शक्तोऽस्ति केवलः।
अभियोक्तुं न वा, नात्र मनैक्यं विदुषां पुनः ॥१५२५॥

फिर साझे के अचल धन के अधिकार के लिए अकेला कर्ता मुकद्दमा चला सकता है या नहीं-इसमें विद्वानों का एक मत नहीं है।

पितृविक्रीतसंश्लिष्टधनाधिकृतये कृते।
अभियोगे न तत्पुत्रयोगस्त्वावश्यको मतः ॥१५२६॥

पिता के बेचे साझे के धन पर अधिकार करने के लिए किये मुकद्दमे में उसके पुत्रों का (भी) शामिल करना आवश्यक नहीं माना गया है।

कर्तृभावेन वा पृक्तधनार्थं विहितः पुनः।
कर्त्रा तु व्यवहारो यस्तत्रैकः सोऽभियुक्तये ॥१५२७॥
उताभियुक्ततां गन्तुं प्रातिनिध्येन निश्चितम्।
कुटुम्बिनां क्षमस्तत्र दत्तं चाप्यथ शासनम् ॥१५२८॥
मान्यं कुटुम्बिभिः सर्वैरवयःस्थहितेच्छया।
वयःस्थानुज्ञया कर्म तत्तेनात्र कृतं यदि ॥१५२९॥
तटस्थता वयःस्थानामप्यनुज्ञा मतात्र तु।
प्रार्थयेरन्परं ते चेदभियोगे स्वयोजनम् ॥१५३० ॥
प्रत्याख्यातुं हि तत्कर्म तर्ह्यनुज्ञा न संमता।
तेषां, तत्र च ते सर्वे न भारार्हा मता बुधैः ॥१५३१॥

कर्ताद्वारा कर्तापन से या साझे के धन के लिए जो लेन-देन किया गया हो, उसमें वह (कर्ता) अकेला, निश्चय ही, सारे ही कुटुम्बियों के प्रतिनिधिरूप से मुकद्दमा चलाने के लिए या मुकद्दमे में अभियुक्त होने के लिए समर्थ होता है। तथा

उसके विषय में दी गई डिग्री, यदि उसने वह काम, यहां पर, नाबालिगों के हित (फ़ायदे) की इच्छा से तथा बालिगों की अनुमति से किया हो, तो मान्य होती है। यहां पर बालिगों की तटस्थता (मुकद्दमे में शामिल किये जाने की चेष्टा न करना) भी अनुमति मानी गई है। परन्तु यदि वे (बालिग साझेदार) उस काम (लेन-देन) का प्रतिवाद करने को मुकद्दमे में अपने शामिल किये जाने की प्रार्थना करें, तो उनकी अनुमति नहीं मानी जाती है और विद्वानों ने वहां पर उन सब को जिम्मेदार नहीं माना है।

सर्वेऽप्यधिकृता यत्र पृक्तवंशे सुनिश्चितम्।
तत्रापीत्येव दृश्येत न्यायेशैर्यदिहाग्रगः ॥१५३२॥
नूनं व्यवहरत्येषोऽवयःस्थहितकाङ्क्षया।
भूत्वा प्रतिनिधिस्तेषां वयःस्थानुज्ञया तथा ॥१५३३॥
अन्यथा तेऽभियुञ्जीरन्नेकस्मै कर्मणे यदि।
पृथक्-पृथक् तदा तत्र व्यर्थोऽर्थसमयव्ययः ॥१५३४॥

जहां पर साझे के कुटुम्ब मे, निश्चय ही, सारे ही (साझेदार) अधिकारी हों, वहां पर भी न्यायाधीशों द्वारा यही देखा जा सकता है कि वहां पर वह नायक (leading member) निश्चय ही नाबालिगों का प्रतिनिधि होकर उनके हित की इच्छा से और बालिगों की अनुमति से अपना काम करता है। (अर्थात्—यदि ऐसा करता हो, तो वह अकेला ही मुकद्दमा आदि कर सकता है।) नहीं तो यदि वे सब एक काम के लिए अलग-अलग मुकद्दमा चलावें, तो वहां पर धन और समय का खर्च व्यर्थ ही होता है।

अकर्ता पृक्तवंशस्थोऽसमर्थस्त्वभियोजने।
प्रातिनिध्येन वंशस्यात्रैक एव विधानतः ॥१५३५॥

साझे के कुटुम्ब में रहा कर्ता से भिन्न पुरुष, यहां पर, कुटुम्ब के प्रतिनिधि के रूप से अकेला ही मुकद्दमा चलाने में कानून से असमर्थ होता है।

यावत्पित्रा न संत्यक्तं स्वामित्वं संपदोऽखिलम्।
तावज्जीवति तस्मिन्नो शक्तः पुत्रोऽभियोजने ॥१५३६॥
तद्गृहीतप्रतिज्ञायाः पत्रग्रहकृते पुनः।
यावज्जीवं पितैवात्राधिकारी तु यतो मतः ॥१५३७॥

फिर जब तक पिता ने पूर्ण रूप से संपत्ति का अधिकार न छोड़ दिया हो, तब तक, उसके जीते जी, उसके लिये हुए प्रतिज्ञापत्र (promissory note) के लिए पुत्र मुकद्दमा नहीं चला सकता। क्योंकि जीते जी पिता ही यहां पर अधिकारी माना गया है।

पृक्तार्थव्यवसाये येऽवयःस्था न प्रदर्शिताः ।
भागिनो यैर्न चात्तः स्याद् भागस्तस्मिंस्तु कश्चन ॥१५३८॥
नो स्वाम्यं यैः प्रयुक्तं च न योज्यास्तेऽभियोजने ।
व्यापारजऋणादानकृतेऽत्र विहिते पुनः ॥१५३९॥
तत्रत्यं शासनं किन्तु सर्वैः संसृष्टिभिर्ध्रुवम् ।
मान्यं भवति नो तत्रावयःस्था मुक्तिमाप्नुयुः ॥१५४०॥

और साझे के व्यापार में जो नाबालिग हिस्सेदार नहीं दिखलाये गये हों और जिन्होंने उसमें कोई भाग नहीं लिया हो तथा जिन्होंने किसी अधिकार का प्रयोग नहीं किया हो, उनको यहां पर व्यापार से उत्पन्न हुए कर्ज की वसूली के लिए किये मुकद्दमे में शामिल नहीं करना चाहिए। परन्तु वहां पर की डिग्री सारे साझेदारों द्वारा निश्चय ही मान्य होती है। वहां पर नाबालिग (भी) छुटकारा नहीं पा सकते।

एकस्मिन् कर्तरि प्राप्य शासनं संपदोंऽशकम् ।
आदाय च मृते, योऽन्यः कर्ता तत्र स कर्मकृत् ॥१५४१॥

एक कर्ता के डिग्री प्राप्त कर के और संपत्ति का कुछ भाग अधिकृत करके मर जाने पर, जो दूसरा कर्ता होता है वह (अगले) काम का करनेवाला होता है।

ऋणशुद्धिप्रतिज्ञायाः पत्रं कर्त्रात्तमत्र तु ।
प्राक्, तदन्ते च संश्लिष्टैर्विहितः समयो यतः ॥१५४२॥
जातः कर्तऋणांशस्य ह्येव भागी, ततश्च सः ।
स्वस्यैवांशग्रहे शक्तस्तत्रत्येऽतोऽभियोजने ॥१५४३॥
भागाः परेषां श्लिष्टानामपि योज्याः सुनिश्चितम् ।
नो चेदपरपृक्तानां भागोद्धारे न स क्षमः ॥१५४४॥

पहले कर्ता ने यहां पर कर्ज चुकाने का प्रतिज्ञापत्र-(promissory note) ले लिया हो और उसके बाद साझेदारों ने ऐसा समझौता कर लिया हो; जिससे (वह) कर्ता कर्ज के एक भाग का ही लेनेवाला हो गया हो, तो उसके बाद वह अपने ही हिस्से को ले सकता है। इसलिए ऐसे स्थान पर के मुकद्दमे में, निश्चय ही, दूसरे साझेदारों के हिस्सों को भी शामिल कर लेना चाहिए, नहीं तो वह (कर्ता) दूसरे साझेदारों के हिस्सों का उद्धार नहीं कर सकता।

मृते कर्तरि योऽन्यः स्यात् कर्ता संसृष्टसंपदः ।
वर्तमानाऽभियोगेषु स एव स्यात्तदुत्तरः ॥१५४५॥

साझे की संपत्ति के कर्ता के मरजाने पर जो दूसरा कर्ता होता है, वही मौजूदा मुकद्दमों में उसका स्थानापन्न होता है। (अर्थात्-साझे के मामलों में उसके पुत्र उसके स्थान पर जिम्मेदार नहीं होते।)

संसृष्टेष्वथ चैकेनाऽभियुक्तस्त्वपरानपि ।
योक्तुं सद्यो यदीहेत तत्र त्वेश नयोमतः ॥१५४६॥

और साझेदारों में से एक द्वारा अभियुक्त हुआ (पुरुष) यदि दूसरे साझेदारों को भी उसमें युक्त करना चाहे, तो वहां यह नियम माना गया है:--

संयोक्तुमवधिः स्याच्चेद् व्यतीतो विधिनिश्चितः ।
प्रारब्धस्याऽभियोगस्य प्रत्याख्यानं तदा भवेत् ॥१५४७॥

यदि (नये सिरे से) मुकद्दमा चलाने की कानून से निश्चित मियाद (उस समय तक) बीत चुकी हो, तो (वह) चलाया हुआ अभियोग ख़ारिज हो ज[illegible] है ।

परं कर्त्रा कृते नूनमभियोगे हि युज्यते ।
साधारणो वयःस्थस्तु संसृष्टोऽवधिनिर्गमे ॥१५४८॥
अपि चेन्नावयःस्थः स्यात्संसृष्टः कोऽपि तत्र तु ।
तदर्थं प्रार्थना कार्या प्रागेव प्रतिवादिना ॥१५४९॥
अन्त्यायां किन्त्ववस्थायां कृता सा निष्फला मता ।
महाराष्ट्रे प्रयागे च मतमेतन्मतं बुधैः ॥१५५०॥
परं वङ्गेऽवयःस्थस्य संयोगोऽप्यवधिक्षये ।
बन्धकीयाऽभियोगं तु व्यर्थीकर्तुं नहि क्षमः ॥१५५१॥

परन्तु निश्चय ही, कर्ता द्वारा चलाये मुकद्दमे में, यदि वहां पर कोई भी नाबालिग़ साझेदार न हो तो साधारण बालिग़ साझेदार मयाद के निकल जाने के बाद भी शामिल कर लिया जाता है । परन्तु उसके लिए प्रतिवादी (defendant) को पहले ही प्रार्थना करनी चाहिए । परन्तु (मुक़द्दमे की) अन्तिम अवस्था में की गई वह (प्रार्थना) निष्फल मानी गई है--बंबई प्रान्त और इलाहाबाद में विद्वानों ने यह मत माना है । परन्तु बंगाल में मयाद के बीत जाने पर भी नाबालिग़ को (मुक़द्दमे में) शामिल करना गिरवी के मुकद्दमें को निष्फल (ख़ारिज) नहीं कर सकता ।

संसृष्टार्थाऽभियोगे स्यात्कर्त्रे यद्राजशासनम् ।
संसृष्टाऽर्थाऽन्तमन्येऽपि संसृष्टास्तत्र भागिनः ॥१५५२॥

साझे के धन के मुकद्दमे में कर्ता पर जो राजाज्ञा (डिग्री) हो, उसमें दूसरे (साझेदार) भी साझे के धन की सीमातक भागी होते हैं ।

संसृष्टाऽर्थाऽभियोगेऽपि कर्त्रे व्यक्तिगतं तु यत् ।
शासनं नाऽपरे तत्र संसृष्टाः फलभागिनः ॥१५५३॥

साझे के धन के मुकद्दमे में भी जो आज्ञा कर्ता को व्यक्तिगत तौर पर दी जाती है, उसमें दूसरे साझेदार जिम्मेवार नहीं होते ।

संसृष्टाऽर्थाऽभियोगे तु पित्रे यद्राजशासनम् ।
अवयःस्था अपि सुताः संसृष्टाः फलभागिनः ॥१५५४॥

साझे के धन के मुकद्दमे में बाप पर जो राजाज्ञा (डिग्री) होती है, साझेवाले नाबालिग पुत्र भी उसके फल के भागी होते हैं । (अर्थात्—बालिग पुत्र तो जिम्मेवार होते ही हैं, साथ ही नाबालिग पुत्र भी जिम्मेवार होते हैं ।)

संसृष्टसंपदो व्ययः ।

साझे के धन का खर्च करना ।

निम्नोक्तास्तु व्यये शक्ता मताः संसृष्टसंपदः ।
वयस्थानां हि संसृष्टौ वयस्थाः संगताः समे ॥१५५५॥
व्यवस्थाऽऽप्ताऽधिकारान्तं पिता कर्ताऽथवा पुनः ।
संसृष्टेष्ववशिष्टश्च संसृष्टी नाऽपरे जनाः ॥१५५६॥

नीचे कहे गये (पुरुष) साझे की संपत्ति को खर्च करने में समर्थ माने गये हैं:—बालिगों की साझेदारी में सारे ही इकट्ठे बालिग साझेदार, कानून से मिले अधिकार की सीमा तक पिता अथवा कर्ता और (सारे ही) साझेदारों में से बचा हुआ (अन्तिम) साझेदार । इनसे अन्य पुरुष उसे नहीं बेच सकते ।

उचितं निजभार्यायै कन्याभ्यो वा सुताय वा ।
उपहर्तुं क्षमस्तातो भागं संसृष्टसंपदः ॥१५५७॥

पिता अपनी पत्नी को, कन्याओं को और पुत्र को साझे के धन का (चाहे वह स्थिर हो या अस्थिर) एक उचित भाग उपहार में दे सकता है ।

विक्रेतुं न्याय्यकृत्येभ्य आधातुं वा पुनः स ताम् ।
क्षमः कुटुम्बपोषार्थं पूर्वस्वर्णहृते तथा ॥१५५८॥

फिर वह (पिता) न्यायोचित कार्यों के लिए, कुटुम्ब के पालन के लिए और अपने पुराने कर्ज के चुकाने के लिए उस (साझे की संपत्ति) को बेच या गिरवी रख सकता है ।

उपहारे विक्रये वा संपत्ती तु चलाऽचले ।
पित्रधीने पुरोक्तेभ्यः कार्येभ्योऽन्यत्र नो पुनः ॥१५५९॥

पहले कहे कामों के लिए उपहार देने और बेचने में ही (साझे की) चल और अचल संपत्ति पिता के अधीन होती है, दूसरे मामले में नहीं होती ।

संसृष्टेष्ववशिष्टोऽपि स्वेच्छोपहृतिविक्रये ।
न क्षमश्चेत्सपुत्रः स्याद् गर्भप्राप्तसुतोऽथवा ॥१५६०॥

साझेदारों में का (पिछला) बचा हुआ (पुरुष) भी यदि पुत्रवाला हो या गर्भ में स्थित पुत्रवाला हो, तो अपनी इच्छा से (साझे की मिली संपत्ति को) उपहार में देने या बेचने में समर्थ नहीं होता।

अविभक्तसंश्लिष्टवित्तव्ययः।

बिनबांटे साझे के धन का खर्च।

मिताक्षराऽनुगो नूनं संसृष्टीह निजांऽशकम्।
ऋते संसृष्टिसंमत्या नोपहर्तुं क्षमः कचित् ॥१५६१॥

जगत में मिताक्षरा के अनुसार चलने वाला साझेदार, (अन्य सारे) साझेदारों की अनुमति के विना, अपने (साझे में के) भाग को उपहार में देने को, निश्चय ही, कहीं भी समर्थ नहीं होता।

द्रविडेऽथ महाराष्ट्रे मध्यदेशेऽपि वा पुनः।
मिताक्षराऽनुगाः स्वाऽर्थं संसृष्टं व्ययितुं तथा ॥१५६२॥
आधातुं वाऽथ विक्रेतुं समर्थाः स्युर्यदृच्छया।
विशिष्टां संपदं किन्तु व्ययितुं न क्षमाः पुनः ॥१५६३॥

मद्रास, बंबई और मध्यप्रदेश में भी मिताक्षरा के अनुसार चलनेवाले अपने साझे के हक को अपनी इच्छा से खर्च कर सकते, गिरवी रख सकते और बेच सकते हैं, परन्तु वे भी (साझे की) खास संपत्ति को खर्च नहीं कर सकते। (अर्थात्–केवल अपना साझे का हक (interest) ही बेच सकते हैं, साझे की कोई वस्तु नहीं। क्योंकि साझे की प्रत्येक चीज में सब साझेदारों का हक होता है।)

वङ्गे युक्तप्रदेशे वा विना संसृष्ट्यनुज्ञया।
नेशा ऋते न्यायकृत्यं पिता चर्ते स्व-प्रागृणम् ॥१५६४॥

बंगाल और संयुक्तप्रान्त में साझेदारों की अनुमति के विना (वे) न्याय संबन्धी कामों को छोड़कर अन्य कामों के लिए समर्थ नहीं होते और पिता अपने किये पहले के ऋण को छोड़कर अन्य कामों के लिए समर्थ नहीं होता। (अर्थात्–साझे की संपत्ति को खर्च नहीं कर सकता।)

उत्कले मिथिलायां च तथैवोत्तरकोसले।
देशे पञ्चनदे चैतदेव मैताक्षरं मतम् ॥१५६५॥

उड़ीसा, बिहार, अवध और पंजाब देश में भी यही मिताक्षरा का मत है। अर्थात्–वहां भी बंगालवाला मत ही माना जाता है।)

मैताक्षरेषु सर्वत्र स्वार्थः पृक्तजनस्य तु।
विक्रीयते तदर्थं चेत्प्राप्तं स्याद्राजशासनम् ॥१५६६॥

युक्तप्रान्ते तथा वङ्गे विक्रीते शासनेन तु।
द्रविडे शासनकृते स्वकृते वाथ विक्रये ॥१५६७॥
क्रेता संसृष्टितां नैव संप्राप्नोति कदाचन।
अन्यसंसृष्टिभिः सार्धं तस्यां संसृष्टसंपदि ॥१५६८॥
श्लिष्टस्य स्वार्थविक्रेतुरंशनाधिकृतिं परम्।
स प्राप्नोति ततः शक्तस्तां विभाजयितुं श्रियम् ॥१५६९॥
अभियोगेन, शक्तश्च क्रीतवस्तुकृते पुनः।
याचितुं, तच्च देयं, चेन्नाऽपरश्लिष्टहानिदम् ॥१५७०॥

परन्तु सब प्रदेशों में ही मिताक्षरा को माननेवालों में सामेदार का (साझे में का) अपना स्वार्थ, यदि उसके लिए अदालत की डिग्री प्राप्त करली हो, तो बेच दिया जाता है। युक्तप्रान्त में और बंगाल में डिग्री द्वारा बेचे जाने पर और मद्रास में डिग्री के द्वारा किये या स्वयं (स्वार्थधारी द्वारा) किये बेचान में खरीदनेवाला उस साझे के धन में दूसरे सामेदारों के साथ साझा कभी नहीं पाता। परन्तु वह स्वार्थ को बेचनेवाले सामेदार के हिस्सा करवाने के अधिकार को प्राप्त करता है। इसलिए मुकद्दमे द्वारा उस संपत्ति का हिस्सा करवाने के लिए समर्थ होता है। तथा खरीदी हुई वस्तु (संपत्ति के खास भाग) के लिए याचना (demand) कर सकता है। और यदि वह वस्तु दूसरे सामेदारों (के हक) को हानि न पहुँचाती हो तो (उसको) दे देनी चाहिए।

क्रीणाति यो महाराष्ट्रे हितं संसृष्टिनोऽपरः।
सोऽनवाप्ताऽधिकारश्चेद् तदालं श्रीविभाजने ॥१५७१॥

बंबई-प्रान्त में जो दूसरा (सामेदारों से भिन्न पुरुष) सामेदार का हक खरीदता है, वह यदि (उस हक पर) अधिकार न प्राप्त करचुका हो, तो उस धन का हिस्सा करवाने में समर्थ होता है।

क्रेता प्राप्ताऽधिकारस्तु तत्र संसृष्टसंपदि।
सहकारित्वमाधत्ते चेत् संसृष्टैर्मतं परैः ॥१५७२॥

उस पर अधिकार प्राप्त करलेनेवाला खरीददार, यदि दूसरे सामेदारों को स्वीकार हो तो, साझे के धन में सहकारिता प्राप्त करता है।

परं नानुमता तैश्चेत्तेनात्र सहकारिता।
तर्हि ते त्वभियुञ्जीरन्नुद्धारार्थं हि संपदः ॥१५७३॥
विक्रीतायास्तु सर्वस्याः परं न्यायालयाधिपाः।
प्राग्दानादधिकारे तां संपत्तिं वादिनां ध्रुवम् ॥१५७४॥
निश्चितं समयं क्रेत्रे दद्दीरन् येन स स्वयम्।
अभियुज्य तु तान् सर्वांस्तैर्विभाज्य च निश्चितम् ॥१५७५॥

विक्रेतुः स्वार्थगां सर्वामात्मक्रीतां तु संपदम् ।
प्रत्यादातुं समर्थः स्यादित्युक्तं न्यायशास्त्रिभिः ॥१५७६॥

परन्तु यहां पर, यदि उन (साझेदारों) को उसके साथ सहकारिता (joint possession) स्वीकार न हो, तो वे सारी ही बेची गई संपत्ति को छुड़वाने के लिए मुकद्दमा कर सकते हैं । परन्तु जजों को उस संपति को वादियों के अधिकार में देने के पहले, निश्चय ही, खरीददार को निश्चित समय देना चाहिए, जिससे कि वह स्वयं उन सब पर मुकद्दमा चलाकर और उनसे बेचनेवाले (साझेदार) के स्वार्थ में रही अपनी खरीदी सारी संपत्ति को निश्चितरूप से बटवा कर वापस ले सके— ऐसा कानून के पण्डितों ने कहा है ।

द्रविडे न क्षमः क्रेता संप्राप्तुं सहकारिताम् ।
पृक्तेऽर्थे किन्तु शक्तोऽशं स्वमादातुं विभाज्य तम् ॥१५७७॥

मद्रास में खरीददार साझे के धन में सहकारिता नहीं पा सकता । परन्तु अपने हिस्से को बटवा कर उसे ले सकता है ।

महाराष्ट्रे नयाधीशाः क्रेतुः संसृष्टिभिः सह ।
संबन्धं, क्रीतवित्ते तत्स्वाम्यकालं विचार्य च ॥१५७८॥
शक्ताः स्थापयितुं स्वाम्ये संयुक्ते तं तु पृक्तिभिः ।
अशक्ता द्रविडे, किन्तु क्रेतेशोऽर्थविभाजने ॥१५७९॥

बंबई-प्रान्त में न्यायाधीश (संपत्ति के) खरीददार का साझेदारों के साथ का संबन्ध और खरीदे हुए धन पर उसके अधिकार के समय को विचार कर उसको (उस धन के अन्य) साझेदारों के साथ संयुक्त अधिकार (joint possession) में रख सकते हैं । (अर्थात्-यदि वह उन साझेदारों का रिश्तेदार हो और खरीदी हुई संपति पर अधिकार रखता हो, तो उसे उनके साथ उस संपत्ति का संयुक्त अधिकारी बना सकते हैं, अन्यथा नहीं ।) मद्रास में (ऐसा) नहीं कर सकते । परन्तु खरीददार धन का बटवारा करवा सकता है ।

द्रविडेथ महाराष्ट्रे विशिष्टांशं तु संपदः ।
नो विभाजयितुं शक्तः क्रेता श्लिष्टार्थगं ध्रुवम् ॥१५८०॥
परं संश्लिष्टवित्तस्याखिलस्य तु विभाजने ।
समर्थः सोऽभियोगेन, प्रयागे वङ्गके पुनः ॥१५८१॥
कृतः शक्तो नयेशैः स विशिष्टार्थविभाजने ।
अपि, किन्तु न तत्रत्या निर्णयाः साधवो मताः ॥१५८२॥

मद्रास और बंबई प्रदेश में खरीददार साझे के धन में रहे संपत्ति के एक खास भाग को निश्चय ही नहीं बटवा सकता । परन्तु वह मुकद्दमे द्वारा सारे ही साझे के धन के बटवाने में समर्थ होता है । फिर इलाहाबाद और बंगाल में न्यायाधीशों ने

उसे खास धन के बटवाने में भी समर्थ करदिया है। परन्तु वहां (इलाहाबाद और बंगाल) के निर्णय ठीक नहीं माने गये हैं।

द्रविडेऽथ महाराष्ट्रे प्रयागे पृक्तिगाः परे।
क्रेतारमभियोक्तुं तत्क्रीतसंपृक्तसंपदः ॥१५८३॥
वण्टनार्थे क्षमास्तत्र विभागोऽखिलसंपदः।
नापेक्षितः परं तेषु नैकः शक्तो हि तत्कृते ॥१५८४॥

मद्रास, बंबई और इलाहाबाद में दूसरे साझेदार खरीददार पर उसकी खरीदी साझे की संपत्ति का बटवारा करलेने के लिए मुकद्दमा चलाने में समर्थ होते हैं। वहां पर सारी ही संपत्ति के बटवारे की आवश्यकता नहीं होती। परन्तु उन साझेदारों में का एक उस (मुकद्दमे) के लिए समर्थ नहीं होता।

क्रीतसंपत्तिभागार्थमभियुक्तो नहि क्षमः।
सर्वश्लिष्टार्थभागाय क्रेता प्रार्थयितुं, परम् ॥१५८५॥
नव्येन त्वभियोगेनाखिलसंपद्विभाजनम्।
क्षमः कारयितुं क्रेता नास्ति तत्र मतद्वयम् ॥१५८६॥

खरीदी हुई संपत्ति के विभाग के लिए अभियुक्त किया गया (sued) खरीददार सारे साझे के धन के बटवारे के लिए प्रार्थना नहीं कर सकता। परन्तु वह खरीददार नये मुकद्दमे द्वारा सारी संपत्ति का बटवारा करवा सकता है। उसमें दो मत नहीं है। (अर्थात्–यह बात सब जगह मानी गई है।)

क्रेतुः क्रीतार्थभागार्थाभियोगेंऽशस्तु यः पुनः।
प्राप्तः पृक्तैः परैः स स्यात्तेषां व्यक्तिगतं धनम् ॥१५८७॥
न्यायेशैश्चेत्परं तत्र व्यवस्था विहिता तथा।
पृक्तैर्दत्तं वचो यत्तु कृते क्रेत्राऽभियोजने ॥१५८८॥
सर्वपृक्तार्थवण्टार्थं दत्ताज्ञा न्यायकारिभिः।
तैर्मान्या भविता तर्हि पृक्तार्थोऽसौ मतो बुधैः ॥१५८९॥

फिर खरीददार के खरीदे हुए धन के (ही) बटवारे के लिए किये मुकद्दमे में जो हिस्सा दूसरे साझेदारों ने पाया हो, वह उनका व्यक्तिगत धन होता है। परन्तु यदि वहां पर न्यायाधीशों ने व्यवस्था (condition) करदी हो, और साझेदारों ने वचन दे दिया हो कि खरीददार के सारे ही धन के बटवारे के लिए मुकद्दमा चलाने पर न्यायाधीशों द्वारा दी गई आज्ञा उनको मान्य होगी, तो विद्वानों ने उस (मिले हुए हिस्से) को साझे का धन माना है।

विक्रीतश्लिष्टवित्तस्य भागः संसृष्टिभिः परैः।
प्राप्तोऽशने तद्व्यक्त्यर्थस्तच्छ्रीविक्रयिकान्तरे ॥१५९०॥

परं श्लिष्टार्थ एवासौ तत्तन्नरप्रजान्तरे।
मिथः संबन्धतस्तेषामीदृग् भेदस्तु तद्धने ॥१५६१॥

बेचे हुए साझे के धन का दूसरे साझेदारों ने बटवारे में पाया हिस्सा उनके और संपत्ति बेचनेवाले के बीच उनका व्यक्तिगत धन होता है। परन्तु उस (संपत्ति पानेवाले) के और उसकी पुरुष सन्तान के बीच वह (पाया हुआ भाग) साझे का धन ही होता है। उनके आपस के संबन्ध से उस धन में इस प्रकार का भेद हो जाता है।

श्लिष्टार्थस्य विशिष्टांशं क्रीणन् वा श्लिष्टसंपदि।
स्थितं श्लिष्टजनस्वार्थं क्रीणन् श्लिष्टार्थभाजने ॥१५६२॥
साधारण्येन प्राप्नोति स्वक्रीतं, चेन्न तद्भवेत्।
अन्याय्यं हानिदं वा स्यादपरेभ्यः कथञ्चन ॥१५६३॥
श्लिष्टात्तनियमेभ्यो वा विक्रेतुर्ऋणकारणात्।
संभवो यत्र नैतस्य तत्र विक्रेतृभागतः ॥१५६४॥
क्रीतार्थमूल्यामपरां क्रेता संपत्तिमाप्नुयात्।
परं न्यायौकविक्रीते तदर्थे सोऽक्षमो ग्रहे ॥१५६५॥
प्रथमक्रयिकक्रीततदर्थः क्रयिकोऽपरः।
अपि नैव क्षमस्तत्र क्रीतार्थस्य ग्रहे ध्रुवम् ॥१५६६॥
द्वावप्येतौ क्षमौ किन्तु विक्रेतारं निज-निजम्।
अभियोक्तुं स्वहान्यर्थं तच्छलार्थमथो पुनः ॥१५६७॥

साझे के धन के खास भाग को ख़रीदनेवाला अथवा साझे के धन में रहे साझेदार के स्वार्थ का ख़रीदनेवाला साझे के धन के बटवारे में, यदि वह किसी तरह अन्याय्य या दूसरों को हानि देनेवाला न हो, तो साधारण तौर से अपने ख़रीदे हुए भाग को पाता है। जहां पर साझेदारों द्वारा मंज़ूर किये नियमों (equities) से या बेचनेवाले (साझेदार) के कर्ज़ के कारण ऐसा न हो सके, वहां पर (वह) ख़रीददार बेचनेवाले के हिस्से से ख़रीदी संपत्ति के मूल्य की दूसरी संपत्ति पाता है। परन्तु अदालत के द्वारा उस (बेचनेवाले) के धन के बेचे जाने पर वह (इस प्रकार) लेने में असमर्थ होता है। उस धन को पहले ख़रीददार से ख़रीदनेवाला दूसरा ख़रीददार भी वहां पर ख़रीदी हुई संपत्ति को लेने में निश्चय ही असमर्थ होता है। परन्तु ये दोनों ही (प्रथम ख़रीददार और दूसरा ख़रीददार) अपने-अपने को संपत्ति बेचनेवाले पर अपनी हानि के लिए या उसके कपट के लिए मुकद्दमा चलाने में समर्थ होते हैं।

सति विक्रेतरि क्रेता क्रीतस्वार्थांशनाय चेत्।
नाभियुङ्क्ते न तेनासौ वञ्च्यते स्वाधिकारतः ॥१५६८॥

बेचने वाले की मौजूदगी में यदि खरीदने वाला अपने स्वार्थ के बटवारे के लिए मुकद्दमा नहीं चलाय, तो वह उससे अपने अधिकार से वञ्चित नहीं होता । (अर्थात्-वह बेचने वाले के मरने पर भी उसके लिए मुकद्दमा चला सकता है ।)

स्वार्थस्य पृक्तिगस्यात्र क्रेता विक्रयिकस्य तु ।
शक्तो विक्रयकालीनस्वार्थस्यैव ग्रहे ध्रुवम् ॥ १५९९ ॥
नार्थाधिकृतिकालीनस्वार्थस्य तु कथञ्चन ।
नय एष तु विक्रेतुर्भागांशायैव संमतः ॥ १६०० ॥
परं क्रेता भवेद्यत्र मुख्यपृक्तार्थभागभाक् ।
तत्राभियोगकालीनस्थित्याऽर्थांऽशं स आहरेत् ॥१६०१॥

यहां पर साझे में रहे स्वार्थ का खरीदनेवाला बेचनेवाले के बेचने के समय रहे स्वार्थ को ही लेने में, निश्चयरूप से, समर्थ होता है, धन पर अधिकार करने के समय रहे स्वार्थ के लेने में किसी भी तरह समर्थ नहीं होता । यह नियम (कानून) बेचनेवाले के भाग के (fraction) हिस्से के लिए ही माना गया है । परन्तु जहां पर खरीददार मुख्य साझे के धन (actual items of property) का हिस्सा लेने वाला हो, वहां पर वह मुकद्दमा चलाने के समय की स्थिति के द्वारा भाग ले सकता है । (अर्थात्-उस समय की स्थिति के अनुसार भाग पाता है ।)

पृक्तस्वार्थस्य तु क्रेता क्रयाहान्नैव भागभाक् ।
तद्विभागाभियुक्त्यन्तं जातस्याधिगमस्य तु ॥ १६०२ ॥
परं यत्राऽविभाज्यापि पृक्तमर्थं कुटुम्बिनः ।
वियुक्तास्तत्र वंश्यस्य कस्याप्येकस्य पृक्तिगम् ॥ १६०३ ॥
भागं क्रीणञ्जनः शक्तो ग्रहीतुं परहस्तगम् ।
क्रयाऽभियुक्त्योर्मध्येऽपि जातं लाभं सुनिश्चितम् ॥१६०४॥

साझे के धन का खरीदनेवाला उस (खरीदने के) दिन से उस (धन) के बटवारे के लिए मुकद्दमा करने के दिन तक हुए लाभ (आमदनी) का हिस्सेदार नहीं होता । परन्तु जहां पर कुटुम्ब के लोग साझे के धन का बटवारा न करके भी जुदा हो गये हों, वहां पर किसी एक वंशवाले के साझे में रहे भाग को खरीदनेवाला पुरुष खरीदने और मुकद्दमा चलाने के (समय के) बीच हुए लाभ को, दूसरे के हाथ में गये को भी, निश्चय ही ले सकता है ।

स्वार्थं विक्रीय पृक्तश्चेदसमाप्यैव विक्रयम् ।
तं मृतस्तर्ह्यपीशः स्यात्क्रेता तस्य समापने ॥१६०५॥

यदि साझेदार अपने स्वार्थ को बेचकर और उस बेचान को पूरा किये विना ही मरजाय, तो भी खरीददार उस (बेचान) को पूर्ण कर सकता है ।

स्वार्थमेकस्य पृक्तस्य क्रीणन् प्राप्नोति तं जनः ।
सहैव तेन संबद्धदायित्वर्णादिभिः पुनः ॥१६०६॥
पुत्रपृक्तिगतस्वार्थक्रेता गृह्णात्यतो धनम् ।
तत्पैतृकन्याय्यऋणदायित्वेन समन्वितम् ॥१६०७॥

फिर एक साझेदार के स्वार्थ को ख़रीदनेवाला पुरुष उस (स्वार्थ) के साथ लगी जिम्मेदारी और कर्ज़ आदि के साथ ही उसे पाता है । इसीसे पुत्र के साझे में रहे स्वार्थ को ख़रीदनेवाला उसके पिता के न्याय्य ऋण की जिम्मेदारी के साथ धन को लेता है ।

यत्र केनापि पृक्तेन पृक्तः स्वार्थो निजः पुनः ।
विक्रीतः किन्तु नो भागः कृतः संश्लिष्टसंपदः ॥१६०८॥
संश्लिष्टैरपरैः क्रेत्रा प्रार्थितस्तत्कृते न वा ।
स्वार्थस्य स्वस्य विक्रेता कुटुम्बे स्वाधिकारतः ॥१६०९॥
न हीयते वञ्च्यते वा पृक्तशेषत्वलाभतः ।
निर्णयस्त्वेष विहितो न्यायशास्त्रस्य पण्डितैः ॥१६१०॥
निर्णया ये तु प्रागुक्ताः पृक्तवित्तस्य विक्रये ।
ते सर्वे पृक्तवित्तस्याऽऽधावप्यत्र विनिश्चिता ॥१६११॥

जहां पर किसी साझेदार ने अपना साझे का स्वार्थ बेच दिया हो, परन्तु दूसरे साझेदारों ने साझे के धन का विभाग न किया हो अथवा खरीददार ने उस (विभाग) के लिए प्रार्थना न की हो, वहां पर अपने स्वार्थका बेचनेवाला कुटुम्ब में अपने अधिकार से च्युत नहीं होता या साझेदारों में पीछे रहने के लाभ से वञ्चित नहीं होता–यह निर्णय न्यायशास्त्र के विद्वानों ने किया है । जो निर्णय पहले (श्लोक १५९२ से १६११ तक) साझे के धन के बेचने के विषय में कहे हैं, वे सब यहां पर साझे के धन के गिरवी रखने के विषय में भी निश्चित किये गये हैं ।

यत्र पृक्तेन केनापि विशिष्टो बन्धकीकृतः ।
पृक्तार्थांशः परं भागकाले प्राप्तः परेण सः ॥१६१२॥
तत्र सोऽपरपृक्तस्तं बन्धकत्वविवर्जितम् ।
एवाप्नोति तथाऽऽदत्ते बन्धकग्राहको हि तम् ॥१६१३॥
पृक्तांशं बन्धकीकर्ता यं प्राप्तः स्याद्विभाजने ।
विभागश्चेद्भवेन्न्याय्यश्छद्मना परिवर्जितः ॥१६१४॥

जहां पर किसी साझेदार ने साझे के धन का खास भाग गिरवी रखदिया हो, परन्तु बटवारे के समय वह (भाग) दूसरे ने पा लिया हो, वहां पर (उस भाग का पानेवाला) दूसरा साझेदार उस (खास भाग) को बिना गिरवी की हालत में ही

जाता है तथा यदि बटवारा न्याय्य और छल से रहित हो, तो गिरवी लेनेवाला उस साझे के हिस्से को लेता है, जिसे गिरवी रखनेवाला बटवारे में पाता है ।

संसृष्टी द्रविडे स्वार्थं दातुं संसृष्टसंपदः ।
संसृष्टेषु क्षमः सर्वानेकं कतिपयानथ ॥१६१५॥

मद्रास में साझेदार साझेदारी के अपने हक को साझेदारों में सब को, एक को या कइयों को दे सकता है ।

प्रयागे तु स सर्वेभ्य एव दातुं क्षमो मतः ।
महाराष्ट्रे प्रयागस्य सरण्येवाऽनुगम्यते ॥१६१६॥

इलाहाबाद में तो वह (साझेदार) सब (साझेदारों) को ही देने में समर्थ माना गया है । बंबई में इलाहाबाद के तरीके का ही अनुगमन किया जाता है ।

ऋणप्रत्यादानाऽक्षमत्वम् ।

कर्ज चुकाने में असमर्थता ।

ऋणशोधाऽक्षमे जाते कर्तर्यर्थस्तदीशितः ।
संसृष्टाऽर्थोऽधिकारश्च याति प्रतिनिधिं नवम् ॥१६१७॥

कर्ता (मैनेजर) के कर्ज चुकाने में असमर्थ (दिवालिया) हो जाने पर उसका खुद का धन, (उसका) साझे का धन और (साझे की संपत्ति पर का) अधिकार नवीन प्रतिनिधि (receiver) को मिलजाता है ।

ऋणदानाऽक्षमे ताते संसृष्टेऽस्य निजं धनम् ।
संसृष्टाऽर्थोऽधिकारश्च याति नव्यं प्रबन्धकम् ॥१६१८॥

साझेवाले पिता के कर्जा चुकाने में असमर्थ हो जाने पर उसका अपना व्यक्तिगत धन साझे का धन और अधिकार नवीन प्रबन्धक (receiver) को मिल जाता है ।

इत्थं यातोऽधिकारस्तु राज्यप्रतिनिधिं तथा ।
जनं राज्यनियुक्तं हि मृते ताते न हीयते ॥१६१९॥
नैति वा तत्सुतं नूनं संसृष्टेष्ववशिष्टितः ।
मैताक्षरं मतं ह्येतत्कथितं न्यायसंमतम् ॥१६२०॥

इस प्रकार राज्य-प्रतिनिधि (official assignee) को अथवा राज्य से नियुक्त पुरुष (receiver) को मिला अधिकार पिता के मरने पर नष्ट नहीं होता अथवा साझेदारों में शेष रह जाने से उसके पुत्र को भी नहीं मिलता । यह न्याय से निश्चित मिताक्षरा का मत कहा गया है ।

ऋणशोधाऽक्षमेऽन्यस्मिन् संसृष्टे व्यक्तिगं धनम् ।
संसृष्टोऽर्थश्च तस्यैति नियुक्तमृणशोधकम् ॥१६२१॥

किसी दूसरे साझेदार के कर्ज चुकाने में असमर्थ (दिवालिया) हो जाने पर उसका अपना धन और साझे का धन नियुक्त किये कर्ज चुकानेवाले (receiver) को मिल जाता है ।

स्वार्थस्य पृक्तिगस्यास्य राज्यप्रतिनिधेः खलु ।
सकाशादपि संक्रीणन् जनो भागाभियोगतः ॥१६२२॥
पूर्वसञ्चितलाभं तु नैवाप्नोति कदाचन ।
भेदः क्रेतरि सामान्ये तस्मिन् वा तत्र नो मतः ॥१६२३॥

इस (दिवालिये) के साझे में रहे स्वार्थ को निश्चय ही राज्य के प्रतिनिधि (Official Assignee or Receiver) के पास से भी खरीदनेवाला पुरुष बटवारे के मुकद्दमे से पहले इकट्ठे किये गये लाभ को तो कभी भी नहीं पाता । वहां पर साधारण खरीददार (purchaser) और उस (राज्य-प्रतिनिधि से खरीदनेवाले) में भेद नहीं माना गया है ।

ऋणे प्रतिभुवोऽशक्ताः शोधे संसृष्टिनोऽपरे ।
ये त एव गताऽर्थाः स्युर्नाऽन्ये संसृष्टिनः पुनः ॥१६२४॥

जो दूसरे (कर्ता व पिता से भिन्न) साझेदार कर्ज के लिये जिम्मेदार हों और (उसके) चुकाने में असमर्थ हों, वे ही निर्धन (दिवालिये) होते हैं, दूसरे साझेदार नहीं होते ।

संसृष्टव्यवसाये चाऽवयस्का ये कुटुम्बिनः ।
न ते त्वत्र गताऽर्थाः स्युः संसृष्टा अपि निश्चितम् ॥१६२५॥

और साझे के व्यापार में जो छोटी उम्र के कुटुम्बी हों वे यहां पर, निश्चयरूप से साझेदार होने पर भी, दिवालिये नहीं होते ।

संसृष्टार्थव्ययप्रतीकारः ।

साझे के धन के खर्च की रोक ।

ऋते तातं न संसृष्टा उपहर्तुं क्षमा मताः ।
मैताक्षरे मते स्वाऽर्थमपि पृक्तं निजेच्छया ॥१६२६॥

मिताक्षरा के मत से पिता को छोड़कर दूसरे साझेदार अपने साझे के धन (हित) को भी अपनी मरजी से उपहार (gift) में देने को समर्थ नहीं माने गये हैं । (अर्थात्—दूसरों के लिए उसमें अन्य सब साझेदारों की अनुमति की आवश्यकता होती है । पिता के लिए यह प्रतिबन्ध नहीं है ।)

संसृष्टानामथाऽन्येषामप्राप्याऽनुमतिं तु तैः ।
क्रयः सोऽत्राऽभियोगेन स्यादमान्यो न संशयः ॥१६२७॥

उनका, दूसरे साझेदारों की अनुमति प्राप्त किये विना, दिया हुआ वह (स्वार्थ) यहां पर मुकद्दमे के द्वारा रद्द हो सकता है; इसमें संशय नहीं है।

द्रविडेऽथ महाराष्ट्रे मध्यप्रान्ते तथा पुनः।
मैताक्षरस्तु संसृष्टो निजांशं व्ययितुं क्षमः ॥१६२८॥

मद्रास, बंबई और मध्यप्रान्त (Central Provinces) में मिताक्षरा को माननेवाला साझेदार अपना (साझे का) हिस्सा खर्च कर सकता है। (अर्थात्-दे सकता है, बेच सकता है या गिरवी रख सकता है।)

संसृष्टिनोऽपरस्यांऽशमनवाप्य तु तन्मतम्।
आधीकर्तुं च विक्रेतुं दातुं तत्राऽपि सोऽक्षमः ॥१६२९॥

वह (साझेदार पुरुष) वहां पर (उपर्युक्त प्रदेशों में) भी दूसरे साझेदार का हिस्सा, उसकी अनुमति लिये विना, गिरवी रखने, बेचने और देने (उपहार में देने) में समर्थ नहीं होता।

कर्ता च व्ययितुं शक्तः संसृष्टाऽर्थं निजेच्छया।
न्यायकर्मकृते नूनं संसृष्टानां हिते रतः ॥१६३०॥

और साझेदारों के फायदे में लगा कर्ता न्याय के कार्य (legal necessity) के लिये साझे के धन को अपनी इच्छा से, निश्चय तौर पर, बेच सकता है।

पिताऽपि व्ययितुं शक्तो नैव संसृष्टसंपदम्।
प्रागृणं न्यायकार्यं च विहायाऽन्यत्र कर्मणि ॥१६३१॥

पिता भी न्याय के कार्य और पुराने चले आये कर्ज को छोड़कर दूसरे (काम) में साझे की संपत्ति को खर्च नहीं कर सकता।

मिताक्षरीयाः संसृष्टा विनाऽन्येषां तु संमतिम्।
न्यायकर्म ऋतेऽन्यत्र स्वांऽशस्याऽपि व्ययेऽक्षमाः ॥१६३२॥

दूसरे स्थानों पर (बंगाल, संयुक्त-प्रान्त आदि में) मिताक्षरा को माननेवाले साझेदार दूसरे साझेदारों की अनुमति के बिना, न्याय के काम को छोड़कर दूसरी जगह, अपना (साझे का) हिस्सा भी खर्च नहीं कर सकते।

पूर्वर्णन्यायकर्मतें तथैवाऽन्यत्र नो पिता।
समर्थो व्ययितुं स्वांऽशमपि नूनं निजेच्छया ॥१६३३॥

उसी प्रकार पिता भी, पहले के चले आये कर्ज और न्याय के काम को छोड़कर दूसरे काम के लिए (साझे के धन के) अपने हिस्से को भी अपनी इच्छा से खर्च नहीं कर सकता।

देशे पञ्चनदे यत्र प्रथयैव सुतोऽक्षमः।
सति ताते तु पृक्तार्थं स्वेच्छयांशयितुं पुनः ॥१६३४॥

पृक्तार्थविक्रये तातकृते तत्राप्यमानिते ।
पित्रैव सार्धं पुत्रोऽपि संयुक्ताधिकृतिं वहेत् ॥१६३५॥

फिर पंजाब देश में जहां पर रिवाज से ही पिता के जीते जी पुत्र अपनी इच्छा से साझे के धन को नहीं बटवा सकता, वहां पर भी पिता के साझे के धन के बेचान के अमानित करदिये जाने पर पिता के साथ ही पुत्र भी (उस धन का) संयुक्त (joint) अधिकारी हो जाता है ।

प्रयागे विक्रयस्यास्य विरोधे तु क्षमा मताः ।
विक्रेतृभिन्नाः संसृष्टा जनो वा विक्रयान्तरम् ॥१६३६॥
संप्राप्तसर्वसंसृष्टाधिकृतिर्व्ययिते धने ।
हस्तान्तरीकरणतः, स पृक्ताश्च समं क्षमाः ॥१६३७॥

इलाहाबाद में इस बेचान के विरोध करने में बेचनेवाले से भिन्न (दूसरे) साझेदार या हस्तान्तर करने के द्वारा (संपत्ति) बेचने के बाद बेचे हुए धन में सारे ही साझेदारों का अधिकार पानेवाला पुरुष समर्थ माने गये हैं और वह (अधिकार पानेवाला पुरुष) और (सारे ही) साझेदार समान अधिकार वाले होते हैं ।

वङ्गप्रयागयोर्यत्रान्येषामनुमतिं विना ।
पृक्तः पृक्तिगतं स्वीयं स्वार्थं विक्रेतुमक्षमः ॥१६३८॥
तत्कृतो विक्रयस्तत्र चेदमान्यः कृतस्तदा ।
विशिष्टां तु स्थितिं त्यक्त्वा क्रयिको न क्षमो भवेत् ॥१६३९॥
स्वदत्तार्थकृते प्राप्तुं भागाद्विक्रयिकस्य तु ।
किमप्यंशं मतं त्वेतन्निर्णीतं न्यायसंसदा ॥१६४०॥
बन्धकीकरणेऽप्येष एव तस्यास्तु निश्चयः ।
विशिष्टास्वप्यवस्थासु यत्र विक्रयिकोऽथवा ॥१६४१॥
आधीकर्ता मृतस्तस्य भागः श्लिष्टावशिष्टितः ।
प्राप्तोऽन्येन च पृक्तेन पुत्रभिन्नेन तत्र तु ॥१६४२॥
प्रमीतर्णकृते यस्मान्नो भारी स ततः खलु ।
आधिग्राही तथा क्रेता दत्तार्थं नाप्नुयान्निजम् ॥१६४३॥

बंगाल और इलाहाबाद में जहां पर साझेदार दूसरों की अनुमति के विना साझे में रहे अपने स्वार्थ को नहीं बेच सकता, वहां पर उसका (साझेदार का विना दूसरों की अनुमति के किया) बेचान यदि अमान्य कर दिया गया हो, तो खास स्थिति को छोड़कर खरीदनेवाला अपने दिये धन के लिए बेचनेवाले के हिस्से से कुछ भी हिस्सा पाने को समर्थ नहीं होता-यह मत न्याय-परिषद् (Judicial Committee) ने निश्चित किया है । गिरवी रखने के विषय में भी उसका यही निर्णय

है । खास स्थिति में भी जहां पर बेचनेवाला अथवा गिरवी रखनेवाला मर गया हो और उसका हिस्सा सामेदारों में पीछे बचे रहने से पुत्र से भिन्न दूसरे सामेदार (भतीजे आदि) ने प्राप्त करलिया हो, वहां पर क्योंकि वह (भतीजा आदि) मरे हुए के कर्ज के लिए जिम्मेदार नहीं होता, इसलिए गिरवी लेनेवाला या खरीदने-वाला निश्चय ही अपने दिये धन को नहीं पाता है ।

पित्रा यत्र तु विक्रीता नूनं संश्लिष्टसंपदा ।
न्याय्यावश्यकताया वा प्राक्तनस्य ऋणस्य वा ॥१६४४॥
अभावे, तत्सुतेनाथ तस्मिञ्जीवति निश्चितम् ।
अभियोगः कृतस्तस्याऽमान्यत्वकरणाय तु ॥१६४५॥
न्यायेशैस्तत्र वङ्गीयैः पुत्रो भारवहः कृतः ।
पित्रात्तस्याऽखिलस्यैव ऋणस्य ननु धर्मतः ॥१६४६॥
यतो धर्मेण पुत्रस्तु पितृणस्यास्ति भारभाक् ।
दुराचाराय विहितमृणं त्यक्त्वा सुनिश्चितम् ॥१६४७॥

जहां पर पिता ने न्याय्य आवश्यकता के या पुराने ऋण के न होने पर भी, निश्चय ही, सामे का धन बेच दिया हो और उसके पुत्र ने, निश्चय ही, उस (पिता) के जीते जी उस (बिक्री) को अमान्य करने के लिए मुकद्दमा चलादिया हो, वहां पर बंगाल के न्यायाधीशों ने, निश्चय ही, धर्म के द्वारा पुत्र को पिता के लिए हुए सारे ही कर्ज का जिम्मेदार कर दिया है । क्योंकि निश्चयही पुत्र पिता के दुराचार के लिए किए कर्ज को छोड़कर, अन्य कर्ज का धर्म से जिम्मेवार होता है ।

प्रयागीयैस्तथा पञ्चनदीयैर्द्राविडैस्तथा ।
न्यायाधीशैर्मतो भारी पितृणस्य तु तत्सुतः ॥१६४८॥
तत्कृतस्याभियोगस्य काले तद्वर्तते यदि ।
क्रेतुः सकाशाद्यन्मूल्यं प्राप्तं पित्रा न तत्कृते ॥१६४९॥
भारी पुत्रो मतस्तैस्तद् गणना न ऋणे यतः ।
तद्विक्रये कृतेऽमान्ये न्यायेशैस्तदृणं भवेत् ॥१६५०॥
तेषु देशेष्वतस्तस्मिन्विक्रये निष्फलीकृते ।
आदत्ते संपदं पुत्रः क्रेत्रेऽदत्त्वैव तद्धनम् ॥१६५१॥

इलाहाबाद, पंजाब और मद्रास के न्यायाधीशों ने यदि उस (पुत्र) के किये मुकद्दमे के समय वह (कर्जा) मौजूद हो, तो पुत्र को पिता के कर्ज का जिम्मेवार माना है । (संपत्ति के) खरीददार से पिता ने जो कीमत पाई हो उसके लिए उन्होंने पुत्र को जिम्मेदार नहीं माना है । क्योंकि उसकी गिनती कर्ज में नहीं होती (वह तो मूल्य होता है) । न्यायाधीशों द्वारा उस बेचान के अमान्य कर देने पर वह (पाया हुआ मूल्य) कर्जा होजाता है, इसलिए उन देशों में उस बेचान के रद

कर देने पर पुत्र, ख़रीददार को उसका धन (वापस) दिये विना ही, संपत्ति ले लेता है ।

यो व्ययो व्ययितुः स्वाऽशं नो नियन्त्रयते स तु ।
संसृष्टिनोऽनुमन्तुर्नो भागं यन्त्रयितुं क्षमः ॥१६५२॥

जो खर्च करनेवाले के खुद के हिस्से पर प्रतिबन्ध नहीं लगाता, वह अनुमति देनेवाले साझेदार के भाग पर (भी) प्रतिबन्ध नहीं लगाता ।

नियमा विक्रये वाथ बन्धकी करणे तु ये ।
प्रोक्तास्त एव विज्ञेयाः पट्टदानेऽपि संपदः ॥१६५३॥

जो नियम बेचने के विषय में या गिरवी रखने के विषय में कहे हैं, वे ही संपत्ति के पट्टे (lease) पर देने पर भी जानने चाहिए ।

एकस्य पृक्तसंपत्तेः क्रेत्राऽर्थोऽधिकृतो यदि ।
तदा तद्विक्रये व्यर्थीकृते दद्यात्स तद्भवम् ॥१६५४॥
लाभं चापि दिनात्तस्माद् यस्मिन् पृक्तैः परैस्तु सः ।
विक्रयः प्रतिषिद्धः स्यान्न्यायेशैरिति निश्चितम् ॥१६५५॥

एक (साझेदार) की साझे की संपत्ति को ख़रीदनेवाले ने यदि उस (संपत्ति) पर अधिकार करलिया हो, तो उस (संपत्ति) के बेचान के रद करदिये जाने पर, वह जिस दिन अन्य साझेदारों ने उस बेचान का विरोध किया हो, उस दिन से उस (संपत्ति) से हुए लाभ को भी (लौटा) दे-ऐसा न्यायाधीशों ने निश्चित किया है ।

संसृष्टा व्ययकाले ये वर्तमानाश्च गर्भगाः ।
तेऽतिशक्तिव्ययं रोद्धुं शक्ताः संसृष्टसंपदः ॥१६५६॥

जो साझेदार खर्च किये जाने (alienation) के समय मौजूद अथवा गर्भ में हो, वे साझे की संपत्ति के, शक्ति से बाहर के, खर्च को रोकने में समर्थ होते हैं ।

तथैव गर्भगा कन्या ह्यपि शक्ता यथाविधि ।
प्रयोक्तुं स्वाधिकारं तु निर्णीतमिति पण्डितैः ॥१६५७॥

उसी प्रकार गर्भ में रही कन्या भी कायदे के अनुसार अपने अधिकार का प्रयोग कर सकती है---ऐसा पण्डितों ने निश्चित किया है ।

आर्यन्याये यथा पुत्रो वर्तमानस्तथैव हि ।
गर्भगोऽपि क्षमस्तातान्याय्यकार्यविरोधने ॥१६५८॥

हिन्दू कानून में जैसे वर्तमान पुत्र वैसे ही गर्भ में रहा हुआ भी पिता के अनुचित काम का विरोध करने में समर्थ होता है ।

गर्भस्थेऽपि परं तस्मिन् दत्तादाने पिता क्षमः ।
न शक्तस्तस्य तत्कर्म प्रत्याख्यातुं सुतस्तु सः ॥१६५९॥

परन्तु उस (पुत्र) के गर्भ में रहने पर भी पिता गोद लेने में समर्थ होता है। वह पुत्र उसके उस कर्म का विरोध नहीं कर सकता ।

पृक्तार्थव्ययकाले चेन्नो पुत्रः स्यात्तदा पिता ।
शक्तस्तत्राक्षमः पश्चाज्जातः पुत्रो विरोधने ॥१६६०॥

साझे के धन के खर्च (alienation) के समय यदि पुत्र न हो, तो पिता उस विषय में समर्थ होता है। पीछे पैदा हुआ पुत्र (उसका) विरोध करने में समर्थ नहीं होता ।

सत्सु पुत्रेषु चेत्पित्रा न्याय्यावश्यकतामृते ।
प्राक्तनर्णमृते वापि पृक्तसंपद्व्ययः कृतः ॥१६६१॥
अनवाप्यैव पुत्राणामनुज्ञां तद्यमान्यताम् ।
इयात्स देशभेदेन संपूर्णो वांशतः पुनः ॥१६६२॥

यदि पिता ने पुत्रों के विद्यमान होने पर पुत्रों की अनुमति पाये विना ही न्याय्य आवश्यकता के विना या पुराने कर्ज के विना साझे के धन का खर्च किया हो, तो देश-भेद से वह पूरा या उसका कुछ भाग अमान्य हो जाता है । (बंगाल और संयुक्त प्रान्त में वह पूरा का पूरा और बंबई, मद्रास और मध्य-प्रान्त में बेचनेवाले के निज के हिस्से को छोड़कर अन्यत्र अमान्य हो जाता है।)

व्ययकाले स्थिताः पुत्रा मृता जाता न चापरे ।
कञ्चित्कालं, ततो जातः पुत्रो रोद्धुं न तं क्षमः ॥१६६३॥

(धन के) खर्च करने के समय रहे पुत्र मरगये हों और कुछ समय तक दूसरे नहीं पैदा हुए हों, (तो) उसके बाद उत्पन्न हुआ पुत्र उस (खर्च) का विरोध नहीं कर सकता ।

व्ययकाले स्थितेष्वेषु ह्येकस्मिन्नपि जीवति ।
जातः पुत्रो नवो मृत एकश्चाथ स प्राक्तनः ॥१६६४॥
वङ्गे प्रयागे वाऽमान्यो नव्यपुत्रविरोधने ।
सव्ययश्चेन्नहि मतः पुत्रेण प्राक्तनेन तु ॥१६६५॥
जातस्य नव्यपुत्रस्य जनेः पूर्वमथो पुनः ।
विरोधस्यावधिर्यातस्तयोस्तस्य कृते नहि ॥१६६६॥

खर्च के समय विद्यमान उन (पुत्रों) में से एक के भी जीवित रहने पर नया पुत्र उत्पन्न हो गया हो और फिर वह एक पुराना पुत्र मर गया हो तो वह खर्च, यदि नवीन पुत्र के होने के पहले ही पुराने पुत्र ने (उसे) न मानलिया हो या उस (खर्च) के लिए विरोध करने की उन दोनों (प्राचीन पुत्र और नवीन पुत्र) की अवधि (मयाद) न निकल गई हो, तो बंगाल और इलाहाबाद (युक्तप्रान्त) में नवीन पुत्र के विरोध करने पर अमान्य हो जाता है ।

मध्यप्रान्ते महाराष्ट्रे द्रविडे चेति निश्चितम्।
यत् पृक्तेषु समर्थास्ते स्वांशादाने न यैस्तु सः ॥१६६७॥
अनुज्ञातो व्ययः किन्तु मृतास्ते वाऽवधिर्गतः।
तदा मान्यो व्ययस्तेषां पश्चाज्जातैः सुतैरपि ॥१६६८॥

मध्य-प्रान्त, बंबई और मद्रास में यह निश्चित किया गया है कि साझेदारों में जिन्हों ने उस (खर्च) की अनुमति न दी हो वे ही अपना हिस्सा लेने में समर्थ होते हैं। परन्तु वे मर गये हों या मयाद निकल गई हो, तो उसके बाद में उत्पन्न हुए (उनके) पुत्रों द्वारा भी (वह) खर्च मान्य हो जाता है।

पृक्तार्थसद्व्ययान्ते यो गृहीतो दत्तकः सुतः।
तद्व्ययार्थेऽथ पितरमभियोक्तुं न सक्षमः ॥१६६९॥

साझे के धन के उचितरूप से खर्च करने के बाद जो लड़का गोद लिया गया हो, वह उस (साझे के धन) के खर्च के लिए बाद में पिता पर मुकद्दमा नहीं चला सकता।

पृक्तेनैकेन विहिते स्वैरं पृक्तधनव्यये।
विरोद्धुं तं प्रयागे तु मताः शक्ता इमे जनाः ॥१६७०॥

एक साझेदार के अपनी इच्छा से, विना अन्य साझेदारों की अनुमति के, साझे के धन के खर्च करदेने पर इलाहाबाद में उसका विरोध करने में ये (आगे बतलाये जानेवाले) पुरुष समर्थ माने गये हैं।

संश्लिष्टास्ते जना नूनं यैः स नैवानुमोदितः।
हस्तान्तरीकरणतो वाऽवधेर्निर्गमेन वा ॥१६७१॥
येन विक्रीतसंपत्तौ सर्वपृक्ताधिकारिता।
प्राप्ताऽन्ते सोऽपि शक्तः स्यात्तद्व्ययस्य विरोधने ॥१६७२॥

निश्चय ही वे साझेदार जिन्होंने उस (खर्च) की अनुमति नहीं दी हो। अथवा हस्तान्तरित करने (transfer) से या मयाद (limitation) के निकल जाने से जिसने बेचने के बाद में बेची हुई संपत्ति में सारे ही साझेदारों का अधिकार पा लिया हो, वह भी उस खर्च का विरोध करने में समर्थ होता है।

न विरोद्धुं क्षमोऽर्थस्य व्ययं कर्ता स्वयं तथा।
व्ययान्ते तु ततः प्राप्ततदंशाधिकृतिर्जनः ॥१६७३॥

धन का खर्च करनेवाला स्वयं और खर्च करदेने के बाद उसी (खर्च करनेवाले) से उसके हिस्से का अधिकार पानेवाला पुरुष (उसका) विरोध नहीं कर सकता।

परं शासनसंजाते विक्रेऽंशस्य विक्रये।
तत्क्रेताऽलंविरोद्धुं तत्कृतं प्राग्विक्रयं ध्रुवम् ॥१६७४॥

परन्तु डिग्री द्वारा हुए बेचनेवाले के भाग के बेचान में उस (बेचे हुए भाग) का खरीदनेवाला उस (पुरुष) के किये पहले के बेचान का निश्चय ही विरोध कर सकता है ।

अविक्रेतुश्च प्रत्यादोऽपरपृक्तकृतं व्ययम् ।
पृक्तार्थस्य विरोद्धुं स्यात्समर्थो न्यायतः पुनः ॥१६७५॥

फिर (संपत्ति को) नहीं बेचने वाले का प्रत्याद (reversionary heir) दूसरे साझेदार द्वारा किये साझे के धन के खर्च का न्याय से विरोध कर सकता है ।

प्रागेकपृक्तविहितपृक्तार्थस्याधिधारकः ।
विक्रयस्य तदन्यस्य विरोधे न क्षमो मतः ॥१६७६॥

पहले एक साझेदार द्वारा की गई गिरवी को लेनेवाला (mortgagee) उसके बाद किये बेचान का विरोध करने में समर्थ नहीं माना गया है ।

संसृष्टार्थस्य पित्राऽत्र विहितेऽपव्यये ध्रुवम् ।
अभियोगावधिस्तत्र मतो द्वादशवार्षिकः ॥१६७७॥

यहां पर पिता-द्वारा साझे के धन के अनुचित--रूप से खर्च किये जाने पर, उस विषय में मुकद्दमा चलाने की मयाद बारह वर्ष की मानी गई है ।

यद्दिने ग्राहके नात्तोऽधिकारः क्रीतसंपदः ।
तद्दिनादवधिर्ग्राह्योऽभियोगार्थमपव्यये ॥१६७८॥

अनुचित रूप से खर्च करने पर जिस दिन ग्राहक ने खरीदी हुई संपत्ति का अधिकार पाया हो, उस दिन से मुकद्दमे की अवधि लेनी चाहिए ।

अवयस्कास्तु ये पुत्रा वयोऽष्टादशवार्षिकम् ।
प्राप्याऽभियोक्तुं पितरं त्रीणिवर्षाणि ते क्षमाः ॥१६७९॥

जो पुत्र नाबालिग हों, वे अट्ठारह वर्ष की आयु पा कर तीन वर्ष तक पिता पर मुकद्दमा चला सकते हैं । (अर्थात्-वे बालिग हो जाने के बाद तीन वर्ष के भीतर अभियोग चला सकते हैं ।)

जाते ज्येष्ठे सुते पूर्णाऽधिकारवति कर्तरि ।
तत्रत्या तस्य बाधा तु कनिष्ठानपि बाधते ॥१६८०॥

बड़े पुत्र के पूरे अधिकार वाले कर्ता हो जाने पर उस (ज्येष्ठ पुत्र) को उस (पिता पर के मुकद्दमे) में होनेवाली रुकावट छोटे पुत्रों को भी रोकती है । (अर्थात्-ऐसी अवस्था में ज्येष्ठ पुत्र के मुकद्दमा न चला सकने पर छोटे पुत्र भी अभियोग नहीं चला सकते ।)

व्ययान्ते तु समुत्पन्नपुत्रस्य द्वादशाब्दिकः ।
अभियोगेऽवधिर्ज्ञेयः परस्याऽर्थाऽधिकारतः ॥१६८१॥

(सामे के धन के) खर्च करदेने के बाद उत्पन्न हुए पुत्र के लिए मुकद्दमे की मयाद अन्य पुरुष के (उस सामे के) धन पर अधिकार करने से बारह वर्ष तक जाननी चाहिए ।

१३ दायभागीयाः संसृष्टास्तत्रोक्तः संसृष्टार्थश्च ।

दायभाग में कहे सामेदार और उसमें कहा सामे का धन ।

दायभागो दायकर्मसंग्रहश्च तथा पुनः ।
दायतत्त्वं मता एते ग्रन्था वङ्गेषु शास्त्रिभिः ॥१६८२॥

दायभाग, दायकर्मसंग्रह (१८ वीं शताब्दी में हुए श्रीकृष्ण तर्कालङ्कार का रचा) और दायतत्त्व (१६ वीं शताब्दी में हुए रघुनन्दन का बनाया) ये ग्रन्थ बंगाल में विद्वानों ने मान्य समझे हैं ।

दायभागे त्वनुक्तानां निर्णयानां कृते पुनः ।
प्रयुज्यते यथा साध्यं तत्र मैताक्षरं मतम् ॥१६८३॥

फिर दायभाग में नहीं कहे निर्णयों के लिए वहां पर (बंगाल में) भी यथासाध्य मिताक्षरा का मत काम में लिया जाता है ।

दायभागे पुरैवोक्तः प्रतिबन्धी तु पैतृकः ।
अर्थस्तस्मान्न संसृष्टिः संभवा सुततातयोः ॥१६८४॥

दायभाग (ग्रन्थ) में पहले ही पिता के धन को प्रतिबन्धी कहा है । (अर्थात् उस धन पर पुत्र का अधिकार पिता के मरने पर ही होता है ।) इसीसे पुत्र और पिता में सामा नहीं हो सकता ।

दायभागे तु संसृष्टी नैव पुत्रैः समं पिता ।
पौत्रैः पितामहश्चैवं प्रपौत्रैः प्रपितामहः ॥१६८५॥

दायभाग में तो पुत्रों के साथ पिता, पोतों के साथ दादा और उसी तरह परपोतों के साथ परदादा सामेदार नहीं होता ।

दायभागमते पित्रोर्जीवतोः संपदि ध्रुवम् ।
नाऽधिकारी भवेत्पुत्रस्तन्मृत्यौ स तु वित्तभाक् ॥१६८६॥

दायभाग के मत में जीवत माता-पिता की संपत्ति में निश्चय ही पुत्र अधिकारी नहीं होता । उनके मरने पर वह धन पाता है ।

अतो व्ययितुमर्थं स्यात् क्षमस्तातश्चलाऽचलम् ।
पैतृकं स्वाऽधिकारेण निजार्थमिव तत्र तु ॥१६८७॥

इससे वहां पर तो पिता (अपने) पिता से मिले स्थावर और जङ्गम धन को अपने अधिकार से, अपने धन के समान खर्च कर सकता है ।

विभाजयितुमर्थं तं तस्य चायव्ययं पुनः।
अष्टुं न शक्तास्तत्पुत्रा जनके सति जीवति ॥१६८८॥

उसके पुत्र पिता के जीते जी उस धन को बांटने या उसकी आमदनी और खर्च पूछने में समर्थ नहीं होते।

न पितुः कर्तृ संबन्धोऽप्युन्नेयः स्वसुतैः सह।
आजीवं स मतः स्वामी नूनं पैतृकसंपदः ॥१६८९॥

पिता का अपने पुत्रों के साथ कर्ता का भी संबन्ध नहीं खयाल करना चाहिए। वह अपने जीते जी निश्चय ही बाप-दादा की संपत्ति का मालिक माना गया है।

मिताक्षरायां संसृष्टी जातमात्रः सुतः पितुः।
दायभागे मृते ताते पुत्राः संसृष्टिनो मिथः ॥१६९०॥

मिताक्षरा में पैदा होते ही पुत्र पिता का साझेदार हो जाता है। दायभाग में पिता के मरने पर पुत्र आपस में साझेदार होते हैं।

कस्मिन्नपि मृते तेषु संसृष्टी तत्सुतः पुनः।
पुत्रपौत्रप्रपौत्रान्ता संसृष्टिर्मरणे मता ॥१६९१॥

फिर उन (पुत्रों) में से किसी के मरने पर उसका पुत्र साझेदार होता है। (धन के स्वामी के) मरने पर बेटों, पोतों और परपोतों तक साझेदारी मानी गई है। (अर्थात्—तीन पीढ़ी से आगे का साझेदार नहीं होता।)

संसृष्टानां मृतानां तु पुत्राऽभावे स्त्रियोऽथवा।
पुत्र्योऽत्रभागमर्हन्ति संसृष्टाऽर्थे सुनिश्चितम् ॥१६९२॥

मरे हुए साझेदारों के पुत्र न होने पर (उनकी) औरतें या लड़कियां साझे के धन में निश्चय ही भाग पाती हैं। (अर्थात्—साझेदार होती हैं।)

एता भार्याश्च पुत्र्यश्च स्व-स्वभर्तुस्तथा पितुः।
प्रातिनिध्येन संसृष्टा दायभागे मताः क्रमात् ॥१६९३॥

दायभाग में ये स्त्रियां और पुत्रियां क्रम से अपने-अपने पति और पिता के प्रतिनिधि-रूप से साझेदार मानी गई हैं।

पुंसन्ततेरभावे तु विधवाभिस्तथैव च।
कन्याभिर्यद्धनं प्राप्तं न संसृष्टं तु तन्मतम् ॥१६९४॥

पुरुष सन्तान के अभाव में एकाधिक विधवाओं ने या कन्याओं ने जो धन पाया हो, वह साझे का नहीं माना गया है।

पुंसि पृक्ते स्थिते नार्यः संसृष्टाःस्युर्धने ननु।
संसृष्टे, तदभावे च न संसृष्टाः स्त्रियो मताः ॥१६९५॥

साझेवाले पुरुष के होने पर औरतें साझे के धन में साझेदार होती हैं। उक्त (पुरुष साझेदारों) के न होने पर स्त्रियां (आपस में) साझेवाली नहीं मानी गई हैं।

यतो नार्यो नराऽभावे संसृष्टिस्थापनेऽक्षमाः।
मिताक्षरायां न नरैः संसृष्टिन्यः स्त्रियः क्वचित् ॥१६९६॥

क्योंकि पुरुषों के अभाव में (केवल) स्त्रियां साझा कायम नहीं कर सकतीं। मिताक्षरा में पुरुषों के साथ स्त्रियां कहीं भी साझेदार नहीं हो सकतीं।

दायभागे भ्रातरो वा पितृव्यभ्रातृजौ तथा।
पितृव्यजाश्च तत्पुत्रा मिथः संसृष्टिनो मताः ॥१६९७॥

दायभाग में भाई, चाचा, भतीजे, चचेरे भाई और उन (चचेरे भाइयों) के पुत्र आपस में साझेदार माने गये हैं।

मिताक्षरावदेवात्र दायभागेऽपि पैतृकम्।
पितुः पितामहात् प्राप्तं प्रपितामहतोऽथवा ॥१६९८॥

मिताक्षरा के समान ही यहां दायभाग में भी पिता, दादा या परदादा से पाया (धन) पैतृक धन होता है।

पैतृकोर्थः सहाप्तो वा स्वसंश्लिष्टोऽथ तत्फलम्।
संसृष्टोर्थो मतो दाये मते मैताक्षरेऽपि च ॥१६९९॥

बाप, दादा या परदादा का धन, साथ में मिला धन या खुद शामिल किया धन और इन (धनों) की आमदनी दायभाग के और मिताक्षरा के मत में निश्चय ही साझे का धन माना गया है।

मिताक्षराऽनुगाः सर्वे सर्वस्यामेव संपदि।
समाऽधिकाराः संसृष्टा यावन्नाऽर्थविभाजनम् ॥१७००॥

मिताक्षरा के अनुसार चलनेवाले सारे साझेदार जब तक धन का बटवारा न हो जाय, (तबतक) सारे ही धन में समान अधिकार (unity of ownership) वाले होते हैं। (अर्थात्-प्रत्येक साझेदार का प्रत्येक वस्तु पर अधिकार होता है।)

कुटुम्बिनां मृतौ वृद्धिस्तत्र स्वाऽर्थस्य जीवताम्।
कुटुम्बिजन्मतो ह्रासस्तेषां स्वार्थस्य वा पुनः॥१७०१॥

वहां पर कुटुम्बवालों के मरने पर जीते रहनेवालों के स्वार्थ की बढ़ती होती है और फिर कुटुम्बवालों के जन्म ने से उनके स्वार्थ (हक़) की कमी होती है। (अर्थात्-साझेदार के मरने पर उसका भाग इनमें बँट जाने से साझे के धन में इनका हिस्सा बढ़ जाता है और नये साझेदार के जन्मने पर इनके हिस्से का कुछ भाग उसके हिस्से में चले जाने से इनका हिस्सा घट जाता है।)

दायभागाऽनुगाः किन्तु सर्वसंसृष्टसंपदः।
समस्वाम्यधराश्चाऽथ निश्चितांऽशा अपि ध्रुवम् ॥१७०२॥

परन्तु दायभाग के अनुसार चलनेवाले सारी ही साझे की संपत्ति में समान मिल्कियत (unity of possession) वाले और निश्चय-रूप से निश्चित भागवाले होते हैं।

जन्मतो मृतितः स्वांऽशह्रासवृद्धी न तत्र तु।
विशिष्टसंपदः किन्तु स्वाम्यं तत्राप्यनिश्चितम् ॥१७०३॥

वहां पर तो (कुटुम्ब) में जन्म ने या मरने से (हिस्से में) कमी या ज़्यादती नहीं होती। परन्तु खास संपत्ति का स्वामीपन वहां भी निश्चित नहीं होता। (अर्थात्-संपत्ति में भाग का परिमाण तो निश्चित होता है, परन्तु कौनसी वस्तु किसकी है यह निश्चित नहीं होता।)

मिताक्षराऽनुगाः स्वस्वभागनिर्णयनोत्तरम्।
सहाऽधिकारिणोऽप्यत्र संसृष्टा न मता बुधैः ॥१७०४॥

मिताक्षरा के अनुसार चलनेवाले अपने-अपने हिस्से का निर्णय करलेने के बाद यहां पर (हिस्सों को इकट्ठा रख कर) साथ-साथ अधिकार रखनेवाले हों, तब भी विद्वानों-द्वारा साझेदार नहीं माने जाते। (अर्थात्-साझे की संपत्ति का एक वार बटवारा हो जाने पर साझा टूट जाता है।)

कस्याऽपि मरणे तत्र नोत्तराः शिष्टजीविनः।
तद्भागस्तस्य दायादान् याति संसृष्टिनाशतः ॥१७०५॥

वहां पर (हिस्सा करलेने की अवस्था में) किसी के मरने पर शेष जीनेवाले उसके उत्तराधिकारी नहीं होते। साझे के नाश हो जाने से उसका हिस्सा उसके हकदारों (बेटों, पोतों, आदि) को मिलता है।

निर्णीतांऽशास्तु संसृष्टा दायभागे यतस्ततः।
तत् स्वाम्याऽर्हा हि तद्भागक्रेतारो राऽनुज्ञया ॥१७०६॥

क्योंकि दायभाग में साझेदारों का हिस्सा तय होता है, इसलिए, राजा की इजाजत से, उनका हिस्सा खरीदनेवाले, उन हिस्सों के मालिक होने योग्य होते हैं। (अर्थात्-अदालत द्वारा उस भाग के बेचे जाने पर खरीददार उस पर कब्जा कर सकते हैं।)

यतस्तत्र च संसृष्टा निश्चितांऽशा हि संपदि।
तेषां मृत्यौ तु दायादास्तेषामंशानावप्नुयुः ॥१७०७॥

और क्योंकि वहां पर (दायभाग में) साझेदार धन में निश्चित किये हिस्से के हकदार होते हैं, (इसलिए) उनके मरने पर उनके (अपने) हकदार (बेटे, पोते, आदि) उनके हिस्से को प्राप्त कर सकते हैं।

मिताक्षराऽनुगाः किन्तु निश्चितांऽशा न संपदि ।
संसृष्टायां यतस्तस्माद् विशिष्टास्तत्र भागिनः ॥१७०८॥

परन्तु क्योंकि मिताक्षरा के अनुसार चलनेवाले साझे के धन में निश्चित हिस्से-वाले नहीं होते, इसलिए वहां पर (किसी के मरने पर साझेदारों में पीछे) बचे हुए हकदार होते हैं। (बेटे, पोते आदि नहीं।)

विक्रेतुमाधीकर्तुं वा दातुमंशं च तद्गतम् ।
दायभागाऽनुगाः शक्ता निश्चितांऽशतया पुनः ॥१७०९॥

फिर दायभाग को माननेवाले, निश्चित भागवाले होने से, उस (अपने हिस्से) में के धन को बेचने, गिरवी रखने या (उपहार अथवा इच्छा-पत्र-द्वारा) देने में समर्थ होते हैं।

द्रविडांश्च महाराष्ट्रानृते मैताक्षरा जनाः ।
संसृष्टसंपदोऽशक्ता दानाऽऽधिविपणादिषु ॥१७१०॥

मदरास और बंबई प्रान्त को छोड़कर (दूसरी जगह) मिताक्षरा को माननेवाले पुरुष साझे की संपत्ति को देने, गिरवी रखने, या बेचने में असमर्थ होते हैं।

दायभागाऽनुगस्याऽत्र भागं संसृष्टसंपदः ।
राजाज्ञया हि विक्रीतं क्रीणन् संसृष्टितामियात् ॥१७११॥

यहां पर राजा (अदालत) की आज्ञा से बेचे गये, दायभाग को माननेवाले के, साझे के धन के हिस्से को ख़रीदनेवाला साझेदार हो जाता है।

संसृष्टः कोऽपि स्वं भागं पट्टे दत्वा क्षमः पुनः ।
ग्राहकायास्य पट्टस्य दातुं स्वांशाधिकारिताम् ॥१७१२॥

कोई भी साझेदार अपने हिस्से को पट्टे पर देकर फिर उस पट्टे के लेनेवाले को अपने हिस्से के स्वाम्य को दे सकता है।

कर्तुर्मिताक्षरायां योऽधिकारो दर्शितः पुरा ।
स एव दायभागेऽपि संसृष्टऽर्थे विनिश्चितः ॥१७१३॥

पहले मिताक्षरा में जो कर्ता का अधिकार दिखलाया गया है, वही दायभाग में भी साझे के धन में निश्चित है।

समर्थ ऋणमादातुं पृक्तवंशकृते त्वसौ ।
आधीकर्तुं च पृक्तार्थं वंशव्यापारकर्मणे ॥१७१४॥

वह साझे के कुटुम्ब के लिए कर्जा ले सकता है और कुटुम्ब के व्यापार के काम के लिए साझे के धन को गिरवी रख सकता है।

शासनं तद्विरुद्धं तु प्रागुक्तर्णाय यद्भवेत् ।
तद् बाधतेऽत्र संसृष्टान्सर्वानन्यानपि ध्रुवम् ॥१७१५॥

पहले कहे कर्ज के लिए उसके विरुद्ध जो डिग्री होगी, वह यहां पर निश्चय ही दूसरे सारे ही साझेदारों को भी बाधा देगी (बांधलेगी)।

वंशर्णायाऽत्र कर्तृभ्यां धनमाधीकृतं हि यत्।
विक्रेयमभियोगे तच्छेषेऽन्येऽप्युत्तरप्रदाः ॥१७१६॥

कुटुम्ब के कर्ज के लिए दो कर्ताओं ने जो (संपत्ति) गिरवी रखी हो, मुकद्दमा चलने पर उसे बेच देना चाहिए। बाकी कर्ज के लिए दूसरे (साझेदार) भी जवाबदेह (उत्तरदाता) होंगे।

निश्चितांऽशतया तत्र स्वाऽधिकारगतं धनम्।
यथेच्छमुपयोक्तुं हि दायभागाऽनुगः क्षमः ॥१७१७॥

वहां पर (दायभाग में अपना) हिस्सा निश्चित होने से दाय भाग के अनुसार चलनेवाला अपने अधिकार में आये धन को अपनी इच्छानुसार काम में ले सकता है।

तथाऽपि नाऽहिते शक्तः सोऽत्र संसृष्टसंपदः।
न स्वाऽर्थमपरस्याऽपि पुनरुल्लंङ्घितुं क्षमः ॥१७१८॥

फिर भी वह यहां पर साझे के धन को हानि नहीं पहुँचा सकता और वह दूसरे (साझेदार) के स्वार्थ का भी उल्लंघन नहीं कर सकता।

तस्मान्नाऽधिकृतं क्षेत्रं सर्वसंमतितस्तु यत्।
तदत्र स्वार्थवशत उपयुञ्जीत न स्वयम् ॥१७१९॥

इसलिए जो खेत सब की राय से अधिकार में न लिया हो, उसे यहां पर स्वार्थ (मतलब) के बस होकर अपने आप काम में न ले।

संसृष्टिनो वयस्का ये संसृष्टार्थविभाजने।
मिताक्षरावदेवाऽत्र दायभागेऽपि ते क्षमाः ॥१७२०॥

जो बालिग साझेदार हैं, वे मिताक्षरा की तरह दायभाग में भी साझे के धन को बांटलेने में समर्थ होते हैं।

संसृष्टाऽर्थे च संसृष्ट-कुटुम्बे याऽस्ति कल्पना।
मिताक्षरायां सैवाऽस्ति दायभागेऽपि निश्चिता ॥१७२१॥

साझे के धन और साझे के कुटुम्ब के विषय में जो विचार मिताक्षरा में है, वही दायभाग में भी निश्चित किया गया है।

सति ताते परं तत्र सुतक्रीतं निजं धनम्।
स्थितं तस्याऽधिकारे चेन्न संसृष्टं तदा तु तत् ॥१७२२॥

परन्तु वहां पर (दायभाग में) पिता की मौजूदगी में पुत्र द्वारा खरीदी गई निज की (व्यक्तिगत) संपत्ति यदि उसीके अधिकार में रही हो तो, वह साझे की नहीं होती।

पुत्रक्रीतं गृहं पित्रा सेवितं तनयैः समम्।
संसृष्टत्वप्रमाणस्याऽभावे नो संसृष्टितामियात्॥१७२३॥

(दायभाग में) पिता द्वारा (सब) पुत्रों के साथ काम में लिया गया (किसी) पुत्र का खरीदा घर साझे के प्रमाण के न मिलने पर साझे का नहीं हो सकता।

आपत्तिं तत्र चेत् कुर्यात् कोऽपि तर्हि स एव हि।
तस्य संसृष्टतासिद्ध्यै प्रमाणानि प्रदर्शयेत्॥१७२४॥

उस मामले में यदि कोई आपत्ति करे तो वही उस (संपत्ति) को साझे की सिद्ध करने के लिए प्रमाण दिखलावे।

मिताक्षरीयमृणविवेचनम्।

मिताक्षरा में कहा कर्ज का विवेचन।

संसृष्टाऽर्थकुटुम्बीय उद्धारे नियमास्तु ये।
ते प्रोक्ताः कथ्यतेऽथाऽतो वैयक्तिकऋणे विधिः॥१७२५॥

साझे के धनवाले कुटुम्ब के कर्ज के विषय में जो कायदे हैं, वे कह दिये। अब आगे व्यक्तिगत कर्ज का नियम कहा जाता है।

व्यक्तिगार्थ ऋणभारिता।

व्यक्तिगत धन पर कर्ज का बोझा।

मिताक्षरायां धनिनो मृतौ तदृणभारिता।
दायांऽशलाभाऽवधिका दायादानां मता ध्रुवम्॥१७२६॥

मिताक्षरा में, धनवान् के मरने पर, उसके कर्ज की उसके उत्तराधिकारियों की जिम्मेदारी, उत्तराधिकार में मिले धन तक की ही निश्चितरूप से मानी गई है। (अर्थात्—जितना धन उत्तराधिकारी को मिला हो, उतने के लिए ही वह उत्तरदायी होता है।)

ऋणे तु पैतृके तत्र भारित्वं पुत्रपौत्रयोः।
मतं पूर्णं परं त्वद्य दायांऽशेनैव सीमितम्॥१७२७॥

पिता से संबन्ध रखनेवाले कर्ज में तो वहां (मिताक्षरा में) बेटों-पोतों की पूरी ज़िम्मेवारी मानी गई है। परन्तु आज-कल (वह) उत्तराधिकार में मिले हिस्से तक ही रखी गई है।

न्याय्यं पित्र्यमृणं पूर्णं देयं त्रिपुरुषाऽवधि।
आसीत्तदद्य स्वांऽशान्तमन्याय्यमपि दाप्यते ॥१७२८॥

(पहले) पिता से संबन्ध रखनेवाला, उचित ऋण, तीन पीढ़ी तक, पूरा देने लायक होता था; आजकल वह अन्याय्य होने पर भी अपने (उसके धन में से मिले) हिस्से तक दिलवाया जाता है।

गताऽवधिऋणं पित्रा लेखेनाङ्गीकृतं पुरा।
तर्हि तत्तु सुतैर्देयं तन्मृत्यौ तद्धनान्निजात् ॥१७२९॥

यदि पिता ने मर्याद के बाहर का कर्ज पहले लिखकर अङ्गीकार करलिया हो, तो उसके मरने पर, उसके पुत्रों को, वह (कर्जा) उस (पिता) के निज के (व्यक्तिगत) धन से देना चाहिए।

संसृष्टानां स्वार्थ ऋणभारिता।
साझेदारों के स्वार्थ पर कर्ज का बोझा।

मिताक्षराऽनुगेष्वत्र जीवत्स्वेव प्रगृह्यते।
ऋणे व्यक्तिगते तेषां संसृष्टाऽर्थो न तन्मृतौ ॥१७३०॥

यहां पर मिताक्षरा के अनुसार चलनेवालों में, व्यक्तिगत ऋण में, उनकी जीवित अवस्था में ही, उनका साझे का धन लिया (attach किया) जाता है, उनके मरने पर नहीं।

विक्रीयेत तदन्तेऽपि स चेदधिकृतः पुरा।
पुराऽनाधिकृतस्त्वेति तदा संसृष्टिनोऽपरान् ॥१७३१॥

यदि वह (धन) पहले (उसके जीते जी ही) अधिकार में (attach) करलिया हो, तो उसके बाद (मरने पर) भी बेचा जा सकता है। पहले से अधिकार में (attach) नहीं किया गया हो तो उस समय (उसके मरने पर) साझेदारों को मिलता है।

संसृष्टौ तातपुत्राणां पितृमृत्यावपि ध्रुवम्।
तदंशस्तदृणार्थं तु ग्राह्यो मैताक्षरे मते ॥१७३२॥

मिताक्षरा के मत में पिता और पुत्रों के साझे में, पिता के मरने पर भी, निश्चय ही, उसका हिस्सा उसके क़र्ज के लिए ले लेने लायक माना गया है।

स्वार्थं कस्याऽपि संसृष्टावाक्रान्तं प्राग् विनिर्णयात्।
निर्णयश्चाऽभियोगस्य न तज्जीवति निश्चितः ॥१७३३॥
चेत्तदा मरणे तस्य स आक्रान्तोऽपि निश्चितम्।
अर्थः प्रयाति तस्यैव संसृष्टाञ्शिष्टजीवितान् ॥१७३४॥

यदि किसी का साझे का हिस्सा फैसले के पहले ही दबालिया (attach करलिया) हो और उसके जीते जी मुकद्दमे का फैसला न किया हो (अर्थात्-डिग्री न दी हो), तो उसके मरने पर, उसका वह दबाया हुआ भी धन निश्चित-रूप से उसीके जीवित साझेदारों को मिल जाता है।

प्राग्निर्णयात्समाक्रान्तो भागः कस्यापि पृक्तिगः।
प्रदत्तं शासनं चापि तस्मिञ्जीवति निश्चितम् ॥१७३५॥
इत्याभ्यां हीयते वा नो स्वाम्यं श्लिष्टावशिष्टिगम्।
न निर्णयोऽस्य विहितः सर्वमान्यस्तु शास्त्रिभिः ॥१७३६॥
मिथिलायां महाराष्ट्रेऽसमर्थे ते मते उभे।
निराकर्तुं हि तत्स्वाम्यं द्रविडे तु क्षमे पुनः ॥१७३७॥

(मुकद्दमे के) निर्णय के पूर्व ही किसी के साझे में रहे धन पर निश्चय ही उसके जीते जी अधिकार (attachment) करलिया हो और डिग्री भी दे दी हो, तो इन बातों से साझेदारों में पीछे बच जाने से मिलनेवाला अधिकार नष्ट होता है या नहीं–विद्वानों ने इसका सर्व-मान्य निर्णय नहीं किया है। पटना और बंबई में वे दोनों बातें उस (साझेदारों में पीछे रहने से मिलनेवाले) अधिकार को मिटाने में असमर्थ मानी गई हैं और फिर मद्रास में समर्थ मानी गई हैं।

पैतृकऋणार्थं संसृष्टार्थ ऋणभारिता।

पिता के कर्ज़ के लिए साझे के धन पर कर्ज़ का बोझा।

देयं स्वपितृसंसृष्टैः पुत्रपौत्रप्रपौत्रकैः।
कर्त्रा पित्रा कृतं वंश्यं यावत् पृक्तधनं त्वृणम् ॥१७३८॥

अपने पिता के साझेदार बेटों, पोतों और परपोतों को कर्ता (मैनेजर) की हैसियतवाले पिता का किया कुटुम्ब संबन्धी कर्ज़ (अपने) साझे के धन की सीमा-तक देना (चुकाना) चाहिए।

पितृसंसृष्टपुत्राऽऽद्यैर्न्याय्यं व्यक्तिगतं पितुः।
ऋणं देयं, न तत्र स्युः संसृष्टा भारिणोऽपरे ॥१७३९॥

पिता के साथ साझेवाले पुत्र आदि (बेटों, पोतों और परपोतों) को पिता का, उचित कार्य के लिए किया, 'व्यक्तिगत (खुद का) कर्ज़ देना चाहिए; दूसरे साझेदार उसके ज़िम्मेदार नहीं होते। (अर्थात्–दूसरे साझेदारों की विद्यमानता में भी साझेदार-पुत्र पिता के कर्ज़ के जिम्मेवार होते हैं।)

ऋणे पित्र्ये न पुत्राऽऽद्या व्यक्तिगत्वेनभारिणः।
संसृष्टाऽर्थगतांऽशाऽन्तस्तेषु भारो विनिश्चितः ॥१७४०॥

पुत्र आदि (बेटे, पोते और परपोते) पिता के कर्ज के विषय में व्यक्तिगत-रूप से (personlly) ज़िम्मेवार नहीं होते । साझे के धन में रहे (अपने) हिस्से तक उन पर ज़िम्मेदारी रहती है ।

ऋणे पित्र्ये तु पुत्राऽद्यास्तावदेवाऽत्र भारिणः ।
नाऽपयाति पितुर्भारो यावद्, नैव ततः परम् ॥१७४१॥

यहां पर पिता के कर्ज़ के विषय में पुत्र आदि (बेटे, पोते, परपोते) तब तक ही ज़िम्मेदार होते हैं, जब तक पिता का दायित्व दूर नहीं हो जाता । उसके बाद (वे ज़िम्मेदार) नहीं होते । (अर्थात्-पिता के दिवालिया होकर उससे मुक्ति पा जाने पर, उसके पुत्र भी पिता के कर्ज के लिए ज़िम्मेदार नहीं रहते ।)

जीवत्यथ मृते ताते तदृणस्योत्तरप्रदाः ।
तत्पुत्रा भारते वर्षे सर्वत्रैवाऽद्य संमताः ॥१७४२॥

आज कल सारे ही भारत वर्ष में पिता की जीवित अवस्था में या मरने पर उसके कर्ज़ के ज़िम्मेदार, उसके पुत्र माने गये हैं ।

संसृष्ट्यन्तेऽपि यत् त्रातं स्वीकृत्याऽवधिनिर्गमात् ।
ऋणं पित्रा, प्रदेयं तत् तस्य पुत्रादिभिर्ध्रुवम् ॥१७४३॥

साझेदारी के समाप्त हो जाने पर भी पिता ने जिस ऋण को स्वीकार करके मयाद-निकलने से बचादिया हो, उस (ऋण) को उसके पुत्र आदि (बेटों, पोतों और परपोतों) को भी निश्चय ही चुकाना चाहिए । (अर्थात्-ऋण साझेदारी के समय का हो और साझेदारी की समाप्ति पर उसे पिता ने फिर से स्वीकार कर-लिया हो, तो पुत्रों को उसके चुकाने में मयाद का झगड़ा नहीं डालना चाहिए ।)

भारित्वं नाऽपयात्येषां देशे पञ्चनदेऽपि च ।
सति ताते न ते यत्र संसृष्टेर्वण्टने क्षमाः ॥१७४४॥

और इनकी (यह) ज़िम्मेदारी पंजाब में भी, जहां पिता की मौजूदगी में वे साझे॰के बांटने में समर्थ नहीं होते, दूर नहीं होती ।

पार्थक्यान्ते पितृकृत ऋणे पुत्रा न भारिणः ।
संसृष्टौ तु कृते ते स्युर्विभागान्तेऽपि भारिणः ॥१७४५॥

जुदा होने के बाद किये पिता के कर्ज़ के विषय में पुत्र ज़िम्मेवार नहीं होते । साझेदारी के समय किये (ऋण) के तो वे जुदा होने के बाद भी ज़िम्मेदार होते हैं ।

संसृष्ट्यन्तेऽभियुक्तेऽत्र ताते यद्राजशासनम् ।
तेन तत्पुत्रसंपत्तौ नाऽधिकारी भवेज्जनः ॥१७४६॥

साझेदारी के टूटने पर पिता पर चलाये मुकद्दमे में जो राजाज्ञा (डिग्री) हो, उससे पुरुष (मुकद्दमा चलानेवाला) उसके पुत्र के धन का अधिकारी नहीं हो सकता ।

ऋणं पित्र्यं तु दातव्यं पुत्रपौत्रप्रपौत्रकैः ।
सवृद्धिकं यतो नाऽद्य बृहस्पतिवचो मतम् ॥१७४७॥

पिता का कर्ज़ा तो बेटों, पोतों और परपोतों को मय व्याज के चुकाना चाहिए; क्योंकि आजकल बृहस्पति का वचन नहीं माना जाता है ।

ऋणं सवृद्धिकं पित्र्यं पुत्रः पौत्रस्त्ववृद्धिकम् ।
शक्त एव प्रपौत्रस्तद् दद्यादिति बृहस्पतिः ॥१७४८॥

पुत्र पिता के ऋण को व्याज सहित, पोता बिना व्याज के और परपोता समर्थ होने पर ही उसे (ऋण को) दे । यह बृहस्पति का वचन है ।

उत्तमर्णस्तु निस्तीर्याऽभियोगं पितृगं क्षमः ।
पुत्रांऽशमपि योग्यर्णे नेतुं संसृष्टिसंस्थितम् ॥१७४९॥

कर्ज़ा देनेवाला पिता पर के अभियोग में डिग्री प्राप्तकर उचित कर्ज़ में साझे में रहे (उसके) पुत्र के भाग को भी ले सकता है ।

ताते ऽभियुक्ते स्वार्थाय विभागो विहितः सुतैः ।
भवेदन्याय्य एवात्राऽभियोगिहितनाशनः ॥१७५०॥

यहां पर पिता पर मुकद्दमा चलाये जाने पर पुत्रों द्वारा अपने मतलब के लिए किया, मुकद्दमा चलानेवाले के स्वार्थ को नाश करनेवाला, बटवारा न्याय्य विरुद्ध ही होता है ।

तथा कृतेऽभियोगी तु प्राप्नुयाद् राजशासनम् ।
संसृष्टार्थाय, पुत्रं वा पितृपक्षेऽभियोजयेत् ॥१७५१॥

ऐसा (ऊपर कहे अनुसार बटवारा) करलेने पर मुकद्दमा चलानेवाला साझे के धन के लिए (अर्थात्–पिता और पुत्र दोनों के साझे के धन के लिए) डिग्री प्राप्त करे अथवा पुत्र को भी पिता की तरफ़ मिलादे । (अर्थात्–पिता के साथ ही उसे भी मुद्दायले बनावे ।)

शासनान्तेऽपि भागश्चेत् संसृष्टार्थाय शासनम् ।
प्रयुञ्जीताऽभियुञ्जीत तत् सुतान् वा पृथक्तया ॥१७५२॥

यदि डिग्री होने के बाद भी बटवारा हो, तो साझे के धन के लिए उस डिग्री का प्रयोग करे अथवा उसके पुत्रों पर जुदा तौर से मुकद्दमा चलावें ।

उत्तमर्णोभियुञ्जीत पिता पुत्रावुभावुत ।
प्राप्नुयाच्छासनं च स्व-दत्तार्थप्रतिदत्तये ॥१७५३॥

अथवा कर्ज देनेवाला पिता और पुत्र दोनों पर मुकद्दमा चलावे और अपने दिये धन को पीछे देने के लिए डिग्री प्राप्त करे।

एतस्यामथवेदृश्यां दशायामभियोगिना।
अभियुक्तः सुतोऽन्याय्यं पितृणं चेत् प्रमाणयेत् ॥१७५४॥
दातुश्चाऽभिज्ञतां तत्र तर्हि संसृष्टिसंस्थितः।
तस्यांऽशस्तदृणोद्धारेऽनुपादेयो मतो बुधैः ॥१७५५॥

ऐसी (ऊपर कही) अथवा इसी के समान दशा में मुद्दई द्वारा मुद्दाअले बनाया पुत्र यदि पिता के (व्यक्तिगत) कर्ज को अनुचित प्रमाणित करदे और उस विषय में देनेवाले की जानकारी (अर्थात्-देनेवाले ने जान-बूझकर यह ऋण अनुचित काम के लिए दिया है ऐसा) सिद्ध करदे, तो विद्वानों ने साझे में रहा उस (पुत्र) का हिस्सा उस कर्ज के चुकाने में नहीं लेने लायक माना है।

सति तातेऽत्र पितृणे व्यक्तिगे नहि तत्सुतः।
एकाकी भारभाक् यस्मात् प्राक् तद्भारवहः पिता ॥१७५६॥

जगत् में पिता की मौजूदगी में पिता के व्यक्तिगत कर्ज में उसका पुत्र अकेला जिम्मेदार नहीं होता, क्योंकि पहले उसका जिम्मेदार पिता होता है।

मृते ताते तु पितृणे न्याय्ये पुत्रोऽभियुज्यते।
गृह्यते चाऽस्य संसृष्टो भागः पित्रंऽशसंयुतः ॥१७५७॥

पिता के मरजाने पर पिता के उचित (व्यक्तिगत) कर्ज में पुत्र पर मुकद्दमा चलाया जाता है और उसका साझे का हिस्सा पिता के हिस्से के साथ ही लेलिया जाता है।

पितामहस्थितिश्चाऽपि पितृणे सुततातयोः।
संसृष्टांऽशग्रहे नैव बाधिकेति मतं बुधैः ॥१७५८॥

विद्वानों ने दादा का मौजूद होना भी पिता के (व्यक्तिगत) कर्ज में पुत्र और पिता के साझे के भाग को लेने में रुकावट नहीं माना है।

पणाऽभियोगे पितरि भवेद् यद् राजशासनम्।
तदेवाऽत्र तदन्ते तु तत्पुत्रेपि प्रयुज्यते ॥१७५९॥

नक़द रुपये के मुक़द्दमे में पिता पर जो डिग्री हो, वही, यहां पर, उसके मरने पर, उसके पुत्र पर भी प्रयोग में लाई जाती है।

वैयक्तिकमृणं पित्रा देयं स्याद् यद्दिने ततः।
त्रीणिवर्षाणि मर्यादा मता पित्रभियुक्तये ॥१७६०॥

पिता को जिस दिन व्यक्तिगत कर्ज देना हो उस (दिन) से तीन वर्ष तक पिता पर मुकद्दमा चलाने की मयाद मानी गई है।

द्रविडे च पितापुत्रौ पुत्रं वा मरणे पितुः।
अभियोक्तुं विधिर्ज्ञेयः पितृणे पूर्ववर्णितः ॥१७६१॥

मद्रास में पिता के कर्ज में पिता और पुत्र दोनों पर अथवा पिता के मरने पर पुत्र पर मुकद्दमा चलाने में पहले कहा तरीका (ही) जानना चाहिए। (अर्थात्-जिस दिन कर्ज चुकाना हो, उस दिन से तीन वर्ष की मयाद मानी गई है)।

पितृणदानं पुत्रस्य कर्तव्यं पावनं यतः।
ततः प्रयागे षड्वर्षाऽवधिर्नूनं विनिश्चितः ॥१७६२॥

क्योंकि पिता का कर्ज चुकाना पुत्र का पवित्र कर्तव्य है, इसलिए इलाहाबाद में (पिता का व्यक्तिगत कर्जा चुकाने में) निश्चय ही छ वर्ष की मयाद निश्चित की गई है। (अर्थात्-जिस दिन कर्ज लौटाने की मयाद हो, उस दिन से ६ वर्ष तक पुत्र पर पिता के कर्जे के लिए मुकद्दमा चलाया जासकता है।)

एवमेव च वङ्गेऽपि मतः षड्वार्षिकोऽवधिः।
यस्मात् कालात् स संख्येयः स तु तत्र न निश्चितः ॥१७६३॥

और इसी प्रकार (ऐसे मामले में) बंगाल में भी छ वर्ष की अवधि मानी है। परन्तु वह अवधि किस समय से गिनी जाय, यह वहां पर (अभी) निश्चित नहीं किया गया है।

दातुराधीकृतं दत्तमधिकारेऽथवा धनम्।
संसृष्टं यत्र पित्रा स्वऋणाऽर्थं तत्र तत्कृते ॥१७६४॥

पिता तु द्वादशाब्दाऽन्तं सुतो वर्षत्रयाऽवधि।
अभियुज्येत तद्दिवसाद् यस्मिन्देयं भवेदृणम् ॥१७६५॥

जहां पिता ने अपने कर्ज के लिए साझे का धन (कर्ज) देनेवाले के पास गिरवी रख दिया हो या उसके अधिकार में दे दिया हो, वहां उसके लिए जिस दिन कर्ज चुकाना हो उस दिन से, पिता पर बारह वर्ष तक और पुत्र पर तीन वर्ष तक मुकद्दमा चलाया जा सकता है।

द्राविडोऽसौ विधिर्ज्ञेयः किन्तु वङ्गप्रयागयोः।
षड्वर्षाऽवधि तत्पुत्रमभियोक्तुं क्षमो जनः ॥१७६६॥

यह (ऊपर कहा) मद्रास का तरीका है। परन्तु बंगाल और इलाहाबाद में पुरुष उस (कर्ज लेनेवाले पिता) के पुत्र पर छ वर्ष तक मुकद्दमा चला सकता है।

चेत्प्राच्यमृणमुद्धर्तुं पित्रा कौटुम्बिकं धनम् ।
विक्रीतं स्वेच्छया तर्हि संसृष्टाऽर्थः सुतः स्वयम् ॥१७६७॥
ऋणस्याऽन्याय्यतां क्रेतुर्ज्ञानमप्यथ तद्गतम् ।
दर्शयित्वैव शक्तः स्यादुद्धर्तुं स्वधनं ततः ॥१७६८॥

यदि पुराने कर्ज को चुकाने के लिए पिता ने, अपनी मरजी से कुटुम्ब (साझे) का धन बेच दिया हो, तो साझे के धनवाला पुत्र खुद (उस) कर्ज का अनुचित होना (अनुचित कार्य के लिए लिया जाना) और खरीददार को इस (कर्ज के अनुचित होने) का ज्ञान होना दिखलाकर ही, उस (बिक्री) से अपने धन को बचाने में समर्थ हो सकता है ।

अयमेव विधिर्ज्ञेयः पुत्रेभ्यो न्यायनिश्चितः ।
संसृष्टेऽर्थे पितृणाऽर्थं विक्रीते राजशासनात् ॥१७६९॥

पिता के कर्ज के लिये, सरकारी डिग्री से, साझे के धन के बेच दिये जाने पर (भी) पुत्रों के लिए, कानून से निश्चय किया हुआ, यही तरीका जानना चाहिए ।

राजशासनविक्रीते संसृष्टेऽर्थेऽपरो जनः ।
क्रेताऽनभिज्ञस्तत्स्थित्याः पुत्रेभ्योनोत्तरप्रदः ॥१७७०॥

साझे के धन के सरकारी डिग्री से बेचे जाने पर दूसरा खरीदनेवाला (stranger) पुरुष, जो उस (कर्ज) की हालत से अनजान हो (अर्थात्-कर्ज कैसे काम के लिए लिया गया है, यह नहीं जानता हो), पुत्रों को जवाब देने का जिम्मेदार नहीं होता । (अर्थात्--उस पर उस खरीददारी के विषय में अभियोग नहीं चल सकता । परन्तु कर्ज देनेवाला ही खरीदे तो उसके जानकार होने से उस पर अभियोग चल सकता है ।)

अन्यसंसृष्टिवित्तं नो दातुं स्वीय ऋणे क्षमः ।
कोऽपि, तातः क्षमः किन्तु दातुं पुत्र्यं तु पृक्तिगम् ॥१७७१॥

पिता को छोड़कर अन्य कोई भी अपने कर्ज में दूसरे साझेवालों के धन को नहीं दे सकता । परन्तु पिता पुत्र के साझे में रहे (धन) को दे सकता है ।

तद्विक्रयाऽर्थमप्याप्त ऋणदेनाऽत्र शासने ।
अन्याय्यं तदृणं पित्र्यमिति चेद्दर्शयेत् सुतः ॥१७७१॥
प्राड्विवाकः सुतस्यांऽशमग्राह्यं घोषयेत्तदा ।
तत्राऽऽवर्षं भवेद्दाताऽभियोक्तुं तं सुतं क्षमः ॥१७७३॥
पितृणन्याय्यता-सिद्ध्यै प्राड्विवाकाऽदितो ध्रुवम् ।
ऋणाऽनौचित्यसिद्धौ तु पुत्रांऽशोऽग्राह्य एव सः ॥१७७४॥

कर्ज देनेवाले के उस (पुत्र के साझे के धन) को बेचने के लिए डिग्री प्राप्त कर लेने पर भी यदि पुत्र पिता के उस कर्ज को अनुचित काम के लिए लिया हुआ प्रकट करदे, तो न्यायाधीश पुत्र के (उस) हिस्से के (कर्ज के चुकाने में) नहीं लिये जाने लायक होने की घोषणा करदे । वहां पर कर्ज देनेवाला, न्यायाधीश आदि से (उस) पिता के ऋण की न्याय्यता सिद्ध करवाने के लिए निश्चय ही एक वर्ष तक उस पुत्र पर मुकद्दमा चला सकता है । ऋण के अनुचित सिद्ध होने पर तो वह पुत्र का हिस्सा नहीं लेने लायक ही होता है ।

तातेनाधीकृतं स्वीय ऋणे संसृष्टिगं धनम् ।
यत्र तत्रोत्तमर्णस्तु शासनं प्राप्नुयाद् ध्रुवम् ॥१७७५॥
पितुर्विरुद्धमेवाथ तत्र शासनतः कृते ।
पृक्तार्थविक्रये न स्याद् बलादधिकृतिस्तथा ॥१७७६॥
यथा भवेत् पणार्थं तु प्रदत्ते शासने पुनः ।
बन्धकस्याभियोगस्य निर्णये ह्येव दीयते ॥१७७७॥
शासनं विक्रयायात्रोपघोष्यैव भवेच्च सः ।
विक्रये च समारब्धे प्रतिपाद्य सुतः पुनः ॥१७७८॥
अन्याय्यत्वं पितृणस्य वारयेत्तस्य विक्रयम् ।
उद्घोषयेद्वाऽन्याय्यत्वं तस्य प्राग् धनविक्रयात् ॥१७७९
क्रेतारं चाऽभियुज्याऽथ सोऽसंदिग्धं प्रमाणयेत् ।
अन्याय्यत्वं पितृणस्योद्धरेदंशं तथा निजम् ॥१७८०॥

जहां पर पिताने अपने कर्ज में साझे का धन गिरवी रख दिया हो, वहां पर कर्ज देनेवाला पिता के विरुद्ध ही निश्चय रूप से डिग्री प्राप्त करे और वहां पर डिग्री के कारण किये गये साझे के धन के बेचान में उस प्रकार जबरदस्ती अधिकार (attachment) नहीं होता, जिस प्रकार रुपये (money) के लिए दी गई डिग्री में होता है । गिरवी के मुकद्दमे में निर्णय के समय ही, यहां पर, संपत्ति के बेचने की डिग्री दी जाती है और वह (बेचान) घोषणा (proclamation) करके ही होता है । बेचान प्रारम्भ करने पर पुत्र पिता के कर्ज का अन्याय्य होना सिद्ध करके उसका बेचान रुकवा दे या उस (कर्ज) का अन्याय्य होना धन के बेचने से पहले घोषित करदे और फिर खरीददार पर मुकद्दमा चला कर वह पिता के क़र्ज़ का अन्याय्य होना निश्चित रूप से सिद्ध करदे और अपने हिस्से का उद्धार करले (उसको बचाले) ।

अन्याय्यत्वं पितृणस्य प्रकटं घोषिते सति ।
क्रेतुः स्थित्यनभिज्ञत्वबाधा नाऽत्र मता बुधैः ॥१७८१॥

पिता के कर्ज़ के प्रकटरूप से अनुचित घोषित कर दिये जाने पर, यहां पर, विद्वानों ने खरीददार के (उसकी) हालत से अनजान होने की रोक नहीं मानी है। (अर्थात्-ऐसी हालत में खरीददार ऋण की हालत से अनजान होने की दुहाई देकर ही नहीं बच सकता ।)

पुत्रो विक्रयतः पूर्वमपि शक्तोऽभियोगतः ।
तदाधिग्राहकं सर्वपृक्तवित्तस्य विक्रयात् ॥१७८२॥
निवारयितुमाहोस्वित् तदृणे स्वस्य भारिताम् ।
प्रत्याख्यातुं सुसाध्यैवाऽन्याय्यत्वं तदृणस्य तु ॥१७८३॥

पुत्र बेचने के पहले भी मुकद्दमा चलाकर उस गिरवी लेनेवाले को सारे साझे के धन को बेचने से रोक सकता है; अथवा उस कर्ज़ का अन्याय्य होना सिद्ध कर उस कर्ज़ में अपनी जिम्मेवारी को दूर कर सकता है।

परन्तु न्यायकार्याय प्राक्तनर्णाय वा पिता ।
संसृष्टाऽर्थं हि पुत्राणामाधीकर्तुं क्षमो मतः ॥१७८४॥

परन्तु पिता न्याय संबन्धी काम (legal necessity) के लिए या पुराने कर्ज़ (antecedent debt) के लिए पुत्रों के साझे के धन को गिरवी रखने को समर्थ माना गया है।

आधिग्राहक एवाऽत्र स्वं धनं न्यायकर्मणे ।
प्राक्तनाय ऋणायोत दत्तमित्थं प्रमाणयेत् ॥१७८५॥

ऐसी जगह गिरवी लेनेवाला (mortgagee) ही अपना धन न्याय-कार्य के लिए या पुराने कर्ज़ के लिए दिया गया है, ऐसा सिद्ध करे।

प्रमाणाभावतस्तत्र संसृष्टाऽर्थः सुतस्य तु ।
अविक्रेयो भवेन्नूनं यायात् पुत्रं पुनश्च सः ॥१७८६॥

वहां पर (ऊपर कहे मामले में) प्रमाण न होने से पुत्र का साझे का धन निश्चय ही नहीं बेचा जाने लायक हो जाता है और वह फिर पुत्र को मिल जाता है।

पणाऽभियोगे पितृणे दात्रा चेद्राजशासनम् ।
प्राप्तं, तत्राऽपि संसृष्टपुत्रेभ्योऽसौ विधिर्मतः ॥१७८७॥

पिता के कर्ज़ में रुपयों के लिए मुकद्दमा चलाने पर कर्ज़ देनेवाले ने यदि डिग्री प्राप्त करली हो, तो वहां भी साझेदार पुत्रों के लिए यही तरीका माना है।

किन्तूत्तमर्णो नो तत्र ऋणौचित्योत्तरप्रदः ।
तदनौचित्यसिद्धेस्तु पुत्रेष्वेव भरः स्थितः ॥१७८८॥

परन्तु वहां पर कर्ज़ देनेवाला कर्ज़ के न्याय्य होने (न होने) का उत्तरदाता नहीं होता। उसकी अन्याय्यता के प्रमाणित करने का भार पुत्रों पर ही रहता है।

यत्रोत्तमर्णः संप्राप्तशासनः स्वयमेव हि।
क्रेतार्थस्य सुतैस्तत्र दुराचारकृते कृतम् ॥१७८९॥
ऋणं तदिति संसाध्य कार्यं स्वांशस्य रक्षणम्।
उत्तमर्णस्य तज्ज्ञानसिद्धिर्नावश्यकी मता ॥१७९०॥
यत्राऽपरोऽपि पुरुषः क्रेता तत्रापि चेत्सुतैः।
विक्रयात्पूर्वमाक्षेपः कृतो यत्तदृणं ध्रुवम् ॥१७९१॥
यत्कृते शासनं प्राप्तमासीद् दुश्चरिताय हि।
साधितं कथनं स्वं च क्रेता तर्हि तु मन्यते ॥१९९२॥
ऋणानौचित्यविज्ञोऽथाभियोगेन सुतास्तथा।
शक्ताः स्वांशं तु तद्धस्तात्प्रत्यादातुं सुनिश्चितम् ॥१७९३॥

जहां पर डिग्री प्राप्त किया हुआ कर्ज़ देनेवाला स्वयं ही संपत्ति का खरीदनेवाला हो, वहां पर पुत्रों को वह कर्ज़ा बुरे काम के लिए किया गया था ऐसा सिद्ध करके ही अपने हिस्से का बचाव करना चाहिए। कर्ज़ा देनेवाले को उस विषय (बुरे काम के लिए कर्ज़ लिए जाने) का ज्ञान होने की सिद्धि आवश्यक नहीं मानी गई है। जहां पर दूसरा (डिग्री प्राप्त करनेवाले से भिन्न) पुरुष भी संपत्ति का खरीदनेवाला हो वहां पर भी यदि पुत्रों ने (संपत्ति के) बेचान के पहले आक्षेप (objec ion) कर दिया हो कि वह कर्ज़, जिसके लिए डिग्री प्राप्त की गई है, निश्चय ही, बुरे काम के लिए था और अपने (इस) कथन को सिद्ध कर दिया हो, तो खरीददार कर्ज़ के अनुचित होने का जानकार माना जाता है; तथा पुत्र निश्चय ही मुकद्दमे के द्वारा उसके हाथ से अपने हिस्से को वापस ले सकते हैं।

उपजप्याऽथ केनाऽपि पित्रा मिथ्यैव चाऽऽश्रुते।
ऋणेऽपि पुत्रैः संसृष्टैस्तत्सिद्धया स्वाऽर्थ रक्षणम् ॥१७९४॥

पिता के किसी के साथ षड्यन्त्र रचकर, झूठे कर्ज़ के स्वीकार करलेने पर भी साझेदार पुत्रों द्वारा उस (झूठ) को सिद्ध करके अपना हिस्सा बचाया जा सकता है।

एतादृश्यामवस्थायां पितरं प्रति शासनम्।
संप्राप्य पृक्तवित्ते तु विक्रीते यदि संपदः ॥१७९५॥
क्रेता स्यात्स्वयमेवात्र राजशासनधारकः।
तर्हि पुत्राः क्षमाः स्वार्थं प्रत्यादातुं हि तद्गतम् ॥१७९६॥
अभावं तु ऋणस्यास्य साधयित्वैव निश्चितम्।
परं यत्रापरः क्रेता ह्यसंबद्धोऽभियोगतः ॥१७९७॥

तत्राऽभावमृणस्यास्य साधयित्वा पुनश्च ते ।
संसाधयेयुर्यत्तैः प्राक् सूचितस्तत्कृते तु सः ॥१७९८॥

ऐसी हालत (झूठे कर्ज के विषय) में पिता के विरुद्ध डिग्री प्राप्त करके साझे के धन के बेचे जाने पर यदि यहां पर डिग्री धारण करनेवाला (decree holder) स्वयं ही संपत्ति का ख़रीदनेवाला हो, तो (उस कर्ज़दार के) पुत्र उस कर्ज के अभाव को निश्चित रूप से सिद्ध करके ही उस (साझे के धन) में रहे अपने स्वार्थ (भाग) को वापस ले सकते हैं। परन्तु जहां पर मुकद्दमे से संबन्ध न रखनेवाला दूसरा (पुरुष) ख़रीदनेवाला हो, वहां पर वे (पुत्र) उस कर्ज के अभाव को सिद्ध करके फिर यह सिद्ध करें कि उन्होंने उस (ऋण के अभाव) के लिए पहले ही उसे सूचना दे दी थी ।

प्रति तातं पणार्थं यच्छासनं तत्कृते कृते ।
विक्रये यो विधिः प्रोक्तः स एव हि प्रयुज्यते ॥१७९९॥
प्रति तातं किलाध्यर्थं प्रदत्ते शासनेऽपि च ।
पित्रा त्वाधीकृता पृक्तसंपदा चेत्सुनिश्चितम् ॥१८००॥
न्याय्यावश्यकताऽभावे प्राक्तनर्णमृतेऽथवा ।
पुत्रस्वार्थस्तदाऽग्राह्यो न्यायविद्भिर्मतो ध्रुवम् ॥१८०१॥
न्याय्यावश्यकतायै वा प्राक्तनर्णाय चेत्कृता ।
आधिः सोऽसाधुकार्यस्य संपर्केणविवर्जितः ॥१८०२॥
तर्हि बध्नाति पुत्रस्य सर्वं स्वार्थं हि तद्गतम् ।
निर्णयस्त्वेष विहितो न्यायशास्त्रविशारदैः ॥१८०३॥

पिता के विरुद्ध रुपयों के लिये जो डिग्री हो, उसके लिए किये बेचान में जो रीति कही है, वही पिता के विरुद्ध, निश्चय ही, गिरवी के लिए दी गई डिग्री में भी काम में ली जाती है। यदि पिता ने निश्चय ही न्याय्य आवश्यकता के अभाव में या पहले के कर्ज के बिना साझे की संपत्ति गिरवी रखदी हो, तो, न्याय के पण्डितों ने (उस संपत्ति में का) पुत्र का हिस्सा (स्वार्थ), निश्चय ही, नहीं लेने लायक माना है। यदि वह गिरवी न्याय्य आवश्यकता या पहले के कर्ज के लिए की गई हो और बुरे काम के संबन्ध से रहित हो, तो उस (गिरवी) में रहे पुत्र के सारे ही स्वार्थ को बांध लेती है। (अर्थात्-ऐसी अवस्था में पुत्र का भाग भी ग्राह्य हो जाता है।) यह निर्णय न्याय-शास्त्र के विद्वानों ने किया है।

परं पुत्रस्तु धर्मेण पितृणस्यात्र भारभाक् ।
प्रतितातमतो दत्ते शासने विक्रयाय तु ॥१८०४॥

सर्वस्याधिगतार्थस्य विक्रीतेऽस्मिंश्च तत्सुतः।
प्रमाणयेन्न चेत्तस्याऽधिनात्तस्य ऋणस्य हि ॥१८०५॥
अन्याय्यत्वमसाधुत्वमभावं वा सुनिश्चितम्।
तदन्याय्यत्वबोधश्चोत्तमर्णस्य यथोचितः ॥१८०६॥
यथाकालमथान्यस्मै क्रेत्रे तस्य च सूचनम्।
तर्हि तत्रस्थितात्स्वार्थात्सर्वस्मात्स तु वञ्च्यते ॥१८०७॥

परन्तु पुत्र यहां पर धर्म के द्वारा पिता के कर्ज का जिम्मेदार होता है। इसलिए पिता के विरुद्ध सारी ही गिरवी की हुई संपत्ति के बेचने की डिग्री के दी जाने पर और उसके बेच दिये जाने पर यदि उस (कर्ज लेनेवाले पिता) का पुत्र उस गिरवी के द्वारा लिये कर्ज का निश्चय ही अन्याय्य होना, बुरे काम के लिये होना या बिलकुल न होना तथा उस गिरवी के अनुचित होने का कर्जदार को उचित ज्ञान होना और यथा-समय दूसरे (stranger) खरीददार को उस बात की सूचना दे देना प्रमाणित न करदे, तो वह उस (गिरवी) में रहे सारे ही अपने स्वार्थ से वञ्चित हो जाता है। (डिग्रीदार से भिन्न खरीददार होने पर ही उसको कर्ज के अनुचित होने की सूचना देने की आवश्यकता होती है।)

पुत्रेभ्यो यो विधिः प्रोक्तः स एव हि विनिश्चितः।
क्रेत्रे शासनसंजातविक्रये क्रीतसंपदः ॥१८०८॥
स्वाम्यायात्राधमर्णस्याभियोक्तुं तु सुतान् पुनः।
साधयेत्तेन पक्षं स्वं क्रेता पूर्वोक्तरीतितः ॥१८०९॥

जो रीति पुत्रों के लिए (ऊपर) कही है, वही डिग्री के द्वारा बेची गई संपत्ति के खरीददार के लिए खरीदी हुई संपत्ति के अधिकार के लिए कर्जदार के पुत्रों पर मुकद्दमा चलाने के लिए निश्चित की गई है। इस कारण खरीददार पहले कही रीति से अपने पक्ष को सिद्ध करे। (अर्थात्—कर्जा न्याय्य आवश्यकता के लिए या पहले के कर्जे को चुकाने के लिए लिया गया था, भ्रष्टाचार के लिए नहीं लिया गया था।)

पितृणाय प्रदत्तेन शासनेनात्र विक्रये।
संपदश्च सुतस्तस्य भागं संरक्षितुं निजम् ॥१८१०॥
विरोधयेत्स्वभागस्य विक्रयं तर्हि निश्चितम्।
सोऽन्याय्यत्वमसाधुत्वं तदृणस्यैव साधयेत् ॥१८११॥
तातोऽमितव्ययी दुष्टचरित्र इति साधनम्।
नालं, यत ऋणस्यैवाऽसाधुत्वं तत्र वाञ्छितम् ॥१८१२॥
क्रेत्रे प्रागनुसन्धानसिद्धिस्तत्राऽनपेक्षिता।
न्याय्यावश्यकतासिद्धिस्तथा तदृणसंगता ॥१८१३॥

पिता के कर्जे के लिए दी गई डिग्री के द्वारा संपत्ति के बेचे जाने पर यदि उसका पुत्र अपने हिस्से की रक्षा के लिए अपने भाग के बेचने का विरोध करे, तो निश्चय ही, वह उस कर्जे की ही अन्याय्यता या असाधुता सिद्ध करे। पिता फ़ज़ूल ख़र्च तथा ख़राब चलनवाला था, यह सिद्ध करना पर्याप्त नहीं होता; क्योंकि वहां पर कर्जे का ही असाधु (immoral) होना वाञ्छित होता है। वहां पर ख़रीददार के लिए पहले छान-बीन करने की सिद्धि की और उस कर्जे से संबन्ध रखनेवाली न्याय्य आवश्यकता की सिद्धि की आवश्यकता नहीं होती।

यत्र पित्रा गृहीतं स्यादृणं निजहिताय हि।
प्राप्नुयादुत्तमर्णस्तु तत्र तं प्रति शासनम् ॥१८१४॥
ततः समस्तं पृक्तार्थं तत्पुत्रांशेन संयुतम्।
अधिकृत्याथ विक्रीय शासनं तत्प्रयोजयेत् ॥१८१५॥
परं स शक्तस्तातार्थमात्रस्याप्यत्र विक्रये।
यत्किञ्चिदपि विक्रीतं क्रीतं वा पितुरेव चेत् ॥१८१६॥
स्वार्थस्तर्ह्यसमर्थः सोऽधिकर्तुं तं सुनिश्चितम्।
स्थितीर्विशिष्टाः संत्यज्य महाराष्ट्रगता अतः ॥१८१७॥
कुर्यात्तत्राऽभियोगं स भागार्थं पृक्तसंपदः।
पित्रे निर्णीतभागस्य स्वाम्यार्थं च यथाविधि ॥१८१८॥

जहां पर पिता ने अपने लाभ के लिए कर्ज़ा लिया हो, वहां पर कर्ज़ देनेवाला पिता के विरुद्ध डिग्री प्राप्त करे। उसके बाद उसके पुत्र के हिस्से से युक्त सारे ही साझे के धन पर अधिकार (attachment) और बेचान (sale) करके उस डिग्री का प्रयोग करे। परन्तु वह यहां पर केवल पिता के हिस्से को बेचने में भी समर्थ होता है। जो कुछ भी बेचा गया हो या ख़रीदा गया हो, वह यदि पिता का ही स्वार्थ (interest) हो, तो वह (ख़रीददार), निश्चय ही, बंबई में की विशिष्ट स्थितियों को छोड़कर उस पर अधिकार नहीं कर सकता। इसलिए वह ऐसी अवस्था में साझे के धन के बटवारे के लिए और पिता के लिए निश्चित किये भाग के अधिकार के लिए बा कायदा मुकद्दमा चलावे।

यत्किञ्चिदपि विक्रीतं क्रीतं वा त्वखिलं धनम्।
अधिकर्तुं तदा शक्तो धनं तदखिलं स तु ॥१८१९॥
अतोऽनुसन्धाऽपेक्षात्र यद्विक्रीतं धनं तु यत्।
तदासीदखिलं पुत्रस्वार्थेन सहितं न वा ॥१८२०॥
तन्निर्णयोऽभियोगस्य शासनस्याथ लेखतः।
तद्दत्तमूल्यतश्चापि कार्यो न्यायाधिकारिभिः ॥१८२१॥

जो कुछ भी बेचा गया हो या खरीदा गया हो, वह (साझे का) सारा ही धन हो, तो वह (कर्ज देनेवाला) उस सारे धन पर कब्जा कर सकता है। इसलिए यहां पर पता लगाने की आवश्यकता होती है कि जो धन बेचा गया था, वह पुत्र के स्वार्थ के सहित सारा धन था या नहीं। इसका निर्णय न्यायाधीशों को मुकद्दमे (execution) के, या उस पर दी गई राजाज्ञा के लेख से अथवा उस संपत्ति की दी गई कीमत से करना चाहिए।

विक्रीतं वाऽऽधितां नीतं पित्रा संसृष्टिगं धनम्।
सर्वं वा स्वांऽशमात्रं वा ज्ञेयंतल्लेखतोऽपि च ॥१८२२॥

पिता ने साझे का सारा धन या केवल अपना हिस्सा बेचा है, यह उस (पिता) के लेख (deed) से भी जाना जा सकता है।

प्रतितातं प्रदत्तं तु तत्कृतर्णाय शासनम्।
मृतश्च तत्प्रयोगस्य पूर्वमेव हि यत्र सः ॥१८२३॥
तत्राधिकृत्य विक्रीय वा तत्पुत्रस्य हस्तगम्।
पित्र्यं धनं प्रयुज्येत शासनं तत्तु निश्चितम् ॥१८२४॥
तदर्थं पितृदायाप्तं पित्रर्थमिव तत्र तु।
दुश्चरित्रकृते तस्मिन्कृतेऽन्याय्येऽथवा परम् ॥१८२५॥
शासनं त्वप्रयोज्यं स्यात्कार्यस्तस्य च निर्णयः।
प्राक् तत्प्रयोगतस्तत्राभियोगोऽन्यो न वाञ्छितः ॥१८२६॥

जहां पर पिता के किये कर्ज के लिए उसके विरुद्ध डिग्री दी गई हो और उस (डिग्री) के प्रयोग के पहले ही वह (पिता) मर गया हो, वहां पर उस (मृतक) के पुत्र के हाथ में गये पैतृक धन को अधिकृत (attach) करके या बेचकर उस डिग्री का निश्चय ही प्रयोग करना चाहिए। वहां पिता से (पुत्र को) दाय में मिला वह धन पिता के धन के समान होता है। परन्तु उस (कर्ज) के बदचलनी के लिए किये होने या अन्याय्य (illegal) होने पर डिग्री काम में लाने (execute करने) लायक नहीं रहती। तथा उस (डिग्री) के प्रयोग करने के पहले ही उस (कर्ज के न्याय्य होने) का निर्णय कर लेना चाहिए। वहां पर (इसके लिए) दूसरे मुकद्दमे की आवश्यकता नहीं होती।

पिताऽलं पृक्तवंशस्य पृक्तार्थं स्वर्णशुद्धये।
आधीकर्तुं च विक्रेतुं कृत्स्नं पुत्रांशसंयुतम् ॥१८२७॥

साझे के कुटुम्ब का पिता (अर्थात्–जिस साझे में केवल पिता और पुत्र ही हों वहां पर पिता) अपने कर्ज के चुकाने के लिए पुत्र के हिस्से से युक्त सारे ही साझे के धन को गिरवी करने और बेचने में समर्थ होता है।

पृक्कौटुम्बिकार्थस्य व्ययात्प्रागेव चेत्कृतम्।
तदृणं वा पुनर्नैतद् भ्रष्टाचारकृते कृतम् ॥१८२८॥
तर्हि पुत्रस्तु धर्मेण तादृशर्णविशुद्धये।
बद्धो, यद्यपि नो बद्धो व्यवहारेण तु ध्रुवम् ॥१८२९॥

यदि वह कर्जा साझे के धन के खर्च (alienation) से पहले ही किया गया हो या फिर वह (कर्जा) बदचलनी के लिए नहीं किया हो, तो पुत्र धर्म से वैसे कर्जे को चुकाने के लिए बंधा है, यद्यपि वह कानून से निश्चय ही (ऐसा कर्जा चुकाने के लिए भी) नहीं बंधा है।

चक्रवृद्धिर्न यत्र स्यात्प्राक्तनर्णे परं पिता।
अङ्गीकृत्योच्छ्रितां चक्रवृद्धिं तस्य विशुद्धये ॥१८३०॥
आधीकुर्याद्धनं तत्र तूत्तमर्णे भरो भवेत्।
तद्वृद्धेर्न्याय्यतासिद्धेर्भरमुक्तः स नान्यथा ॥१८३१॥

जहां पर पहले के कर्जे पर चक्रवृद्धि व्याज न हो, परन्तु पिता उस (कर्जे) को चुकाने के लिए ऊंचे चक्रवृद्धि व्याज को स्वीकार करके संपत्ति को गिरवी रखदे, वहां पर कर्जा देनेवाले पर उस व्याज की न्याय्यता को सिद्ध करने का भार होता है। अन्य प्रकार से वह इस भार से छुटकारा नहीं पा सकता।

प्राक्तनर्णं तु तज्ज्ञेयं यदाधीकरणात्पुरा।
गृहीतं स्यादसंबद्धं तदाधीकरणेन च ॥१८३२॥

पुराना कर्जा उसे जानना चाहिए, जो कि गिरवी रखने से पहले लिया गया हो और उस गिरवी से संबद्ध (connected) न हो।

ऋणाध्योस्तूत्तमर्णस्य ह्येकत्वेऽपि न संमता।
हानिस्तयोस्तु भिन्नत्वं वस्तुतः कालतोऽपि च ॥१८३३॥
अपेक्षितमतो पत्रं प्राक्तनाधिकृते कृतम्।
नव्यं विधाय नव्याधिः क्रियते यत्र तत्र हि ॥१८३४॥
अभिन्नेऽप्युत्तमर्णे तु न्याय्याधिः प्राक्तनो यदि।
आसीत्तर्हि मतोन्याय्यः सोऽपरोऽपि व्ययो ध्रुवम् ॥१८३५॥

कर्जे पर और गिरवी पर रुपया देनेवाले के एक होने पर भी हानि नहीं मानी गई है। उन दोनों (कर्जे और गिरवी) की भिन्नता वास्तविक (in fact) और समय से होनी आवश्यक मानी गई है। इसलिए जहां पर पुरानी गिरवी के लिए लिखे लेख को नवीन (renew) करके नवीन गिरवी (mortgage) की जाती है, वहां पर रुपया देनेवाले के (दोनों स्थानों पर) एक ही होने पर भी यदि पहले की गिरवी (mortgage) न्याय्य थी, तो वह दूसरा (बाद का) खर्च (alienation- गिरवी) भी निश्चय ही मान्य होता है।

पृक्तकौटुम्बिकं यत्राधीकृत्यार्थं समर्पितम्।
पुरुषायापरस्मै तु तद्भागप्रतिदत्तये ॥१८३६॥
कुटुम्बव्यवसाये यः सहकार्यभवद् ध्रुवम्।
तत्रापि प्राक्तनर्णस्यात्वस्तित्वं संमतं यतः ॥१८३७॥
अनिर्णीतपणं पितृकृतव्यापारजं ह्यपि।
संमतं तत्तु न्यायज्ञैर्नास्त्यत्रातो मतद्वयम् ॥१८३८॥

जहां पर साझे के कुटुम्ब के धन को गिरवी रखकर दूसरे पुरुष (stranger) को, जो कि कुटुम्ब के व्यापार में निश्चय ही सहकारी (partner) था, उसका हिस्सा लौटाने के लिए, दे दिया हो, वहां पर भी पुराने कर्ज का होना माना गया है; क्योंकि न्याय जाननेवालों ने रकम निश्चित नहीं किए हुए और पिता के प्रारम्भ किये व्यापार से हुए भी उसे (पुराने कर्ज को) माना है। इसमें दो मत (मत-भिन्नता) नहीं है।

कर्ता संश्लिष्टसंपत्तेर्विनाऽवश्यकतां तु ताम्।
व्ययितुं नैव शक्तो वा प्रकर्तुमृणभारिणीम् ॥१८३९॥
दुराचारादसंबद्धमृणमादाय तां पिता।
ऋणाधीनां क्षमः कर्तुं संपृक्तौ तातपुत्रयोः ॥१८४०॥
विनैव प्राक्तनर्णं स आधीकर्तुं न तां क्षमः।
वस्तुतः कालतस्त्वाधेर्भिन्नं यत्तदृणं तु तत् ॥१८४१॥
ताते जीवति मीतेऽथ ऋणस्यास्य समं फलम्।
सारमेतदृणस्यास्य ज्ञेयं संपृक्तसंपदः ॥१८४२॥

साझे की संपत्ति का प्रबन्ध कर्ता विना आवश्यकता के उसे खर्च नहीं कर सकता अथवा उस पर कर्ज का बोझा नहीं लाद सकता। पिता और पुत्र के साझे में पिता दुराचार से संबन्ध नहीं रखनेवाले कर्ज को लेकर उस (संपत्ति) को कर्ज के अधीन कर सकता है (उस पर कर्ज़ा ले सकता है)। वह (पिता भी) पहले के कर्ज के विना ही उस (साझे की संपत्ति) को गिरवी नहीं रख सकता। जो वास्तव में और समय से भी (तात्कालिक गिरवी रखने से) भिन्न हो, वह (पहले का) कर्ज़ा होता है। पिता के जीते रहने या मरजाने पर इस कर्ज का नतीजा समान ही होता है (उस में फ़र्क नहीं पड़ता)। यह साझे के धन के इस कर्ज का सार जानना चाहिए।

वस्तुतस्तातविहितमृणमेवात्र गृह्यते।
परस्य प्रतिभूत्वेन प्राप्तो भारस्तु वर्जितः ॥१८४३॥

वास्तव में, यहां पर, पिता का किया कर्ज़ा ही लिया जाता है (उसके) दूसरे के ज़ामिन होने से प्राप्त हुआ भार वर्जित है।

वर्तमानाद् व्ययात् पूर्वं कृतस्वर्णस्य शुद्धये।
संसृष्टाऽर्थं तु पुत्राणां पिता व्ययितुमीश्वरः ॥१८४४॥

पिता वर्तमान् ख़र्च से (जिस समय साझे का धन गिरवी रखा या बेचा जाय उस समय से) पहले किये अपने कर्ज़ की सफाई के लिए, पुत्रों के साझे के धन को ख़र्च कर सकता है। (इसी पहले के कर्ज़ को पुराना कर्ज़ (antecedent debt कहते हैं।)

स व्ययः पृक्तवित्तस्य भवेद्विक्रयरूपतः।
यदि तर्हि समादत्ते क्रेता सर्वं तु पृक्तिगम् ॥१८४५॥
स एवाधेः स्वरूपेण चेत्कृतस्तर्हि शासनम्।
आसाद्य प्रति तातं तु कृत्स्नायाः पृक्तसंपदः ॥१८४६॥
विक्रयायोत्तमर्णोऽथ तत्प्रयोगेण निश्चितम्।
विक्रेतुं हि समर्थः स्याद् भागौ तु सुततातयोः ॥१८४७॥

यदि वह खर्चा (alienation) साझे के धन के बेचान के रूप में हो, तो ख़रीददार सारे ही साझे के धन को ले लेता है। यदि वही गिरवी के रूप में किया गया हो, तो कर्ज़ा देनेवाला पिता के विरुद्ध सारी ही साझे की संपत्ति को बेचने के लिए डिग्री प्राप्त कर उसके प्रयोग करने से निश्चय ही पुत्र और पिता दोनों के भागों को बेचने में समर्थ होता है।

प्राक्तनर्णस्य सत्तायामृणदोऽस्त्युत्तरप्रदः।
इत्थं साधयितुं यद्वै प्राक्तनर्णमभूदिह ॥१८४८॥
अनुसन्धानतस्तस्याऽस्तित्वं विज्ञातमित्युत।
साधयेदथ तस्यान्ते प्रत्याख्याताधमर्णजः ॥१८४९॥
अन्याय्यकर्मणे वाऽघकर्मणे तत्परिग्रहः।
प्रमाणयेदथो ज्ञानमुत्तमर्णस्य तद्गतम् ॥१८५०॥
अनेनैव क्षमस्त्वेष स्वस्वार्थं परिरक्षितुम्।
ऋणप्रयोजनस्याथाऽनुसन्धा विहिताथवा ॥१८५१॥
ऋणं वंशहितायात्तमस्य त्वत्र प्रमाणने।
उत्तमर्णो न भारी स्यान्निर्णीतमिति शास्त्रिभिः ॥१८५२॥

पहले के कर्ज़े के होने में (नया) कर्जा देनेवाला यह प्रमाणित करने का जिम्मेदार होता है कि यहां (इस स्थान) पर पहले का कर्ज़ा मौजूद था अथवा अनुसन्धान (inquiry) से उस (पहले के कर्ज़) का होना ज्ञात हुआ था और इसके बाद विरोध करनेवाला क़र्ज़ लेनेवाले का पुत्र उस (कर्ज़) का अन्याय्य काम (illegal purpose) के लिए या दुराचार के काम (immoral purpose) के लिये लेना सिद्ध करे; तथा कर्ज़ देनेवाले की उस विषय की जानकारी को सिद्ध

करे । इसीसे वह अपने स्वार्थ की रक्षा कर सकता है । (मैंने) कर्जा लेने के प्रयोजन का अनुसन्धान किया था या कर्जा कुटुम्ब के फ़ायदे के लिए लिया था इसको सिद्ध करने का, इस स्थान पर, कर्ज देनेवाला जिम्मेदार नहीं होता । ऐसा विद्वानों ने निर्णय किया है ।

तातोऽमितव्ययी भ्रष्टाचारो वेत्येव तत्सुतः ।
साधयित्वा स्वभागस्य रक्षायां न क्षमो मतः ॥१८५३॥
भ्रष्टाचारेण संबन्धं संसाध्यास्य ऋणस्य सः ।
क्षमः स्यात्स्वांशरक्षायां नान्या तत्र गतिर्मता ॥१८५४॥

पिता फ़जूल खर्च या बुरे चाल चलनवाला है यही सिद्ध करके उस (पिता) का पुत्र अपने हिस्से की रक्षा नहीं कर सकता । वह (पुत्र) उस कर्ज का संबन्ध बुरे चलन से पूरी तौर से सिद्ध करके ही अपने हिस्से की रक्षा कर सकता है । वहां पर दूसरा मार्ग नहीं है ।

पितृणेऽथ सुतर्णे वोभयर्णे राजशासनात् ।
आत्ते सुतांऽशे नो तातस्तदंशं व्ययितुं क्षमः ॥१८५५॥

पिता के कर्ज, पुत्र के कर्ज या दोनों के कर्ज में राजाज्ञा (डिग्री) के द्वारा पुत्र के (साझे के धन के) हिस्से के कुर्क हो जाने पर पिता पुत्र के हिस्से को खर्च नहीं कर सकता (अर्थात्–बेच या गिरवी नहीं रख सकता) ।

उभौ प्रति पितृणे च प्रदत्ताद्राजशासनात् ।
आत्ते पुत्रस्य भागेऽपि तातस्तस्य व्ययेऽक्षमः ॥१८५६॥

पिता के कर्ज में (पिता और पुत्र) दोनों के विरुद्ध दी गई डिग्री के कारण पुत्र के भाग के ले लियेजाने (attach कर लियेजाने) पर भी पिता उस (भाग) को खर्च नहीं कर सकता ।

न्यायकार्याय पित्रा चेत् संसृष्टाऽर्थव्ययः कृतः ।
तर्हि पुत्रा न शक्ताः स्युः कर्तुं बाधां हि तद्व्यये ॥१८५७॥

यदि पिता ने न्याय के (legal) काम के लिए साझे का धन खर्च किया हो, तो पुत्र उस खर्च में रुकावट डालने में समर्थ नहीं होते ।

पुत्रस्वार्थं समादातुं तदृणस्य विशुद्धये ।
नावश्यकस्तत्र मतः प्राचीनर्णमताश्रयः ॥१८५८॥

वहां पर उस (न्याय कार्य के लिए लिये) कर्ज को चुकाने के लिए पुत्र के स्वार्थ को लेने में पहले के कर्ज का सहारा लेना आवश्यक नहीं माना गया है । (अर्थात्–उसके विना भी उस कार्य के लिए पिता के लिये कर्ज के चुकाने में पुत्र का भाग अधिकृत किया जा सकता है) ।

पुत्रोक्त्यास्त्वत्र संग्राह्याः पुत्रपौत्रप्रपौत्रकाः ।
पित्रुक्त्या च पिता तस्य पिता च प्रपितामहः ॥१७५९॥

यहां पर (पुत्रों के साथ के साझे के धन में पिता का अधिकार बतलानेवाले विवरण में) पुत्र कहने से बेटे, पोते और परपोते लेने चाहिए और पिता कहने से बाप, दादा और परदादा (लेने चाहिए) ।

तातं विनाऽवयस्कस्य भ्रातुः संसृष्टिगं धनम् ।
भ्राताऽपि व्ययितुं नैव शक्तः पितृणशुद्धये ॥१८६०॥

पिता को छोड़कर भाई भी, पिता के कर्ज़ को चुकाने के लिए, नाबालिग भाई का साझे का धन खर्च नहीं कर सकता । (अर्थात्—न गिरवी रख सकता है न बेच सकता है) ।

तातेन व्ययिते त्यक्त्वा प्रागृणं न्यायकर्म च ।
संसृष्टाऽर्थे तु ऋणदः पित्रंशमपि नाप्नुयात् ॥१८६१॥
अवधौ तु पितापुत्रौ सोऽभियुञ्जीत तत्कृते ।
मिताक्षरांऽनुगेभ्योऽस्ति प्रयागीयो विधिस्त्वयम् ॥१८६२॥
वङ्गेऽप्येष विधिर्ज्ञेयः किन्त्वनाचारवर्जिते ।
पितृणे सोऽभियुज्य स्वं विन्देत् संसृष्टितो धनम् ॥१८६३॥

पिता के, पुराने कर्ज और न्याय के काम को छोड़कर (अन्य काम के लिए) साझे के धन को खर्च करदेने पर कर्ज़ा देनेवाला पिता का हिस्सा भी नहीं पाता । (अर्थात्—साझे में के पिता के धन को भी नहीं ले सकता) । परन्तु वह उस कर्ज़ के लिए मयाद के भीतर पिता और पुत्र पर मुकद्दमा चला सकता है । मिताक्षरा के अनुसार चलनेवालों के लिए यह इलाहाबाद का तरीका है । बंगाल में भी यही रीति जाननी चाहिये । परन्तु अनाचार (immorality) से वर्जित पिता के ऋण में वह मुकद्दमा चलाकर साझे की संपति से अपना धन ले सकता है ।

द्रविडेऽथ महाराष्ट्रे स्वं संसृष्टाऽर्थगं धनम् ।
आधीकर्तुं तु संसृष्टी शक्तो न्यायविधानतः ॥१८६४॥

साझेदार, मद्रास और बंबई में, अपना साझे में रहा हुआ धन गिरवी रखने में कानून से समर्थ होता है ।

युक्तप्रान्तेऽथवा वङ्गे संसृष्टी न क्षमो निजम् ।
भागं संसृष्टवित्तस्याऽप्याधीकर्तुं निजेच्छया ॥१८६५॥

संयुक्तप्रान्त और बंगाल में साझेदार अपनी मरजी से (अर्थात्—बिना दूसरे साझेदारों की अनुमति के) अपने साझे के धन के हिस्से को भी गिरवी नहीं रख सकता ।

द्रविडे प्राक्तनर्णस्याऽभावे वा न्यायकर्मणः।
आधिदत्तं निजं द्रव्यं प्राक् संसृष्टांऽशतः पितुः १८६६॥
दाताऽऽदत्ते ततस्तस्य न्यौन्ये वैयक्तिकात् पितुः।
संसृष्टादथ पुत्रांऽशादपि प्राप्याऽनुशासनम्॥१८६७॥

मद्रास में पुराने कर्ज के या न्याय के काम के अभाव में (गिरवी पर अपना) धन देनेवाला पहले पिता के साझे के धन से गिरवी पर दिया अपना धन लेता है। फिर उसके कम होने पर पिता के व्यक्तिगत धन से, और बाद में डिग्री प्राप्त कर, पुत्र के साझे में के हिस्से से भी लेता है।

महाराष्ट्रे स सर्वस्मादेव संसृष्टवित्ततः।
आप्नोति न समाख्यातस्तत्र पूर्वाऽपरक्रमः॥१८६८॥

बंबई में वह (गिरवी पर रुपिया देनेवाला) सारे ही साझे के धन से लेता है (अपना दिया वसूल करता है)। वहां (उस प्रान्त में) पहले (पिता के हिस्से से) और पीछे (पुत्र के हिस्से से) का क्रम नहीं कहा है।

युक्तप्रान्ते तु नो शक्त आधिसंग्राहकः पुनः।
उत्तमर्णः समुद्धर्तुं पित्रंशादपि तद्धनम्॥१८६९॥
पणाऽर्थमभियुज्यैव पितरं चाप्य शासनम्।
आददीत स सर्वस्मात् संसृष्टाऽर्थान्निजं धनम्॥१८७०॥

फिर संयुक्तप्रान्त में तो गिरवी रखकर, कर्ज देनेवाला (उस गिरवी पर दिये) धन को पिता के (साझे के) हिस्से से भी नहीं ले सकता। वह रुपयों के लिए पिता पर मुकदमा चलाकर और डिग्री हासिल करके सारे ही संसृष्ट धन से अपना धन ले सकता है।

वङ्गे दाता समादत्ते पूर्वं पित्रंशतो धनम्।
न्यौन्ये पुत्रांशतस्तावन्मात्रं पूर्तिस्तु यावता॥१८७१॥
सर्वस्माद्वाऽथ संसृष्टादर्थादादातुमप्यसौ।
शक्तः तातं प्रति प्राप्य न्यायतो राजशासनम्॥१८७२॥

बंगाल में (कर्ज) देनेवाला पहले पिता के (साझे के) हिस्से से धन लेता है। (और) कमी होने पर पुत्र के (साझे के) हिस्से से उतना लेता है, जितने से कमी पूरी हो जाय। अथवा वह, कानून द्वारा पिता के विरुद्ध डिग्री प्राप्तकर सारे ही साझे के धन से भी (अपना रुपया) ले सकता है।

आधीकृतेऽथ संसृष्टधने पित्रा स्वहेतवे।

धनदस्त्वभियुज्याऽत्राऽवधौ पुत्रमवाप्नुयात् ।
शासनं विक्रयकृते सर्वसंसृष्टसंपदः ॥१८७४॥

पिता के अपने काम के लिए साझे के धन के गिरवी रखने के बाद, कर्ज के चुकाने के पहले ही, उसकी मृत्यु हो जाय, तो धन (कर्जा) देनेवाला, यहां पर मयाद के भीतर पुत्र पर मुकद्दमा चलाकर, सारे ही साझे के धन के बेचने के लिए डिग्री प्राप्त कर सकता है ।

द्रविडेऽथ महाराष्ट्रेऽवधावेव धनप्रदः ।
अभियुज्य सुतं तस्मात्तातांऽशं समवाप्नुयात् ॥१८७५॥

मद्रास और बंबई में कर्ज देनेवाला, मयाद के भीतर ही पुत्र पर मुकद्दमा चलाकर, उससे (उसके) पिता का अंश ले सकता है ।

युक्तप्रान्ते जनो नैव कृतादाधिग्रहादपि ।
ताते जीवति वा प्रेते तदंशग्रहणे क्षमः ॥१८७६॥
अतोऽभियुज्य पुत्रं सोऽवधौ यत्न समाचरेत् ।
निर्गताऽवधिके तत्र ऋणे नाऽस्ति प्रतिक्रिया ॥१८७७॥

संयुक्त प्रान्त में पुरुष (साझे के धन के) गिरवी रखलेने पर भी, पिता की जीवित अथवा मृत अवस्था में उस (पिता) का हिस्सा नहीं ले सकता । इसलिए वह मयाद के भीतर पुत्र पर मुकद्दमा चलाकर (कर्ज वसूल करने का) यत्न करे । वहां पर मयाद निकले हुए कर्ज के विषय में कोई इलाज नहीं है ।

दुराचारकृते पित्रा गृहीतं चेदृणं तदा ।
उत्तमर्णस्तु पुत्रांऽशं ग्रहीतुं न क्षमो मतः ॥१८७८॥
द्रविडेऽथ महाराष्ट्रे वङ्गे चाऽऽधीकृताद्धनात् ।
संसृष्टात् पितुरंशं स आदत्ते न सुतस्य तु ॥१८७९॥
युक्तप्रान्ते यतः स्वांऽशमपि संसृष्टिगं पिता ।
ऋते पुत्राऽनुमत्या नो आधीकर्तुं क्षमो मतः ॥१८८०॥
तस्मादाधिग्रहाद्दाता पित्रंशमपि नाप्नुयात् ।
तातं तत्राऽभियुज्यैव पणार्थं स्वांशमुद्धरेत् ॥१८८१॥

यदि पिता ने बुरे कामों के लिए कर्ज लिया हो, तो कर्ज देनेवाला पुत्र का हिस्सा लेने में समर्थ नहीं माना जाता । मद्रास, बंबई और बंगाल में वह (कर्ज देनेवाला) गिरवी रखे साझे के धन में से पिता का भाग लेता है, पुत्र का नहीं । क्योंकि संयुक्तप्रान्त में पिता को पुत्र की [illegible] (राय) के विना साझे में के अपने हिस्से को भी गिरवी रखने में समर्थ नहीं माना है । इसलिए कर्ज देनेवाला गिरवी रखलेने से पिता के अंश को भी नहीं पा सकता । वहां पर (वह) पिता

पर रुपयों के लिए मुकद्दमा चलाकर ही (रुपयों की डिग्री प्राप्तकर) अपना रुपया वसूल कर सकता है।

प्राक्तनर्णाय विक्रीय संसृष्टाऽर्थं पिता यदि।
ऋणायांऽशं ततो दद्याद्दत्तेच्चांऽशं स्वहेतवे ॥१८८२॥
भारीतर्ह्यपि दत्तार्थव्यये तूचितमूल्यदः।
क्रेता नैव मतो लोके नीतिरीतिविचक्षणैः ॥१८८३॥

यदि पिता पुराने कर्जे के लिए साझे के धन को बेचकर उसमें से कुछ हिस्सा कर्ज (उतारने) के लिए दे और कुछ अपने लिए रखले, तो भी जगत् में न्याय की रीति के पण्डित उचित मूल्य देनेवाले खरीददार को दिये हुए धन (मूल्य) के खर्च के विषय में जिम्मेदार नहीं मानते।

क्रोधाऽनुरागजाऽऽवेशसुराद्यूतकृतं तथा।
परस्य प्रतिभूत्वेनाऽविचारितप्रतिज्ञया ॥१८८४॥
कृतं नर्णं पितुर्देयं तथैवाऽव्यावहारिकम्।
दण्डद्रव्यमथो शुल्कं पित्राऽदत्तं च यत् पुनः ॥१८८५॥

क्रोध या अनुराग से उत्पन्न हुए जोश से, मदिरा से या जुए से किया, तथा दूसरे की जमानत देने से या विना सोचे-विचारे की हुई प्रतिज्ञा से किया पिता का कर्ज नहीं देना चाहिए और उसी प्रकार अव्यावहारिक (सदाचार के विरुद्ध) ऋण और जो जुर्माना और चुंगी पिता ने नहीं दी हो, वह भी नहीं देनी चाहिए।

द्रव्यार्पण ऋणोन्मोक्ष आप्तत्वेऽथो उपस्थितौ।
प्रतिभूः स्याच्चतुर्धेति बृहस्पतिमतं भुवि ॥१८८६॥

सामान के देने में, कर्जा चुकाने में, ईमानदारी में और हाजिर होने में-इस प्रकार पृथ्वीपर चार प्रकार का जामिन होता है-ऐसा बृहस्पति का मत है।

पुत्रा नो भारिणो ज्ञेया अन्तिमद्वयहेतवे।
चेत् पित्रा न गृहीतं स्यात् प्रतिभूत्वोचितं धनम् ॥१८८७॥

यदि पिता ने जामिन बनने के योग्य धन नहीं लिया हो, तो आखीरी दोनों (अर्थात्-ईमानदारी और हाजिरी) के लिए पुत्रों को जिम्मेदार नहीं समझना चाहिए।

पूर्वद्वयकृतेप्यत्र पौत्रा नो भारिणो मताः।
पितामहेन नात्तं चेत् प्रतिभूत्वोचितं धनम् ॥१८८८॥

यदि दादा ने जामिन बनने के योग्य धन नहीं लिया हो, तो पोतों को पहले दोनों (अर्थात्-सामान के देने और कर्जे के चुकाने) में भी जिम्मेदार नहीं माना है।

गौतमस्य मते पुत्रा ऋणे व्यापारजे पितुः ।
दायिनो नाऽभवन् किन्तु नाऽधुनाऽऽद्रियते हि तत् ।१८८८(क)

गौतम के मत में पुत्र पिता के व्यापार से हुए कर्ज में जिम्मेदार नहीं होते थे । परन्तु वह मत आजकल नहीं माना जाता है ।

नाऽवधिः स्मृतिशास्त्रेषु ऋणोद्धारे प्रकीर्तितः ।
मृतेऽदत्तऋणे तातेऽतः पुत्रा भारिणोऽभवन् ॥१८८९॥

स्मृतियों में कर्ज के चुकाने के विषय में मयाद नहीं कही है । इसीलिए पिता के विना कर्ज चुकाये (ही) मरजाने पर (उसके) पुत्र उस (कर्ज) के जिम्मेदार होते थे ।

नवव्यवस्थया किन्तु संप्रत्यवधिनिर्णयः ।
कृतोऽतोऽतीतमर्यादमृणं नूनं प्रणश्यति ॥१८९०॥

परन्तु आजकल नवीन कायदे (ई० सं० १९०८ के मयाद के कानून) से मयाद का निर्णय कर दिया गया है । इसीसे मयाद से बाहर का कर्ज निश्चय ही नष्ट हो जाता है ।

ऋणं विगतमर्यादमदेयं जनकस्य चेत् ।
तत्पुत्रा अपि नो तर्हि तत्र भारवहा मताः ॥१८९१॥

यदि मयाद से बाहर हुआ कर्ज पिता के लिए नहीं देने (चुकाने) लायक होता है, तो उसके लड़के भी उस (कर्ज) के विषय में जिम्मेदार नहीं माने जाते ।

गताऽवधावृणेऽप्यत्र लेखपत्रप्रदानतः ।
स्वीकृते तु जनो भारी तदन्ते तत्सुता अपि ॥१८९२॥

यहां पर मयाद से बाहर हुए कर्ज के भी लेख-पत्र (promissorry note) देकर स्वीकार करलेने पर मनुष्य जिम्मेवार हो जाता है और उसके बाद उसके पुत्र भी जिम्मेदार हो जाते हैं ।

किन्तु यावत्पितृप्राप्तदायवस्त्वेव नन्दनाः ।
पितृणे भारिणो दायः स पैत्रः स्वार्जितोऽथवा ॥१८९३॥

परन्तु पुत्र पिता के कर्ज में पिता से मिले दाय के धन की मालियत तक ही जिम्मेदार होते हैं । वह दाय (विरासत में मिला धन) बाप-दादा का या पिता का निज का (कमाया) हो सकता है । (अर्थात्–इन दोनों प्रकार के धन का जितना हिस्सा पिता से मिला हो, उतने तक ही पुत्र पिता के कर्ज के जिम्मेवार होते हैं ।)

गताऽवधिनि पितृणे पित्रन्ते लेखपत्रतः ।
स्वीकृतेऽपि सुतैस्ते स्युर्यावद्दायाऽर्थभारिणः ॥१८९४॥

पिता के बाद पुत्रों द्वारा लेख-पत्र (promissory note) से स्वीकार किये

मयाद बाहर के पिता के ऋण में भी वे दाय (विरासत) में मिले धन की हदतक ही जिम्मेदार होते हैं।

तथाऽत्राऽतीतमर्यादऋणशोधकृतेऽपि चेत्।
पृक्तिगार्थं पिता दद्यात्तर्हि मान्यं सुतैस्तु तत् ॥१८९५॥

इसके अतिरिक्त यदि यहां पर पिता मयाद बाहर के कर्जे को चुकाने के लिए भी साझे का धन दे देवे, तो वह पुत्रों को मान लेना चाहिए। (क्योंकि शास्त्रों में ऋण के विषय में समय की मर्यादा नहीं है।)

यद्यप्येतादृश ऋणे पुत्रा नो भारिणः स्वयम्।
तथाऽपि भारिणस्ते स्व-संसृष्टाऽर्थान्तमत्र हि ॥१८९६॥

यद्यपि ऐसे कर्जे में पुत्र खुद (व्यक्ति-रूप से) जिम्मेदार नहीं होते, तथापि वे उसमें अपने साझे के धन की मालियत तक अवश्य जिम्मेदार होते हैं। (अर्थात्– उनका पिता के साथ का साझे का धन पिता के कर्जे में लिया जा सकता है।)

जनकेनाऽवयस्केन राट्प्रबन्धे स्थितेन वा।
कृतो व्यर्थीभवेल्लेखः पुत्राश्चाऽत्र न भारिणः ॥१८९७॥

नाबालिग या राजा के प्रबन्ध (Court of Wards) में रहे पिता का किया हुआ लेख-पत्र (promissory note) व्यर्थ होता है, और उसके विषय में (उसके) पुत्र जिम्मेदार नहीं होते।

तदेव प्राप्तवयसा पित्रा चेन्नूतनीकृतम्।
पुत्राः स्युर्भारिणस्तत्र पूर्वोक्तविधिना तदा ॥१८९८॥

यदि बालिग हुए पिता ने उसी लेख-पत्र को (फिर से) नया (renew) कर-दिया हो, तो पुत्र पहले कही रीति से (अपने पिता के साथ के साझे के धन की मालियत तक) उस विषय में जिम्मेवार होते हैं।

निष्कर्षस्त्वस्य, वित्तं स्वमसंसृष्टमृणे निजे।
जने जीवति वा प्रेत उत्तमर्णेन गृह्यते ॥१८९९॥

इस (सारे उपर्युक्त कथन) का (यह) खुलासा है कि अपना बिना साझे का व्यक्तिगत धन अपने कर्जे में पुरुष के जीते जी या मरने पर कर्ज़दार ले लेता है

संसृष्टस्य जनस्याऽत्र संसृष्टाऽर्थः प्रगृह्यते।
जीवत्येव जने तस्मिंस्तदृणस्य विशुद्धये ॥१९००॥

यहां पर साझेदार पुरुष का साझे का धन, उसका कर्ज़ चुकाने में, उस पुरुष के जीवित होने पर ही लिया जाता है।

संसृष्टेषु सगोत्रेषु कस्मिन्नपि मृते भवेत्।
तद्धनं तदृणेऽग्राह्यं चेन्नात्तं तस्य जीवने ॥१९०१॥

साझेवाले रिश्तेदारों (collaterals) में किसी के मरने पर उसका धन यदि उसके जीते जी नहीं लिया हो, तो उसके कर्ज़ में नहीं लिया जा सकने लायक हो जाता है।

पुत्रपौत्रप्रपौत्राश्चेत् संसृष्टा जनकेन तत्।
पितृणेऽर्हे तदन्तेऽपि संसृष्टं सकलं व्रजेत् ॥१९०२॥

यदि बेटे, पोते और परपोते पिता के साझेदार हों, तो पिता के न्याय्य ऋण में, उस (पिता) के बाद भी सारा ही साझे का धन चला जाता है। (अर्थात्- ऐसी अवस्था में पिता के मरजाने पर भी उसका और उसके पुत्रों का सारा ही साझे का धन पिता के कर्ज़ में लिया जा सकता है)।

पुत्रपौत्रप्रपौत्रास्तु न्याय्ये तातऋणेऽप्यथ।
संसृष्टाऽर्थान्तमेव स्युर्भारिणो नात्मरूपतः ॥१९०३॥

और बेटे, पोते और परपोते पिता के न्याय्य (उचित) ऋण में भी साझे के धन तक ही ज़िम्मेदार होते हैं, व्यक्तिगत-रूप से नहीं होते।

ताताऽभियोगतः प्राप्तशासनस्तद्दृणप्रदः।
पुत्रपौत्रप्रपौत्राणामपि संसृष्टिगं हरेत् ॥१९०४॥

पिता पर मुकद्दमा चलाकर डिग्री प्राप्त किया हुआ कर्ज़ देनेवाला (पुरुष) बेटों, पोतों और परपोतों का भी (पिता के साथ) साझे में रहा (धन) ले सकता है।

पुत्रपौत्रप्रपौत्राणामपि संसृष्टिगं धनम्।
स्वीयपूर्वर्णशुद्धयर्थं विक्रयाऽऽध्योः क्षमः पिता ॥१९०५॥

पिता अपने पहले के ऋण चुकाने के लिए बेटों, पोतों और परपोतों का साझे का धन भी बेच या गिरवी रख सकता है।

१५. दायभागीयमृणविवेचनम्।

दायभाग में का 'कर्ज़' का विचार।

कुटुम्बाऽर्थं गृहीतेऽत्र ऋणे मैताक्षरे मते।
नियमा ये पुरा प्रोक्ता दायभागेऽपि ते मताः ॥१९०६॥

कुटुम्ब के लिए लिये कर्ज़ के विषय में मिताक्षरा के मत में जो कायदे पहले कहे हैं, वे ही 'दायभाग' में भी माने गये हैं।

ऋणे स्वाऽर्थाऽर्थमात्ते तु दायभागमतो विधिः।
कथ्यतेऽत्र यतो वङ्ग एष एवाऽस्ति संमतः ॥१९०७॥

अपने लिए लिये कर्ज़ के विषय में 'दायभाग' में माना गया नियम यहां पर कहा जाता है, क्योंकि बंगाल में यही माना गया है।

पुत्राः पौत्राः प्रपौत्राश्च जन्मनैव समांऽशिनः ।
नो मतास्तत् पितृणे तु तेषां तत्र न भारिता ॥१६०८॥

बेटे, पोते और परपोते जन्म से ही (पिता के) बराबरी के हिस्सेदार नहीं माने गए हैं, इसलिये वहां (दायभाग में) पिता के कर्ज़ में तो वे जिम्मेदार नहीं होते ।

संसृष्टा नो भवेयुस्ते पितृभिः, पितरस्ततः ।
निश्चितांऽशाः क्षमाश्चाऽपि स्वेच्छया व्ययितुं धनम् ॥१६०६॥

वे (पुत्र आदि) अपने बाप-दादों के साथ साझेदार नहीं हो सकते, इसलिए बाप-दादा (धन में) निश्चित भागवाले और धन को इच्छानुसार काम में लेने में समर्थ होते हैं ।

संसृष्टेषु मृतस्याऽर्थो निश्चितं याति तत्सुतान् ।
दायादान् वा न तु पुनः संसृष्टेष्वनुजीवतः ॥१६१०॥

साझेदारों में मरे हुए का धन उसके पुत्रों या हकदारों को मिलता है, साझेदारों में पीछे बचे हुओं को नहीं मिलता ।

एते पूर्वोदिता ज्ञेयाः सामान्या नियमा धने ।
ऋणशोधकृतेऽथार्थप्रयोगविधिरुच्यते ॥१६११॥

ये पहले कहे (नियम) धन के विषय में साधारण नियम हैं । अब कर्ज़ चुकाने में (उस) धन के प्रयोग का तरीका कहा जाता है ।

मिताक्षरावदेवाऽत्र धनं व्यक्तिगतं जने ।
जीवत्यथ मृते ग्राह्यं भवेत् तदृणशुद्धये ॥१६१२॥

मिताक्षरा की तरह यहां भी व्यक्तिगत धन पुरुष के जीते रहने या मरने पर उसके ऋण चुकाने में ग्राह्य होता है ।

संसृष्टो निश्चितोऽशो यो मृत्यौ याति तदुत्तरान् ।
तस्मिञ्जीवति वा प्रेते तदृणे सोऽपि गृह्यते ॥१६१३॥

जो साझे का निश्चित हिस्सा उसके मरने पर उसके उत्तराधिकारियों को मिलता है, वह भी उसके कर्ज़ में उसके जीते जी या मरने पर ले लिया जाता है ।

आजीवं तात एवाऽत्र धने पूर्णाऽधिकारवान् ।
अतोऽन्याय्य ऋणेऽप्येष क्षमस्तदुपयोजने ॥१६१४॥

यहां (दायभाग में) जीवन पर्यन्त पिता ही धन के विषय में पूर्ण अधिकारी होता है, इसलिए वह (पिता) उस (धन) को 'अव्यावहारिक' (अनुचित) ऋण में भी काम में ले सकता है ।

संसृष्टं व्यक्तिगं चाऽपि धनं यावत् तदुत्तरान् ।
याति तावत्तमेवाऽत्र वहन्ते भारमुत्तराः ॥१६१५॥

जितना साझे का या व्यक्तिगत धन उत्तराधिकारियों को मिलता है, उतना ही यहां पर (वे) उत्तराधिकारी (उसके कर्ज में) जिम्मेदार होते हैं।

१६ मिताक्षरोक्तो विभागः।

मिताक्षरा में कहा बटवारा।

विभाज्यं धनम्।

बांटने लायक धन।

धनं संसृष्टमेवात्र विभजद्भिर्विभज्यते।
व्यक्तिगं प्रथया वाऽऽप्तं केनापि, तु न भज्यते ॥१६१६॥

संसार में जुदा होनेवालों द्वारा साझे का धन ही बांटा जाता है। व्यक्तिगत या रिवाज से किसी खास (कुटुम्बी) को मिला धन नहीं बांटा जाता।

चलाऽचले धने पित्र्ये पौत्राः स्वांऽशग्रहे त्वलम्।
मिताक्षरामतेनाऽद्य तातेऽनिच्छत्यपि क्षमाः ॥१६१७॥

आजकल मिताक्षरा के मत से, पिता के नहीं चाहने पर भी, पौते पूर्वजों की स्थावर और अवस्थावर संपत्ति में तो अपना हिस्सा लेने में पूर्ण समर्थ होते हैं।

पशवश्चाऽथ वस्तूनि न विभाज्यानि यानि तु।
विक्रीय तानि तेषां वा मूल्यं निर्णीय वण्टयेत् ॥१६१८॥

पशु अथवा जो वस्तुएं नहीं बाँटी जा सकें उनको बेचकर या उनका मूल्य निश्चित करके बांटले।

कूपादीन् साहकर्येण भजेत् कालक्रमेण वा।
सामान्यपथभूखण्डं न विभाज्यं कुटुम्बिभिः ॥१६१६॥

कुओं आदिकों को मिलकर या बारी-बारी से काम में ले। साझे का रास्ते का पृथ्वी का टुकडा कुटुम्बियों को नहीं बाँटना चाहिए।

कौटुम्बं दैवतं देवगृहं वा न विभज्यते।
ज्येष्ठसात् तत्प्रबन्धोऽथ सर्वसात् समयक्रमात् ॥१६२०॥

कुटुम्ब की देव-मूर्ति अथवा मन्दिर नहीं बाँटा जाता है। उसका प्रबन्ध बड़े के अधीन अथवा बारी बारी से सबके अधीन रह सकता है।

दाये विभक्ते संसृष्टैर्लब्धिर्व्यक्तिगता मता।
दायादानामतस्तत्र कस्याऽप्यन्तेंऽशिनो न ते ॥१६२१॥

'साझेदारों द्वारा दाय (हकदारों के धन) के बांटने में जो हिस्सा मिलता है, वह हिस्सेदारों का व्यक्तिगत हिस्सा माना गया है। इसलिए (उनमें से) किसी के मरने पर, वे अन्य साझेदार (उसके) हकदार नहीं होते।

मृते विभक्तदायेऽत्र तत्पुत्रास्तद्धनांऽशिनः ।
तदभावे तथाऽऽसन्ना दायादा दायमाप्नुयुः ॥१६२२॥

हिस्सा-बाँट किये हुए पुरुष के मरने पर उसके पुत्र उसके धन के हिस्सेदार होते हैं। उनके न होने पर उस (पुरुष) के पास के हकदार हकदारी का धन पाते हैं।

संसृष्टाऽर्थविभागात्प्राक् धनं स्थाप्यं पृथग् बुधैः ।
संसृष्टर्णस्य युक्तस्य पितृणस्य च शुद्धये ॥१६२३॥

वृत्त्यै समाश्रितस्त्रीणां दायाऽनर्हांऽशभागिनाम् ।
भरणायाऽथ कन्यानां विवाहायाऽपि यत्नतः ॥१६२४॥

बुद्धिमान् पुरुषों को साझे के धन के बाँटने के पहले साझे (कुटुम्ब) के कर्ज और पिता के न्याय्य (उचित) ऋण की शुद्धि के लिए, आश्रित स्त्रियों की जीविका के लिए, हिस्सा पाने में अयोग्य हकदारों के गुजारे के लिए और अविवाहित कन्याओं के विवाह के लिए भी धन यत्नपूर्वक अलग रख देना चाहिए।

पुत्रैर्दायविभागात्प्राग् मातुर्मृतपतेस्तथा ।
पितामह्या अपि स्थाप्यमूर्ध्वदेहोचितं धनम् ॥१६२५॥

पुत्रों को धन बाँटने के पहले विधवा मा की और दादी की भी और्ध्वदैहिक क्रिया के योग्य धन (अलग) रखदेना चाहिए।

यज्ञोपवीतसंस्कारकृते चाऽपि कुटुम्बिनाम् ।
धनं पृथक् सुसंस्थाप्यं पूर्वमेव विभागतः ॥१६२६॥

कुटुम्बियों के यज्ञोपवीत संस्कार के लिए भी, हिस्सा-बांट के पहले ही, धन अलग रख देना चाहिए।

मैताक्षरे मते प्रोक्ता संसृष्टानां कुटुम्बिनाम् ।
संस्काराऽर्थं तु संसृष्ट-धनस्य विनियोजना ॥१६२७॥

मिताक्षरा के मत में साझे के कुटुम्बवालों के संस्कारों के लिए तो साझे के धन को काम में लेना लिखा (ही) है।

विवाहश्चाऽपि संस्कारेष्वेव विज्ञैर्मतो यतः ।
ततः पृक्तेषु संसृष्टं धनं तत्राऽपि योज्यते ॥१६२८॥

क्योंकि विद्वानों ने विवाह को भी संस्कारों में ही माना है; इसलिए साझेवालों में उस (विवाह) में भी साझे का धन काम में लाया जाता है। (अर्थात्–साझे के कुटुम्बवाले पुरुषों के विवाह में भी साझे के रहते साझे का धन ही काम में लिया जाता है)।

कुटुम्बिनां तथा तेषां मृतानां कन्यकोढये ।
गृहीतं यदृणं तत्तु कौटुम्बिक-ऋणं मतम् ॥१६२९॥

(जीते) कुटुम्बियों की तथा मरे हुए कुटुम्बियों की कन्याओं के विवाह के लिए जो कर्ज लिया गया हो, उसको कुटुम्ब का ऋण (ही) माना है ।

एकस्याऽपि विभागार्थेऽभियुक्त्या ये कुटुम्बिनः ।
अनूढास्ते विवाहाऽर्थं वञ्च्यन्ते पृक्तवित्ततः ॥१९३०॥

(कुटुम्ब के) एक आदमी के भी हिस्से-बाँट के लिए अभियोग (प्रारम्भ) कर देने पर, जो अविवाहित कुटुम्बी होते हैं, वे विवाह के लिए साझे का धन नहीं पाते ।

भ्रातृकन्याविवाहार्थं तथैव भ्रातरः परे ।
न स्युर्व्ययवहा वण्टाऽभियोगेऽत्र प्रवर्तिते ॥१९३१॥

उसी प्रकार यहां पर हिस्सेदारी के मुकद्दमे के चलादेने पर भतीजियों के विवाह के लिए दूसरे भाई बोझा उठानेवाले नहीं होते । (परन्तु उसके पूर्व होते हैं ।)

शास्त्रोक्त्याऽत्र सुतैः कार्यं विधवाऽम्बौर्ध्वदैहिकम् ।
स्त्र्यर्थे सत्यपि यस्मात् स स्त्र्यर्थो याति तदात्मजाः॥१९३२॥

शास्त्र के कहे अनुसार, स्त्री-धन के होने पर भी विधवा माता का मृत्यु के बाद का संस्कार पुत्रों को करना चाहिए, क्योंकि स्त्री-धन तो उस (स्त्री) की कन्याओं को मिलता है ।

अत एव सुतैः स्थाप्यं विभागे तत्कृते धनम् ।
अस्थापितधनैस्तैस्तु देयं कालेऽथवा हि तत् ॥१९३३॥

इसलिए पुत्रों को हिस्सा-बाँट के समय उस (और्ध्वदैहिक के लिए) धन रख-लेना चाहिए । अथवा (उसके लिए) धन नहीं रख छोड़नेवाले सब पुत्रों को समय पर (उसके लिए) धन देना चाहिए ।

संसृष्टसंपदो योंऽशो द्वादशाऽब्दानपि स्थितः ।
एकाऽधिकारे वण्टयः स द्राविडेऽर्थविभाजने ॥१९३४॥

साझे की संपत्ति का जो भाग बारह बरसों तक भी एक (साझेदार) के अधिकार में रहा हो, वह (भी) मद्रास में होनेवाले धन के बटवारे में बाँट लेने योग्य होता है ।

अर्थाऽन्त्यस्वामिनो भार्यां कन्या वा यो निजाऽर्थतः ।
पुष्येत्तदर्थवण्टे स तद्भागमपि विन्दति ॥१९३५॥

जो धन के अन्तिम स्वामी की स्त्री या कन्याओं को अपने धन से पालता है, वह उस (अन्तिम स्वामी) के धन के बटवारे के समय वह (उनके पालन में खर्च किया) हिस्सा भी पाता है ।

विवाहयति यः कन्यास्तथैवाऽन्त्याऽधिकारिणः ।
स्वधनेन, स आप्नोति तत् तदीयाऽर्थवण्टने ॥१९३६॥

उसी प्रकार जो (धन के) अन्तिम अधिकारी की कन्याओं का अपने धन से विवाह करता है, वह उस (खर्च किये धन) को उस (अन्तिम अधिकारी) के धन के बँटवारे के समय पा लेता है।

कर्तुः प्रबन्धेऽन्याय्यत्वं यावन्नैव प्रमाण्यते।
तावत् पूर्वप्रबन्धाऽर्थं न प्रष्टव्यः स बन्धुभिः ॥१६३७॥

कर्ता (manager) के प्रबन्ध में जबतक अन्याय्यता (धोखेबाज़ी) सिद्ध न की जाय, तबतक पहले के प्रबन्ध के लिए बन्धुओं को उससे कोई जवाब नहीं पूछना चाहिये।

संसृष्टेष्वल्पकौटुम्बा बहुकौटुम्बिकैः सह।
व्ययस्याऽल्पाऽधिकत्वे तु न स्युर्विवदितुं क्षमाः ॥१६३८॥

साझे के परिवारवालों में छोटे कुटुम्बवाले लोग बड़े कुटुम्बवालों के साथ, खर्च की कमी व अधिकता के लिए झगड़ा नहीं कर सकते। (अर्थात्-संयुक्त परिवार में बड़े कुटुम्बवाले परिवार पर अधिक खर्च होने पर कम कुटुम्बवाले आपत्ति नहीं कर सकते)।

यः स्याद् बहिष्कृतो भोगाद् नरः संसृष्टसंपदः।
विभागे प्राप्नुयात् स्वांऽशं सोऽन्तर्लाभांशसंयुतम् ।१६३९॥

जो (कुटुम्ब का) पुरुष साझे के धन के उपभोग से हटादिया गया हो, वह हिस्सा-बाँट में अपना हिस्सा मय उस बीच के होनेवाले फ़ायदे के हिस्से के पाने का हकदार होता है।

संसृष्टाऽर्थस्तदंशो वाऽधिकृतः स्यात्कुटुम्बिना।
केनाऽपि तद्विभागेऽन्येऽन्तर्लाभस्याऽपि भागिनः ॥१६४०॥

यदि किसी कुटुम्बवाले ने साझे का (सारा) धन या उसका कुछ भाग अपने अधिकार में करलिया हो, तो उसके बँटवारे के समय दूसरे (कुटुम्ब के) लोग उस बीच हुए फायदे के भी हकदार होते हैं।

समयेन मिथो यत्र भोगः संसृष्टसंपदः।
भक्त्वाऽपि रुद्धश्चेत्तर्हि साऽपि वण्ट्या सवृद्धिका ।१६४१

जहां आपस के निर्णय से साझे की संपत्ति के उपभोग का बँटवारा करके भी (ख़ास-ख़ास वस्तुओं का उपभोग ख़ास-ख़ास पुरुषों के लिए निश्चित करके भी) रोक दिया गया हो, तो उस (संपत्ति) का बँटवारा मय लाभ के (लाभ की रकम के) करना चाहिए।

ईदृग् भागादृतेऽन्यत्र वण्टे नो लाभमिश्रणम्।
विद्यमाना विभाज्याः स्युः किन्तु संसृष्टसंपदः ॥१६४२॥

ऐसे हिस्से बाँटों के अतिरिक्त दूसरे हिस्से बाँट में बीच में होनेवाला लाभ नहीं जोड़ा जाता, किन्तु उस समय मौजूद साझे की संपत्ति ही बाँटी जाती है।

एकेनोद्धृत्य संसृष्टधनं लब्ध्यै न योजितम्।
चेत्तर्हि नान्यः संसृष्टो विभागे तं विदूषयेत् ॥१६४३॥

यदि एक (कुटुम्बी) ने साझे के धन को वसूल करके लाभ के काम में न लगाया हो, तो दूसरा साझेदार हिस्से के समय उस पर (इसका) दूषण नहीं लगा सकता।

संसृष्टेन प्रदत्तश्चेद् मौढ्ये नायकरोऽधिकः।
संसृष्टाऽर्थे स एव स्याद्विभागे तस्य भारभाक् ॥१६४४॥

यदि साझेदार (कुटुम्बी) ने अज्ञानता से साझे की संपत्ति पर अधिक आयकर (income-tax) दे दिया हो, तो बँटवारे में वही उसका जिम्मेवार होता है। (उसका एवजाना उसे नहीं मिलता)।

विभागे दायभागाऽर्हा जनाः।

बटवारे में हिस्सा पाने योग्य पुरुष।

संसृष्टाऽर्थविभागेऽत्र दायाऽर्हाः स्युः कुटुम्बिनः।
सर्वे, किन्तु न ते सर्वे द्रव्यं भाजयितुं क्षमाः ॥१६४५॥

यहां पर साझे (के कुटुम्ब) के धन में सारे ही कुटुम्बी धन के हकदार होते हैं। परन्तु वे सब धन का बटवारा नहीं करवा सकते।

त्रयं पुत्राऽदि सवयस्त्रिभिः पित्रादिभिर्निजैः।
कौटुम्बिकीं तु संपत्तिं विभाजयितुमीश्वरम् ॥१६४६॥

बालिग पुत्र आदि तीनों (लड़का, पोता और परपोता) अपने पिता आदि तीनों (पिता, दादा और परदादा) से कुटुम्ब की संपत्ति को बटवालेने में समर्थ होते हैं।

पिता तु पित्रा भ्रात्रा वा दायादैर्वाऽपरैर्युतः।
चेत्तत्तदनुमत्यैव महाराष्ट्रे क्षमाः सुताः ॥१६४७॥
विभागेऽर्थस्य नाऽन्यत्र नियमोऽयं मतो बुधैः।
महाराष्ट्रेऽपि तनयाः केवलात् पितुरीश्वराः ॥१६४८॥

यदि पिता अपने पिता, भाई या अन्य कुटुम्बियों के साथ संयुक्त हो, तो बंबई प्रान्त में पुत्र उसकी अनुमति (राय) से ही धन के बटवारे में समर्थ होते हैं। बुद्धिमानों ने यह नियम दूसरे प्रदेशों में नहीं माना है। बंबई प्रान्त में भी अकेले पिता से पुत्र धन का बटवारा कर सकते हैं।

दायादस्याऽवयःस्थस्य कृते यद्धि विभाजनम् ।
तत्र तद्भागवृद्धिर्वा रक्षा वा स्यादपेक्षिता ॥१८४९॥

नाबालिग हिस्सेदार के लिए जो हिस्सा-बाँट हो, उसमें उस (नाबालिग) के हिस्से में बढ़ती या हिस्से की रक्षा की आवश्यकता देखी जाती है। (अर्थात्–इन दो हालतों में ही नाबालिग का हिस्सा मुकद्दमे द्वारा अलग करवाया जा सकता है)।

स्वार्थस्य त्ववयःस्थस्य नो हानिर्यत्र विद्यते ।
न विभागो मतस्तत्र तत्कृते न्यायसंगतः ॥१८५०॥

जहां नाबालिग के स्वार्थ की हानि नहीं होती हो, वहां उस (नाबालिग) के लिए हिस्सा-बाँट किया जाना कानून से संमत नहीं माना गया है।

संसृष्टाः सुनियन्त्र्याः स्युः संपदोऽतिफलाः पुनः ।
असंसृष्टोऽवयःस्थो नाऽवशिष्टोऽपि समग्रभाक् ॥१८५१॥

साझे में रही संपत्तियों का प्रबन्ध आसानी से हो सकता है और वे लाभ भी अधिक देती हैं (अर्थात्–उन से अधिक आय होती है)। फिर जुदा हुआ नाबालिग सब साझेदारों के बाद तक जीने पर भी सारी संपत्ति का अधिकारी नहीं होता। (इसलिए बिना उपर्युक्त कारणों के उसके हिस्से को जुदा करवाना मना किया गया है)।

दायादेष्ववयःस्थेषु विद्यमानेष्वपि क्षमाः ।
वयःस्थाः सर्वसंमत्या कुटुम्बार्थविभाजने ॥१८५२॥

नाबालिग हिस्सेदारों के होते हुए भी बालिग (हिस्सेदार) सब (बालिग हिस्सेदारों) की राय से कुटुम्ब के धन को बाँट सकते हैं।

अन्याय्यं चेत् कृतं तत्र वयःस्थैः किमपि ध्रुवम् ।
अवयःस्थो वयःस्थत्वे प्राप्ते न्यायाप्तये क्षमः ॥१८५३॥

यदि उस (हिस्से-बाँट) में बालिग हिस्सेदारों ने निश्चयरूप से अन्याय किया हो, तो नाबालिग बालिग होने पर न्याय प्राप्त कर सकता है। (अर्थात्–मुकद्दमे के द्वारा अन्याय दूर करवा सकता है)।

वण्टने यश्च समयो वयःस्थैस्तु कृतः पुरा ।
अवयःस्थोऽपि वयसि प्राप्ते तल्लाभभाग् भवेत् ॥१८५४॥

बालिगों ने पहले हिस्से-बाँट के समय जो नियम निर्धारित किया हो, नाबालिग भी बालिग होने पर उसमें भाग पा सकता है।

संसृष्टार्थविभागः स्याद्वयःस्थस्यैव घोषणात् ।
सदेकमात्रसवयोऽवयःस्थे तु कुटुम्बके ॥१८५५॥

केवल एक बालिग और एक नाबालिगवाले कुटुम्ब में बालिग के घोषित कर देने से ही साझे के धन का बटवारा हो सकता है।

गर्भस्थोऽपि विभागस्याऽवसरे भागमर्हति ।
स चाऽलब्धविभागस्तु जन्मान्ते स्वांशमश्नुते ॥१८५६॥

बटवारे के समय गर्भ में रहा हुआ (हकदार) भी हिस्सा पाता है । यदि उसको हिस्सा न मिला हो, तो वह जन्म के बाद अपना भाग लेता है ।

चेद् विभागेऽत्र पित्रंशे दत्ते स्याद् गर्भगः सुतः ।
स पित्रन्ते पितुर्भागं हरेत् तद्व्यक्तिगं तथा ॥१८५७॥

यदि यहां पर हिस्से-बाँट में पिता का हिस्सा दे देने पर पुत्र गर्भ में आवे (अर्थात्-पिता और पुत्रों के बटवारा हो जाने और उसमें पिता का हिस्सा दे दिया जाने पर माता के गर्भ में नया पुत्र आ जाय) तो वह पिता की मृत्यु के बाद पिता को मिला (बटवारे का) हिस्सा और उस (पिता) का व्यक्तिगत (निजी) धन लेता है ।

व्यक्तिगोऽर्थोऽत्र पित्राऽऽप्तः प्रागन्ते वा विभागतः ।
व्ययितार्थे तु पितरि कमप्यंशं न सोऽश्नुते ॥१८५८॥

यहां पर व्यक्तिगत (निजी) धन पिता द्वारा बटवारे के पहले या पीछे (किसी भी समय) पाया हुआ लिया है । यदि पिता अपना धन खर्च करदे, तो वह (विभाग के बाद गर्भस्थ हुआ पुत्र) कोई भी हिस्सा नहीं पाता ।

कतिभ्यश्चिद् वियुज्याऽपि कतिभिश्चिद् युतः सुतैः ।
पिता, तर्हि तदन्ते स संसृष्टैः सह भागभाक् ॥१८५९॥

यदि पिता कुछ (पुत्रों) से जुदा होकर भी कुछ पुत्रों के साथ हो, तो उस (पिता) के मरने पर वह (बटवारे के बाद गर्भ में आया हुआ पुत्र) (पिता के) साथवाले (अपने) भाइयों के साथ हिस्सा पाता है । (अर्थात्-साथवाले भाई बटवारे के व पिता के व्यक्तिगत धन को आपस में बराबर-बराबर बाँट लेते हैं) ।

अपृथक्कृतपित्रंश-विभागान्ते तु गर्भगः ।
सुतः स्वभागमादत्ते विभक्तार्थात् सवृद्धिकात् ॥१८६०॥

पिता का हिस्सा जुदा नहीं किये गये बटवारे के बाद गर्भ में आया पुत्र लाभ सहित उस बाँटे हुए धन से और उससे हुए मुनाफे से हिस्सा प्राप्त करता है ।

दत्तकोऽपि विभागे स्यादौरसेन समः, परम् ।
दत्तकान्ते तु संजात औरसे स्यादयं क्रमः ॥१८६१॥

हिस्से-बाँट में दत्तक भी औरस पुत्र के समान ही होता है । परन्तु दत्तक (लेने) के बाद अपना निज का पुत्र उत्पन्न हो जाने पर यह तरीका बरता जाता है ।

तृतीयांऽशं स आदत्ते वङ्गे दत्तककारिणः ।
वाराणस्यां चतुर्थांऽशं द्रविडे पञ्चमांऽशकम् ॥१८६२॥

वह (दत्तक-पुत्र) दत्तक लेनेवाले की संपत्ति का बंगाल में तीसरा भाग लेता है, बनारस में चौथा और मद्रास में पांचवाँ भाग।

तथैव पञ्चमांऽशं स महाराष्ट्रेऽपि विन्दते।
संपत्तेरविभाज्यत्व औरसस्तामवाप्नुयात् ॥१९६३॥

उसी तरह वह बंबई प्रान्त में भी पांचवाँ हिस्सा पाता है। संपत्ति के नहीं बाँटी जाने लायक होने पर अपना निजी (औरस) पुत्र (ही) उसे पाता है। (जैसे राजगद्दी आदि)।

औरसेऽविद्यमाने तु सर्वत्रैव हि दत्तकः।
अविभाज्यां विभाज्यां वा संपत्तिं पितुरश्नुते ॥१९६४॥

औरस (निजी) पुत्र के मौजूद न होने पर दत्तक सब जगहं ही पिता की नहीं बाँटनेलायक और बाँटनेलायक संपत्ति को पाता हैं।

शूद्रेषु दत्तकान्ते चेदौरसो जायते सुतः।
वङ्गेऽथ द्रविडे तौ द्वौ समभागहरौ मतौ ॥१९६५॥

शूद्रों में दत्तक (लेने) के बाद यदि अपना पुत्र पैदा हो जाय तो बंगाल और मद्रास में वे दोनों बराबर हिस्सा पानेवाले माने गये हैं।

महाराष्ट्रे पुनस्तेषु दत्तकः पञ्चमांशभाक्।
ताते जीवति वा प्रेते भाग एष विधिर्मतः ॥१९६६॥

बंबई प्रान्त में उन (शूद्रों) में दत्तक पांचवाँ भाग पाता है। पिता के जीते जी या मरने पर हिस्से-बाँट में यही विधि मानी गयी है।

मैताक्षरेषु पृक्तेषु कतमः स्याऽपि दत्त्रिमः।
दत्तकस्त्वक्षणादेव भागी संसृष्टसंपदि ॥१९६७॥

मिताक्षरा को माननेवाले साझेदारों में किसी का भी दत्तक पुत्र गोद आने के समय से ही साझे के धन का हिस्सेदार हो जाता है।

स्वेच्छापत्रात्तथा लेखादपि न स्यात् क्षमः पिता।
रोद्धुं पृक्ताऽवशिष्टं तं संसृष्टाऽर्थपरिग्रहात् ॥१९६८॥

(गोदलेनेवाला) पिता सब साझेदारों के मरजाने पर बाकी रहे उस (गोद लिए हुए पुत्र) को, इच्छापत्र (will) या लेख-पत्र (deed) के द्वारा भी, साझे के (समस्त) धन को लेने से नहीं रोक सकता।

संसृष्टेष्ववशिष्टेन गृहीते दत्तकेऽप्यसौ।
मान्यः स्यान्नियमश्चेन्नो मिथोन्यः समयः कृतः ॥१९६९॥

यदि गोद लेते समय आपस में कोई बात तय न करली हो, तो साझेदारों में से अन्तिम बचे हुए पुरुष के (किसी को) गोदलेने पर भी, यही नियम मानना होता है।

दास्यदासीति भेदेनोपपत्नी द्विविधा मता ।
स्वस्याऽनुगैव दासीस्यादन्याऽनेकाऽनुकामिनी ॥१९७०॥

दासी और दासी से भिन्न (इस प्रकार) रखेल स्त्री दो तरह की मानी गई है । केवल अपने (रखनेवाले पुरुष) पर निर्भर रहनेवाली दासी होती है और एक से अधिक पुरुषों से संबन्ध रखनेवाली दासी से भिन्न होती है ।

मिताक्षराऽनुगेष्वत्र दासीपुत्रा द्विजन्मसु ।
दायार्हा नैव विज्ञेया भरणाऽर्हास्तु ते मताः ॥१९७१॥

यहां पर मिताक्षरा को माननेवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों में दासी से उत्पन्न हुए पुत्रों को हिस्सा पानेवाले नहीं जानना चाहिए, वे भरण-पोषण के योग्य ही माने गये हैं ।

दासीपुत्रास्तु शूद्रेषु पितृदत्तमवाप्नुयुः ।
ताते जीवति, तन्मृत्यावौरसार्धं भजन्ति ते ॥१९७२॥

शूद्रों में दासीपुत्र पिता के जीते जी पिता का दिया पा सकते हैं और उस (पिता) के मरने पर वे असली (ब्याही हुई स्त्री से जिनसे उत्पन्न हुए) पुत्र से आधा भाग लेते हैं । (अर्थात्-असली पुत्रों में से एक पुत्र को मिलनेवाले भाग का आधा प्रत्येक दासीपुत्र को मिलता है ।)

दासेयानां तु शूद्रेषु विभागो योऽत्र दर्शितः ।
कुटुम्बाऽपृक्ततातानामेव ज्ञेयः स निश्चितम् ॥१९७३॥

यहां पर शूद्रों में दासी से उत्पन्न हुए पुत्रों का जो हिस्सा बतलाया है, वह निश्चित रूप से कुटुम्ब से जुदा हुए पितावालों के लिए ही जानना चाहिए ।

शूद्रेष्वप्यत्र दासेरा जन्मना नैव भागिनः ।
पित्रर्थे, सन्ति तातेऽतो तेऽशनाय नहि क्षमाः ॥१९७४॥

शूद्रों में भी दासीपुत्र जन्म से ही पिता के धन में हिस्सेदार नहीं होते । इस-लिए पिता की जीवित अवस्था में वे हिस्सा नहीं करवा सकते ।

किन्तु दातुं पिता शक्तो भागं तेभ्यो यथेप्सितम् ।
औरसैः सममेवाऽथ तदर्धं वा सुनिश्चितम् ॥१९७५॥

परन्तु पिता उनको निश्चय ही अपनी मरज़ी के माफ़िक औरस (असली) पुत्रों के बराबर या उन से आधा हिस्सा दे सकता है ।

पित्रा व्यक्तिगताऽर्थाच्चेद्दत्तं निर्वाहकं धनम् ।
संसृष्टाऽर्थान्न दासेयस्तर्हि वञ्च्येत बन्धुभिः ॥१९७६॥

यदि पिता ने अपने व्यक्तिगत धन में से (उस दासी पुत्र को) गुज़ारे के लिए धन दिया हो, तो कुटुम्बी उसे साझे के धन से वञ्चित नहीं कर सकते । (अर्थात्-ऐसे दान से उसका साझा भङ्ग नहीं होता) ।

मृते पितरि दासेर औरसैस्तस्य तद्धने।
संसृष्टत्वेन भागी स्यादवशिष्टस्तु सर्वभाक् ॥१९७७॥

दासीपुत्र, पिता के मरनेपर, उसके धन में, उसके असली पुत्रों के साथ ही, साझेदारी से, हिस्सेदार होता है और यदि उन सब के बाद तक जीवित रहे तो सारा (साझे का) धन पाता है।

विभाजयितुमप्येष शक्तः पित्रौरसैर्धनम्।
औरसेन तु यल्लभ्यं स तदर्धमवाप्नुयात् ॥१९७८॥

यह (दासीपुत्र पिता के मरनेपर) पिता के असली पुत्रों से धन का बटवारा भी करा सकता है। असली पुत्र को जो धन मिलता है, यह उसका आधा भाग पाता है।

पुत्रद्वये चतुर्थांऽशं दासेयः पितृसंपदि।
लभतेऽतः स्वपत्नीजो भागत्रयमिहाश्नुते ॥१९७९॥

दो पुत्र (एक असली और एक दासीपुत्र) होने पर दासीपुत्र पिता के धन में चौथा हिस्सा पाता है। इसलिए असली पुत्र को तीन हिस्से मिलते हैं।

अपृक्तसंपदोरत्रौरसदासेरयोः पुनः।
कतरस्मिन्नपि मृते सर्वभाक् शेषजीवनः ॥१९८०॥

फिर असली पुत्र और दासीपुत्र के साझे की संपत्तिवाले होने पर (उसमें से) किसी के भी मरने पर बाद तक जीनेवाला साझे का सब धन लेता है।

भ्रातृभिर्भ्रातृजैर्वाऽथ पितृव्यैर्वाऽथ तत्सुतैः।
पृक्तश्चेन्मृत्युकालेऽत्र पिता, दासीभवस्तदा ॥१९८१॥
संसृष्टाऽर्थविभागे स्यादक्षमः किन्तु सोऽश्नुते।
निर्वाहाऽर्थं धनं, चेन्नो लब्धं स्याद्व्यक्तिगं पितुः ॥१९८२॥

यहां पर यदि पिता मरने के समय (अपने) भाइयों, भतीजों, चाचों या चचेरे भाइयों के साथ साझेदारी से रहता हो; तो दासीपुत्र साझे के धन का हिस्सा करवाने में असमर्थ होता है। परन्तु यदि उसने पिता से (पिता का) अन्य व्यक्तिगत धन न पाया हो, तो वह (साझे के धन से) गुजारे के लिए धन पाता है।

दासेयं तु समुद्दिश्य येऽन्ये पूर्वमुदीरिताः।
नियमा उपयोज्यास्ते यथास्थानं यथाविधि ॥१९८३॥

दासीपुत्र के विषय में पहले जो दूसरे नियम कहे हैं उनको यथास्थान (मौके के अनुसार) कही हुई रीति से उपयोग में लाना चाहिए।

अहिन्दुजननीजोऽथ व्यभिचारभवस्तथा।
लौकिकेन विधानेन पित्र्यर्थे नांऽशमश्नुते ॥१९८४॥

हिन्दू-धर्म से भिन्न धर्म को माननेवाली माता से उत्पन्न हुआ या व्यभिचार से उत्पन्न हुआ पुत्र लोक में प्रचलित रीति से पिता के धन में हिस्सा नहीं पाता।

चेच्छूद्रस्योपपत्नी स्याद् ब्राह्मणी तर्हि सा ध्रुवम्।
नैव शूद्रात्वमाप्नोति दासेयत्वं न तत्सुतः ॥१६८५॥

यदि शूद्र की रखेल स्त्री ब्राह्मणी हो, तो वह निश्चय ही कभी शूद्रा नहीं होती और उसका पुत्र दासीपुत्र नहीं होता।

ऊढाऽनूढाऽथ विधवा व्यभिचारविवर्जितम्।
उपपत्नीत्वमासाद्य दासीत्वं याति निश्चितम् ॥१६८६॥

व्याही, बिन व्याही या विधवा स्त्री व्यभिचार से रहित रखेली पद को प्राप्त कर (सदा के लिए एक ही उपपति पर निर्भर हो कर) निश्चय ही दासीपने को प्राप्त करती है।

अनुपस्थितपृक्तस्य विभागाऽवसरे धनम्।
अवयःस्थार्थवद्रक्ष्यमन्ते योज्यं तदुत्तरे ॥१६८७॥

हिस्से-बाँट के समय मौजूद न रहनेवाले साझेदार के धन की नाबालिग के धन के समान रक्षा करनी चाहिए और उस (साझेदार) के मरने पर (उसे) उसके उत्तराधिकारी को दे देना चाहिए।

परं तदुत्तराः शक्ता आदातुं तद्धनं ध्रुवम्।
मर्यादानियमोक्तेन विधानेनैव भारते ॥१६८८॥

परन्तु उस (अनुपस्थित साझेदार) के उत्तराधिकारी उस धन को निश्चय ही, भारत में, लिमिटेशन ऐक्ट में कही रीति (ई० सं० १६०८ के लिमिटेशन कानून (की sch १, arts १२७ और १४४) के अनुसर ही ले सकते हैं।

संसृष्टिनस्तु कस्याऽपि संसृष्टाऽर्थस्य विक्रये।
शासनेन कृते, क्रेता स्वांशमंशयितुं क्षमः ॥१६८९॥
सर्वत्रैव, परं क्रीते व्यक्तिगेत्वथ विक्रये।
द्रविडेऽथ महाराष्ट्रे एव क्रेताऽशने क्षमः ॥१६९०॥
न प्रयागे नवा वङ्गे यतः पृक्तांशविक्रये।
शक्तो मैताक्षरस्तत्र नर्ते पृक्ताऽभ्यनुज्ञया ॥१६९१॥

किसी साझेदार के साझे के हिस्से के डिग्रीद्वारा बेचे जाने पर खरीददार अपने (खरीदे हुए) हिस्से का सब ही प्रान्तों में विभाग करवा सकता है। (अर्थात्-से अलग करवा सकता है)। परन्तु व्यक्तिगत (खानगी) तौर से बेचने पर खरीदनेवाला मद्रास और बंबई प्रान्तों में ही (अपने खरीदे हुए भाग को) बटवाने में समर्थ होता है। प्रयाग और बंगाल में नहीं होता। क्योंकि वहां पर मिताक्षरा की

माननेवाला (साझेदार) विना (अन्य) साझेदारों की अनुमति के (अपना) साझे का हिस्सा नहीं बेच सकता ।

तथैवनोपहर्तुं च स्वपृक्तांऽशं क्षमो जनः ।
मैताक्षरस्तु सर्वत्र विना पृक्तजनाज्ञया ॥१६६२॥

उसी प्रकार सब ही प्रान्तों में मिताक्षरा को माननेवाला पुरुष विना (अन्य) साझेदारों की आज्ञा (अनुमति) के (अपने) साझे के हिस्से को (किसी को) उपहार (gift) रूप से भी नहीं दे सकता ।

अतोऽनुचितरीत्यैवं दत्तांशग्राहको जनः ।
मिताक्षराविरोधान्नो तं विभाजयितुं क्षमः ॥१६६३॥

इसलिए इस प्रकार अनुचित रीति से दिये हुए भाग को लेनेवाला पुरुष मिताक्षरा के विरोध के कारण उस (उपहार के हिस्से) को बटवा नहीं सकता ।

पत्नीनांऽशयितुं शक्ता पत्यौ जीवति संपदम् ।
पुत्रैर्विभाज्यमानायां सांऽशं पुत्रसमं भजेत् ॥१६६४॥

पति के जीते जी पत्नी संपत्ति का बटवारा नहीं करवा सकती । पुत्रों द्वारा बटवारा करवाये जाने पर वह पुत्र के बराबर भाग पाती है ।

प्राप्तांऽशा तु निजांऽशं सा यथेच्छं भोक्तुमीश्वरी ।
तस्यां सत्यामधिकृतिस्तस्मिन्नो पतिपुत्रयोः ॥१६६५॥

वह (पत्नी) अपना हिस्सा पा लेने पर उसे अपनी इच्छानुसार भोग सकती है । उस पत्नी के जीते जी उस (हिस्से) में (उसके) पति और पुत्र का (भी) अधिकार नहीं होता ।

अंशायाऽम्बामथो पृक्तानभियुज्य सुतेन चेत् ।
प्राप्तं स्याच्छासनं किन्तु व्यवहारे न योजितम् ॥१६६६॥
माता स्वांशस्य नो तत्र स्वामित्वं लभते ह्यतः ।
न्यासग्राह्यभियुज्यैव स्वंदत्तार्थाय तं हरेत् ॥१६६७॥

यदि पुत्र ने हिस्से के लिए माता और साझेदारों पर मुकद्दमा चलाकर डिग्री प्राप्त करली हो, परन्तु उसे कार्य में परिणत न किया हो, तो वहां पर मा अपने हिस्से की (पूर्ण) अधिकारिणी नहीं होती । इसलिए रहन लेने वाला (mortgagee) अपने दिए धन (कर्ज) के लिए मुकद्दमा चलाकर ही उस (भाग) को ले सकता है । (अर्थात्-उसे माता के हिस्से को लेने के लिए अलग मुकद्दमा चलाने की आवश्यकता नहीं होती ।)

पितुः पत्नीति निर्देशात् जननी च विमातरः ।
सुतैर्ग्राह्या विभागेषु पैतृकार्थस्य निश्चितम् ॥१६६८॥

पिता की पत्नी का उल्लेख करने से पुत्रों को पिता के धन के बटवारे में, निश्चय ही, असली मा और सौतेली माओं का ग्रहण करना चाहिए।

पत्या वा श्वशुरेणाऽस्यै स्त्र्यर्थो यावान् समर्पितः।
पत्युरर्थविभागेंऽशं तावन्न्यूनं हि साप्नुयात् १९९९॥

इस (माता) को (इसके) पति या ससुर ने जितना स्त्री-धन दिया हो, (अपने) पति के बटवारे में वह उतना कम हिस्सा पायगी।

पैतृक्यश्चेद्विभज्येरन् पित्रा पुत्रेषु संपदः।
तत्राऽप्येषा पुरोक्तैव रीतिर्नियमिता बुधैः ॥२०००॥

यदि पिता अपने बाप-दादा का धन पुत्रों में बाँटे, तो वहां भी विद्वानों ने यही पहले कही रीति निश्चित की है।

द्रविडे नांऽशने भागोऽधुना स्त्रीभ्यः प्रदीयते।
अन्यत्राऽप्यऽद्य तद्भागः क्वचिदेव समर्प्यते ॥२००१॥

मद्रास में अब स्त्रियों को हिस्सा नहीं दिया जाता। आजकल दूसरे स्थानों में भी उस (स्त्री) का हिस्सा कहीं पर ही दिया जाता है।

पुत्राणां संख्यया भागः पुत्रभागः प्रकीर्तितः।
पत्नीनां संख्यया सोऽत्र पत्नीभागः स्मृतो बुधैः ॥२००२॥

पुत्रों की सख्या से किया जानेवाला भाग पुत्र-भाग कहा गया है और पत्नियों की संख्या से किया वही (भाग) विद्वानों ने पत्नी-भाग माना है।

पुत्रभागस्तु मान्योऽद्य पत्नीभागोऽप्यथ क्वचित्।
देशे समाजे वा मान्यः शूद्रेषु तु विशेषतः ॥२००३॥

आजकल 'पुत्रभाग' ही माना जाता है और 'पत्नीभाग' भी किसी-किसी देश या समाज में माना जाता है। परन्तु शूद्रों में (वह) विशेष तौर से माना जाता है।

न पितुर्यत्र पत्न्यंशो पैतृकेऽर्थविभाजने।
दत्तः पूर्णतया तत्र स्त्र्यर्थस्स तु न जायते ॥२००४॥

जहां पिता के धन के बाँटने में पिता की पत्नी (अर्थात्—अपनी माता) को उसका हिस्सा पूरी तौर से नहीं दिया हो, वहां वह (हिस्सा) स्त्री--धन नहीं होता।

स्त्रियाः पत्नीस्वरूपिण्याः कृते विधिरुदीरितः।
कथ्यते मातृरूपिण्यै विधवायै विधिस्त्वथ ॥२००५॥

पत्नी-रूपवाली स्त्री के लिए नियम कहा, अब माता रूपवाली विधवा स्त्री के लिए नियम कहा जाता है।

यावत्पुत्रास्तु संसृष्टास्तावन्नांशयितुं क्षमा ।
माता, पुत्रैर्विभक्तेऽर्थे सा भागं तत्समं भजेत् ॥२००६॥

जबतक पुत्र साझेदारी से रहते हैं, तबतक माता बटवारा नहीं करवा सकती। पुत्रों के धन बाँटने पर वह भी उनके बराबर हिस्सा पाती है।

पृक्तपुत्रेष्वथैकस्याऽनेकेषां वाऽथ योंऽशकान् ।
क्रीणीते, तत्प्रयुक्तेऽत्र भागेऽम्बा स्वांऽशमश्नुते ॥२००७॥

जो साझेदार पुत्रों में से एक के या अनेकों के हिस्सों को ख़रीदता है, उसके हिस्सा करवाने पर मा (भी) हिस्सा पाती है।

यावान् स्त्र्यर्थो जनन्याऽऽप्तः पत्युर्वा श्वशुरान्निजात् ।
स्वांऽशमर्थस्य वण्टे सा तावन्न्यूनमवाप्नुयात् ॥२००८॥

माता ने जितना स्त्री-धन अपने पति या श्वसुर से पाया हो, धनके बटवारे में, वह अपना भाग उतना ही कम पाती है।

अत्राऽपि मातृशब्देन विमातृणामपि ग्रहः ।
अतस्ताः सकलास्तुल्याः पैतृकाऽर्थस्य वण्टने ॥२००९॥

यहां पर भी माता शब्द से सौतेली माताओं का भी ग्रहण होता है। इसलिए बाप-दादों के धन के बटवारे में वे सब (मातायें) बराबर होती हैं।

मातृष्वेकाऽधिकास्वत्र सपुत्रासु सतीष्वथ ।
पैतृकाऽर्थविभागः स्यात्प्रथमं पुत्रसंख्यया ॥२०१०॥

यहां पर पुत्रवाली एक से अधिक माताओं के विद्यमान होने पर पिता के धन का बटवारा पहले पुत्रों की गिनती के अनुसार होता है।

ततोऽङ्गजसमांशाऽर्हा जनन्यः स्वात्मजांऽशतः ।
निरात्मजाऽपि लभते माता स्वांशं धनांऽशने ॥२०११॥

उसके बाद अपने पुत्रों के हिस्से से उनकी अपनी मातायें उनके बराबर हिस्सा लेती हैं। विना पुत्रवाली मा भी धन के बटवारे में अपना हिस्सा पाती है।

सपुत्रैकैव जननी विद्यमाना यदा तदा ।
पुत्रैः सार्धं पुरैवांऽशानाप्नुयुर्मातरोऽखिलाः ॥२०१२॥

जब पुत्रवाली एक ही माता जीवित हो, तब सारी (जीवित) मातायें पुत्रों के साथ पहले ही भाग पा सकती हैं। (अर्थात्-ऐसी अवस्था में पहले के श्लोक में कहा नियम काम नहीं देता)।

शूद्रेष्वात्मजदासेरपुत्रयोर्धनवण्टने ।
माता द्रविडमुत्सृज्याऽन्यत्राऽऽप्नोति स्वभागकम् ॥२०१३॥

शूद्रों में अपने पुत्रों और दासीपुत्रों के बीच धन का बटवारा होने पर माता, मद्रास को छोड़कर, दूसरे स्थानों में अपना भाग पाती है।

स्मृतिचन्द्रिकयाऽर्थं तु द्रविडे भरणाय सा।
प्राप्नोति, तत्तु पुत्रांऽशान्नाधिकं दीयते पुनः ॥२०१४॥

मद्रास में वह (माता) स्मृतिचन्द्रिका (chap iv, paras 12-17) के अनुसार भरण-पोषण के लिए धन पाती है। और वह (धन एक) पुत्र के भाग से अधिक नहीं दिया जाता।

वण्टने मातृभागं यद्दीयते तत्तु नो भवेत्।
स्त्रीधनं, किन्तु दत्तं चेत्पूर्णत्वेन तदा तु तत् ॥२०१५॥

बटवारे में जो माता का हिस्सा दिया जाता है, वह स्त्री-धन नहीं होता। परन्तु यदि पूरी तौर से दे दिया गया हो, तो वह वैसा (स्त्री-धन) हो जाता है।

अदत्तमातृभागोऽपि विभागो न विनश्यति।
पुत्राऽभियुक्त्यैवांऽशार्थं माता नांऽशहरा धने ॥२०१६॥

मा का हिस्सा न देकर किया हुआ बटवारा भी नष्ट नहीं होता। (नाजायज़ नहीं होता)। पुत्र के अपने हिस्से के लिए अभियोग चलादेने से ही माता धन में हिस्सा नहीं पा सकती (अर्थात्–पुत्र के पूरी तौर से डिग्री आदि करवालेने पर ही वह भाग पाती है)।

नाऽम्बेवाऽर्थांऽशने शक्ता स्वयमेव पितामही।
पौत्रैर्विभज्यमानेऽर्थे मृतपुत्रांशभागियम् ॥२०१७॥

मा की तरह दादी (भी) स्वयं हिस्सा नहीं कर सकती (ले सकती)। पौत्रों द्वारा धन के बाँटे जाने पर मृत पुत्रोंवाली वह (दादी) हिस्सेवाली होती है। (हिस्सा पाती है)।

तस्या निजसुतो यर्हि मतभ्रातृसुतैः सह।
धनं विभजते तर्हि साऽप्यंशं निजमश्नुते ॥२०१८॥

उसका अपना लड़का जब मरे हुए भाई के लड़कों के साथ धन का बटवारा करता है, तब वह (दादी) भी अपना हिस्सा पाती है।

तस्याः पुत्रः स्वपुत्रैस्तु विभागं कुरुते यदा।
महाराष्ट्रे प्रयागे च न भागार्हा तदा हि सा ॥२०१९॥

जब उस (दादी) का पुत्र अपने पुत्रों के साथ बटवारा करता है, तब बंबई और प्रयाग में वह (दादी) हिस्सापाने योग्य नहीं होती।

वङ्गेऽथ मिथिलायां तु सा तत्राऽप्यंशमश्नुते।
व्यासोक्तेन विधानेन शेषं पूर्वोक्तवन्मतम् ॥२०२०॥

बंगाल और बिहार में तो वह वहां (लड़के के अपने पुत्रों के साथ बटवारा करने) पर भी व्यासस्मृति में कहे अनुसार हिस्सा लेती है । (इस विषय की) बाकी सब बातें पहले कहे अनुसार मानी गई हैं । (अर्थात्-दादी के हिस्से के विषय में जो बातें विस्तार से पहले किसी अध्याय में कहीं हैं, वे ही इस स्थान पर भी समझनी होंगी) ।

पितामहीति निर्देशाद् विमाताऽपि पितुर्ध्रुवम् ।
ग्राह्या यतो विभागे नो तयोर्भेदो मतो बुधैः ॥२०२१॥

पितामही ऐसा कहने से निश्चय ही पिता की सौतेली मा को भी ले लेना चाहिए, क्योंकि विद्वानों ने बटवारे में उन दोनों (दादी और सौतेली दादी) में भेद नहीं माना है ।

धने विभज्यमानेऽत्र केनाऽपि स्वसुतैः सह ।
माता पत्न्यश्च भागार्हा दायभागमतेन तु ॥२०२२॥

यहां पर किसी पुरुष के अपने पुत्रों के साथ धन का बटवारा करने के समय दायभाग के मत से (उस पुरुष की) माता और स्त्रियां भाग पाने योग्य होती हैं ।

मिताक्षराऽनुसारेण पत्न्य एव निजांऽशकान् ।
लभन्ते न पितुर्माता विभागे तातपुत्रयोः ॥२०२३॥

मिताक्षरा के अनुसार पिता और पुत्रों के बीच बटवारे में (पिता) की स्त्रियां ही अपना-अपना भाग पाती हैं । पिता की माता (दादी) भाग नहीं पाती ।

पितामह्यै प्रदत्तोऽपि भागो न स्त्रीधनं भवेत् ।
मातृभार्यापितामह्यो भागार्हा अंशने मताः ॥२०२४॥

दादी को दिया हुआ हिस्सा भी स्त्री-धन नहीं होता । बटवारेमें माता, स्त्री और दादी हिस्सेदार मानी गयी हैं ।

नो कन्या नो भगिन्यस्तु कुत्राऽप्यंशमवाप्नुयुः ।
पुष्ट्यै चोपयमायैव तासां रक्ष्यं धनं बुधैः ॥२०२५॥

कन्यायें और बहनें कहीं भी हिस्सा नहीं पातीं । बुद्धिमानों को उनके भरण-पोषण और विवाह के लिए ही धन रखना चाहिए ।

शारीरिकेण दोषेण ये दायादिह वञ्चिताः ।
अंशानर्हास्तु ते ज्ञेयाः पैतृकेऽर्थविभाजने ॥२०२६॥

जो यहां पर शारीरिक दोष से हकपाने से वञ्चित (महरूम) किये हुए हैं, वे बाप-दादों की संपत्ति के बटवारे में हिस्सा पाने योग्य नहीं होते ।

नियमा विकलाङ्गेभ्यः कन्याभ्यश्चाऽपि वर्णिताः ।
ये पूर्वं ते यथास्थानं ग्राह्या अत्राऽपि निश्चितम् ॥२०२७॥

पहले जो नियम विकलाङ्गों (अपाहिज पुरुषों) और कन्याओं के लिए भी कहे हैं, वे यहां पर भी निश्चित रूप से अपनी-अपनी जगह ग्रहण करने चाहिए ।

विभागे प्रतिबन्धाः।

बटवारे में रुकावटें ।

संसृष्टाऽर्थाऽविभागाय मिथश्चेत्समयः कृतः ।
तत्कर्तारस्तु नो वङ्गे न प्रयागेंऽशने क्षमाः ॥२०२८॥

यदि साझे के धन को नहीं बाँटने के लिए आपस में वादा करलिया हो, तो उस (वादे) को करनेवाले बंगाल और प्रयाग (संयुक्त प्रान्त) में हिस्सा-बाँट नहीं कर सकते ।

तैर्नियुक्ताः परे किन्तु शक्तास्तस्यांऽशने ध्रुवम् ।
यदि स्यात्तत्र नो बाधा नियुक्त्यै समयेन तु ॥२०२९॥

परन्तु यदि वहां पर (अन्य) निर्णय के द्वारा नियुक्ति में रुकावट न हो, तो उन (वादा करनेवालों) के नियुक्त किये अन्य जन (खरीददार आदि) उस (संपत्ति) को बाँटने में निश्चय रूप से समर्थ होते हैं ।

संपत्तिस्तु विभाज्यैषा पृक्तैषा च सदा-कृते ।
स्थाप्यैवं समयं कृत्वा प्राप्तं चेद्राजशासनम् ॥२०३०॥
न्यायेन रक्षणीयः स तर्हि, किन्तु विभाजने ।
द्रविडेऽथ महाराष्ट्रे नो बाधा स्वीकृतावपि ॥२०३१॥

(साझेदारों ने) यह संपत्ति बाँटी जायगी और यह (संपत्ति) सदा के लिए साझे में रक्खी जायगी इस प्रकार का वादा करके न्यायालय से डिग्री (मंजूरी) हासिल करली हो, तो (कलकत्ता और प्रयाग में) उसकी कानून से रक्षा करनी चाहिए । परन्तु मद्रास और बंबई (प्रान्तों) में इस प्रकार का वादा करलेने पर भी हिस्सा-बाँट करने में बाधा नहीं होती । (अर्थात्—वहां पर वादा करनेवालों में से कोई भी ऐसे वादे को तोड़ सकता है) ।

विभज्य पैतृकं वित्तं निर्णेतुं भ्रातरः क्षमाः ।
यद् मृते तेष्वपुंतोके तदर्थो यातु जीवतः ॥२०३२॥

भाई, बाप-दादा के धन को बाँटकर यह निश्चित करने में समर्थ होते हैं कि उनमें से किसी के बिना पुरुष सन्तान के मरने पर उसका धन (हिस्सा) जीवितों (बचे हुए भाइयों) को मिल जाय ।

किन्तु तेऽन्ताऽवशिष्टस्य हस्ते प्राप्तस्य वस्तुनः ।
ग्रहीतुर्निर्णयं कर्तुं न क्षमाः स्युर्विधानतः ॥२०३३॥

परन्तु वे (भाई) सबसे बाद में जीवित रहनेवाले पुरुष के हाथ में गये धन के लेनेवाले का, कानून के अनुसार, निर्णय नहीं कर सकते ।

इच्छापत्रे निषिद्धो वाऽनियताऽवधये पुनः ।
रुद्धो विभागः पृक्तस्य वित्तस्येह न मान्यते ॥२०३४॥

यहां पर (इच्छापत्र will) में किया साझे के धन के बटवारे का निषेध या फिर (उसके द्वारा की गई) अनिश्चित समय के लिए उस (बटवारे) पर की रोक नहीं मानी जाती ।

अंशानां विवेचनम् ।

हिस्सों का विचार ।

संसृष्टानां तु संसृष्टवित्तस्याऽत्र विभाजने ।
देया विभागा निम्नोक्तरीत्या न्यायानुमोदिताः ॥२०३५॥

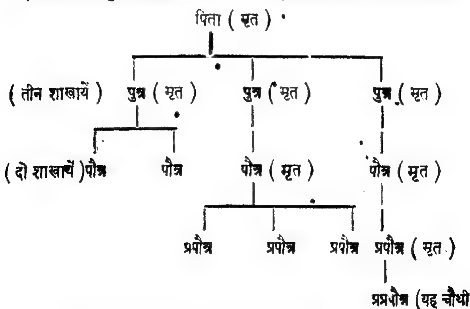
यहां पर साझेदारों के साझेदारी के धन के बाँटने पर नीचे कही रीति से, न्याय से माने हुए, हिस्से देने चाहिए ।

पितापुत्रविभागे तु मिथः सर्वे समांऽशिनः ।
भ्रातरोऽपि तथैवाऽत्र समं भागमवाप्नुयुः ॥२०३६॥

पिता और पुत्रों के (आपस के) बटवारे में आपस में सब बराबर भाग पानेवाले होते हैं । यहां पर उसी प्रकार भाई भी समान भाग पाते हैं ।

शाखानां संख्ययांऽशाः प्राक् कार्यास्त्रिपुरुषावऽधि ।
तदुत्तरं तु शाखास्थजनानां व्यक्तिसंख्यया ॥२०३७॥

तीन पीढी तक पहले शाखाओं की संख्या से बटवारा करना चाहिए और उसके बाद शाखा में के पुरुषों की व्यक्तिगत गिनती से बटवारा करना चाहिए । उदाहरणः—



पीढी में होने से परपरदादा के धन का भाग नहीं पायगा ।)

सममातृभवेष्वत्र भिन्नमातृभवेष्वथ।
पुत्रेष्वर्थविभागे नो तारतम्यं मतं बुधैः ॥२०३८॥

यहां पर धन के विभाग करने में एक ही माता से उत्पन्न हुए या भिन्न-भिन्न माताओं से उत्पन्न हुए पुत्रों में बुद्धिमानों ने भेद नहीं माना है।

द्रविडे तु यदा सर्वे संसृष्टाः सममेव हि।
पैतृकाऽर्थांऽशने सज्जाः स्मृतिचन्द्रिकया तदा ॥२०३९॥
भागे शाखाक्रमः पूर्वप्रोक्तो ज्ञेयः सुनिश्चितम्।
अपरत्र स एव स्याद्विभागे प्रथमे क्रमः ॥२०४०॥
किन्त्वन्ये ये विभागाः स्युस्तदन्ते तेऽखिला ध्रुवम्।
प्राग् विभागप्रदत्तांऽशाऽनुसृता एव संमताः ॥२०४१॥

मद्रास में तो जब सारे साझेदार एक साथ ही बाप-दादा के धन को बाँटने को तैयार हो जाँय, तब स्मृतिचन्द्रिका के अनुसार बटवारे में पहले कहा क्रम निश्चित रूप से जानना चाहिए। दूसरे स्थान पर (अर्थात्–जहां सब साझेदार एक समय ही बटवारा न कर भिन्न-भिन्न समय पर करें वहां) वह (शाखा) क्रम प्रथमवार के बटवारे में ही होगा'। परन्तु उसके बाद जो बटवारे होंगे वे तमाम, निश्चय ही, पहले बटवारे में दिये भाग के आधार पर ही माने गये हैं। (अर्थात्–पहले जिस शाखा के व्यक्तियों को जितना मिला है, उस शाखावालों के लिए बाद के बंटवारों में वही आधार माना जायगा।)

(उदाहरणार्थ--मान लीजिये कि एक शाखा में दो व्यक्ति बाकी हैं और दूसरी में एक। प्रथम शाखा के दोनों में से प्रत्येक के पास प्रथम बटवारे का १/८ भाग है और दूसरी शाखावाले के पास १/६। इनकी कुल जोड़ ५/१२ होती है। ये तीनों साझेदार हैं। यदि इनमें प्रथम शाखावाले दो में से एक मरजाय और उसके बाद बाकी के बचे दोनों साझेदार जुदा हों, तो प्रथम शाखा के बचे हुए व्यक्ति को १/४ और दूसरी शाखा के व्यक्ति को १/६ मिलेगा; क्योंकि प्रथम बटवारे में जिस शाखा के व्यक्तियों के हिस्से में जो भाग आया था दूसरे बटवारे में भी वह उसी शाखा के जीवित पुरुषों को मिलेगा।)

व्यवहारमयूखोक्तविधानेन विधीयते।
महाराष्ट्रे तु सद्यस्कस्थित्यैवाऽन्यांऽशनं पुनः ॥२०४२॥
प्रथमस्य विभागस्य नाऽपेक्षा तत्र संमता।
प्रायोऽभियोगकालिक्यास्थित्यैव क्रियतेऽशनम् ॥२०४३॥

फिर बंबई प्रान्त में तो व्यवहारमयूख के अनुसार उस (दूसरे बटवारे के) समय की स्थिति के अनुसार ही दूसरा बटवारा किया जाता है। वहां पर पहले बटवारे की अपेक्षा नहीं मानी है। (अर्थात्–वहां पर उपर्युक्त स्थिति में दोनों

शाखाओं के बचे दोनों पुरुषों में मूल-धन ५/१२ बराबर-बराबर बट जायगा । यानी प्रत्येक पुरुष को ५/२४ भाग मिलेगा) । बहुधा (साधारण तौर पर) अभियोग (मुकद्दमा प्रारम्भ होने) के समय की स्थिति से ही विभाग किया जाता है । (अर्थात्-दो शाखाओं के दो व्यक्तियों के पास यदि जुदा होने के समय पैतृक धन का ५/१२ भाग था, तो उसे दोनों में समान रूप से बाँट दिया जायगा । प्रत्येक को ५/२४ दे दिया जायगा) ।

सद्यः स्थित्या महाराष्ट्रे सर्वदैवांऽशनं मतम् ।
द्रविडे तदपेक्षा स्यात्प्राक्तने ह्येव वण्टने ॥२०४४॥

बंबई प्रान्त में सदा ही उस समय की स्थिति के अनुसार बटवारा होता है । मद्रास में, उस (उस समय की स्थिति) की पहले के बटवारे में ही अपेक्षा (जरूरत) रहती है ।

संसृष्टिनि मृते याति तत्स्वाम्यं तस्य पुंप्रजाम् ।
साचेत् संसृष्टिसीम्नि स्यात् तर्हि वण्टेंऽशमश्नुते ॥२०४५॥

साझेदार के मरने पर उसका स्वामित्व (अधिकार) उसकी पुरुष सन्तान को मिलता है । यदि वह साझेदारी की सीमा के भीतर हो, तो बटवारे में हिस्सा पाती है । (अर्थात्-तीन पीढ़ी से आगे हो, तो हिस्सा नहीं पाती । जैसे-धनवाले की जीवितावस्था में उसके पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र के मरजाने पर प्रपौत्र का पुत्र उसका हकदार नहीं होता ।)

विभागविधानविधिः ।

बटवारे का नियम ।

मिताक्षरामतेनाऽत्र यावन्नो भज्यते धनम् ।
तावत्संसृष्टिनो नैव शक्ताः स्युंऽशविनिर्णये ॥२०४६॥

मिताक्षरा के मत से यहां पर जब तक धन को बाँट नहीं लिया जाता, तब तक साझेदार (उस साझे के धन में) अपने-अपने हिस्से का निर्णय नहीं कर सकते ।

तन्मतेन विभागे तु प्रत्येकस्यांऽशनिर्णयः ।
एवाऽलं, तत्त्वतस्तत्र नांऽशांऽशनमपेक्ष्यते ॥२०४७॥

उस (मिताक्षरा) के मत से बटवारे में प्रत्येक (साझेदार) के हिस्से का निर्णय करदेना ही पर्याप्त है । वहां पर वास्तव में हिस्सों के बाँटने की आवश्यकता नहीं होती ।

सहमत्याऽन्यथा वाऽपि कृते भागविनिर्णये ।
पृक्ताऽर्थस्य सकृत् पृक्ते विभागः स्याद्विनिश्चितः ॥२०४८॥

साझेदारों द्वारा सब की इच्छा से या अन्य कारण से भी एकबार साझे के धन के हिस्सों का निर्णय कर देने पर बटवारा निश्चित हो जाता है।

तदुत्तरं यथेच्छं ते पृथक् कर्तुं निजांऽशकान्।
भोक्तुं वा साहचर्येण प्राग्वदेव क्षमा मताः ॥२०४६॥

उसके बाद वे (साझेदार) अपने हिस्सों को जुदा करने या साथ में मिलकर भोगने में पहले के समान ही समर्थ माने गये हैं।

भक्तो वा साहचर्याद्वा भुक्तः सोऽर्थस्तु नो मतः।
संसृष्टाऽर्थः परं स स्याद्विभक्ताऽर्थः सुनिश्चितः ॥२०५०॥

वह धन, चाहे बांटलिया हो, चाहे साथ मिलकर भोगा हो, साझे का धन नहीं माना जाता, किन्तु वह निश्चित तौर पर बटा हुआ धन ही होता है।

पृक्ताऽपृक्ते धने या स्यादवस्था साऽत्र दृश्यते।
निर्णये येन सौकर्यं विवादस्य भवेद् ध्रुवम् ॥२०५१॥

साझे के या बटे हुए धन के होने पर जो हालत होती है, वह यहां पर बतलाई जाती है, जिससे झगड़े के निर्णय में निश्चय ही सुभीता हो सकता है।

मिताक्षराऽनुगः पृक्तः स्वाऽर्थं स्वं पृक्तवित्तगम्।
इच्छापत्रोपहाराभ्यां दातुं नाऽत्र क्षमो मतः ॥२०५२॥

यहां पर मिताक्षरा के अनुसार चलनेवाला साझेदार साझे के धन में रहे अपने लाभ को इच्छापत्र (will) या उपहार (gift) के द्वारा देने को समर्थ नहीं माना गया है।

द्रविडं च महाराष्ट्रं विहायाऽन्यत्र न क्षमः।
मूल्येनाऽपि जनः स्वाऽर्थं दातुं संसृष्टसंपदः ॥२०५३॥

मद्रास और बंबई प्रान्त को छोड़कर दूसरे प्रान्तों में पुरुष पैसा लेकर भी साझे के धन में के अपने लाभ (स्वार्थ-interest) को नहीं दे सकता।

आधीकर्तुं च विक्रेतुं दातुं वा स्याज्जनः क्षमः।
पृथग् भूतः स्वमर्थं तु चेत् स नो पुंप्रजायुतः ॥२०५४॥

जुदा हुआ पुरुष, यदि पुरुष-सन्तान के साथ रहनेवाला न हो, तो अपने स्वार्थ (धन) को गिरवी रखने, बेचने या देने को समर्थ होता है।

तत्प्राप्तोऽशस्तु विज्ञेयस्तस्य व्यक्तिगताऽर्थवत्।
व्यवहर्तुं यथेच्छं तं स क्षमो रुचिपत्रतः ॥२०५५॥

उसको मिला (साझे में का) हिस्सा उसके व्यक्तिगत धन की तरह जानना चाहिए। वह उस (धन) को इच्छापत्र (will) द्वारा अपनी इच्छानुसार काम में ले सकता है।

संसृष्टिनो मृतस्याऽत्र स्वाऽर्थः पृक्ताऽर्थगो व्रजेत्।
अपराञ्जीवतः पृक्तान् स्मृतिशास्त्रविधानतः ॥२०५६॥

यहां पर स्मृतिशास्त्र के नियमानुसार मरे हुए साझेदार का साझे के धन में रहा हिस्सा दूसरे जीते हुए साझेदारों को मिलता है।

पृथग् भूताय पृक्ताय योऽशः संसृष्टसंपदः।
दीयते स तदन्तेऽत्र याति तद्दायभागिनः ॥२०५७॥

जुदा हुए साझेदार को साझे के धन का जो भाग दिया जाता है, वह उसके (मरने के) बाद, यहां पर, उसके हकदारों को मिलता है।

परं यत्र भवेत्पृक्तः स पुंतोकैर्निजैः सह।
तदर्थस्तत्र गच्छेत् तानवशिष्टान् हि जीवतः ॥२०५८॥

परन्तु जहां वह (जुदा हुआ साझेदार) अपनी पुरुष सन्तान के साथ साझेदारी से रहता हो, वहां पर उसका धन उन जीवित बचे हुओं को मिलता है। (अर्थात्– वहां पर उस पुरुष के मरने पर उसका धन उसकी जीवित पुरुष–सन्तति को मिलेगा।)

पुंपृक्तेषु विभागश्चेद् भार्याऽम्बा च पितामही।
अपि भागहरास्तर्हि तत्र संसृष्टसंपदि ॥२०५९॥

पुरुष साझेदारों में बटवारा हो, तो वहां पर साझे के धन में स्त्री, माता और दादी भी हिस्सा पाती हैं।

यथार्थत्वेन यावन्नो विभागः पृक्तसंपदः।
भार्याऽम्बाऽथ पितुर्माता तावन्नांऽशानवाप्नुयुः ॥२०६०॥

जबतक साझे के धन का वास्तव में ही बटवारा न हो, तबतक स्त्री, माता और दादी हिस्सा नहीं पातीं।

यावन्नांऽशांऽशनं तावत् पुनः संयुक्तिरत्र नो।
प्राग् विभज्यैव पृक्तानां पुनर्योगस्तु संभवः ॥२०६१॥

यहां पर जबतक हिस्सों का बटवारा न हो जाय, तबतक फिर सहयोग नहीं होता। पहले जुदा होकर ही साझेदारों का फिर सहयोग संभव होता है।

जीवन् पृक्तकुटुम्बस्य पिता पृक्ताऽर्थभाजने।
स्वेप्सिते समये शक्तश्चेद्दद्यात्स्वसमांऽशकान् ॥२०६२॥
स पुत्रेभ्योऽशनं चैतद्वियुङ्क्ते नहि केवलम्।
पितापुत्रान्, परं पुत्रानपि नूनं परस्परम् ॥२०६३॥
पुत्राणां संमतिर्माऽत्र भवेदावश्यकी, परम्।
पितामहस्तु नो पौत्रान् वियोजयितुमीश्वरः ॥२०६४॥

जीता हुआ साझे के कुटुम्ब का पिता, यदि वह अपने पुत्रों को अपने बराबर हिस्से दे, तो चाहे जिस वक्त साझे के धन को बाँट सकता है। यह बटवारा केवल

पिता और पुत्रों को ही अलग नहीं करता, किन्तु पुत्रों को भी आपस में अलग कर देता है। इस (बटवारे) में पुत्रों की अनुमति आवश्यक नहीं होती। परन्तु दादा (अपने) पोतों को (अपनी इच्छानुसार) जुदा-जुदा नहीं कर सकता।

असमांऽशास्तु पुत्रेभ्यः पित्रा दत्ता विभाजने।
तैश्चेदनुमतास्तर्हि विभागो मान्य एव सः ॥२०६५॥

बटवारे में पिता द्वारा पुत्रों को दिये कम या अधिक हिस्से यदि उन्होंने स्वीकार करलिये हों, तो वह बटवारा मानने लायक होता है।

इच्छापत्रेण पृक्तार्थं विभक्तुं तु पिताऽपि नो।
शक्तश्चेदन्यसंसृष्टजनैर्नात्राऽनुमोदितः ॥२०६६॥

यदि दूसरे साझेवालों ने अनुमोदन न किया हो, तो यहां पर इच्छापत्र (will) द्वारा पिता भी साझे के धन को नहीं बाँट सकता। (फिर दूसरे की तो बात ही क्या ?)

विभागस्तु परित्यागः संसृष्टेरिति निश्चितम्।
अतस्तत्रेष्यते पृक्तव्यक्त्यनुज्ञा ध्रुवं बुधैः ॥२०६७॥

बटवारा साझे का छोड़ना है-यह निश्चित है। इसलिए विद्वान् लोग उसमें साझेदार व्यक्तियों की अनुमति चाहते हैं (आवश्यक समझते हैं)।

यद्येकोऽपीह पृक्तेषु स्पष्टं सूचयते परान्।
विभागार्थं तदा लोपः संसृष्टेस्तस्य निश्चितः ॥२०६८॥

यदि यहां पर साझेवालों में से एक भी दूसरों (अन्य साझेदारों) को बटवारे के लिए साफ तौर से सूचित कर देता है, तो निश्चय ही उसका साझा लुप्त हो जाता है।

इच्छन्त्यन्येऽपि संसृष्टा भागं नो वेति तत्र नो।
अपेक्ष्यते परं तस्य घोषणैव भवेदलम् ॥२०६९॥

दूसरे साझेदार भी बटवारा चाहते हैं या नहीं, यह वहां पर नहीं देखा जाता। किन्तु उस (एक साझेदार) का स्पष्ट तौर से कह देना ही पर्याप्त होता है।

म्रियमाणोऽग्रजो वाचाऽनुजं स्वं प्रार्थयेत चेत्।
पृक्तार्थार्धस्य दानाय पत्न्यै तन्नालमंशने ॥२०७०॥

यदि मरता हुआ बड़ा भाई अपने छोटे भाई से साझे के धन के आधे भाग को अपनी (विधवा) पत्नी को देने के लिए ज़बानी कहे, तो वह (कथन) बटवारा करने में पर्याप्त नहीं होता।

संसृष्टेन विसृष्ट्यै चेदभियोगः प्रवर्तितः।
तर्हि तस्माद्दिनादेव तस्याऽसंसृष्टता भवेत् ॥२०७१॥

यदि साझेदार ने बटवारे के लिए मुकद्दमा चलाया हो, तो उसी दिन से उसकी जुदाई हो जाती है।

न्यायालयप्रदत्ता या व्यवस्था तत्र सा पुनः ।
अपेक्ष्यते ह्यसंसृष्टिं व्यवहर्तुं क्रियाविधौ ॥२०७२॥

वहां पर जो अदालत की दी डिग्री होती है, वह हिस्से-बाँट को कार्य रूप में परिणत करने में आवश्यक होती है।

अपनीतोऽभियोगश्चेद्विचारात्पूर्वमेव वा ॥
प्राप्ता राज्यव्यवस्थाऽपि नो कार्ये चेत्प्रवर्तिता ॥२०७३॥
तर्हि तत्र न संसृष्टेर्नाशः किन्तु यथापुरम् ।
सर्वे संसृष्टिनः पृक्ता स्तिष्ठन्ति न्यायतो ध्रुवम् ॥२०७४॥

विचार करने के पहले ही यदि मुकद्दमा पीछा ले लिया हो, या प्राप्त की हुई अदालत की डिग्री भी यदि कार्यरूप में परिणत न की हो (उस डिग्री की तामील न की हो), तो वहां पर साझेदारी का नाश नहीं होता। किन्तु पहले के समान ही सब साझेदार निश्चय ही कानून से साझेदार ही रहते हैं।

अवयःस्थविभागार्थमभियोगे प्रवर्तिते ।
प्रत्यर्थिनस्तु मरणादभियोगाऽत्ययोत्तरम् ॥२०७५॥
प्रयागे नैव संसृष्टिः संसृष्टानां विनश्यति ।
अतस्तत्र तु ते सर्वे यथापूर्वं मता बुधैः ॥२०७६॥

नाबालिग की जुदाई के लिए मुकद्दमा चलाने और मुद्दायले के मरजाने से मुकद्दमे के नष्ट हो जाने पर इलाहाबाद में साझेदारों की साझेदारी नष्ट नहीं होती। इसलिए विद्वानों ने उन सब (साझेदारों) को वहां पर पहले के समान (संयुक्त) ही माना है।

पिताऽवयःस्थपुत्रश्च वादिनौ यत्र तावुभौ ।
विभागाय स्वसंसृष्टकुटुम्बाऽस्य, किन्तु चेत् ॥२०७७॥
रक्षिकात्वेन तत्पुत्रमाता तं हि विरोधयेत् ।
प्राड्विवाकोऽपि नो पश्येत्तस्मिन्बालहितं पुनः ॥२०७८॥
तर्हि तत्र न तत्पुत्रोऽभियोगस्य प्रवर्तनात् ।
वियुज्यते स्वपृक्तेभ्यः परं तातो वियुज्यते ॥२०७९॥

जहां पर पिता और नाबालिग पुत्र ये दोनों अपने साझे के कुटुम्ब के धन के बटवारे के लिए वादी (मुद्दई) हों, परन्तु यदि संरक्षक के रूप से उस पुत्र की माता उस (बटवारे) का विरोधकरे और न्यायाधीश भी उस (बटवारे में) (उस) बालक का हित नहीं देखे, तो वहां मुकद्दमा चलाने से वह पुत्र अपने साझेवालों से जुदा नहीं होता। परन्तु पिता (उन साझेदारों से) जुदा हो जाता है।

प्राड्विवाकोऽवयःस्थस्य लाभं दृष्ट्वा यदांऽशने।
दद्यात्प्रारम्भिकीमाज्ञां विभागस्तु तदा मतः ॥२०८०॥
अभियोगस्य प्रारम्भाज्ञादानदिनादतः।
मिथिलायां तदन्तोद्भ्रातांऽशं तस्य नांऽशयेत् ॥२०८१॥

जब न्यायाधीश बटवारे में नाबालिग का लाभ देखकर प्रारम्भिक आज्ञा (डिग्री) दे, तब बटवारा मुकद्दमा चलाने के दिन से माना जाता है, (प्रारम्भिक) आज्ञा के देने के दिन से नहीं। इसलिए बिहार में मुकद्दमा चलाने के बाद उत्पन्न हुआ भाई उस (नाबालिग भाई) के हिस्से में से हिस्सा नहीं लेता। (अर्थात्–नये भ्राता के उत्पन्न होने के पूर्व ही मुकद्दमा दायर कर देने से उस नाबालिग का हिस्सा जुदा मान लिया जाता है)।

अभियोगे त्वनिर्णीतेऽवयःस्थो म्रियते यदा।
तदा तल्लाभतो ज्ञेया द्रविडे तदपृक्तता ॥२०८२॥
तत्सिद्धिश्च भवेत्तस्य न्याय्ये प्रतिनिधौ सति।
मिथिलायां तदंशस्तु याति मृत्यौ तदुत्तरान् ॥२०८३॥

जब मुकद्दमे के फैसले के पहले (ही) नाबालिग मरजाय, तब मद्रास में नाबालिग के लाभ द्वारा उसका अलग होना जाना जाता है। (अर्थात्–यदि नाबालिग के भाग को लाभ पहुँचने की संभावना हो, तो मुकद्दमा चलाने के दिन से ही वह अलग हुआ मानलिया जाता है।) उस (लाभ) का सिद्ध करना उस (नाबालिग) के न्यायद्वारा स्वीकृत प्रतिनिधि की मौजूदगी में ही होता है। (अर्थात्–उसका प्रतिनिधि न्यायालय में आकर उस (लाभ) को सिद्ध करता है।)

संमत्या यत्र संसृष्टैर्नियुक्ता भागहेतवे।
निर्णायकास्तदारभ्य विपृक्तिस्तत्र संमता ॥२०८४॥
निर्णयश्च न तैर्दत्तो विभागे श्लिष्टसंपदः।
तथाऽपि पृक्तता तेषां लुप्ता वाऽत्र मता बुधैः ॥२०८५॥

जहां पर साझेदारों ने आपस की संमति से बटवारा करने के लिए निर्णायक (पंच) नियुक्त करदिये हों, वहां पर उस समय से ही (उन साझेदारों की) जुदाई मानी जाती है। यदि उन पंचों ने साझे के धन के बटवारे में निर्णय (फैसला) नहीं दिया हो (अर्थात्–हिस्सों का फैसला नहीं किया हो), तो भी विद्वानों ने उन (साझेदारों) का साझा यहां पर लुप्त हुआ ही माना है।

मात्राप्तप्रातिनिध्यस्याऽवयःस्थस्यात्मजन्मनः।
तत्पितुश्च विवादेऽत्र पित्रा निर्णायकीकृतः ॥२०८६॥

जनो यदि विभागाज्ञां दद्यात्सा तर्ह्यलं मता ।
तद्दिनादेव संसृष्टेर्लोपाय सुततातयोः ॥२०८७॥

यहां पर माता द्वारा ग्रहण किया गया है प्रतिनिधित्व जिसका ऐसे नाबालिग पुत्र और उसके पिता के (आपस के) झगड़े में यदि पिता द्वारा पंच बनाया हुआ पुरुष बटवारे की आज्ञा दे, तो वह उस दिन से ही पिता और पुत्र के साझे के टूटने में पर्याप्त मानी गयी है ।

संसृष्टेस्तु परित्यागो विभागः पृक्तसंपदः ।
द्वे एते हि विभागेऽत्र विभिन्ने कर्मणी मते ॥२०८८॥
वैयक्तिकरुचीसाध्यं प्रथमं त्वपरं पुनः ।
साध्यतेऽनुज्ञया राजशिष्ट्या वा मध्यगेन वा ॥२०८९॥

साझे का छोड़ना और साझे के धन का बाँटना यहां पर बटवारे में ये दो जुदा जुदा काम माने गये हैं । पहला (साझे का छोड़ना) व्यक्ति की इच्छा द्वारा सिद्ध होता है (साझेदार व्यक्ति के जुदा होने की इच्छा प्रकट करने से होता है), और दूसरा (साझे के धन का बाँटना) आपस में संमति द्वारा, न्यायालय के फैसले द्वारा या पंच द्वारा (सिद्ध) होता है ।

पृक्तो विनष्टसर्वस्वः पृक्तत्वान्नैव हीयते ।
तथा दापितपृक्तार्थो वा नाशिततदंशकः ॥२०९०॥

दिवालिया हुआ साझेदार साझे से दूर नहीं होता । उसी प्रकार जिसने साझे का धन (सारा का सारा हिस्सा) नष्ट (alienate) करदिया हो, वह भी साझे से च्युत नहीं होता ।

संमत्या तु यदा पृक्तैः संपृक्तिश्च त्समापिता ।
अप्यभक्तधना एते तर्ह्यपृक्ता मता बुधैः ॥२०९१॥

जब साझेदारों ने (सर्व) संमति से साझेदारी को समाप्त करदिया हो, तब विद्वान् उन्हें धन न बांटने पर भी जुदा हुए मानते हैं ।

पृक्तार्थांशस्य पृक्तैश्च मिथो भागाः प्रकल्पिताः ।
सोंऽशस्तर्ह्यविभक्तोऽपि विभक्त इव मन्यते ॥२०९२॥

यदि साझेदारों ने साझे के धन के एक भाग के हिस्सों की आपस में कल्पना करली हो, तो (साझे की संपत्ति का) वह भाग (वास्तव में) न बटा होने पर भी बटे हुए की तरह माना जाता है ।

केवलं स्वांऽशजिज्ञासाकृते स्यादंशनं हि यत् ।
तत्र सम्यग् यतस्तत्राऽसंपृक्के मुख्यता मता ॥२०९३॥

(साझे की संपत्ति में से) केवल अपने हिस्से के जानने के लिए ही बटवारा

हो, तो वह ठीक नहीं होता, क्योंकि वहां (बटवारे में) जुदा होना मुख्य माना गया है।

न्यायेनाऽवश्यकी नाऽत्र लिखितांऽशनसंमतिः।
स्पष्टं तु लिखिता सा चेत्तर्हि मुख्या प्रमाणिका ॥२०६४॥

यहां पर कानून से बटवारे की लिखित संमति आवश्यक नहीं होती। यदि वह (बटवारे की संमति) साफ़ तौर से लिखी हो तो सब (प्रमाणों) से मुख्य प्रमाण होती है।

अस्पष्टं लिखितायां वाऽलिखितायां हि संमतौ।
पृक्तानामुत्तरैः कृत्यैरंशनं तु परीक्ष्यते ॥२०६५॥

संमति के स्पष्ट तौर से न लिखी होने या उसके लिखी न होने पर साझेदारों के (उसके) बाद के कार्यों से बटवारे (के होने न होने) की परीक्षा की जाती है।

संमतिस्तु विभागाय कृता नाऽपेक्षतेङ्कनम्।
राजपत्रे, परं लेख्ये ह्यंशकृत्तदपेक्षते ॥२०६६॥

बटवारे के लिए की गई सब की संमति (agreement) की रजिस्ट्री करवाने की जरूरत नहीं होती। परन्तु लिखित पत्र स्वयं ही बटवारा करनेवाला हो, तो उस (रजिस्ट्री) की आवश्यकता होती है।

पृक्ताऽपृक्तत्वविषये विवादस्तु यदा भवेत्।
पृक्तत्वसाधकेष्वेव सिद्धेर्भारस्तदा मतः ॥२०६७॥

जब साझेदारी या जुदाई के विषय में झगड़ा हो, तब साझेदारी सिद्ध करने वालों पर ही (अपने कथन को) सिद्ध करने का भार माना गया है।

पृक्ताऽर्थस्यांऽशिके भागे तस्यैकांऽशो विभज्यते।
अपरश्च पुनः पृक्तैः पृक्तत्वेनैव भुज्यते ॥२०६८॥

साझे के धन के कुछ भाग के हिस्से में उस (धन) का एक भाग बाँट लिया जाता है और फिर दूसरा भाग साझेदारी से ही भोगा जाता है।

पृक्ताऽर्थांऽशनकाङ्क्षायाः साक्ष्यं यत्र भवेत् परम्।
सहकाराऽर्थवत्तत्राऽभक्ताऽर्थोऽपि मतो बुधैः ॥२०६९॥

परन्तु जहां पर साझे के धन को बाँटने की इच्छा का प्रमाण हो, वहां पर विद्वानों ने बिन बाँटे हुए (धन) को भी सहकार के (आपस में मिलाये हुए) धन की तरह माना है। (अर्थात्-वहां पर उस धन के अधिकारी tenants-in-common होंगे)।

संपत् संसृष्टिभोग्यैवेतीदृश्या यत्र संमतेः।
प्रमाणं, तत्र तद् द्रव्यं ज्ञेयं संसृष्टमेव हि ॥२१००॥

यह संपत्ति साझे से भोगी जायगी, जहां ऐसी सब की संमति का प्रमाण हो, वहां वह धन साझे का ही समझना चाहिए ।

विभागः स्वीकृतो यत्र यत्र वा प्रतिपादितः ।
सर्ववित्तांऽशनं तत्र सामान्येनाऽनुमीयते ॥२१०१॥

जहां बटवारा स्वीकार करलिया गया हो या जहां (बटवारा) सिद्ध कर दिया गया हो, वहां साधारण तौर पर सारे धन का बटवारा (ही) अनुमान किया जाता है ।

विभागाऽन्ते वदेदर्थं व्यक्त्यधीनमपीह यः ।
पृक्तं, स एव संसृष्टिं तद्धनस्य प्रमाणयेत् ॥२१०२॥

यहां बटवारे के बाद (किसी) व्यक्ति के अधीन रहे धन को भी जो साझे का कहे, वही उस धन के साझे के होने को सिद्ध करे ।

संपृक्ताः कतिचिद् यत्र विश्लिष्यन्ते कुटुम्बतः ।
पृक्तानामांऽशिको भागो ज्ञेयस्तत्र सुनिश्चितम् ॥२१०३॥

जहां पर कुछ साझेदार कुटुम्बवालों से अलग होते हैं, वहां निश्चित तौर पर साझेदारों की आंशिक (कुछ हिस्से की) जुदाई समझनी चाहिए ।

साधारण्येन संसृष्टा मन्यन्तेऽत्र कुटुम्बिनः ।
चतुर्वर्णेषु नो यावदन्यथात्वं प्रमाणयते ॥२१०४॥

आम तौर पर यहां चारों वर्णों में, जब तक दूसरी बात सिद्ध न की जाय, तब तक कुटुम्बी साझेदार माने जाते हैं ।

किन्त्वेकस्मिन्नपि श्लिष्टे विश्लिष्टे तु प्रणश्यति ।
भावनैषा, न पृक्तत्वप्रमाणं तत्र चेद् भवेत् ॥२१०५॥

परन्तु एक साझेदार के भी जुदा होने पर यदि वहां साझेदारी का सबूत न हो, तो यह भावना (ख़याल) नष्ट हो जाती है ।

कस्मिन्नपि विभक्ते तु परेषां पृक्तताकृते ।
पुनर्युक्तिकृतेवाऽपि प्रमाणं समपेक्ष्यते ॥२१०६॥

किसी के जुदा हो जाने पर दूसरों (बाकीवालों) की साझेदारी के लिए या फिर से सहयोग के लिये भी प्रमाण की आवश्यकता होती है । (अर्थात्-जुदा होनेवाले को छोड़कर अन्य कुटुम्बी साझेदार ही रहे या उन्होंने फिर सहयोग किया यह जानने के लिए प्रमाण की जरूरत होती है ।)

पृक्तानामांशिके भागे येऽविश्लिष्टाः कुटुम्बिनः
पृक्तत्वेऽपेक्ष्यते तेषां नो विशिष्टाऽत्र संमतिः ॥२१०७॥

साझेदारों के आंशिक विभाग में (साझेदारों में से कुछ के जुदा होने पर) जो नहीं जुदा हुए कुटुम्बी होते हैं, उनके साझे के विषय में विशेष संमति (agreement) की आवश्यकता नहीं होती।

परं परीक्ष्यते तेषां संसृष्टौ संमतिस्ततः।
कुटुम्बाऽर्थोपयोगस्य विध्यादिभिरसंशयम् ॥२१०८॥

परन्तु उनकी साझेदारी में (उनकी) संमति की परीक्षा उस (आंशिक विभाग) के बाद कुटुम्ब के धन के उपयोग की रीति आदि से निश्चित रूप से की जाती है। (अर्थात्--किसी के जुदा होने पर बाकी लोगों ने बचे हुए धन को साझे से काम में लिया या नहीं, इसी पर उनकी साझेदारी या जुदाई निश्चित की जाती है)।

कुटुम्बिनां विभागेषु पितृभ्यस्तु तदात्मजाः।
विश्लिष्यन्ते न, तद्वच्चाऽश्लिष्टे तातेऽपि तत्सुताः ॥२१०९॥

कुटुम्बियों के बटवारों में पिताओं से उनके पुत्र जुदा नहीं होते। (अर्थात्—कुटुम्बियों के जुदा होने पर भी प्रत्येक के पुत्र उन्हीं के साथ साझेदार रहते हैं) और पिता के पुत्रों से जुदा होने पर उसके पुत्र आपस में साझेदारी से रहते हैं।)

एकपत्नीसमुत्पन्नसुतेभ्यस्तु वियुज्य सः।
पिता शक्तोऽन्यपत्नीजसुतैः पृक्तिं निषेवितुम् ॥२११०॥

वह पिता अपनी एक स्त्री के पुत्रों से जुदा होकर दूसरी पत्नी के पुत्रों के साथ साझेदारी का सेवन करने में समर्थ होता है।

तत्राऽपि च पुनस्तेषामिच्छैवाऽपेक्ष्यते बुधैः।
तस्याः सिद्धिस्ततस्तत्राऽवश्यकीति सुनिश्चितम् ॥२१११॥

और फिर विद्वान् लोग वहां भी उनकी इच्छा की ही अपेक्षा रखते हैं (अर्थात्–उनकी इच्छानुसार ही उनकी साझेदारी या जुदाई समझी जाती है)। इसलिये वहां पर निश्चितरूप से उसकी सिद्धि आवश्यक होती है।

अभियोगे भवेद्यत्र विश्लिष्ट्यै राजशासनम्।
तेनैवाऽपृक्तता पूर्णाऽशिकी वा तत्र सिध्यति ॥२११२॥

जहां पर मुकद्दमे में बटवारे के लिए डिग्री हो, वहां पर उस (डिग्री) से ही पूरा (पूरे धन का) या आंशिक (कुछ धन का) बटवारा सिद्ध होता है (अर्थात्–जैसा डिग्री में लिखा हो, वैसा बटवारा समझा जाता है)।

यत्र कोऽपि त्यजेत्स्वार्थं संसृष्टाऽर्थांऽशगं निजम्।
संसृष्टा अपरे श्लिष्टा एव तिष्ठन्ति तत्र तु ॥२११३॥

जहां कोई साझे के धन में के अपने भाग को छोड़ देता है, वहां तो दूसरे साझेदार साझेदार ही रहते हैं। (जुदा हुए नहीं समझे जाते)।

आंशिकेऽपि विभागो प्राग् मेनिरे ज्ञैः कुटुम्बिनः।
सर्वे वियुक्ताः सर्वे च पृक्ताऽर्था अपिचांऽशिताः ॥२११४॥

पहले आंशिक विभाग में (कुछ साझेदारों के जुदा होने पर) भी विद्वानों द्वारा सारे कुटुम्बी जुदा हुए माने जाते थे और सारे साझे के धन भी बटे हुए माने जाते थे।

नव्येन निर्णयेनैष विचारः परिवर्जितः।
विभाग आंशिकेऽतोऽद्य तरे पृक्ताः कुटुम्बिनः ॥२११५॥

(परन्तु) नवीन निर्णय से यह ख़याल वर्जित कर दिया गया है। इसलिये आजकल आंशिक विभाग में दूसरे कुटुम्बी साझे में ही रहते हैं।

अभियोगेन नो पृक्तो विश्लिष्टिं त्वांशिकीं क्षमः।
प्रयोक्तुमन्यसंपृक्ते, यत् संमत्यैव सा मता ॥२११६॥

साझेदार, मुकद्दमे द्वारा, आंशिक बटवारे को दूसरे साझेदार पर नहीं लाद सकता; क्योंकि वह (आंशिक बटवारा) (अपनी-अपनी) इच्छा से ही माना गया है। (अर्थात्—प्रत्येक साझेदार अपनी इच्छा से ही आंशिक रूप से जुदा हो सकता है, दूसरे के जबरदस्ती करने से नहीं होता)।

परन्तु पूर्णविश्लिष्ट्यायभियोक्तुं तु स क्षमः।
चेन्न्यायेनाऽत्र निर्बाधमधिकारी मतो बुधैः ॥२११७॥

परन्तु यदि विद्वानों ने कानून से उसे, बिना किसी बाधा के, अधिकारी माना हो, तो वह पूरे बटवारे के लिए मुकद्दमा चलाने को समर्थ होता है (अर्थात्—वह सारे साझे के धन को बटवा सकता है। धन के कुछ भाग को नहीं बटवा सकता)।

अभियोगे प्रसज्यमाने संसृष्टेषु जनिर्मरणं च।

मुकद्दमे के चलते हुए साझेदारों में जन्म और मरण का होना।

विश्लेषायाऽभियुज्यैव वयःस्थस्तु वियुज्यते।
पृक्तस्तस्माद्दिनादेव, पृक्तेषु च तदुत्तरम् ॥२११८॥
उत्पन्नस्तस्य भागांऽशं नैवाप्नोति, तथा पुनः।
मृते पृक्ते तदंशांऽशं सोऽपि नाप्नोति निश्चितम् ॥२११९॥

बटवारे के लिए मुकद्दमा चलाकर ही बालिग साझेदार तो उसी दिन से जुदा हो जाता है। और साझेदारों में उस (दिन) के बाद उत्पन्न हुआ (पुरुष) उस (मुकद्दमा चलानेवाले) के हिस्से के अंश को नहीं पाता है। फिर उसी प्रकार

वह (स्वयं) भी साझेदार के मरने पर उसके भाग के हिस्से को, निश्चय ही, नहीं पाता ।

केवलेनाऽवयःस्थेन वा वयःस्थकुटुम्बिना ।
संयुक्तेनाऽत्र विश्लिष्टयायभियोगे प्रवर्तिते ॥२१२०॥
द्रविडेऽथ महाराष्ट्रे चेत्प्राप्तं राजशासनम् ।
तदैव तस्य विश्लिष्टिरभियोगदिनान्मता ॥२१२१॥

यहां पर केवल नाबालिग के अथवा बालिग कुटुम्बी के साथ मिले हुए नाबालिग के बटवारे के लिए मुकद्दमा दायर करने पर मद्रास और बंबई में यदि डिग्री मिल जाय, तब ही मुकद्दमा चलाने के दिन से उसका बटवारा हुआ मान लिया जाता है ।

मिथिलायां प्रवर्त्यैवाऽभियोगं तद्दिनाद्धि सः ।
अप्राप्तशासनोऽपिस्याद्वियुक्तः स्वकुटुम्बतः ॥२१२२॥

बिहार में वह मुकदमा चलाकर ही उस दिन से बिना डिग्री प्राप्त किये भी अपने कुटुम्ब से जुदा हो जाता है ।

यतो विभागे यद्दत्तं स्त्रीभ्यः स्त्र्यर्थो न स स्मृतः ।
अतः सा चेन्म्रियेताऽत्र पूर्वमन्तिमशासनात् ॥२१२३॥
सामान्यशासनान्ते च तदंशस्तर्हि वण्ट्यते ।
पुंपृक्तैरंशने तत्राऽभियोगोत्तरजैः सह ॥२१२४॥
स्त्रीमृतेरुत्तरं किन्तु जातास्तत्र न भागिनः ।
अथांऽशनाऽभियोगानां वर्ण्यते नियमादिकम् ॥२१२५॥

क्योंकि स्त्रियों को जो बटवारे में दिया जाता है,वह स्त्रीधन नहीं माना जाता है। इसलिए यदि वह (स्त्री) वहां पर आखिरी (final) डिग्री के पहले और प्रारम्भिक (preliminary) डिग्री के बाद,मरजाय, तो वहां ऐसे स्थान पर हिस्सा बाँट के समय उसका हिस्सा मुकद्दमा चलाने के बाद उत्पन्न हुए (लड़कों) के साथ पुरुष साझेदारों द्वारा बाँट लिया जाता है । परन्तु स्त्री की मृत्यु के बाद उत्पन्न हुए उसमें हिस्सा नहीं पाते । आगे हिस्से के मुकद्दमों के नियम आदि कहे जाते हैं ।

वण्टनकृतेऽभियोगः ।

बटवारे के लिए मुकद्दमा ।

पृक्तेषु कोऽपि शक्तः स्यात्पृक्तस्वांऽशविभाजने ।
अथ तत्प्रार्थनश्चेत्सोऽभियुक्तयास्तर्हि वण्टयेत् ॥२१२६॥

साझेदारों में का कोई भी साझे में का अपना हिस्सा जुदा करने में समर्थ

होता है। यदि उसकी बात नहीं सुनी गई हो, तो वह मुकद्दमा चलाकर (धन) बांट सकता है।

पृक्तो निरस्ति स्वां ज्ञात्वा पृक्तार्थादभियुक्तये।
मर्यादानियमाच्छक्तो द्वादशैव तु वत्सरान् ॥२१२७॥

साझेदार साझे के धन से अपने को दूर किया जानकर मर्यादा के नियम (The Iindian limitation Act) से बारह बरस तक ही मुकद्दमा चला सकता है। (अर्थात्–जिस दिन उसे यह बात ज्ञात हो, उस दिन से बारह बरस के भीतर वह अपने हक के लिए मुकद्दमा दायर कर सकता है)।

अंशनस्याऽभियोगे ये पृक्ता अधिकृता, हि ते।
पृक्ताऽर्थक्रयिणश्चाथो अभियोक्तुं क्षमा इमान् ॥२१२८॥
शाखामुख्यास्तथांऽशार्हा स्त्री माता च पितामही।
क्रेता विभागखण्डस्य संसृष्टस्याऽभियोगिनः ॥२१२९॥

बटवारे के मुकद्दमे में जो साझेदार अधिकारी होते हैं, वे और इसी प्रकार साझे के धन को खरीदनेवाले, निश्चय ही, इन पर मुकद्दमा चला सकते हैं:—

हरएक शाखा के मुखियापर, (हिस्से के समय) भाग पानेवाली भार्या, माता और दादी पर और मुकद्दमा चलानेवाले साझेदार के धन के हिस्से के एक भाग को खरीदनेवाले पर।

क्रीतपृक्तजनद्रव्योऽभियोगी चाऽपि निश्चितम्।
विक्रेतारं तदर्थस्याऽभियोक्तुं क्षम ईरितः ॥२१३०॥

अपने साझेदार के धन का खरीददार मुकद्दमा चलानेवाला भी उस धन को बेचनेवाले पर मुकद्दमा चलाने में समर्थ कहा गया है।

आवश्यका अमी अत्र प्रतिवादीपमण्डले।
यत्रैकोऽपि परित्यक्तोऽभियोगः स विनश्यति ॥२१३१॥

यहां पर ये (ऊपर बतलाए) प्रतिवादी मण्डल में आवश्यक हैं। जहां (इनमें से) एक भी छोड़दिया गया हो, वहां मुकद्दमा खारिज हो जाता है।

निम्नोक्ता अपि तत्र स्युः प्रतिवादीयमण्डले।
यद्यप्यावश्यका नैते वर्गे तदपि संमताः ॥२१३२॥

नीचे कहे (लोग) भी वहां (मुकद्दमे में) मुद्दायलों में हो सकते हैं। यद्यपि ये (लोग) जरूरी नहीं है, फिर भी (उनकी) श्रेणी में माने गये हैं:-

न्यांसग्राही कुटुम्बाऽर्थधरः, पृक्तजनस्य वा।
पृक्तांऽशस्य धरस्तद्वत् कौटुम्बिकधनस्य च ॥२१३३॥
विशिष्टांऽशाऽऽधिकर्ताऽथ पृक्तपृक्तांऽशकक्रयी।
निर्वाहोद्वाहकार्यार्थवित्ताऽर्हाः स्वकुटुम्बिनः ॥२१३४॥

ऐतेषु विधवा कन्या भगिन्यस्तत्समास्तथा ।
अन्याः स्त्रियोऽथ दायादा दायेऽपात्रीकृताः पुनः ॥२१३५॥

गिरवी लेनेवाला, कुटुम्ब के धन को कब्जे में किया हुआ या साझेदार के साझे के धन को कब्जे में किया हुआ, उसी प्रकार कुटुम्ब के धन के विशेष भागों को गिरवी रखवाने वाला, साझेदार के साझे के धन को खरीदनेवाला, गुजारे और विवाह के लिए धन पाने के हकदार और कुटुम्बी–इनमें विधवायें (कुटुम्बियों की विधवा स्त्रियां), कन्यायें, बहनें और उन्हीं के समान दूसरी स्त्रियां और हिस्सा पाने में अयोग्य ठहराये लोग (आते हैं) ।

अन्यं पृक्तं तथा पृक्तधने स्वार्थधरं यथा ।
पट्टोलिकाधरं न्यासग्राहकं वा कुटुम्बिनम् ॥२१३६॥
निर्वाहार्हं तथैवाऽलमऽभियोक्तुं जनः पुनः ।
प्रार्थ्याभियोगे संबन्धुं स्वं शक्ताः स्वेच्छया इमे ॥२१३७॥

वह (अभियोग चलानेवाला साझेदार) पुरुष दूसरे साझेदार पर और साझे के धन में स्वार्थ (interest) रखनेवाले पर–जैसे (साझे की) भूमि आदि को किराये पर लेने वाले (lessee) पर या गिरवी रखनेवाले (mortgagee) पर और उसी तरह निर्वाह के लिए धन पाने के हकदार कुटुम्बी पर मुकद्दमा चला सकता है । तथा ये (लोग) अपनी इच्छा से प्रार्थना कर अपने को मुकद्दमे में शरीक कर सकते हैं ।

पृक्तः पृक्तानथ क्रेता पृक्तस्वार्थस्य पृक्तिनः ।
विक्रेतारं तदंशस्य पृक्तानन्यांस्तथा पुनः ॥२१३८॥
पृक्ता अपि च कस्याऽपि पृक्तांऽशक्रयिणं तथा ।
एकसंपृक्तिविविध-पृक्ताऽर्थैकतमक्रयी ॥२१३९॥
क्रेतारमन्यसंसृष्टिस्वार्थस्यैवाऽत्र संपदि ।
अभियोक्तुं क्षमन्तेऽत्र व्यवहारोक्तरीतितः ॥२१४०॥

यहां पर कानून के कहे तरीके से (एक) साझेदार (दूसरे) साझेदारों पर, साझेदार के साझे के स्वार्थ (interest) का खरीदनेवाला उस भाग के बेचनेवाले पर और दूसरे साझेदारों पर, तथा साझेदार किसी साझेदार के (साझे के) भाग को खरीदनेवाले पर और एक साझेदार की अनेक साझे की संपत्तियों में से किसी एक का खरीददार उसी संपत्तिमें के दूसरे साझेदार के स्वार्थ को खरीदनेवाले पर मुकद्दमा चला सकते है ।

संपूर्णायांऽशिकायाऽथ विभागायाऽभियोजनम् ।
यथाऽवश्यकमेवाऽत्र क्रियते व्यवहारतः ॥२१४१॥

यहां पर आवश्यकतानुसार पूरे बटवारे या एक भाग के बटवारे के लिए कानून से मुकद्दमा किया जाता है ।

साधारण्येन पृक्ते नाभियुक्ताश्चेत्कुटुम्बिनः।
विभागार्थं तदा सर्वपृक्तार्थायैव स स्मृतः ॥२१४२॥

आमतौर पर यदि (किसी) साझेदार ने बटवारे के लिए (अपने) कुटुम्बियों पर मुकद्दमा चलाया हो, तो वह सारे साझे के धन के लिए ही समझा जाता है।

किन्त्वाऽधिकरणाद् यत्र पृक्ताऽर्थांशो न लभ्यते।
विभागायाऽथवा यत्र पृक्तिः पारक्यसंगता ॥२१४३॥
पृथगावश्यकस्तत्राऽभियोगस्तत्कृते ध्रुवम्।
यस्मिन्न्यायालयेऽन्तः स्यात्तत्प्रभावाद् बहिःऽस्थिता ॥२१४४
पृक्तसंपद्गता भूमिर्यदि तर्ह्यप्यपेक्ष्यते।
तस्मिन्न्यायगृहेऽन्योऽन्यो यत्प्रभावगता हि सा ॥२१४५॥

परन्तु जहां पर गिरवी रखने से साझे का धन बटवारे के लिए प्राप्त न हो सकता हो या जहां पर एक अन्य (कुटुम्ब से भिन्न) पुरुष के साथ साझा हो, वहां उस (धन) के लिए निश्चय ही जुदा मुकद्दमे की आवश्यकता होती है। जिस न्यायालय (हाईकोर्ट) में (बटवारे का) मुकद्दमा हो उसके प्रभाव (jurisdiction) के बाहर यदि साझे की संपत्ति में की पृथ्वी हो, तो भी जिस न्यायालय के प्रभाव में वह भूमि हो उसमें दूसरे मुकद्दमे की आवश्यकता होती है।

प्रकीर्णका नियमाः।

दूसरे साधारण नियम।

अन्यधर्मग्रहेणैव संसृष्टिस्तु प्रणश्यति।
किन्तु संसृष्टवित्तात्स स्वांऽशमाप्नोति निश्चितम् ॥२१४६॥

दूसरा धर्म ग्रहण करने से ही साझा नष्ट हो जाता है। परन्तु वह साझे के धन से निश्चय ही अपना भाग पाता है।

अन्यधर्मग्रहान्नष्टसंसृष्टिः पुरुषः पुनः।
अवशिष्टोऽपि पृक्तेषु न तेषां भागमाप्नुयात् ॥२१४७॥

और फिर दूसरे धर्म के ग्रहण करने से साझे से भ्रष्ट हुआ पुरुष साझेदारों के बाद तक जीवित रहने पर भी उनका भाग नहीं पा सकता।

अशक्यत्वाद्विभागस्य पृक्तेष्वर्धैस्तथाधिकैः।
यत्र विक्रीयपृक्तार्थविभागः प्रार्थ्यते ध्रुवम् ॥२१४८॥
तत्र न्यायालयेनाऽपि दातव्या स्वीकृतिर्निजा।
उचिता प्रार्थना सा चेत्संसृष्टानाञ्च लाभदा ॥२१४९॥

जहां पर बटवारा न हो सकने के कारण साझेदारों में से आधे या (आधे से) अधिकों द्वारा साझे की संपत्ति को बेचकर उसके बटवारे की, निश्चयरूप से प्रार्थना की जाय, वहां पर यदि वह प्रार्थना उचित और साझेदारों के फायदे की हो, तो न्यायालय को भी अपनी मंजूरी दे देनी चाहिए।

यत्र पृक्तनिवासांऽशं पारक्याय कुटुम्बिना।
दत्तं तत्राऽपरे पृक्ताः सर्वे तत्क्रयणे क्षमाः ॥२१५०॥
तस्य मूल्यश्च निश्चेयं न्यायाधीशैर्यथोचितम्।
यतो दातुश्छलान्नैव वञ्चनं स्यात्कुटुम्बिनाम् ॥२१५१॥

जहां पर (किसी) कुटुम्बीने साझे के रहने के घर का कुछ भाग कुटुम्ब से भिन्न पुरुष को दे दिया हो, वहां पर दूसरे सारे साझेदार उसे खरीद सकते हैं। उसका उचित मूल्य न्यायाधीशों को निश्चित करना चाहिए, ताकि देनेवाले की चालाकी से (खरीदनेवाले) कुटुम्बी ठगे न जायँ।

पुनर्विभाजनम्।

फिर से बांटना।

विभागाऽवसरे गर्भगतो जातस्त्वनन्तरम्।
अदत्तभागः पुत्रःस्यात्पुनरंशयतुं क्षमः ॥२१५२॥

बटवारे के समय गर्भ में रहे और (उसके) बाद में उत्पन्न हुए पुत्र को भाग न दिया गया हो, तो वह फिर से बटवारा करवा सकता है।

गर्भगश्च विभागान्ते जातश्च तदनन्तरम्।
पुत्रोऽनर्पिततातांऽशं विभागं पुनरंशयेत् ॥२१५३॥

और विभाग होने के बाद गर्भ में आया और उस (विभाग) के बाद उत्पन्न हुआ पुत्र, जिसमें पिता को हिस्सा न मिला हो ऐसे बटवारे को फिर से बटवा सकता है। (अर्थात्–अगले बटवारे को रद्द करवा सकता है।)

विभागेऽनुचिते चाऽपि पुनर्विभजनं मतम्।
भ्रात्रोर्विभागे संदद्याद् भ्राता स्वांऽशांऽशमत्र चेत् ॥२१५४॥
भ्रात्रे व्यक्तिगतद्रव्यदत्तपृक्तऋणाय, तत्।
स्वांऽशांऽशाऽर्पिसुतो नैवतद्दानं धर्षितुं क्षमः ॥२१५५॥

अनुचित रूप से विभाग होने पर भी फिर से बटवारा करना माना है। यहां पर यदि दो भाइयों के बटवारे में एक भाई अपने व्यक्तिगत धन से, साझे के ऋण को चुकानेवाले, दूसरे भाई को अपने हिस्से का कुछ भाग दे, तो अपने हिस्से के कुछ भाग को देनेवाले का पुत्र उस दान को अनुचित नहीं ठहरा सकता।

ज्ञातो यत्र विभागान्ते यदेकस्मै समर्पितः।
भागः कौटुम्बिकादर्थाद् भिन्नश्चास्त्यन्यदीयकः ॥२१५६॥
आधीकृतो वा तत्र स्याच्छक्तः पृक्तः स निष्कृतिम्।
ग्रहीतुमन्यपृक्तेभ्यः शक्तो वा पुनरंशने ॥२१५७॥

जहां पर बटवारे के बाद मालूम हो कि एक (हिस्सेदार) को दिया हिस्सा कुटुम्ब के धन से भिन्न और पराये का है या गिरवी का है, वहां पर वह साझेदार दूसरे साझेदारों से हरजाना लेने में समर्थ होता है या फिर से बटवारा करने में समर्थ होता है।

विभागे यत्र पृक्तांऽशो भ्रान्तिदैवच्छलादिभिः।
त्यक्तोऽविभक्तः स ज्ञेयः पृक्तोऽर्थस्तु कुटुम्बिनाम् ॥२१५८॥
विभाज्यश्च स पृक्तेषु प्रथमांऽशनभागिषु।
पुनर्विभागो नो तत्र सकलाऽर्थस्य संमतः ॥२१५९॥

जहां पर बटवारे में गलती से, अकस्मात् या कपट से साझे का कुछ हिस्सा बिना बांटे ही छोड़ दिया गया हो, उसे साझेदारों का साझे का धन समझना चाहिए और उसे पहले के बटवारे में भाग लेनेवाले साझेदारों में बांट देना चाहिए। वहां पर सारे धन का फिर से बटवारा नहीं माना है (अर्थात्–ऐसी अवस्था में सारे धन को फिर से बांटने की आवश्यकता नहीं होती)।

यत्र चाऽल्पवयःस्थस्य हानिकार्यंशनं भवेत्।
निरासस्तस्य कर्तव्यस्तत्र न्यायेन निश्चितम् ॥२१६०॥

जहां पर बटवारा नाबालिग को हानि पहुँचानेवाला हो, वहां पर कानून से निश्चय ही उसका त्याग करना चाहिए (अर्थात्–उसको हटा देना चाहिए)।

पृक्ताऽर्थस्य सकृद् भागः सकृत्कन्याऽर्पणं तथा।
सकृद्दानप्रतिज्ञेति मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥२१६१॥

साझे के धन का एकबार बटवारा होता है, एकबार कन्या का दान (विवाह) होता है और एक बार (किसी वस्तु के) दान की प्रतिज्ञा होती है–ऐसा स्वायंभुव मनु ने कहा है।

सकृदेव विभागोऽतः पृक्ताऽर्थस्याऽत्र संमतः।
पूर्वोक्तासु दशास्वेव परं भूयस्तदंशनम् ॥२१६२॥

इसलिए यहां पर साझे के धन का एक बार ही बटवारा होना माना है। परन्तु पहले कही दशाओं में ही उस (साझे के धन) का फिर बटवारा होता है।

विभागान्तेऽधमर्णेन प्रतिदत्तमृणं निजम्।
कुटुम्बिने परं सोऽत्र कुटुम्बाऽर्थो भवेद्यदि ॥२१६३॥

त्रिवर्षाऽवधि तद्दानादभियोगेन निश्चितम्।
शक्तास्तस्यांऽशमादातुं तदाऽन्येऽपि कुटुम्बिनः ॥२१६४॥

बटवारे के बाद (किसी) कर्ज़दार ने किसी (एक) कुटुम्बी को अपना कर्ज़ का रुपिया चुकाया हो, परन्तु यदि वह कुटुम्ब का धन हो, (अर्थात्-उस पर सारे ही कुटुम्ब का हक हो), तो कर्ज़ा चुकाने (के दिन) से तीन वर्ष तक, मुकद्दमा चलाकर, निश्चय ही, दूसरे कुटुम्बी भी उसका हिस्सा ले सकते हैं।

विभागस्य प्रभावः।

बटवारे का असर।

विभागेन तु पृक्तानां संसृष्टिर्नश्यति ध्रुवम्।
वियुक्तानाञ्च मरणे दायादा रिक्थहारिणः ॥२१६५॥

साझेदारों के हिस्से बांट से निश्चय ही साझा नष्ट हो जाता है। और जुदाहुओं के मरने पर (उनके) उत्तराधिकारी धन पाते हैं।

कुटुम्बिभ्यो वियुक्तोऽपि पुत्रैः पृक्तस्तु यो नरः।
तद्भागस्तस्य पुत्रेभ्यः संसृष्टाऽर्थो मतो बुधैः ॥२१६६॥

जो पुरुष कुटुम्बियों से जुदा होकर भी पुत्रों के साथ रहता हो, विद्वानों ने उसका हिस्सा उसके पुत्रों के लिए साझे का धन माना है।

द्रविडे च महाराष्ट्रे मृते ताते तदर्जितम्।
धनं याति सुतांस्तस्य संसृष्टानेव केवलम् ॥२१६७॥

मद्रास और बंबई प्रान्त में बाप के मरने पर उसका कमाया धन केवल उसके साथ रहनेवाले पुत्रों को ही मिलता है।

प्रयागेत्ववियुक्ताश्च वियुक्ताश्चाऽपि तत्सुताः।
सर्वे पित्रर्जिते भागं तदन्ते प्राप्नुवन्ति हि ॥२१६८॥

और प्रयाग (अवध) में तो उस (पिता) के साझेदार और जुदा हुए सारे ही पुत्र पिता के कमाये धन में, उसके बाद, भाग पाते हैं।

अभावे पृक्तपुत्राणां पूर्वं मातुरवाप्नुयुः
अपृक्ता हि सुता रिक्थं पितुरन्ते सुनिश्चितम् ॥२१६९॥

साझेदार पुत्रों के न होने पर पिता के बाद (विधवा) माता के पहले जुदा हुए पुत्र ही निश्चरूप से धन पाते हैं।

अपृक्तपुत्राः पौत्राश्च मृततातास्तथाविधाः।
मृते जन उभावेव सहभागहरा मताः ॥२१७०॥

पुरुष के मरने पर जुदाहुए पुत्र और वैसे ही (जुदाहुए) मृतपितावाले पौत्र दोनों ही साथ-साथ भाग पानेवाले माने गये हैं।

वियुक्त्याऽपि सुतानां नो पुत्रत्वं तु विनश्यति ।
इतिमत्वैव नियमाः प्रयागे रचिता बुधैः ॥२१७१॥

पुत्रों के जुदा हो जाने से भी (उनका) पुत्रपना नष्ट नहीं होता । ये मानकर ही विद्वानों ने प्रयाग (अवध) में नियम बनाये हैं ।

द्रविडे च महाराष्ट्रे पित्रर्जितधनस्य तु ।
पृक्ता एव सुताः पूर्वं पृक्तत्वादधिकारिणः ॥२१७२॥

मद्रास और बंबई में पिता के कमाये धन के (उसके) साथ रहनेवाले पुत्र ही साझेदार होने से, पहले अधिकारी होते हैं ।

पुनःसंयोगः ।

फिर से संयोग ।

पुनर्योगस्तु तेषां स्याद् ये वियुक्ताः पुराऽभवन् ।
साधारण्येन बोध्योऽयं नियमो बुधनिश्चितः ॥२१७३॥

पुनः संयोग उन्हीं का होता है, जो पहले जुदा हुए हों । यह नियम पण्डितों द्वारा साधारण तौर से निश्चित किया हुआ जानना चाहिए ।

परं मिताक्षरादायभागाभ्यां तद्वदेव हि ।
स्मृतिचन्द्रिकया चाऽपि वियुक्तस्य सकृद् भवेत् ॥२१७४॥
पुनर्योगः पितृव्येण पित्रा भ्रात्राऽथ केवलम् ।
सोऽयं नाऽत्र पितुः पित्रा पैतृव्येणाऽपि वा पुनः ॥२१७५॥

परन्तु 'मिताक्षरा' और (बंगाल के) 'दायभाग' से तथा उसी प्रकार (मद्रास की) 'स्मृतिचन्द्रिका' से भी एक बार जुदा हुए का फिर संयोग केवल चाचा, पिता या भाई से ही हो सकता है । फिर यहां पर यह (पुनः संयोग) दादा से या चचेरे भाई से नहीं हो सकता ।

विवादचिन्तामणिना मयूखेनाऽप्यसौ मतः ।
प्राग् वियुक्तैः समस्तैस्तु कुटुम्बिभिरसंशयम् ॥२१७६॥

(मिथिला की) विवादचिन्तामणि और (गुजरात बंबई और उत्तरी कोंकण के) व्यवहारमयूख से यह (पुनः संयोग) पहले जुदा हुए सारे ही कुटुम्बियों से निश्चितरूप से हो सकता है ।

मिताक्षरा तु सर्वत्र द्रविडे स्मृतिचन्द्रिका ।
दायभागः पुनर्वङ्गे मन्यते विबुधैर्ध्रुवम् ॥२१७७॥
व्यवहारमयूखश्च मुम्बाद्वीपेऽथ गुर्जरे ।
उत्तरे कोङ्कणे चाऽपि मान्यस्तत्रत्यपण्डितैः ॥२१७८॥

मिथिलायां विवादानां चिन्तामणिरथो मतः ।
मतानां देशभेदेन वैशिष्ट्यमिह दर्शितम् ॥२१७९॥

पण्डितों द्वारा 'मिताक्षरा' तो सब स्थानों पर, 'स्मृतिचन्द्रिका' मद्रास में और 'दायभाग' बंगाल में, निश्चितरूप से, माना जाता है । 'व्यवहारमयूख' बंबई द्वीपमें, गुजरात में और कोंकण में वहां के पण्डितों से माना जाता है । और 'विवादचिन्तामणि' मिथिला में माना जाता है । यहां पर देश-भेद से मतों की विशेषता दिखलाई है ।

राजसंमतलेखेन वियुक्ता ये कुटुम्बिनः ।
वाचैव समयं कृत्वा ते पुनर्युक्तये क्षमाः ॥२१८०॥

रजिस्ट्री के द्वारा जो कुटुम्बी जुदा हुए हों, वे ज़बानी समझौता करके ही फिरसे शामिल होने (reunion) में समर्थ होते हैं ।

अतोऽन्येषां पुनर्योगेऽप्यपेक्षा लेखनस्य नो ।
बृहस्पतिमतं त्वग्रे श्लोकेनैकेन वक्ष्यते ॥२१८१॥

इसलिए दूसरों के फिर शामिल होने में भी लिखित लेख की आवश्यकता नहीं होती । आगे एक श्लोक से बृहस्पति का मत कहा जाता है ।

यो वियुज्य पुनः स्नेहात् पित्रा भ्रात्रा वसेदुत ।
पितृव्येण समं सोऽत्र पुनर्युक्तोऽभिधीयते ॥२१८२॥

जो (पुरुष) जुदा होकर फिर, प्रेम के कारण, पिता, भाई या चाचा के साथ रहे, वह यहां पर फिर शामिल हुआ (reunited) कहा जाता है । (यह बृहस्पति का मत है) ।

टीकाकारैः कतिपयैः पूर्णेषा सूच्यमन्यत ।
दिग्दर्शनस्य रूपेण गृहीताऽन्यैस्तु सा पुनः ॥२१८३॥

(इसके) कुछ टीकाकारों ने इस सूची को पूर्ण माना है और दूसरों ने इसे नमूने के तौर पर लिया है । (अर्थात्–जिन्होंने इसे पूर्ण सूची माना है, उनके मत से पुनर्योग (reunion) बाप, भाई और चाचा के साथ ही हो सकता है । परन्तु जिन्होंने इसे नमूने के तौर पर माना है, उनके मत से पुनर्योग हर एक जुदा होनेवाले अपने कुटुम्बी के साथ हो सकता है ।)

पुनर्योगप्रभावेण प्राग् वियुक्ता जना अपि ।
संसृष्टाः स्युः पुरोक्तश्च तेषां दायाप्तये क्रमः ॥२१८४॥

पुनर्योग के प्रभाव से पहले जुदा हुए लोग भी शामिल हो जाते हैं और उनके धन के हक को प्राप्त करने का क्रम पहले कहा हुआ होता है । (अर्थात्–ऐसे पुरुषों के बाद उनके धन पानेवालों का क्रम पहले कहा जा चुका है ।)

सहव्यापारकृत्येन सहवासेन वा पुनः।
केवलेन वियुक्तानां पुनर्योगस्तु नो मतः॥ २१८५॥

केवल साथ व्यापार करने या साथ रहने से ही (एकबार) जुदाहुओं का पुनर्योग नहीं माना गया है।

संपत्तिस्वार्थयोरत्र पुनर्योगेच्छयैव हि।
प्राग् वियुक्ताः पुनर्योगं प्राप्नुवन्ति जना ध्रुवम्॥ २१८६॥

यहां पर संपत्ति (estate) और स्वार्थ (interest) के फिर शामिल करने की इच्छा से ही पहले जुदा हुए लोग निश्चय रूप से पुनर्योग को प्राप्त करतेहैं।

आधीकारेऽप्यमूदृश्या इच्छायास्तु प्रकाशनम्।
आवश्यकमतः सा स्याज् ज्ञाता दातृग्रहीतृभिः॥ २१८७॥

गिरवी करने में भी इस प्रकार की इच्छा का प्रकाशन आवश्यक है। इसलिए वह (इच्छा) देने और लेनेवालों द्वारा जानी हुई होनी चाहिए।

यत्रेच्छायाः प्रकाशस्य नो साक्ष्यं तत्र नो मतः।
पुनर्योगो यतस्तस्मिन् मुख्यमिच्छाप्रकाशनम्॥ १२८८॥

जहां पर (ऐसी) इच्छा के प्रकट करने का साक्ष्य (गवाही) न हो, वहां पर पुनर्योग नहीं माना है, क्योंकि उस (पुनर्योग) में इच्छा का प्रकट करना मुख्य बात है।

यतस्सहमतेस्तत्राऽपेक्षाऽप्राप्तवया अतः।
स्वेच्छया प्रातिनिध्येन वा क्षमो न कथञ्चन॥२१८९॥

क्योंकि वहां (पुनर्योग में) सब की संमति की आवश्यकता होती है, इसलिए नाबालिग अपनी इच्छा से या प्रतिनिधि के द्वारा (उसमें) किसी प्रकार भी समर्थ नहीं होता।

तथाप्रोक्तेच्छापत्रकृतो विभागः।

तथा--कथित (so called) इच्छापत्र द्वारा किया बटवार।)

विभागे इच्छापत्रप्रभावः।

बटवारे में इच्छापत्र का प्रभाव।

इच्छापत्रेण नो शक्तो ज्येष्ठोऽप्यत्र विभाजने।
कुटुम्बाऽर्थस्य यावन्नाऽन्येषामनुमतिर्भवेत्॥ २१९०॥

यहां पर कुटुम्ब का बड़ा भी जब तक दूसरों (अन्य कुटुम्बियों) की संमति न हो, तब तक इच्छापत्र (will) के द्वारा कुटुम्ब के धन को बांटने में समर्थ नहीं होता।

कुलज्येष्ठेन पित्राऽत्र प्रविभज्याऽर्पितं धनम्।
कौटुम्बिकं स्वपुत्रेभ्यः प्राग् यथेच्छं ततः कृतः ॥२१६१॥
लेखो यद्यपि नैष स्यादिच्छालेखस्तथाऽप्यसौ।
सादयं तस्माद्दिनादेव स्यात्तद् भागप्रयुक्तये ॥ २१६२ ॥
यदत्राऽङ्गीकृतः पुत्रैः पित्रा दत्तो यथेप्सितम्।
भागः प्राग् लेखतस्तस्माद् नाऽन्याऽनुज्ञाऽस्त्यपेक्षिता॥२१६३॥

यहां पर कुल में बड़े पिता ने पहले अपनी इच्छानुसार कुटुम्ब के धन को बांट कर अपने पुत्रों को देदिया हो, और फिर (इस विषय का) लेख किया हो, तो यद्यपि यह उसका इच्छापत्र (will) नहीं हो सकता, तथापि यह (लेख) उस (उसके लिखने के) दिन से ही उस बटवारे के प्रयोग में लाने के लिए गवाही हो सकता है। यहां पर पुत्रों ने पिता का अपनी इच्छानुसार दिया हिस्सा लेख से पहले स्वीकार कर लिया था, इसलिए (उनकी) दूसरी अनुमति की आवश्यकता नहीं होती।

पृक्तेषु कोऽपि नो शक्तो दातुं पृक्तं निजांऽशकम्।
इच्छापत्रेण तच्चात्र नेच्छापत्रतयाहतम् ॥ २१६४ ॥
किन्त्वन्यैश्चेदनुज्ञातं तद्दानं तर्हि तद् भवेत्।
सादयं दाने दिनात्तस्मात् संसृष्टाऽनुमतेर्ध्रुवम् ॥ २१६५ ॥

साझेदारों में से कोई भी इच्छापत्र (will) के द्वारा साझे के धन में का अपना भाग (दूसरे को) नहीं दे सकता, और वह (इच्छापत्र) वसीहत की तरह नहीं माना जाता। परन्तु यदि दूसरों (अन्य साझेदारों) ने वह दान मान (स्वीकार कर) लिया हो, तो वह (इच्छापत्र) उस दिन से (उस) दान में निश्चय ही साझेदारों की (स्वीकृति) की गवाही होता है।

१७ दायभागीयो विभागः

दायभाग में कहा बटवारा।

दायभागे विशिष्टा ये विभागे नियमा मताः।
मिताक्षरीयैर्नियमैस्ते लिख्यन्तेऽथ निश्चितम् ॥ २१६६ ॥

दायभाग में, बटवारे के लिए मिताक्षरा के नियमों से, जो विशेष नियम माने गये हैं, वे निश्चित रूप से आगे लिखे जाते हैं।

मिताक्षरीयपृक्तानां पृक्ताऽर्थेभागनिश्चयः।
तावन्न स्याद् विभागो नो स्याद् यावत्पृक्तसंपदः ॥२१६७॥

मिताक्षरा को माननेवाले साझेदारों के साझे के धन के हिंस्से का निश्चय तब तक नहीं होता, जब तक कि साझे के धन का बटवारा नहीं हो जाता।

वङ्गीयदायभागीयपृक्तानां पृक्तसंपदि ।
विभागात् पूर्वमेवांऽशनिश्चयो मन्यते बुधैः ॥ २१९८ ॥

विद्वानों द्वारा बंगाल के दायभाग को माननेवाले साझेदारों के हिस्से का, साझे के धन में, बटवारे से पहले ही निश्चित होना माना जाता है । (अर्थात्— उनमें जन्म से ही साझे के धन में अधिकार न मिलने के कारण हिस्सा निश्चित रहता है ।)

तस्याऽनुरूपमादाय खण्डं संसृष्टसंपदः ।
प्रदानं प्रति संपृक्तं विभागश्च मतः पुनः ॥२१९९॥

और फिर उसी (हिस्से) के अनुसार भाग लेकर प्रत्येक साझेदार को देना ही बटवारा माना गया है ।

मिताक्षरावत्पृक्तानां दायभागेऽपि साधकः ।
वियुक्तेरेव सङ्कल्पोऽशनस्यालं परं न सः ॥२२००॥

मिताक्षरा की तरह ही दायभाग में भी साझेदारों का जुदा होने का सङ्कल्प (intention) ही बटवारे का साधक होता है । परन्तु वह (सङ्कल्प) पर्याप्त (काफ़ी) नहीं होता ।

मैताक्षरेषु कौटुम्बीमविभज्यैव संपदम् ।
विशिष्टांऽशा विशिष्टानामित्यभिव्यज्य निश्चितम् ॥२२०१॥
विभागो मन्यते दायभागीयेषु तु नो तथा ।
नैसर्गिकास्तु तत्रांऽशाः पूर्वमेव विनिश्चिताः ॥२२०२॥
कुटुम्बिनामतस्तेषामिच्छाऽभिव्यक्तिरेव नो ।
पर्याप्ता किन्तु पृक्तांऽशान् प्रविभज्यैव संपदः ॥२२०३॥
तेषां पृथक् पृथक् पृक्तकुटुम्बिभ्यः समर्पणम् ।
आवश्यकं विभेदोयं मतयोरत्र दर्शितः ॥२२०४॥

मिताक्षरावालों में कुटुम्ब की संपत्ति को बाँटने के विना ही खास-खास हिस्से खास-खास पुरुषों के हैं ऐसा निश्चित रूप से प्रकट करके बटवारा मान लिया जाता है, परन्तु दायभागवालों में वैसा नहीं होता । वहां पर (दायभागवालों में) पहले ही स्वाभाविक तौर से कुटुम्बियों के हिस्से निश्चित होते हैं । इसलिये उनका (उपयुक्त प्रकार से) इच्छा को प्रकट करना ही पर्याप्त नहीं होता, किन्तु संपत्ति के साझे के हिस्सों को बाँटकर ही उनको जुदा-जुदा कुटुम्बियों को देना आवश्यक होता है । यह दोनों मतों का भेद यहां पर दिखलाया है । (अर्थात्—'मिताक्षरा' के अनुसार साझे की संपत्ति को बांटने के विना ही उसके भिन्न भिन्न भाग भिन्न-भिन्न साझेदारों के हैं ऐसा प्रकट कर देना बटवारे के लिए पर्याप्त होता है । परन्तु दायभाग में संपत्ति का बांटना आवश्यक होता है ।)

पृक्का वयःस्थाः पुरुषाः स्त्रियो वांऽशयितुं क्षमाः।
सर्वे संसृष्टसंपत्ति दायभागानुसारतः ॥२२०५॥
अवयस्थकृतेऽत्राऽपि वण्टः स्याद् व्यवहारतः।
पूर्वोक्तासु दशास्वेव निर्णयश्चाऽपि पूर्ववत् ॥२२०६॥

दायभाग के अनुसार सारे साझेदार बालिग पुरुष और स्त्रियां साझे की संपत्ति को बटवा सकते हैं। नाबालिग के लिए मुकद्दमें द्वारा, पहले कही दशाओं में ही, बटवारा होता है और (उसका) निर्णय भी पहले की तरह ही होता है।

स्त्रीभिः प्राप्तेऽपि दायांऽशे तत्राऽपूर्णाऽधिकारिता।
तस्या विस्तरतो व्याख्या पूर्वमेवाऽस्ति वर्णिता ॥२२०७॥

स्त्रियों द्वारा दाय का हिस्सा (उत्तराधिकार का धन) पा लेने पर भी उस पर (उनका) अधूरा अधिकार होता है। उस (अधिकार) की व्याख्या विस्तार से पहले ही वर्णन करदी है।

दायभागे तु ये पृक्का याः पुनः पृक्तसंपदः।
तयोरपि कृता व्याख्या पूर्वमेव सुनिश्चिता ॥२२०८॥

दायभाग में जो साझेदार होते हैं और जो साझे का धन होता है, उन दोनों की भी निश्चित व्याख्या (खुलासा) पहले ही करदी गई है।

दायभागे यतः पुत्रा जन्मना नांऽशभागिनः।
पितृतोंऽशयितुं तेऽतो न क्षमाः पृक्तसंपदम् ॥२२०९॥
पौत्राः प्रपौत्रा अपि नो तद्वदेव क्षमाः पुनः।
पुत्रपौत्रप्रपौत्राणां पित्रा तत्र न पृक्तता ॥२२१०॥

क्योंकि दायभाग में पुत्र जन्म से हिस्सेदार नहीं होते, इसलिये वे साझे के धन को पिता से बटवाने में समर्थ नहीं होते। फिर पोते और परपोते भी उसी प्रकार (धन बटवालेने में) समर्थ नहीं होते। क्योंकि वहां पर (दायभाग में) बेटों, पोतों और परपोतों की पिता के साथ साझेदारी नहीं होती। (यहां पर पिता से तत्कालीन धन के स्वामी का तात्पर्य है। इसलिए पोतों के साथ उनके दादा का और परपोतों के साथ उनके परदादा का सम्बन्ध समझना चाहिए।)

द्विजानामुपपत्नीजो दायभागेऽपि न क्षमः।
दायाप्तौ चांऽशनेंऽशाप्तौ भरणाऽर्हः परन्तु सः ॥२२११॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्यों का उपपत्नी से उत्पन्न हुआ (illegitimate) पुत्र दायभाग में भी दाय (उत्तराधिकार में मिलनेवाला धन) पाने और बटवारे में हिस्सा पाने में समर्थ नहीं होता। परन्तु वह पालन पोषण के योग्य होता है। (यहां पर दायभाग में भी कहने से मिताक्षरा में भी उसकी यही दशा समझनी चाहिए।)

शूद्राणामुपपत्नीजा दायभागेऽशनेऽपि वा।
मिताक्षरावदेवाऽत्र दायभागेऽपि भागिनः ॥२२१२॥

शूद्रों के उपपत्नी से उत्पन्न हुए (illegitimate) पुत्र हकदारी के धन में और बटवारे में भी मिताक्षरा के समान ही यहां दायभाग में भी हिस्सा पाते हैं।

क्रेता पृक्तधनांऽशस्याऽभियुज्याऽधिकृतौ क्षमः॥
तदंशस्य, न पृक्ताऽर्थं सर्वं वण्टयितुं परम् ॥२२१३॥

साझे के धन के हिस्से का खरीदनेवाला मुकद्दमा चलाकर उस हिस्से पर अधिकार करने में समर्थ होता है, परन्तु सारे साझे के-धन को बटवाने में समर्थ नहीं होता।

भार्या यद्यपि नो पृक्तं धनमंशयतुं क्षमा।
तथाऽप्यर्हति सा भागं वियुक्तौ पतिपुत्रयोः ॥२२१४॥
मिताक्षराविधौ, किन्तु दायभागे तु न क्षमाः।
ताते जीवति तत्पुत्रा विभागे तत् स्त्रियोऽपि नो ॥२२१५॥

मिताक्षरा के विधान में यद्यपि पत्नी साझे के धन को बटवाने में समर्थ नहीं होती, तथापि वह पति और पुत्रों के जुदा होने पर भाग पाने योग्य होती है। परन्तु दायभाग में पिता के जीते जी उसके पुत्र बटवारे में समर्थ नहीं होते, इसलिये उसकी स्त्रियां भी (भाग पाने में) समर्थ नहीं होतीं।

पितांऽशयितुमीशोऽर्थौ स्वेच्छया व्यक्तिपृक्तिगौ।
यथेच्छं च पुनर्भागं तयोर्दातुमपि क्षमः ॥२२१६॥

पिता अपनी इच्छा से व्यक्तिगत और साझे के धनों को बाँट सकता है और उन दोनों तरह के धनों का इच्छानुसार भाग भी दे सकता है। (अर्थात्-दायभागानुसार वह पुत्रों को ज्यादा या कम हिस्सा देने में भी समर्थ होता है।)

माताऽपि स्वेच्छया नैव शक्तांऽशस्याऽप्तये परम्।
पुत्रैर्विभज्यमानेऽर्थे, सांऽशं पुत्रसमं भजेत् ॥२२१७॥

स्त्रीधनोनं तु चेल्लब्धं तत्पत्युः श्वशुरादुत।
उभयत्राऽपि मान्योऽयं नियमस्तु मतो बुधैः ॥२२१८॥

माता भी अपनी इच्छा से हिस्सा पाने में समर्थ नहीं होती। (अर्थात्-बटवारा नहीं करवा सकती। परन्तु पुत्रों के धन का बटवारा करने के समय वह पुत्र के बराबर भाग लेती है। यदि पति या ससुर से उसने स्त्रीधन पाया हो, तो वह उतना भाग कम पाती है। विद्वानों ने इस नियम को दोनों जगह (मिताक्षरा और दाय-भाग में) मान्य माना है।

त्यक्त्वा यदा स्वदायार्हां मातरं म्रियते सुतः।
विभागात् प्राक् ततश्चाऽन्ये विभजन्ते धनं सुताः ॥२२१९॥
भागद्वयं निजं पुत्र्यं चाप्नोति जननी तदा।
दायाऽप्तं न यतः स्त्र्यर्थं साऽतः पूर्णांशभागिनी ॥२२२०॥

जब पुत्र अपनी उत्तराधिकार का भाग पाने लायक माता को (पीछे) छोड़कर बटवारे के पहले ही मर जाय और उसके बाद दूसरे पुत्र धन का बटवारा करें, तब माता अपना और पुत्र का दो भाग पाती है। क्योंकि दाय में मिला (पुत्र का भाग) स्त्री-धन नहीं होता, इसलिये वह (अपना) पूरा हिस्सा पाती है।

मिताक्षरामतेनाऽत्र मृतभ्रातृधनं व्रजेत्।
तद् भ्रातृनवशिष्टत्वन्यायेन न तु मातरम् ॥२२२१॥

मिताक्षरा के मत से, यहां पर, मरे हुए भाई का धन, पीछे बचनेवालों को मिले इस नियम से, उसके भाइयों को मिलता है मा को नहीं।

दायभागे यतः पत्युः स्वीये कौटुम्बिकेऽपि च।
विधवायाः स्त्रिया भागमनाधृष्यं न विद्यते ॥२२२२॥
अतो भर्ता निजस्वेच्छापत्रेण गृहीणीं निजाम्।
स्वाऽन्ते पुत्रैः समं भागग्रहाद् निरसितुं क्षमः ॥२२२३॥
किन्तु सा भरणीया स्याद्, विमाताऽपुत्रिणी पुनः।
न भागाऽर्हा सपत्नीजैर्भज्यमाने धने पितुः ॥२२२४॥

क्योंकि दायभाग (के मत) में विधवा स्त्री का हिस्सा, पति के निज के और कुटुम्ब के धन में भी अनिवार्य नहीं होता, इसलिए पति अपने इच्छापत्र से अपनी स्त्री को अपने बाद पुत्रों के साथ भाग लेने से वञ्चित कर सकता है। परन्तु उसका भरण-पोषण करना होता है। फिर बिना पुत्रवाली सौतेली मा सौत के पुत्रों द्वारा पिता के धन के बांटेजाने में भाग पाने योग्य नहीं होती।

मिताक्षरामते भर्ता स्वेच्छापत्रेण गेहिनीम्।
कौटुम्बिकात्तु विभवान्नाऽत्र वञ्चयितुं क्षमः ॥२२२५॥

मिताक्षरा के मत में पति अपने इच्छापत्र से, यहां पर, भार्या को कुटुम्ब के धन से वञ्चित करने को समर्थ नहीं होता।

मैताक्षरेष्वपुत्राऽपि माता भागं समश्नुते।
सपत्नीसंभवैः पुत्रैरंश्यमाने धने पितुः ॥२२२६॥

मिताक्षरावालों में बिना पुत्रवाली माता भी सौत के पुत्रों द्वारा पिता के धन के बाँटेजाने पर भाग प्राप्त करती है।

भिन्नमातृभवैः पुत्रैर्भज्यमाने धने पितुः ।
अंशाः स्युः प्रथमं पुत्रसंख्ययाऽर्थस्य निश्चिताः ॥२२२७॥
तत एकाऽधिकानां तु मातरः स्वस्वपुत्रकैः ।
समं भागहरा आत्मपुत्राणां दायभागतः ॥२२२८॥

जुदा-जुदा माताओं से उत्पन्न हुए पुत्रों द्वारा पिता के धन के बाँटे जाने पर पहले धन के हिस्से, निश्चय ही, पुत्रों की संख्या से होते हैं । उसके बाद एक से अधिक पुत्रोंवाली माताएँ अपने पुत्रों के दाय के हिस्से से (उनको मिले पिता के धन के भाग से) अपने-अपने पुत्रों के बराबर का हिस्सा पाती हैं । (अर्थात्-पुत्रों के हिस्से में आया धन माता को शामिल करके फिर से बाँटलिया जाता है ।)

एकपुत्रा तु जननी भागं नाऽर्हति पुत्रतः ।
भरणं लभते सा तु केवलं स्वसुताद् ध्रुवम् ॥२२२९॥

एक पुत्रवाली माता पुत्र से भाग नहीं पाती (अर्थात्-वह अपने पुत्र को मिले हिस्से में से अपना भाग नहीं पाती) । वह तो निश्चय ही अपने पुत्र से सिर्फ भरण-पोषण पाती है ।

पुत्रैर्विभज्यमानेऽर्थे मात्रे योंऽशः प्रदीयते ।
दायभागमतेनाऽसौ भरणायैव संमतः ॥२२३०॥
अतः पृक्तधनाऽल्पांऽशांऽशनं यत्र विधीयते ।
तत्राऽम्बा शेषपृक्तांऽशाद् भरणाऽर्हं भजेद् धनम् २२३१॥

पुत्रों द्वारा धन के बाँटे जाने के समय जो भाग मा को दिया जाता है, वह दायभाग के मत से भरण-पोषण के लिए ही माना है । इसलिए जहां साझे के धन के छोटे से भाग का हिस्सा किया जाता है, वहां माता बाकी के साझे के धन से पोषण के योग्य धन पाती है । (अर्थात्-यदि बिन बांटे धन से माता का पोषण ठीक तौर से हो सके, तो वह साझे के धन के छोटे से हिस्से के बँटने में भाग नहीं पाती ।)

अंशनायाऽभियोगे तु पुत्रेणाऽत्र प्रवर्तिते ।
यावन्नो शासनं राज्ञस्तावद् भर्तृधने भवेत् ॥२२३२॥
नाऽम्बा भागहराऽतश्च तत्प्रागाधीकृतः सुतैः ।
धनांऽशः स च विक्रीत आधीग्राह्याज्ञयों पुनः ॥२२३३॥
माता तत्रांऽशिनी न स्याद्, शेषे पृक्तधनेऽपि च ।
तदर्थं साऽधिकं भागं नैवाप्नोतीति निश्चितम् ॥२२३४॥

यहां पर पुत्रद्वारा बटवारे के लिए मुकद्दमा चलायेजाने पर जब तक डिग्री न हो जाय, तब तक माता (अपने) पति के धन में हिस्सा नहीं पाती । इसलिए यदि

उस (डिग्री) के पहले पुत्रों ने धन का कुछ भाग गिरवी रखदिया हो और फिर गिरवी लेनेवाले की आज्ञा से उसे बेच दिया हो, तो मा उसमें हिस्सा नहीं पाती, और उस (बेचे हुए भाग की) एवज़ में बाक़ी के सामे के धन में भी वह अधिक भाग नहीं पाती । यह निश्चत है ।

पितामह्यपि नो शक्ता स्वयमंशयितुं धनम् ।
भज्यमाने धने किन्तु पुत्रैः पौत्रैश्च वा पुनः ॥२२३५॥
मृततातांऽशभागिन्या स्वपौत्र्या च सुतैर्निजैः ।
साऽपि पुत्रसमं भागं तत्राऽप्नोति सुनिश्चितम् ॥२२३६॥
पौत्रैर्विभज्यमानेऽर्थे भागं पौत्रसमं भजेत् ।
पौत्रैः प्रपौत्रैरंश्येऽर्थे पौत्रेणैव समं पुनः ॥२२३७॥
चेत्तया स्त्रीधनं प्राप्तं भर्तुर्वा श्वशुरादपि ।
तदूनस्तस्य भागः स्यात्सर्वत्रैव विभाजने ॥२२३८॥

दादी भी स्वयं धन को नहीं बटवा सकती । परन्तु पुत्रों और पौत्रों द्वारा अथवा मरे हुए पिता का भागपानेवाली अपनी पोती और अपने पुत्रों द्वारा धन के बाँटेजाने पर वह भी वहां निश्चय ही पुत्र के बराबर भाग पाती है । पोतों द्वारा धन के बाँटे जाने पर पोतों के समान भाग पाती है और पोतों और परपोतों द्वारा बाँटे जानेवाले धन में (भी) पोते के बराबर ही भाग पाती है । यदि उस (दादी) ने पति या श्वशुर से भी स्त्रीधन पाया हो, तो (उपर्युक्त) बटवारे में सब जगह ही उसका हिस्सा उतना कम होगा (अर्थात्–उसके भाग में से स्त्री-धन की कीमत कम करदी जायगी ।)

विभागे भ्रातरः सर्वे समं भागमवाप्नुयुः ।
मृतभ्रातुश्च जेहायो दायादं तस्य निश्चितम् ॥२२३९॥
इच्छापत्रेण वा प्रातिनिध्येनाऽत्र विभाजने ।
यावत्यस्तत्र शाखाः स्यु स्तावन्तोंऽशा विभाजने ॥२२४०॥
शाखोत्पन्नाः पुनस्तस्मादंशिनो निजसंख्यया ।
विभागो दायभागीय इत्थं ज्ञेयो विचक्षणैः ॥२२४१॥

सारे भाई, बटवांरे में बराबर भाग पाते हैं । यहां पर बटवारे में मरे हुए भाई का हिस्सा उसके इच्छापत्र या प्रतिनिधित्व से निश्चित किये हकदार को मिलता है । बटवारे में (पहले) जितनी शाखायें हों, उतने हिस्से होते हैं और फिर (प्रत्येक) शाखा में उत्पन्न हुए (हकदार) उस (शाखा के हिस्से) में से अपनी संख्या के

अनुसार भाग कर लेते हैं । (अर्थात्–पहले जितने पुत्र हों उतने भाग किये जाते हैं और फिर उन पुत्रों में से जो पुत्र मरचुका हो उसके हिस्से को उसके पुत्र आपस में बाँट लेते हैं ।) विद्वानों को इस प्रकार दायभाग का (दाय में कहा) बटवारा जानना चाहिए ।



परिशिष्टम् ।

अद्यतनविधानपरिषदः स्वीकृत्यर्थमुपस्थापितानि परं नाद्यावध्यङ्गीकृतानि कतिपयानि आर्यविधान-संशोधनानि संक्षेपतोऽग्रे प्रदर्श्यन्ते:—

आज कल की कानून बनानेवाली सभा (Constituent assembly) की स्वीकृति के लिए उपस्थित किये, परन्तु अभीतक अङ्गीकृत न हुए आर्यविधान (Hindu-law) के कुछ संशोधन आगे संक्षेप से बतलाये जाते हैं:—

बाणाकाशखनेत्राब्दसंशोधितविधानतः।
मिताक्षरोक्तां पुत्रस्य जन्मनैवाधिकारिताम् ॥ १ क ॥
पैतृकेऽर्थे तु पितरि जीवत्यपि तथैव च।
संसृष्टेष्ववशिष्टया तु संसृष्टार्थाधिकारिताम् ॥ २ ॥
निराकृत्यात्र वङ्गीयदायभागोक्तरीतितः।
दायाद्यं निश्चितं नूनं सर्वस्मिन्नपि भारते ॥ ३ ॥

(वि० सं०) २००५ (ई० सं० १९४८) में संशोधन किये कानून से मिताक्षरा में कही पिता के जीते जी भी बाप-दादा के धन में पुत्र की जन्म से अधिकारिता और उसी प्रकार साझेवालों में पीछे जीवित रहने से साझे के धन की अधिकारिता को हटाकर यहां पर सारे ही भारत वर्ष में निश्चय ही बंगाल में प्रचलित 'दायभाग' में कही रीति से हकदारी निश्चित करदी है। (अर्थात्-पिता के जीते जी पैतृक धन पर पुत्र का अधिकार नहीं माना गया है और साझेवालों में से किसी के मरने पर उसका हिस्सा उसीके उत्तराधिकारियों को मिलना तय किया है, अब बचे हुए साझेवालों को नहीं मिलेगा) ।

यथा पूर्वं परं त्यक्ता मरुमक्कटयंप्रथा।
नम्बुद्रीणां प्रथा चापि दायाद्ये दक्षिणापथे ॥ ४ ॥

परन्तु दक्षिण में की दाय-धन संबन्धी "मरुमक्कटयं" प्रथा और "नम्बुद्री प्रथा" वैसी ही छोड़ दी गई है। (अर्थात्-उसमें परिवर्तन नहीं किया है।)

स्त्रीधने मातृवित्ते च कृतः पुत्रोऽपि भागभाक्।
पुत्रकन्योरनेनात्राधिकारसमता कृता ॥ ५ ॥

स्त्री-धन में और माता की जायदाद (estate) में पुत्र को भी हकदार कर-दिया है और इससे पुत्र और पुत्री के अधिकार की समता करदी है।

भागद्वयं हरेत् कन्या भागमेकं सुतः पुनः।
स्त्रीधने, तारतम्यं तु कन्यानां च निराकृतम् ॥ ६ ॥

स्त्री-धन में दो भाग कन्या और एक भाग पुत्र लेता हैं। उन कन्याओं का

पहले–पीछे का झगड़ा (भी) हटा दिया है । (अर्थात्-क्वारी, विधवा, गरीब और अमीर सारी ही कन्याओं का हक समान कर दिया है ।)

मिताधिकृतिका नार्यः पूर्णस्वाम्याः कृताः पुनः ।
पित्रर्थे तत्सुताश्चापि सुतभागार्धहारिकाः ॥ ७ ॥

फिर परिमित अधिकारवाली स्त्रियों को पूर्ण अधिकारवाली करदिया है और पिता के धन में उसकी लड़की को भी लड़के से आधा हिस्सा पानेवाली बना दिया है ।

एकां कन्यामथैकां च भार्यामेकं सुतं तथा ।
त्यक्त्वा मृते जने तस्य धनार्धं हरते सुतः ॥ ८ ॥
अर्धं भार्या यतः पुत्री नो भागार्हाऽद्य तद्धने ।
नव्यरीत्या परं कृत्वा संपदो भागपञ्चकम् ॥ ९ ॥
हरेद् भागद्वयं पुत्रो भार्याप्यंशद्वयं तथा ।
भागमेकं तथा कन्या पूर्णस्वाम्यास्त्रयोऽप्यमी ॥ १० ॥

पुरुष के एक कन्या, एक पत्नी और एक पुत्र को छोड़कर मरने पर उसके धन का आधा भाग पुत्र और आधा भाग पत्नी लेती है; क्योंकि आज कल लड़की उसके धन में भाग पाने योग्य नहीं मानी गई है । परन्तु नवीन रीति (कायदे) से (उस) संपत्ति के पांच हिस्से कर के दो भाग पुत्र, दो भाग स्त्री और एक भाग कन्या लेती है । ये तीनों पूर्ण अधिकार वाले होंगे ।

त्यक्त्वा भार्यां च कन्यां वा पुत्रं कन्यां मृते जने ।
तद्धनं हरते भार्या पुत्रो वा स्थित्यनुक्रमात् ॥ ११ ॥
भागत्रयं परं कृत्वा नव्यरीत्या तु संपदः ।
भार्या सुतोऽथवा भागौ द्वौ स्वस्थित्यनुरूपतः ॥ १२ ॥
हरेत् कन्या तथा चैकं भागं तत्पितृसंपदः ।
त्रयाणामप्यथैतेषां स्वेंऽशे पूर्णाधिकारिता ॥ १३ ॥

पुरुष के पत्नी और कन्या या पुत्र और कन्या को छोड़ कर मरने पर उसका धन स्थिति के क्रम से भार्या या पुत्र लेता है । (अर्थात्–पहले स्थान पर पत्नी और दूसरे स्थान पर पुत्र लेता है ।) परन्तु नवीन रीति से संपत्ति के तीन हिस्से करके स्थिति के अनुसार दो भाग पत्नी या पुत्र लेता है और उस पिता की संपत्ति का एक भाग कन्या लेती है । फिर इन तीनों का अपने हिस्से पर पूर्ण अधिकार होता है ।

एकं सुतं स्नुषामेकामधवां च, कनीं पुनः ।
एकां त्यक्त्वा जने मीते तद्धनार्धं सुतस्तथा ॥ १४ ॥
अर्धं स्नुषा लभेतात्र किन्तु नव्यविधानतः ।
अर्धं पुत्रस्तदर्धार्धं स्नुषा शेषं च कन्यका ॥ १५ ॥

पुरुष के एक पुत्र, एक विधवा पुत्रवधू और एक कन्या को छोड़ कर मरने पर यहां पर उसके धन का आधा (उसका) लड़का और आधा (विधवा) पुत्र-वधू पाती है। परन्तु नवीन कानून से आधा पुत्र, चौथाई पुत्र-वधू और बाकी (का चौथाई) लड़की पाती है।

त्यक्त्वा कन्यामथो मीत-पुत्र-भार्यां मृते जने।
स्नुषा सर्वं लभेतार्थं नो कन्यांशं तु तद्धने ॥ १६ ॥
परं नव्यविधानेन धनार्धं सा स्नुषा तथा।
शेषार्धं तु हरेत् कन्या पूर्णस्वाम्येन निश्चितम् ॥ १७ ॥

पुरुष के कन्या और विधवा पुत्र-वधू को छोड़ कर मरने पर पुत्र-वधू सारा धन पाती है। उस धन में कन्या हिस्सा नहीं पाती। परन्तु नवीन कायदे से आधा धन वह पुत्र-वधू और बाकी का आधा कन्या निश्चय ही पूर्ण स्वाम्य से लेती है।

सत्यां पत्न्यां सुशीलायां पतिरन्यविवाहकृत्।
कृतो दण्डयो,वृथैवासौ पत्न्युद्वेजनकृद्यतः ॥ १८ ॥

अच्छे शीलवाली भार्या की मौजूदगी में दूसरा विवाह करनेवाले पति को दण्ड पाने योग्य करदिया है, क्योंकि वह भार्या को नाहक ही तकलीफ देनेवाला होता है।

कादाचित्कस्तु दंपत्योर्व्यभिचारो भवेदलम्।
नैवोपयमविच्छेदकृते नव्यविधानतः ॥ १९ ॥
सातत्येनैव तस्यात्र ह्यस्तित्वं कारणं भवेत्।
विच्छेदे तु विवाहस्य पतिपत्न्योस्तु निश्चितम् ॥ २० ॥

नये कानून से स्त्री और पुरुष का कभी-कभी का किया हुआ (isolated) व्यभिचार (दोष) विवाह के विच्छेद (divorce) के लिए पर्याप्त नहीं होता। उस (व्यभिचार) का यहां लगातार होना ही पति और पत्नी के विवाह के विच्छेद का निश्चय ही कारण हो सकता है।

पुनश्च

फिर

पतिपत्न्योरेकतरस्त्यजेदन्यमकारणम्।
आर्यधर्मेतरं धर्ममङ्गीकुर्यादथो पुनः ॥ २१ ॥
आचारेत् क्रूरकर्माणि परपीडनहेतवे।
जननेन्द्रियरोगैर्वा रुग्णः कुष्ठेन वा पुनः ॥ २२ ॥
विवाहोच्छेदनं तर्हि तयोर्मान्यं कृतं तथा।
उपपत्नीमतः पत्युस्त्यागश्चाप्यनुमोदितः ॥ २३ ॥

पति या पत्नी में से एक, दूसरे को विना कारण ही छोड़दे, हिन्दू-धर्म के अतिरिक्त दूसरा धर्म अङ्गीकार करले, दूसरे को पीड़ा पहुँचाने के लिए क्रूर कर्म (मार-पीट) करे या जनेन्द्रिय के रोगों या कोढ़ से बीमार हो, तो उन पति-पत्नी का विवाह का उच्छेद (divorce) मान्य कर दिया है । इसी प्रकार उपपत्नी रखने वाले पति का त्याग (divorce) करना भी मान लिया है ।

जननेन्द्रियरोगश्चेत्संक्रामकदशास्थितः ।
पञ्चवर्षावधि तदोपयमोच्छेदने त्वलम् ॥ २४ ॥

यदि संक्रामक दशावाला जननेन्द्रिय का रोग (venereal disease) पांच वर्ष तक रहे, तो विवाह के विच्छेद में समर्थ होता है ।

वध्वास्तु यौतकं रक्ष्यं यावत्साऽष्टादशाब्दिकी ।
ततस्तदिच्छयैवात्रोपयोगस्तस्य निश्चितः ॥ २५ ॥

पुत्र-वधू का दहेज उसके अट्ठारह वर्ष की होने तक रक्षा करने योग्य कर दिया है और उसके बाद यहां पर उसकी इच्छा से ही उसका उपयोग निश्चित किया है ।

वैधानिको विवाहोऽपि मान्यो हिन्दुषु संगतः ।
दम्पत्योरेकजातित्वाऽपेक्षोद्वाहे निराकृता ॥ २६ ॥

कानूनी विवाह (civil marriage) भी हिन्दुओं में मान्य मानलिया है और विवाह में पति-पत्नी के एक जाति के होने की आवश्यकता भी दूर करदी है ।

अतस्तयोर्जनेश्चापि मता दायार्हता पुनः ।
दासेयानां च शूद्रेषु नियमास्तु वृथाकृताः ॥ २७ ॥

इससे उन (ऐसे पति-पत्नी) की सन्तान की भी दाय पाने की योग्यता मान ली है और शूद्रों में दासी-पुत्रों के नियमों को निरर्थक कर दिया है । (अर्थात्—उनमें दासी-पुत्रों को पूर्ण हकदार कर दिया है ।)

विवाहसमये त्वेकः पतिपत्न्योस्तु निश्चितम् ।
जडोन्मत्तो भवेत्तर्हि विवाहोऽमान्य ईरितः ॥ २८ ॥

विवाह के समय पति या पत्नी में से एक निश्चय ही जड़ (idiot) या उन्मत्त (lunatic) हो तो विवाह को अमान्य कहा है ।

प्रातिलोम्यानुलोम्ये च विवाहे न विवर्जिते ।
गोत्रप्रवरबाधापि तत्रत्याऽस्ति निराकृता ॥ २९ ॥
केवलं पितृसापिण्ड्यमेव तत्र बहिष्कृतम् ।
तस्मिन्वैधानिके तथ्यलेख एव मतः पुनः ॥ ३० ॥

विवाह में प्रतिलोम-पन (वर का नीची जाति का होना) और अनुलोम-पन (वर का ऊंची जाति का होना) निषिद्ध नहीं किया है और यहां (विवाह में) की और गोत्र प्रवर की बाधा भी दूर करदी है । केवल पिता की तरफ की (agnate)

सपिण्डता का बहिष्कार किया है। फिर उस (विवाह) के वैधानिक (civil) होने पर (रजिस्टर में) सच्ची बात का लिखा जाना ही ठीक माना है।

विधवा त्रीणि वर्षाण्येव शक्ता दत्तकग्रहे।
पत्युर्मरणतो नूनं न तदन्ते कदाचन ॥ ३१ ॥
भूत्वा दायहरो भर्तुस्तस्याः स स्यात्क्षमः पुनः।
संपृक्तौ पृक्ततां प्राप्तुं यत्र पृक्तः पिताऽभवत् ॥ ३२ ॥

पति के मरने के बाद विधवा निश्चितरूप से तीन वर्ष तक ही गोद लेने में समर्थ होती है, उसके बाद कभी नहीं होती। और वह (दत्तक-पुत्र) उस (स्त्री) के पति का दाय-धन पाने वाला (हकदार) होकर, जिसमें पिता साझेदार था उस साझे में, साझेदारी पाने में समर्थ होता है।

चेत्पत्या न निषिद्धा स्याद्विधवा दत्तग्रहे तदा।
तस्या दत्तग्रहेऽपेक्षाऽन्येषां नो संमतेर्मता ॥ ३३ ॥
ऊनपञ्चदशाब्दः स्याद्दत्तकस्त्वविवाहितः।
नोपनीतस्तथाऽऽदातुश्चेत्सगोत्रः स नो भवेत् ॥ ३४ ॥

यदि पति ने अपनी विधवा को गोद लेने से मना न कर दिया हो, तो उसके गोद लेने में दूसरों की संमति की आवश्यकता नहीं मानी है। गोद लिया जानेवाला पुत्र पन्द्रह वर्ष से कम का, अविवाहित और यदि वह गोद लेने वाले के गोत्र का न हो तो, विना यज्ञोपवीत-संस्कार किया हुआ हो।

दौहित्रो भागिनेयश्च मातृष्वसृसुतोऽपि च।
दत्तके संमतो नव्यविधानेन त्वसंशयम् ॥ ३५ ॥

नवीन कानून से निश्चय ही नवासा, भानजा और मौसेरा भाई भी गोद का पुत्र होने योग्य मान लिया गया है।

पुत्र्यास्तु दत्तकत्वेन ग्रहस्तत्र विवर्जितः।
दात्तस्येऽप्येकजातित्वं दात्रदात्रोरुपेक्षितम् ॥ ३६ ॥

पुत्री का गोद लेना वहां (नवीन कानून में) वर्जित किया है। गोद लेने में भी लेने और देनेवाले का एक जाति का होना उपेक्षित कर दिया है।

संक्षेपतस्तु लिखितं विधानं नूतनं मया।
ज्ञास्यते परिणामोऽस्य कालेनैवार्यसंस्कृतौ ॥ ३७ क ॥

यहां पर मैंने नवीन कानून संक्षेप से लिखा है। आर्य-संस्कृति पर इसका असर (कुछ) समय से ही जाना जायगा।

शुद्धपत्रम्

पृष्ठम्	पंक्तिः	अशुद्धम्	शुद्धम्
३	५	भान्य	मान्य
४	१६	पहली	में पहली
१२	२२	शेपषु	शेषेषु
२०	२४	त्वेष	त्वेष
२१	७	हीं	नहीं
२४	४	१३६	१३५
२५	२	गें	में
२६	८	भगिनेयीपुत्रः	भागिनेयीपुत्रः
२६	१७	प्रपितामहपौत्रदौहित्रः	प्रप्रपितामहपौत्रदौहित्रः
३४	८	दायमादत्त	दायमादत्त
४२	२२	प्राक	प्राक्
४४	१	कज	कर्ज
४८	२६	भतु०	भर्तु०
५७	३	भ्राता	भ्राता
५८	१५	वृद्धप्रभाता०	वृद्धप्रमाता०
६२	२५	दायभार्गिनः	दायभागिनः
६५	३०	सकुलेभ्यः	सकुल्येभ्यः
७२	१०	स्त्रियायपितं	स्त्रियायर्पितं
७८	३०	सौदायिकम)	सौदायिकम्)
८५	१२	० वाहनिक	० वाहनिकं
८७	२	दत्त	दत्तं
८८	१३	दी हुई	दी हुई (स्त्री की)
८८	३३	देखना चाहिए ।)	) देखना चाहिए ।
९०	३	निश्चिता	निश्चिताः
९०	२२	नून	नूनं
९१	२०	पर वक्ष	परं वक्ष
९२	१७	सम्पत्त	सम्पत्ति
९३	१	स्त्रियालेख	स्त्रिया लेख
९५	२८	यत्तु	तत्तु

पृष्ठम्	पंक्तिः	अशुद्धम्	शुद्धम्
९६	३१	भर्तुः	भर्तुः
९८	१५	सच्छानुसार	इच्छानुसार
९९	११	धन	स्त्री-धन
९९	१९	यथोप्सितम्	यथेऽप्सितम्
१०२	१६	शाखिभिः	शाखिभिः
१०३	१६	नोचे	नीचे
१११	२३	यथोचित	यथोचितं
११२	३०	भिलता है	मिलता है
११३	१६	क्रम से	क्रम से
११३	२७	मय	मत
११४	८	किया	क्रिया
११४	१६	(मिताक्षरो के)	(मिताक्षरा के)
११५	१६	(tecnnical)	(technical)
११६	३१	दाय भाग में	दाय भाग के
१३२	११	भृत्य	भृत्यै
१३७	१०	हुइ	हुई
१३७	२३	० कारणांना	० कारणानां
१३९	१	नेविष्ट ०	नेदिष्ठ०
१३९	१५	दायात्सर्थ ०	दायात्सार्थं ०
१३९	१६	० न्त्येष्टि ०	० न्त्येष्टि ०
१४५	२६	सिद्धये	सिद्धयै
१५१	१२	प्रत्यद	प्रत्याद
१६०	३२	याऽद्रव्ययतस्समर्थः स्याज	तद्द्रव्यस्याऽसमर्थः स्याज
१६९	२८	० संपत्ताव ०	० संपत्यव ०
१७६	८	क्रतु	क्रतुं
१८०	२७	सशयः	संशयः
१८३	३०	किन्तु	किन्तु
१९५	२२	तया	तथा
१९७	२	कर्मतव्य	कर्तव्य
२००	२०	) ने ले लिया हो	ने ले लिया हो)
२०२	१२	धन	धर्म

पृष्ठम्	पंक्तिः	अशुद्धम्	शुद्धम्
२०२	२१	(neclens)	(nucleus)
२०५	१६	पुत्र ष्वेक ०	पुत्रेष्वेक ०
२११	४	वंशकार्येऽर्थे	वंशकार्येऽर्थे
२१४	१०	वाम	काम
२१८	८	गिरव	गिरवी
२२१	२१	राति	रीति
२२५	८	० विवर्जितः	० विवर्जितः
२२७	७	दिखयाये	दिखलाये
२२८	१४	अन्त्यांयां	अन्त्यायां
२३१	२५	चत्	चेत्
२३१	२६	त्वभियुक्तैरनुद्धारार्थं	त्वभियुक्तैरनुद्धारार्थं
२३१	८	सके	सर्के
२३२	१४	महाराष्ट्रे	महाराष्ट्रे
२३२	१६	पृक्तिभेः	पृक्तिभिः
२३२	११	अधिकर	अधिकार
२३२	१२	संपति	संपत्ति
२३२	२६	विशिटार्थं ०	विशिष्टार्थं ०
२३४	१८	निज	निजं
२३६	११	प्रंश्लिष्टै ०	संश्लिष्टै ०
२३६	१६	विनिश्चिता	विनिश्चिताः
२४६	१२	यथा साध्यं	यथासाध्यं
२४७	१४	०.प्रपोत्रान्ता	० प्रपौत्रान्ता
२५६	३१	पिता पुत्रा ०	पितापुत्रा ०
२५६	१५	० स्तात्स्थित्याः	० स्तात्स्थित्या
२६२	१६	(objec ion	(obejction)
२६२	२२	स्वाऽर्थ रक्षणम्	स्वाऽर्थरक्षणम्
२६३	४	ह	ही
२६८	४	नर्थस्यात्वस्तित्वं	० नर्णस्वं त्वस्तित्वं
२७२	१५	समुद्धतु	समुद्धतु
२८३	२४	० युतः	० युतः

पृष्ठम्	पंक्तिः	अशुद्धम्	शुद्धम्
२८५, २८७, २८९, २९१	(शीर्षक [illegible] line)	मिताक्षरीयमृण-विवेचनम्	मिताक्षरोको विभाग
२९३	२३	मतभ्रातृसुतैः	मृतभ्रातृसुतैः
३०२	२४	० कुटुम्बाथस्य	० कुटुम्बार्थस्य
३०७	२३	आश्र्यक	आवश्यक
३११	१२	इमे	त्विमे
३११	१९	पृक्तस्वाथस्य	पृक्तस्वार्थस्य
३१३	६	सवे	सर्वे
३१५	२८	निश्चरूप	निश्चयरूप
३१८	१६	नहां	नहीं
३१८	२४	बटवार	बटवारा
३१८	२८	कुटुम्बाथस्य	कुटुम्बार्थस्य
३२०	१४	ही	ही
३२१	६	मुकद्में	मुकद्मे
३२३	५	अपनां	अपना
	३	जनेन्द्रिय	जननेन्द्रिय
	३३	और गोत्र प्रवर	गोत्र और प्रवर

मुद्रणाऽशुद्धयो दृष्टयाऽऽगताः संशोधिता मया।
दृष्टिदोषाद् न या ज्ञाताः शोध्याः सहृदयैस्तु ताः॥

मैंने दृष्टि में आई छापे की अशुद्धियां शुद्ध करदी हैं। जो दृष्टि के दोष से नहीं हुई हैं, सहृदयों को उनका संशोधन करलेना चाहिए।